सचित्र

भर्तृहरिकृत

वैराग्यशतक

अनुवादक

बाबू हरिदास वैद्य ।

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी ।

कलकत्ता

२१, सुकिया स्ट्रीटके "भोलानाथ प्रिंटिंग वार्क्स्"में

बाबू सुर्य्यकुमार मान्ना द्वारा

मुद्रित ।

मई १९२५ ई०

तृतीय वार ३०००] [मूल्य ४)

सन् १९१५ ई० में, हमारे यहाँ से महाराज भर्तृहरिके "नीतिशतक" का अनुवाद छप कर प्रकाशित हुआ था। तभी से हमारी इच्छा थी, कि "वैराग्य-शतक" का भी अनुवाद प्रकाशित किया जाय। इसके अनुवाद के लिए, हमने कई योग्य विद्वानोंसे लिखा-पढ़ी की, किन्तु वादा करने पर भी, गत मार्च तक, किसी विद्वान् सज्जनने कृपा नहीं की। उधर हमारे प्रेमी ग्राहकोंने इसके लिए तकाज़े करने शुरू किये; तब हमने "अकरणान्मन्द करणं श्रेयः" के न्याया-नुसार, इसके अनुवाद करने का स्वयं दुःसाहस किया। यद्यपि हम स्वयं अच्छी तरह जानते हैं, कि हम न तो किसी भाषाके विद्वान् हैं और न हिन्दीके ही नामी-गिरामी लेखक हैं; पर सर्वसाधारण हमारी लिखी पुस्तकोंकी भाषा और शैलीको पसन्द करते हैं, हमारी लिखी पुस्तकोंको चाहसे ख़रीदते हैं, इसी बल-भरोसे पर हमने बौनेकी तरह चाँद छूनेका प्रयास किया है। कह नहीं सकते, हमें कहाँ तक सफलता हुई है। सम्भव है, इसमें अनेक त्रुटियाँ रह गई हों; क्योंकि हमने यह

काम, कारणवश, बहुत ही जल्दीमें—कोई दो सप्ताहमें ही—शेष किया है।

यह कहने की ज़रूरत नहीं, कि महाराज भर्तृहरि के प्रत्येक शतक (नीति, श्रृङ्गार और वैराग्य) का प्रत्येक श्लोक लाख-लाख रुपयों के लिए भी सस्ता है। आपके पदोंका मनुष्यके दिल पर जैसी जल्दी असर होता है, औरों के पदोंका वैसा नहीं होता। पढ़ने और समझनेवालेको जो मज़ा आता है, वह कह कर और लिखकर बताया नहीं जा सकता। उस मज़ेको दिल ही जानता है। दुःख है, कि दिलके ज़बान नहीं और ज़बान के दिल नहीं। प्रत्येक पढ़े-लिखे सज्जन इस "वैराग्य शतक" को रोज़-रोज़ या हफ़तेमें एक वार अवश्य देखा करें, ताकि इस मिथ्या जगत् की असारताको समझें, विषय-वासनाओंको त्यागें, परोपकार में मन लगावें और अपनी आगेकी लम्बी सफ़रका सामान करें अथवा परमात्माकी निष्काम भक्ति करते हुए परमपद या मोक्ष-प्राप्तिकी चेष्टा करें।

"वैराग्यशतक" के बहुतसे हिन्दी अनुवाद मौजूद हैं ; पर उनके अनुवादकोंने यथेष्ट कष्ट नहीं उठाया ; इसलिये प्रत्येक थोड़ा पढ़ा-लिखा इस रूखे वेदान्त-विषयको दिल चलाकर भी समझ नहीं सकता। थोड़े-पढ़े लिखे सज्जन भी इस मोक्षकी राह दिखाने वाले विषयको समझें और लाभ उठावें, इसी ग़रज़से यह अनुवाद किया गया है। इसीसे इसकी भाषा भी, जहाँ तक हो सका है, खूब ही सरल रक्खी गई है। शब्दार्थ

पर ध्यान न देकर, भावार्थ पर ध्यान दिया गया है। सरलता के लिये ही पूरी स्वतन्त्रतासे काम लिया गया है।

आरम्भमें मूल श्लोक, उसके नीचे भावार्थ, भावार्थके नीचे व्याख्या, व्याख्याके अन्तमें महाराज श्री प्रताप सिंह जूकी चित्ताकर्षिणी कविताएं और शेषमें अँगरेज़ी अनुवाद दिया गया है। भावार्थ, कविता और अङ्गरेज़ी अनुवादके साथ मूल श्लोकोंके नम्बर दिये गये हैं। व्याख्याके साथकी कविताओंके साथ नम्बर नहीं दिये गये हैं, क्योंकि वे "वैराग्यशतक" के मूल श्लोकोंके भावकी अक्षर-अक्षर द्योतक नहीं। वे तो पाठकोंकी दिलचस्पी के लिए व्याख्या के साथ दे दी गई हैं। जहाँ तक हो सका है, व्याख्याओंके साथ उपयुक्त कविता ही दी गई हैं। आशा है, वे अधिकांश पाठकों को रोचक मालूम होंगी।

इस पुस्तकके तैयार करनेमें "तुलसी सतसई" सुन्दर बिलास," "कबीरकी साखी" प्रभृति ग्रन्थोंके सिवा "उस्ताद ज़ौक़" "महाकवि दाग़" और "महाकवि ग़ालिब" से भी मौक़े-मौक़े की कविताएँ ली गई हैं; उनके लिए हम पूज्यपाद विद्वद्वर श्रीमान् पण्डित ज्वालादत्त जी शर्म्मा, सम्पादक "प्रतिभा" के बहुत अभारी हैं।

इस पुस्तककी तैयारीमें, हमारे एक मित्र महाशयने कम-से-कम चौथे हिस्सेका काम किया है। हम उनका नाम देना चाहते थे। इसके लिए हमने उन्हें लिखा भी, पर वे इससे

असन्तुष्ट होते हुए मालूम हुए, इसलिये उनका नाम भूमिकामें नहीं लिखा गया है। उनके सिवा हमारे विद्वान् मित्र बाबू छोगमल जी चोपड़ा बी० ए०, बी० एल०, वकील, स्माल काज़ कोर्ट, कलकत्ताने भी हमें बहुत कुछ सहायता दी है, इसलिये हम वकील साहबके अतीव कृतज्ञ हैं।

इस पुस्तकमें, इस काग़ज़ के दुर्भिक्षके समय, ख़ासी रक़म लगाकर, प्राय: २० भावपूर्ण हाफटोन चित्र मौक़े-मौक़े पर सजा दिये गये हैं। आशा है, हिन्दी-प्रेमी सज्जन हमारी त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर, हमें उत्साहित करेंगे, जिससे हम भविष्य में और भी अच्छी तरह मातृभाषाकी सेवा कर सकें।

कलकत्ता।
१५-४-२० ई०

विनीत—
हरिदास।

PREFACE.

In 1915, a translation of NITISHATAK of Maharaja Bhartri Hari was published by my firm well-known as Haridas & Co. I had an intense desire thenceforward, to publish a translation of VAIRAGYA-SHATAK also. I wrote to several well-known scholars but up to March last no one favoured me with a promise to take up the work. In the meantime my worthy customers began to send me repeated reminders and demands for the new book. Finally I ventured to translate it myself, as it was better to do something than nothing. I know very well that I am not scholar in any language nor am I well-know Hindi writer, but the public like the style and language of the books written by me with keenness. This was my only consideration to take up this bold undertaking, although it is like that of a dwarf trying to reach the moon. I do not know how far I have been successful. It is quite possible that there are many short-comings and defects, because I had to do this hurriedly—in fact within the short space of about two weeks.

It is perhaps superfluous to add that every one of the ślokas of the Niti, Vairagya and Shringar Shatakas, compiled by MAHARAJA BHATRIHARI is worth lacs of Rupees. His slokas have a peculiar charm which no other author's slokas have. It is impossible to describe the unspeakable pleasure it produces in the minds of its readers. The pleasure can better be imagined than described. I request every literate person to read it once or twice every week, so that he may think about the transitoriness of the world, and give up worldly desires and may fix his mind in the meditation of the Supreme Being and may devote his life and time in philanthropic and benevolent works.

There are lots of translations of VAIRAGYA SHATAK, but the translators seem not to have taken sufficient pains to explain the deep philosophy underlying its slokas. The present work has been undertaken with the sole object of making it easy to be understood by ordinary literate people and hence it is that its language has been made as easy as possible. The purport has been taken into consideration and not the meanings of the words only and in order to make it as easy as possible, free translation has been made and not literal.

First the original sloka has been put, then the purport and after that the soul-enchanting verses of Shri Maharaja Pratap Singhjoo and last of all the English translation has been put in. The purport verses and English translation all have been numbered as per the original slokas. But in the verses appearing in the explanatory notes no number has been given, because those verses do not give the purport of the original slokas of the VAIRAGYA SHATAKA. They have been put in along with the notes, simply to cheer the readers and it is hoped they will offer a pleasant reading to the reader.

In the preparation of this book much help has been taken from Tulsi Satsai, Sunder Bilas, Kabir's Sakhi. Occasional quotations have also been made from "Ustad Zauq" "Dagh the great poet" and Ghalib the great poet. For these quotations I am much indebted to my venerable friend and scholar Pandit Jwala Dutta Sharma, Editor "The Pratibha."

I received much assistance from a friend of mine in its preparation. I wanted to disclose his name and wrote for permission, but he seemed to be quite unwilling to consent and it is with regret that I can not publish his name here.

I am also highly thankful to my esteemed friend Babu Chhogmal ji Chopra, B. A., B. L, pleader Small Causes Court, Calcutta for the assistance he gave me from time to time in this connection.

About 20 half-tone pictures have been put in at the proper place at considerable expense and that at a time when there is a famine of printing papers.

I trust that my esteemed friends and admirers would overlook my mistakes and defects and give me encouragement in my present enterprise, so that I may in future serve my mother-tongue more cheerfully and successfully.

CALCUTTA,
The 15th April, 1920 } HARIDASS VAIDYA.

॥ श्रीः ॥
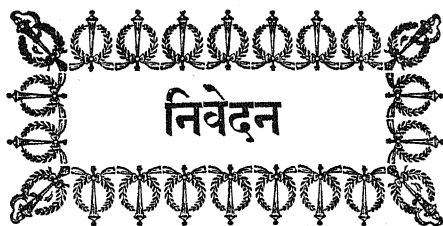
निवेदन

जगदीशकी कृपासे आज "वैराग्यशतक" का तीसरा संस्करण छपकर तैयार है। लेखकको अपनी लिखी पुस्तकके संस्करण पर संस्करण होते देखकर कितनी खुशी होती है, यह कहने की ज़रूरत नहीं। दो-दो हज़ार प्रतियोंके दो संस्करण शीघ्र ही खप जानेसे साफ मालूम होता है कि, हिन्दी-प्रेमियोंने इस तुच्छातितुच्छ लेखकके अनुवादको खूब पसन्द किया है। हिन्दीके अनेक समाचार पत्रोंने भी हमारे अनुवाद किये नीति, वैराग्य और शृंगार शतककी दिल खोलकर तारीफ की है।

पाठकों और पत्र सम्पादकोंके उत्साहवर्द्धनसे उत्साहित होकर, प्रकाशकोंने इस वार इसमें ६ चित्र और भी बढ़ा दिये हैं। पहले संस्करणमें २० और दूसरेमें २६ चित्र थे। इस तीसरे संस्करणमें ३८ हाफटोन चित्र हो गये हैं। इन चित्रोंसे ग्रन्थकी शोभा और भी बढ़ गई है। हमारे एक विद्वान्

मित्रने हमारी अनुपस्थितिमें कितने ही स्थलोंमें महाराज प्रताप सिंहजी की चमत्कारिणी कविताओंके कठिन शब्दोंके अर्थ फुटनोटोंके स्थानोंमें लिखनेकी कृपाकी है। इस शब्दार्थसे साधारण हिन्दी जानने वालोंको कविताओंका मर्म्म समझनेमें अवश्य आसानी होगी ; पर अफसोस है, सारी ही कविताओंके शब्दार्थ विस्तार-भयसे नहीं लिखे गये। सभी कविताओंके शब्दार्थकी ज़रूरत भी नहीं समझी गई, क्योंकि घूम फिर कर वे ही शब्द बारम्बार आते हैं। आशा है, पाठक इतनेसे ही सन्तुष्ट हो जायँगे।

इस संस्करणमें, भाषाकी त्रुटियों पर भी जहाँ-तहाँ ध्यान दिया गया है। फिर भी आधीसे ज़ियादा पुस्तक हमारी नामौजूदगीमें छपी, इसलिये वहाँ कोई सुधार न हो सका। अगर इस संस्करणमें भी त्रुटियाँ या ग़लतियाँ रह गई हों, तो पाठकोंसे हमारा नम्र निवेदन है कि, वे हमें पहलेकी तरह ही क्षमा प्रदान करें।

भगवान् कृष्णकी असीम कृपासे हमारे अनुवाद किये हुए "शृङ्गार शतक" का भी नवीन संस्करण होने वाला है। पुस्तक प्रेसमें दे दीगई है। अगर दैव अनुकूल रहा, विघ्न-बाधाओंका सामना न करना पड़ा, कोई अमङ्गल घटना न घटी और स्वास्थ्य अच्छा रहा, तो शृंगार शतकके भी चित्रों और पृष्ठों में वृद्धि की जायगी ; क्योंकि हमारा शृंगार भी पाठकोंने खूब पसन्द किया है। पाठकोंकी क़दरदानीका ही नतीजा है कि, दो

हज़ारी संस्करण प्रायः डेढ़ सालमें ही शेष हो गया। अनेक पत्रसम्पादक महोदयोंने भी हमारा शृंगार शतक पढ़ कर भूरि-भूरि प्रशंसा की है। "वर्त्तमान"-सम्पादक श्रद्धेय पण्डित रमाशङ्करजी अवस्थी तो उस पर दिलोजान से फिदा हो गये। बस, इन्हीं सब वजूहातोंसे हमारा और प्रकाशकोंका दिल बढ़ा है और हम लोग इसमें भी वृद्धि करने पर तैयार हुए हैं। आशा है, मनोरथदाता कृष्ण हमारी मनोकामना सफल करेंगे और हमारे प्रेमी पाठक पहलेकी तरह ही हमारा उत्साह बढ़ाते रहेंगे।

कलकत्ता।
१५ मई, सन् १९२५ ई०

विनीत—
अनुवादक

चित्र-सूची

श्रीः

महाराजा भर्तृहरि

कहते हैं, कोई दो हज़ार वर्ष पहले, राजपूतानेके मालवा प्रान्तकी उज्जयिनी नगरीमें,—जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं,—एक उच्च श्रेणीके विद्वान्, नीतिकुशल, न्याय-परायण, प्रजावत्सल, सर्व्वगुणसम्पन्न नृपति राज करते थे। आप का शुभ नाम महाराज भर्तृहरि था। आप अपनी प्रजाको निज सन्तानसे भी अधिक चाहते थे और उसीकी हितचिन्तनामें दिन-रात मशगूल रहते थे। आपकी न्यायप्रियता और प्रजाहितैषणा की चर्चा सारे भारतमें फैल गई थी, इसलिये अन्य राज्योंकी बहु-संख्यक प्रजा भी अपना देश छोड़कर आपके राज्यमें आ कर बस गई थी; इससे उज्जयिनीकी शोभा-समृद्धि आजकलके कलकत्ते बम्बईके समान होगई थी। राजाके धर्मपरायण होनेके कार

श्रीः

महाराजा भर्तृहरि

कहते हैं, कोई दो हज़ार वर्ष पहले, राजपूतानेके मालवा प्रान्तकी उज्ज्ञयिनी नगरीमें,—जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं,—एक उच्च श्रेणीके विद्वान्, नीतिकुशल, न्याय-परायण, प्रजावत्सल, सर्व्वगुणसम्पन्न नृपति राज करते थे। उन का शुभ नाम महाराज भर्तृहरि था। आप अपनी प्रजाको निज सन्तानसे भी अधिक चाहते थे और उसीकी हितचिन्तनामें दिन-रात मशगूल रहते थे। आपकी न्यायप्रियता और प्रजाहितैषणा की चर्चा सारे भारतमें फैल गई थी, इसलिये अन्य राज्योंकी बहु-संख्यक प्रजा भी अपना देश छोड़कर आपके राज्यमें आ कर बस गई थी; इससे उज्जयिनीकी शोभा-समृद्धि आजकलके कलकत्ते बम्बईके समान होगई थी। राजाके धर्मपरायण होनेके कार

प्रजा भी धर्मात्मा थी। सभी अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मका पालन करते थे। ठौर-ठौर यज्ञ और हवन होते थे। मेघ समय पर यथेष्ट जल बरसाते थे। मालवा प्रान्तमें लोग अकालका नाम तक भूल गये थे। राजा-प्रजाके भाण्डार सदा धन-धान्यसे पूर्ण रहते थे। ग़रीब दोनों समय पेटभर अन्न खाते थे। प्रजाको किसी बातका दुःख, क्लेश और अभाव नहीं था। चोरी, ज़ोरी, लूट-मार और डकैती एवं अत्याचार, अनाचार और व्यभिचार प्रभृतिका नाम ही उठ गया था। कभी ही कोई ऐसा केस राजदरबारमें आता था। इन जुर्मोंके मुजरिमोंको महाराज सख़्त सज़ा देते थे। न्याय, नीति और धर्म पर चलनेवालोंके लिये महाराज जैसे दयालु थे; दुष्ट और अन्यायियोंके लिए वैसे ही कठोर थे। सारांश यह कि, महाराजमें सभी उत्तमोत्तम राजोचित गुण विधाताने दिये थे। आपके राज्यमें शेर बकरी एक घाट पानी पीते थे। कोई किसी की ओर आँख उठा कर नहीं देख सकता था। निबल और सबल सभी अपनी-अपनी खालमें मस्त थे। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत चरितार्थ न होती थी। सच तो यह है, कि मालवा प्रान्तकी प्रजा फिरसे रामराज्य का सुख लूटती हुई, हृदयसे महाराजकी मङ्गल-कामना और उनके दीर्घजीवनके लिये जगदीशसे करजोड़ प्रार्थना करती थी। उस समय प्रजाको कोई ज़बर्दस्ती राजभक्तिका पाठ नहीं पढ़ाता था। सुखी होनेके कारण, प्रजा आपही राजाको पिताकी तरह मानती थी और उसमें अचल अटल भक्ति रखती थी।

महाराजके एक छोटे भाई भी थे। उनका नाम राजकुमार विक्रम था। विक्रम भी बड़े भाईकी तरह ही विद्वान्, न्यायपरायण, धर्मात्मा और राजनीतिकुशल थे। यह राजकुमार विक्रम ही हमारे सुप्रसिद्ध प्रतापशाली महाराजाधिराज वीर विक्रमादित्य थे, जिन्होंने भयंकर युद्धोंमें विदेशी आक्रमणकारियोंको परास्तकर, भारतकी रक्षा की और उन्हें इस देशसे निकाल बाहर कर, अपने नामसे संवत् चलाया, जो आजतक विक्रम-संवत्के नामसे पुकारा जाता है। आपहीका चलाया संवत् अबतक पञ्चाङ्गों, जन्त्रियों और साहूकारोंके बही-खातोंमें लिखा जाता है। यद्यपि कालकी कुटिल गति, ज़मानेके फेर या देशके दुर्भाग्य से आजकल ईस्वी सन्की तूती बोल रही है। लोग चिट्ठी-पत्रियों एवं अन्यान्य काग़ज़ और दस्तावेज़ोंमें आपके संवत्को छोड़कर ईस्वी सन्को लिखनेकी मूर्खता करते हैं; पर बहुतसे सज्जन अपनी भूलको सुधारकर, फिर महाराजके संवत्से ही काम लेने लगे हैं। आशा है, सभी भूले हुए राह पर आजायेंगे और संवत्के कारणसे महाराजका शुभ नाम यावत् चन्द्र-दिवाकर इस लोकमें अमर रहेगा।

महाराज विक्रमके समयमें बौद्ध-धर्म बड़े ज़ोरों पर था। ब्राह्मण-धर्मकी नींव खोखली होगई थी। आपने ही बौद्धोंको मार भगाया और ब्राह्मण-धर्मकी फिरसे स्थापना की। आप अपने ज़मानेमें भारतके सर्व्वश्रेष्ठ नृपति समझे जाते थे। प्रायः सभी राजे-महाराजे आपको अपना सम्राट् या नेता मानते थे। सभी

आपके इशारों पर नाचते थे। आप कहनेको तो उज्जैनके राजा कहलाते थे, पर आपके राज्यकी सीमा बड़ी लम्बी-चौड़ी थी। अतुल धन-वैभव और सुविस्तृत राज्यके अधीश्वर होने पर भी, आपमें अभिमान नामको भी न था। आप छोटे-बड़े सभीसे मिलते और बातें करते थे। आप एक चटाई पर सोया करते और अपने पीनेके लिये क्षिप्रा नदीसे एक तूम्बा जल स्वयं अपने हाथोंसे भर लाते थे। आप आजकलके राजाओंकी तरह प्रजा के पैसेसे ऐश-आराम नहीं करते थे। आपका सारा समय प्रजा की भलाईमें ही व्यतीत होता था। आप अधिक-से-अधिक तीन चार घण्टे सोते थे। रातके समय भेष बदल कर, आप अक्सर शहरमें ग़श्त लगाया करते थे और इस बातकी खोज करते थे, कि मेरी किस प्रजाको कौनसा दुःख है। आप जिसे दुःखी देखते थे, उसका दुःख या अभाव किसी न किसी तरह अवश्य ही दूर कर देते थे। अनेक मौक़ोंपर तो आपने अपनी बेशक़ीमत जानको ख़तरेमें डालकर भी, प्रजाका दुःख दूर किया था। इसी से प्रजा आपको "परदुःख भञ्जन" कहती थी। भारतमें अबतक हज़ारों-लाखों राजा-महाराजा होगये होंगे, पर आपके सिवा और किसीको भी यह महामूल्य उपाधि नसीब नहीं हुई। हाँ, ईरानके ख़लीफ़ा हारूँ-उर-रशीदके सम्बन्धमें भी ऐसी ही बातें सुनी जाती हैं। ख़लीफ़ा हारूँ रशीद भी, महाराज विक्रमकी तरह, रातको भेष बदलकर घूमा करते और दीन-दुःखियोंका पता लगाकर उनके कष्ट मोचन किया करते थे। इस पृथ्वीपर आज

तक न जाने कितने एक-से-एक बढ़कर राजा-महाराजा होगये, जिनकी हुङ्कारसे पृथ्वी काँपती थी, जिनके पास असंख्य सेना-सामन्त और अतुल धन-भाण्डार था, पर आज उनका नाम भी कोई नहीं लेता। पर ऐसे प्रजावत्सल, परोपकारी, न्यायी और प्रजाकष्ट मोचन करनेवाले महीपालोंका नाम, जब तक पृथ्वी रहेगी, लोगोंकी ज़बान पर रहेगा। इस जगत्‌में जिनकी कीर्त्ति है, वह मर जानेपर भी अमर हैं। कीर्त्तिवान् मृतक नहीं समझा जाता। मृतक वही है, जिसकी कीर्त्ति या सुनाम नहीं है। महाराजा विक्रम, ख़लीफा हारूँ रशीद, नौशेरवाँ और सम्राट् अकबर प्रभृति आज इस नापायेदार दुनियामें नहीं हैं, पर उनका सुनाम लोगोंकी ज़बानपर है; अतः वे सशरीर न रहनेपर भी अमर हैं। धन्य है ऐसे नरपाल! ऐसे भूपालोंसे ही महीकी शोभा है!

हमें यहाँ महाराजा विक्रमादित्यके सम्बन्धमें नहीं लिखना है। लिखना है,—महाराजा भर्तृहरिके सम्बन्धमें। प्रसंगवश हम महाराजा विक्रमादित्यके विषयमें इतना लिख गये। अब फिर असली मुक़ाम पर आते हैं। सुनिये, प्रातःस्मरणीय महाराजा विक्रम छोटे थे और महाराजा भर्तृहरि बड़े होनेके कारण राज करते थे। महाराजा विक्रम बड़े भाईके प्रधान मन्त्रीका काम करते थे। दोनों भाइयोंमें बड़ा प्रेम और सद्भाव था। राम-लक्ष्मणकीसी जोड़ीथी। राम लक्ष्मणको जिस तरह चाहते थे, उसी तरह महाराजा भर्तृहरि भाईविक्रमको प्यार करतेथे। लक्ष्मण राममें जैसी श्रद्धा और भक्ति रखतेथे, वैसीही श्रद्धा और भक्ति विक्रमादित्य महाराज

भर्तृहरिमें रखते थे। दोनोंही दोनोंके लिये जी-जानसे चाहते थे। बड़े भाई छोटेको निज पुत्रवत् समझते थे और छोटे बड़ेको पितृवत् मानते थे। महाराजा भर्तृहरि यद्यपि निरालसी और राजकार्य्यदक्ष थे, तथापि उन्होंने राजकाजका विशेष भार विक्रमपर ही छोड़ रक्खा था। पिता जिसतरह सुपुत्रपर गृहस्थीका सारा भार छोड़कर एक तरह निश्चिन्त हो जाता है; उसी तरह महाराज भर्तृहरि विक्रमपर राजकाजका भार छोड़ निश्चिन्त हो गये थे। महाराज विक्रम भी अपनी कुशाग्रबुद्धि और राजनीतिज्ञतासे सारे काम सुचारु रूपसे चलाते थे और राजकाजकी जटिल समस्याओंके सुलझानेमें महाराजके दाहिने हाथ बने हुए थे। प्रजा सब तरह सुखी और प्रसन्न थी। राज्यमें आनन्दकी बाँसुरी । पर परमात्माकी इच्छा या होनहारके कारण आगे चलकर एक विषवृक्ष पैदा हो गया। उसने इन दोनों भाइयोंमें मनोमालिन्य करा दिया। इतना ही नहीं, दोनोंको एक दूसरेसे जुदा करा दिया। जिसका लोगोंको स्वप्नमें भी ख़याल नहीं था, जिसका होना लोग असम्भव समझते थे, वही हुआ। सच है, भावी बड़ी बलवती है—होनी होकर रहती है।

महाराजा भर्तृहरिकी दो या तीन शादियाँ हो चुकी थीं। फिर भी; आपने किसी देशकी अपूर्व्व रूपलावण्यसम्पन्ना, परमासुन्दरी, रतिमानमर्द्दिनी, मुनिमनमोहिनी, अप्सराओंको भी शर्मानेवाली एक राजकुमारीसे शादी कर ली। नयी महारानीका नाम पिंगला था। महारानी पिंगलाके असाधारण रूपवती होनेके

कारण,महाराज उनके रूपपर ऐसे मोहित हुए कि अपनी विद्या-बुद्धि,विवेक और विचार प्रभृतिको ताक़पर रखकर, उनके हाथों बिक गये—उनके क्रीतदास होगये। ठीक शाहन्शाह जहाँगीर और बेगम नूरजहाँका सा हाल हुआ। जिसतरह नूरजहाँके बिना दिल्लीश्वर जहाँगीरको एक क्षण कल न पड़ती थी ; उसीतरह महाराज भर्तृहरिको भी महारानी पिंगला बिना चैन नहीं था। जिसतरह जहाँगीरकी नकेल नूरजहाँके हाथोंमें थी ; उसीतरह महाराज भर्तृहरिकी नकेल पिंगलाके हाथोंमें थी। जिसतरह बादशाह जहाँगीर नूरजहाँके हाथोंकी कठपुतली थे ; उसीतरह महाराज भर्तृहरि भी पिंगलाके हाथोंकी कठपुतली थे। बादशाह जहाँगीर, नामके बादशाह थे ; नूरजहाँ ही बादशाहतकी असल सञ्चालिका थी। वह जो चाहती थी सो करती थी। बादशाह सिर्फ दस्तख़त और मुहर भर कर देते थे। महाराज भर्तृहरिकी भी वही दशा थी। महारानी पिंगला जो चाहती थीं, वही महाराजसे करा लेती थीं। महाराज बिना कुछ सोचे-समझे,बिना आगा-पीछा देखे,आँखें बन्द करके, रानी पिंगलाकी इच्छानुसार चलते थे। उन दिनों महाराज सच्चे स्त्रैण हो गये थे। रानी पिंगलाने ऐसा जादू कर दिया था, कि महाराज अपने होश-हवास खोकर, पूरे तौरसे उनके ज़रख़रीद ग़ुलाम हो गये थे।

स्त्रैण होना अच्छा नहीं, स्त्रीका गुलाम होना उचित नहीं, स्त्रीके वशमें होना सर्व्वनाशका बीज बोना है। पर इन मोहिनियोंके आगे प्रायः सभीकी सिट्टी गुम हो जाती है। हम

महाराजाको ही दोषी क्यों ठहरावें, जब कि बड़े-बड़े योगीश्वर मोहिनियोंके रूप-जालमें फँसकर अपनी बुद्धि खो बैठे ? इन योगिजनमनोहरा कामिनियोंकी मोहिनी शक्तिके आगे किसने हार नहीं मानी ? इनके मोहनमन्त्रसे कौन पागल नहीं हुआ ? इनकी मोहिनी मायामें कौन नहीं फँसा ? शिव जैसे परम योगीश्वर मोहिनीकी रूपच्छटा, चटक-मटक और नाज़-नखरों पर पागल हो गये। विश्वामित्र जैसे महामुनि मेनकाके रूप-जालमें फँसकर अपना तप भङ्ग कर बैठे। मरीचि और शृंगी जैसे महर्षि इनकी मनोमुग्धकर रूप-माधुरी पर सुधबुध खोकर तपस्या छोड़ बैठे ; तब साधारण मनुष्योंकी कौन बात है ? बड़े-बड़े शूरवीर जो जगत्‌को परास्त कर सकते हैं, वे भी इनके सामने कायर हो जाते हैं। किसी कविने कहा है—

व्याकीर्ण केशर करालमुखा मृगेन्द्रा,
नागाश्च भूरिमदराजिविराजमानाः ।
मेधाविनश्च पुरुषाः समरेषु शूराः,
स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषा भवन्ति ॥

गर्दन पर बिखरे हुए बालों वाला करालमुखी सिंह, अत्यन्त मदवाला हाथी और बुद्धिमान समरशूर पुरुष भी स्त्रियोंके आगे परम कायर हो जाते हैं।

परमात्माने भी स्त्रियोंके साथ पक्षपात किया है। उसने इन्हें अपूर्व क्षमता प्रदान की है। उसी क्षमतासे ये पुरुषोंको

उसी तरह अपने अधीन कर लेती हैं ; जिस तरह मनुष्य गाय बैल घोड़े घोड़ी प्रभृति पशुओंको अपने अधीन कर लेते हैं। जो काम बड़े-बड़े धनुर्द्धारी अपनी वाणविद्यासे सिद्ध नहीं कर सकते, उसे ये अपने एक कटाक्षसे सिद्ध कर लेती हैं। इनके कटाक्षवाणोंके लगनेसे बड़े-बड़े युद्धोंको जीतने वाले, कभी हार न खानेवाले योद्धा सुन्न हो जाते हैं—भेड़, बकरीकी तरह इनके वशमें हो जाते हैं। ये मोहिनी नज़रोंमें मार लेती हैं ; मधुर-मधुर बोलनेसे चित्तको चुरा लेती हैं ; हाव-भाव या नाज़-नखरोंसे हृदयको मोह लेती हैं। मामूली आदमियोंका तो ज़िक्र ही क्या—ये हवा और राख खाकर ज़िन्दगी बसर करने वाले महात्माओंको भी मोहित कर लेती हैं ; इसीसे लोग इन्हें मुनिमनमोहिनी भी कहते हैं।

स्त्रियाँ आशिक़ रूपी हिरनोंके बाँधनेके लिये मज़बूत रस्सी और हृदय-रूपी मदमत्त गजराजको बन्धनमें फँसा रखनेके लिये ज़बर्दस्त ज़ञ्जीर हैं। ये अबला होने पर भी सबला हैं, गौ होने पर भी बाघ हैं ; कोमलाङ्गी होने पर भी वज्राङ्गी हैं और निर्मला होने पर भी कुमला हैं। ये अपने ऊपर अनुरक्त हुए अपने पति या आशिक़को अपने वशमें कर लेती हैं। जब वह इनके वशमें हो जाता है, तब उसका ज्ञान काफूर हो जाता है। ज्ञान-विहीन-अज्ञानी पति अपनी स्त्रीके सामने मूक पशुवत् हो जाता है। वह अपनी स्त्रीकी हाँ में हाँ मिलाता है, उसके कुकर्म देखकर भी नहीं बोलता ; क्योंकि स्त्रियाँ अपने चाहने

वालोंको ऐसा ही बना लेनेकी सामर्थ्य रखती हैं। किसीने कहा है :—

अलक्तको यथा रक्तोऽनिष्पीड्य पुरुषस्तथा।
अबलाभिर्बलाद्रक्तः पादमूले निपात्यते ॥

जिस तरह स्त्रियाँ लाखके रंगको ज़ोरसे दबा कर अपने चरणोंमें लगाती हैं; उसी तरह वे अपने अनुरागी या चाहने वालेको अपने चरणोंमें डाल लेती हैं।

पर इन मोहिनियों पर जीजानसे लट्टू होनेवालों, इन पर सम्पूर्ण रूपसे विश्वास कर लेने वालों और इनकी अन्धभक्ति करने वालोंको अन्तमें दुःख पाना, धोखा खाना और पछताना पड़ता है, इसमें ज़रा भी शक नहीं; अतः इनको मध्य अवस्थासे सेवन करना चाहिये; क्योंकि यदि पुरुष इनसे दूर रहे, तो फल नहीं मिलता और एकदम इनका हो ले, तो ये सर्व-नाशका कारण हो जाती हैं। जो पुरुष स्त्रैण या स्त्रीके गुलाम हो जाते हैं, जो इनको सिर पर चढ़ा लेते हैं, जो इनके ही मत पर चलते हैं, उनको दुःख भोगने पड़ते हैं और ये उन्हें खूब नाच नचाती और स्वयं स्वतन्त्र होकर मन-माने दुष्कर्म करती हैं। कहा है :—

तासां वाक्यानि कृत्यानि स्वल्पानि सुगुरूण्यपि।
करोति यः कृती लोके लघुत्वं याति सर्वतः ॥

नाति प्रसंगः प्रमदासु कार्य्यो नेच्छेद्बलं स्त्रीषु विवर्द्धमानम् ।
अति प्रसक्तैः पुरुषैर्युतास्ताः क्रीडन्ति काकैरिव लूनपक्षैः ॥

जो कृती पुरुष स्त्रियोंको छोटी-बड़ी या थोड़ी-बहुत बातों को मानता है, वह सब तरहसे नीचा देखता है।

स्त्रियोंसे अति प्रसंग न करना चाहिये ; क्योंकि अति आसक्त हुए पुरुषोंसे वह पंख-नुचे हुए कव्वेके समान खेल करती हैं।

अनुभवी विद्वान् और त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनियोंने जो कहा है, वह अक्षर-अक्षर सत्य है। जो शास्त्रकारोंके अमूल्य उपदेशों पर ध्यान नहीं देते, उन्हें दुःखके गहरे गड्ढेमें गिर कर कष्ट उठाना ही पड़ता है। हमारे महाराज भर्तृहरि यद्यपि असाधारण विद्वान् और बुद्धिमान थे ; पर भावीके वश होनेके कारण उन्होंने शास्त्रोपदेश पर ध्यान न देकर महारानी पिङ्गलाको सिर पर चढ़ा लिया ; उसकी प्रत्येक बात मानने और हरेक काम उसकी इच्छानुसार करने लगे। नतीजा यह हुआ कि, उसने महाराजको अपने ऊपर पूर्णरूपसे अनुरक्त पा, उनको खेलका पक्षीसा जान लिया और उन्हें अपनी इच्छानुसार नचाने लगी। साथ ही निर्भय होकर कुकर्म करने पर उतारू हो गई। वह क्या करने लगी, उसका क्या नतीजा हुआ, ये सब बातें पाठकोंको आगे चलकर मालूम हो जायँगी। यहाँ हमें यही विचारना है, कि महाराज भर्तृहरि जैसे चतुरचूड़ामणि और विद्वान् राजाने ऐसा मौक़ा क्यों दिया ?

पाठक ! जैसी भावी होती है, मनुष्यकी बुद्धि भी वैसी

जाती है। अगर भावीके अनुसार बुद्धि न हो जाय, तो भावी कैसे हो? दशरथनन्दन महाराजा रामचन्द्र तो विष्णुके अवतार माने जाते हैं; वे कुटियामें सीताको छोड़कर, सोनेके हिरनके पीछे तीर कमान लेकर क्यों भागे? साधारण आदमी भी समझ सकता है, कि सोनेका हिरन नहीं हो सकता—सुवर्ण मृगका होना असम्भव है। पर भगवान् रामचन्द्रजीको इतना भी ख़याल न हुआ! हो कैसे? होनी तो कुछ और ही थी। जैसी होनी थी, वैसी ही बुद्धि रामचन्द्रजीकी हो गई। उनके और लक्ष्मणजीके सीताको सूनी छोड़ जानेसे, रावणको मौक़ा मिला और वह यतिका वेष धरकर सीताको लङ्कामें ले गया। परिणाममें घोर युद्ध हुआ और रावण मारा गया।

हमारे प्रातःस्मरणीय महाराज भर्तृहरिकी बुद्धि यदि नहीं मारी जाती, वे पिङ्गलाके हाथकी कठपुतली न हो जाते; तो पिङ्गलाको व्यभिचारिणी होनेका मौक़ा कैसे मिलता? प्राण-प्यारे भाई विक्रमसे वियोग कैसे होता? शेषमें, अपनी प्राण-प्रियाके कुकर्म्मका हाल जानकर, महाराजको विरक्ति कैसे होती और वे राजपाट त्यागकर आदर्श योगिराज कैसे होते? कहते हैं,संसारमें एक पत्ता भी बिना परमेश्वरकी मरज़ीके नहीं हिलता। इस जगत्में जो कुछ होता है, वह जगदीशकी इच्छासे होता है; वे जो चाहते हैं, सो करते हैं। पर जगदीश जो करते हैं, वह प्राणीकी भलाईके लिए करते हैं; इसमें सन्देह नहीं। जगदीशकी इच्छासे ही, कई रानियोंके होते हुए भी, महाराजने पिङ्गला

का पाणिग्रहण किया। जगदीशकी इच्छासे ही, वह सब विद्या-बुद्धि विसराकर रानीके क्रीतदास हुए। इससे महाराज का बड़ा उपकार हुआ। ऐसा भला हुआ, जिसकी तुलना नहीं। उनको संसारसे विरक्ति न होती, तो क्या आज उनका नाम इस जगत्‌में अमर रहता? उनकी कीर्त्ति अचल होती? उन्होंने जिस महोच्च पद—परमपद—की प्राप्ति कर ली, क्या उसकी प्राप्ति कर सकते? हरगिज़ नहीं। इसीसे कहना पड़ता है, कि महाराज और गोस्वामी तुलसीदासजी दोनों हीको, आरम्भमें, परले सिरेके विषयी और स्त्रैण होनेसे ही वैराग्य हुआ। बुराईसे भलाई हुई और परमात्मा जो करता है, वह मनुष्यकी भलाईके लिये ही करता है, यह बात सत्य प्रमाणित हुई। विषवृक्षसे अमृत-फलकी उत्पत्ति हुई। ठीक गोस्वामि तुलसीदासजी की सी घटना घटी। गुसाईं जीको भी स्त्रीके ही कारणसे वैराग्य हुआ और हमारे महाराजको भी स्त्रीके ही कारणसे। हाँ, घटनाक्रममें थोड़ा अन्तर अवश्य है।

स्त्रियोंके स्वभावकी कोई बात समझमें ही नहीं आती। ये अपने व्याहता सुन्दर, खूबसूरत, नौजवान, बलवान्, वीर्य्यवान्, चतुर और कामकला-कुशल पतिको त्याग कर एक नीच-कुलोत्पन्न, गँवार, बदसूरत, कालेकलूटे, अधेड़ और बूढ़े पर मरने लगती हैं। ये पुरुषमात्रको भोगनेकी इच्छा रखती हैं। इन्हें वयस और रूपकुरूपसे कोई मतलब नहीं। इन्हें न कोई प्यारा है न कुप्यारा। जिस तरह गाय नई-नई घास पसन्द

जाती है। अगर भावीके अनुसार बुद्धि न हो जाय, तो भावी कैसे हो? दशरथनन्दन महाराजा रामचन्द्र तो विष्णुके अवतार माने जाते हैं; वे कुटियामें सीताको छोड़कर, सोनेके हिरनके पीछे तीर कमान लेकर क्यों भागे? साधारण आदमी भी समझ सकता है, कि सोनेका हिरन नहीं हो सकता—सुवर्ण मृगका होना असम्भव है। पर भगवान् रामचन्द्रजीको इतना भी ख़याल न हुआ! हो कैसे? होनी तो कुछ और ही थी। जैसी होनी थी, वैसी ही बुद्धि रामचन्द्रजीकी हो गई। उनके और लक्ष्मणजीके सीताको सूनी छोड़ जानेसे, रावणको मौक़ा मिला और वह यतिका वेष धरकर सीताको लङ्कामें ले गया। परिणाममें घोर युद्ध हुआ और रावण मारा गया।

हमारे प्रातःस्मरणीय महाराज भर्तृहरिकी बुद्धि यदि नहीं मारी जाती, वे पिङ्गलाके हाथकी कठपुतली न हो जाते; तो पिङ्गलाको व्यभिचारिणी होनेका मौक़ा कैसे मिलता? प्राण-प्यारे भाई विक्रमसे वियोग कैसे होता? शेषमें, अपनी प्राण-प्रियाके कुकर्म्मका हाल जानकर, महाराजको विरक्ति कैसे होती और वे राजपाट त्यागकर आदर्श योगिराज कैसे होते? कहते हैं,संसारमें एक पत्ता भी बिना परमेश्वरकी मरज़ीके नहीं हिलता। इस जगत्‌में जो कुछ होता है, वह जगदीशकी इच्छासे होता है; वे जो चाहते हैं, सो करते हैं। पर जगदीश जो करते हैं, वह प्राणीकी भलाईके लिए करते हैं; इसमें सन्देह नहीं। जगदीश की इच्छासे ही, कई रानियोंके होते हुए भी, महाराजने पिङ्गला

का पाणिग्रहण किया। जगदीशकी इच्छासे ही, वह सब विद्या-बुद्धि विसराकर रानीके क्रीतदास हुए। इससे महाराज का बड़ा उपकार हुआ। ऐसा भला हुआ, जिसकी तुलना नहीं। उनको संसारसे विरक्ति न होती, तो क्या आज उनका नाम इस जगत्में अमर रहता? उनकी कीर्त्ति अचल होती? उन्होंने जिस महोच्च पद—परमपद—की प्राप्ति कर ली, क्या उसकी प्राप्ति कर सकते? हरगिज़ नहीं। इसीसे कहना पड़ता है, कि महाराज और गोस्वामी तुलसीदासजी दोनों हीको, आरम्भमें, परले सिरेके विषयी और स्त्रैण होनेसे ही वैराग्य हुआ। बुराईसे भलाई हुई और परमात्मा जो करता है, वह मनुष्यकी भलाईके लिये ही करता है, यह बात सत्य प्रमाणित हुई। विषवृक्षसे अमृत-फलकी उत्पत्ति हुई। ठीक गोस्वामि तुलसीदासजी की सी घटना घटी। गुसाईं जीको भी स्त्रीके ही कारणसे वैराग्य हुआ और हमारे महाराजको भी स्त्रीके ही कारणसे। हाँ, घटनाक्रममें थोड़ा अन्तर अवश्य है।

स्त्रियोंके स्वभावकी कोई बात समझमें ही नहीं आती। ये अपने व्याहता सुन्दर, खूबसूरत, नौजवान, बलवान्, वीर्य्यवान्, चतुर और कामकला-कुशल पतिको त्याग कर एक नीच-कुलोत्पन्न, गँवार, बदसूरत, कालेकलूटे, अधेड़ और बूढ़े पर मरने लगती हैं। ये पुरुषमात्रको भोगनेकी इच्छा रखती हैं। इन्हें वयस और रूपकुरूपसे कोई मतलब नहीं। इन्हें न कोई प्यारा है न कुप्यारा। जिस तरह गाय नई-नई घास पसन्द

करती है, उसी तरह ये नित्य नये पुरुषोंको चाहती हैं। जब तक इन्हें कोई चाहनेवाला नहीं मिलता या मौक़ा हाथ नहीं आता, तभी तक ये सती बनी रहती हैं। ये अपने सच्चे प्रेमी-को नहीं चाहतीं, उससे घृणा करती हैं अथवा उदासीन रहती हैं; किन्तु जो इन्हें नहीं चाहता, जो इनके साथ चालें चलता है, जो परले सिरेका धूर्त्त और दग़ाबाज़ होता है, जो दुर्गुणों-की मूर्त्ति और दुष्टताकी खान होता है, उसके लिये ये अत्यातुर रहती हैं।

जो पुरुष स्त्रियोंको सद्गुण-शालिनी और उत्तम स्वभाव-वाली समझते हैं, वे बड़ी ग़लती करते हैं। ये इतनी चालाक और मायाविनी होती हैं कि, अच्छेसे अच्छे चालाकको भी अपने कुकर्म्मोंका पता नहीं लगने देतीं। ये किसीकी भी बात-को जान-सुनकर पेटमें नहीं पचा सकतीं, पर अपनी बातको छिपाना ये खूब जानती हैं। जब ये कुकर्मों पर उतर पड़ती हैं, तब इन्हें लोकलाज, लोकनिन्दा प्रभृतिकी परवा नहीं रहती। दुनियाँ बुराई करे करो; माता पिता, भाई और जेठ ससुर प्रभृतिकी नाक-कटाई हो तो हो—यहाँ तक कि, इनके जीवनमें भी सन्देह हो जाय, तो हो जाय; पर ये जिस बातको धार लेती हैं, उससे पीछे कदम नहीं रखतीं। देखनेमें पुष्पवत् कोमल दीखती हैं, पर हृदय इनका वज्रवत् कठोर होता है। इनको किसी पर दया-माया नहीं। इन्हें तो अपनी कुवासना पूरी करनेसे मतलब। अपनी कुवासना

करनेके लिये, ये अपने सब सुखोंके देनेवाले पतिके प्राण नाश कर देती हैं, अपने जेठ-ससुरको मरवा डालती हैं। यहाँ तक, कि अपनी पेटकी औलाद तककी हत्यापर उतारू हो जाती हैं। कहा है—

आस्तां तावत्किमन्येन दौरात्म्येनेह योषिताम् ।

विधृतं स्वोदरेणापि घ्नन्ति पुत्रं स्वकं रुषा ॥

स्त्रियोंके दौरात्म्यकी बात कहाँ तक कहें? ये क्रोधमें आकर अपने पेटके पुत्रको भी मार डालती हैं।

महारानी पिङ्गला पर महाराज भर्तृहरि जान देते थे, अष्ट पहर चौंसठ घड़ी उसीका ध्यान रखते थे। महारानी रातको दिन और दिनको रात कहती, तो महाराज भी वैसा ही कहते। हर तरह उसकी आज्ञापालन करने और हाँ में हाँ मिलानेको तैयार रहते थे। महाराजमें कोई दोष भी न था। आप पूर्ण विद्वान्, बलवान्, वीर्य्यवान् और सर्व्वकला-कुशल पुरुष थे; पर महारानी ऊपरसे आपके चाहनेका ढोंग करती थी और भीतरसे आपसे उदासीन रहकर एक नीचको चाहती थी। महारानी जैसी रूपवती थी, वैसी ही चालाक, मक्कार और दुश्चरित्रा थी। ऊपरसे गोरी और भीतरसे काली, प्रत्यक्षमें सुन्दर और अप्रत्यक्षमें असुन्दर, प्रकटमें सती और अप्रकटमें असती थी। उसने लोकनिन्दा और कुलकी कानकी परवा न करके, एक नीच नमकहराम अस्तबलके दारोग़ासे आशनाई

कर ली। यह बात उसने बहुत दिनों तक महाराजसे छिपाई। महाराज जब महलोंमें आते, तब वह अपने हावभाव और नाज़-नख़रोंसे महाराजका मन हाथोंमें कर लेती। उनसे ऐसी-ऐसी बातें करती, जिनसे महाराज यही समझते कि, मेरी रानी सच्ची सती-साध्वी है। इस ज़मानेकी दूसरी सीता-सावित्री है। पर उनके पीठ फेरते ही दारोग़ाको बुलवा कर उसके साथ ऐश-आराम करती। महाराज बेचारे इस त्रियाचरित्रको समझ न सकते थे। किसी ने ठीक ही कहा है—

नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं मनोरथंदुर्जन मानवानां।
स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः॥

राजाके चित्तको, कृपणके धनको, दुष्टोंके मनोरथको, स्त्रियोंके चरित्रको और पुरुषके भाग्यको देवता भी नहीं जानते, मनुष्य कौन चीज़ हैं ?

बहुत दिनों तक यह कलंक-कथा छिपी रही। मनुष्य अपने पापोंको कितना ही छिपावे, पर एक न एक दिन वे प्रकट हो ही जाते हैं, एक न एक दिन संसार उनको जान ही जाता है। मनुष्य मनुष्यके गुप्त कामोंको नहीं देख सकता, मनुष्य मनुष्यके दिलका हाल नहीं जान सकता ; पर परमात्मा से कुछ नहीं छिपता, उसकी नज़र हर जगह पहुँचती है। वह सात कोठोंके अन्दर भी मनुष्यके कुकर्मोंको देख लेता है। वह घटघट-निवासी अन्तर्य्यामी मनुष्यमात्रके हृदयके भीतरकी

करते हैं, उनको सती-साध्वी समझे रहते हैं, उन पर सन्देह भी नहीं करते, वे बड़ी भूल करते हैं। किसी विद्वान्ने ठीक ही कहा है—

'यदि स्यात्पावकः शीतः प्रोष्णो वा शशलाञ्छनः।
स्त्रीणां तदा सतीत्वं स्याद्यदि स्याद् दुर्जनो हितः॥'

"अगर आग शीतल हो जाय, चन्द्रमा गर्म हो जाय, दुर्जन हितकारी हो जाय; तो स्त्रियोंके सतीत्वका विश्वास हो। महाराज! स्त्रियोंकी मीठी बातोंमें न भूलना चाहिये। इनकी बातें जैसी हैं, वैसा दिल नहीं है। कहा है :—

सुमुखेन वदन्ति वल्गुना प्रहरन्त्येव शितेन चेतसा।
*मधु तिष्ठति वाचि योषितां *हृदये हालाहलं महद्विषम्॥*

"स्त्रियाँ सुन्दर मुँहसे मनोहर-मनोहर बातें करती हैं और तीक्ष्ण चित्तसे प्रहार करती हैं। इनकी बातोंमें मधु और हृदयमें हालाहल विष रहता है।"

राजकुमार विक्रमकी सारी बातें चुपचाप सुनकर महाराजने कहा—"भाई! तुमको भ्रम हुआ है। तुम्हारी बुद्धि विकृत हो गई है; तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है। महारानी पिङ्गला आदर्श सती हैं। इस समय उनके जैसी सती विरल हैं। वह रात-दिन मेरे लिये प्राण देती हैं, मेरा ही जप-तप और ध्यान करती हैं, मेरे सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी

* "हृदि हालाहलमेव केवलम्" ग्रन्थान्तरे।

रहती हैं। ऐसी सतीको असती कह कर, उन पर कलंक-कालिमा पोतकर तुम अच्छा नहीं करते। खैर, जो हुआ सो हुआ। तुम छोटे भाई हो, इससे क्षमा करता हूँ; अगर और कोई होता, तो अभी शूली पर चढ़वा देता। आज तो कहा सो कहा, किन्तु भविष्यमें फिर कभी ऐसी बेहूदा बात ज़बानसे न निकालना।

राजकुमारने, महाराजके इतना कहने पर भी, उन्हें बहुत कुछ समझाया, कुछ प्रमाण भी दिये; पर पिंगलाके रंगमें रँगे हुए महाराज पर कुछ भी असर न हुआ। अन्तमें जब राजकुमारने इससे सुफलकी कोई सम्भावना न देखी, तब मनमें यह समझ कर कि, समय आये बिना कोई काम नहीं होता; समय आने पर भाई की आँखें आप ही खुल जायँगी; उस समय चुप रह जाना ही उचित समझा।

कह चुके हैं, कि महारानी पिङ्गला बड़ी चालाक थीं। उन्हें यह बात पहले ही मालूम हो गई, कि मेरे कुकर्म की बात—मेरे पाप-कर्मका रहस्य—राजकुमार जान गये हैं। इसलिये उन्होंने पहलेसे ही चाल चलनी शुरू कर दी। वे महाराजके प्रति पहले से भी अधिक प्रेम-भाव दिखाने लगीं। जब उन्हें अच्छी तरहसे मालूम हो गया, कि महाराजके दिलमें उनकी ओरसे ज़रा भी वहम नहीं है, उनका उन पर सोलह आने विश्वास है, उन्होंने एक दिन उन्हें खूब ही राज़ी करके, राजकुमारके विरुद्ध उनके कान भर दिये। कह दिया,—"आप बुरा न मानियेगा; आपके

छोटे भाईकी नीयत बड़ी ख़राब है। मैं उनकी माताके समान हूँ; पर वे इस बातको न समझ कर मुझे बुरी दृष्टिसे देखते हैं। और कोई होती, तो उनके फन्देमें फँस जाती, पर मुझ पर उनका फन्दा कोई काम नहीं कर सकता। परमात्मा ऐसे कुकर्मीका मुँह न दिखावे। मैंने सुना है, कि वह अपने नगर-सेठकी पुत्रवधू पर भी आशिक़ हैं। उसके पीछे उन्होंने बहुत दिनोंसे दूतियाँ लगा रक्खी हैं। उस बेचारीको अनेक प्रकारसे फुसलाया, तरह-तरहके लालच दिये; पर वह भी मेरी तरह सच्ची पतिव्रता है, इसलिये आज तक उनके जालमें नहीं फँसी। अब सुनती हूँ, उन्होंने नगर-सेठको धमकी दी है। नहीं जानती, यह बात कहाँ तक सच है। वे आपके सुनाममें बट्टा लगाते हैं। अतः मेरी विनीत प्रार्थना है, कि आप उन पर नज़र रक्खें, उनसे सावधान रहें।"

महारानीकी इन बातोंको सुन कर महाराज सन्न हो गये, मुँह सूख गया, चेहरा तमतमा आया, आँख लाल हो गईं। उनका मन कभी कहता था:—"नहीं नहीं, ये सब नितान्त अमूलक बातें हैं। तुम्हारा भाई विक्रम ऐसा नहीं है। वह पण्डित है, वह पर-स्त्रियोंको अपनी निज जननीके समान समझता है।" कभी उनका मन कहता था,—"हो सकता है, विक्रमका चरित्र ख़राब हो। पिंगला सी सती नारी मिथ्या दोष नहीं लगा सकती। इसे उससे क्या बैर है? हाय! भर्तृ-हरिका भाई और ऐसा दुराचारी!" इस तरह उधेड़बन करते-

करते, तानाबाना बिनते-बिनते, कभी इधर कभी उधर भटकते-भटकते, शेषमें महाराजाका मन महारानी पिङ्गलाकी बातों पर ही ठहर गया। उन्हें विश्वास हो गया, कामिल यक़ीन हो गया, कि विक्रम सचमुच ही दुराचारी और व्यभिचारी है। पर, इतने पर भी, उन्होंने प्रकाश्यमें भाईसे कुछ न कहा।

इधर तो रानीने महाराजको यह पट्टी पढ़ायी; उधर नगर-सेठको बुलवाकर उससे कहलवाया कि, तुमसे कहूं सो करो, नहीं तो तुम्हारी जानकी खैर नहीं। राजा मेरी मुट्ठीमें हैं। मै तुम्हारे बच्चे-बच्चेको कोल्हूमें पिलवाकर तुम्हारा सर्व्वस्व अप-हरण करा लूँगी।

नगरसेठही क्यों—सारा नगर जानता था, कि महाराज पिंगलाके हाथकी कठपुतली हैं। वह जो नाच नचाती है, महा-राज वही नाच नाचते हैं। इसलिये सेठजीने हाथ जोड़कर कहलवाया—"महारानीजी! आप इतनी बातें क्यों कहती हैं? दास तो आपकी आज्ञासे बाहर नहीं। आपका हुक्म सर आँखोंपर। जो हुक्म कीजिये, गुलाम वही करनेको तैयार है।

सेठकी यह बात सुनकर रानीने कहलवाया—"आप जानते ही हैं, कि राजकुमार विक्रम कैसे अत्याचारी हैं। प्रजाको कितना कष्ट देते हैं। महाराज स्वयं तो राजकाज देखते नहीं, सारा काम राजकुमार ही चलाते हैं। मै नहीं चाहती, कि वह प्रजाको कष्ट दें। इसवास्ते किसी तरह महाराजका मन खराब करके, उन्हें यहाँसे नौ दो ग्यारह करवाना चाहती हूँ। यह

काम आपकी सहायता से बड़ी आसानी से हो जायगा। आप कल राज-सभामें जाकर पुकार कीजिये, कि महाराज! आपके छोटे भाई साहब बहुतही अत्याचारी, अनाचारी और व्यभिचारी हो गये हैं। वे बहुत दिनोंसे मेरी पुत्रबधूको अपनी प्रणयिनी बनानेकी चेष्टा कर रहे हैं। उन्होंने उसके फँसानेके लिये —बड़े-बड़े जाल फैलाये, पर मेरी सती-सावित्रीसी पुत्र-बधू उनके जालमें न फँसी; इसी से मेरी इज़्ज़त आबरू अबतक बची हुई है। आप यदि न सुनेंगे तो मैं आपका राज्य छोड़ कर किसी और राजाके राज्यमें चला जाऊँगा।"

नगरसेठ रानीकी बातों पर राज़ी हो गया। दूसरे ही दिन जबकि महाराजकी सभा लगी हुई थी, हाली मुहाली, कामदार, मुसाहिब, मन्त्री, सेनापति प्रभृति सब बैठे हुए थे; नगरसेठ दरवाज़ेसे ही कानोंके पर्दे फाड़नेवाला "फरियाद है" "फरियाद है" का शोर मचाता हुआ राज-सभामें पहुँचा। महाराजने उसे सामने बुलाकर उसकी फरियाद सुनी। उसने रानीकी सिखाई हुई सारी बातें ज्योंकी त्यों महाराजको कह सुनाईं। महाराजके दिलमें रानीने पहले ही ये बातें बैठा दी थीं। अब सेठकी शिकायतसे उन्हें कोई सन्देह न रह गया। रानी की कही हुई सारी बातें उनके नेत्रोंके सामने नाचने लगीं। उनका चेहरा क्रोधके मारे लाल हो गया।

राजकुमार उस वक्त सभामें ही बैठे थे। वे इस बातको सुनकर, मनमें समझ गये, कि यह षड़्यन्त्र पिङ्गलाका रचा

हुआ है। उन्होंने सेठसे कहा—"सेठजी! भगवान्‌का भय करो, मनुष्यसे मत डरो। इस बुढ़ापेमें स्वार्थके लिये झूठ बोल कर क्यों पापकी गठरी बाँधते हो? परमात्मा सब देखता है। उसकी नज़रोंसे कुछ भी नहीं छिपा है। मैं तुम्हारी पुत्रबधूको जानता भी नहीं। मैं नहीं जानता, वह काली है या गोरी, भली है या बुरी, मेरी तो वह माताके समान है। मैं पर-स्त्रियों को अपनी जननीके समान समझता हूँ। जिसमें आपका पुत्र तो मेरा मित्र है। मित्रकी स्त्री तो सच्ची माता ही होती है। कहा है :—

राजपत्नी गुरोःपत्नी मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नीमाता स्वमाता च पञ्चैता मातरःस्मृताः॥

"राजाकी स्त्री, गुरुकी स्त्री,मित्रकी स्त्री,स्त्रीकी माता और अपनी माँ—ये पाँच माता कहलाती हैं। इसके सिवा, मैं अपनी विवाहिता स्त्रीको छोड़ कर, जगत्‌की सभी नारियोंको माता समझता हूँ; क्योंकि जो पराई स्त्रियोंको माताके समान नहीं मानता, वह महा मूर्ख है। उसके पापका प्रायश्चित्त नहीं। पर-स्त्री-गामीको नरकोंकी असह्य यंत्रणा सहनी पड़ती है। शास्त्रों में कहा है :—

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति सपश्यति॥

"पर स्त्रियोंको माताके समान, पराये धनको मिट्टीके ढेले

के समान और सब प्राणियोंको अपने समान समझता है, वही देखता है और तो अन्धे या अज्ञानी हैं।

"आप धर्मसे डरिये ; धर्मके सिवा कोई सच्चा साथी नहीं है। और सब जीतेजीके साथी हैं, मरने पर कोई साथ न देगा। आप मुझ पर वृथा दोषारोप करके यदि अपना मतलब बना लोगे, तो क्या होगा ? पार्थिव धन-वैभव आपके साथ न जायँगे। धन वैभवका क्या ठिकाना ? आज है, कल नष्ट हो जाय। कहा है :—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

शरीर अनित्य है, ऐश्वर्य्य अनित्य हैं, मृत्यु सदैव पास है, इसलिये धर्म करो।

और भी कहा है—

चलालक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे।
चलाचले च संसारे धर्म एकोहि निश्चलः॥

"इस चराचर जगत्में धन-प्राण सभी चलायमान हैं ; केवल धर्म ही निश्चल है। अतः सेठजी ! धर्मको न छोड़ो। धर्मसे डर कर, आप अपनी बातको वापिस लीजिये। आप किसीके बहकानेसे मुझ पर मिथ्या दोष लगा रहे हैं। जब इस बातकी जाँचकी जायगी, तब सारा भण्डा फूट जायगा—आपका जाल खुल जायगा। उस समय आपकी क्या दशा होगी, जानते हो ?

राजकुमारकी ये बात सुनतेही महाराज भर्तृहरि लाल-पीली आँखें करके बोले—"अरे कुलाङ्गार! नीच! अधम! पापी! तू मेरे सामने ज़ियादा बात न बना। मैं तेरे सब हालोंको जानता हू। अब तेरी चालाकी और मक्कारी न चलेगी। यदि अपनी जीवनरक्षा चाहता है; तो इसी क्षण मेरे नगरसे निकल जा! शीघ्र काला मुँह कर! मैं तेरा यह काला मुँह देखना पसन्द नहीं करता! शीघ्र ही मेरी नज़रके सामनेसे हट जा, नहीं तो तुझे अभी शूली पर चढ़वा दूँगा! राजा पिता है; प्रजा पुत्रके समान है। राजा ही यदि ऐसा अन्याय करे, तो प्रजा किसके पास जाय? मैं प्रजाके सुखसे सुखी और प्रजाके दुःखमें दुःखी रहता हूँ। दूर हो मेरे सामनेसे! दूर हो!!"

भाईकी यह बातें सुनकर राजकुमार विक्रमने कहा—"भाई! मैं तो अभी—इसी क्षण चला जाऊँगा। आपके राजमें जल भी न पीऊँगा। पर आप क्रोधान्ध होकर कर क्या रहे हैं! आपको कम-से-कम इस मुक़द्मेकी जाँच तो करनी थी। इस तरह इकतरफा फैसला देना, किसी भी राजा या विचारकको शोभा नहीं देता। अगर आप इसी तरह न्याय करेंगे, तो आपकी प्राणप्यारी प्रजाका नाश हो जायगा, वह आपसे दुःखी होकर और राज्योंमें जा बसेगी। आप जिसके हाथकी कठ-पुतली बन रहे हैं, वह आपके साथ छल कर रही है। उसके सुखमें मैं ही एक काँटा हू; इसलिये वह मुझे निकलवानेकी ग़रज़से ही ये जाल रच रही है। ख़ैर, मैं तो जाता हूँ; पर

देवता ब्राह्मण की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उसे "अमरफल" प्रदान कर रहे हैं।

पृष्ठ २६

आपके अनिष्टकी आशङ्का अब भी मेरे हृदयमें खलबली मचाती है। आपको एक दिन पछताना होगा। आपका हृदय मुझे याद करके रोयेगा। परमात्मा आपका मङ्गल करें, आपकी आँख भी मैली न हो।" यह कह कर राजकुमार फौरन सभा-भवनसे निकल वनको चले गये। महाराज सिर पर हाथ धर कर कुछ सोचमें पड़ गये। इसके बाद कई वर्ष निकल गये। कोई नई घटना न घटी।

नगरीका एक दरिद्र ब्राह्मण, अपनी इष्ट-सिद्धिके लिये वनमें जाकर किसी देवताकी घोर तपस्या करता था। उसे तप करते हुए अनेक वर्ष बीत गये। तपःकष्टसे जब उसका शरीर एकदम कृश हो गया; तब देवताका आसन हिला। उसने ब्राह्मणके सामने सशरीर आकर उससे कहा—"ब्राह्मण! मैं तेरी तपस्यासे अतीव सन्तुष्ट हुआ हूं, इसलिये तुझे यह "फल" देता हूं। यह फल मामूली फल नहीं है। इसका नाम "अमर-फल" है। इसके खानेवाले पर मौतका ज़ोर नहीं चलता। मृत्यु उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकती। तू इसे खाकर पृथिवी पर अमर रह और सुखपूर्व्वक अपनी ज़िन्दगी बसर कर!" यह कहकर और फल देकर देवता अन्तर्द्धान हो गया।

ब्राह्मण उस "अमरफल" को लेकर अपने घर आया और अपनी स्त्रीको उस फलका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। ब्राह्मणी उस फलकी बात सुन कर सन्तुष्ट नहीं, वरन् असन्तुष्ट हुई। उसने कहा—"नाथ! देवताने आपको 'अमर फल' दिया

है ; पर इससे अपना कष्ट घटनेके बजाय उल्टा बढ़ेगा। अगर वह धन देते तो हमारा भला होता। हम लोग जन्मसे दरिद्र हैं। हमारे घरमें प्रत्येक वस्तुका अभाव है। आजकल धन बिना सुख कहाँ ? धन बिना समाजमें प्रतिष्ठा कहाँ ? जिसके पास धन है, वही सुखी है। निर्धनको इस जगत्‌में सुख नहीं। दरिद्रीसे भाई-बन्धु लजाते हैं ; उसे अपना कहनेमें भी उन्हें शर्म आती है ; इसलिये वे लोग अपना रिश्ता या सम्बन्ध तक छिपाते हैं। दरिद्र विपत्तियोंका घर है। यह मरणका दूसरा पर्याय है। नाथ ! दरिद्र देहधारियोंको परम दुःख और अपमान है। दरिद्रीको नाते-रिश्तेदार मरा हुआ ही समझते हैं। शौचसे शेष रही मिट्टीकी क़ीमत है, पर दरिद्रीकी क़ीमत नहीं ; निर्धन उस मिट्टीसे भी निकम्मा है। हम लोग दरिद्रताके मारे यों ही इस ज़िन्दगीसे आरी आ रहे हैं ; अब तो अपना कष्ट और भी बढ़ जायगा। अबतक यह आशा तो थी, कि कभी मृत्यु आकर हमारे कष्टोंका अन्त कर देगी ; पर जब यह फल खा लिया जायगा, तब तो अनन्त काल तक महादारिद्र्य-कष्ट भोगना पड़ेगा। सारी ज़िन्दगी, जिसका ओर-छोर नहीं, दरिद्रावस्थामें ही व्यतीत करनी पड़ेगी। यह फल तो उनके लिये अच्छा है, जिन्हें परमात्माने धन-रत्न-राजपाट प्रभृति सभी संसारी सुख दिये हैं। आप यदि मेरी सलाह मानें, तो इसे महाराजा भर्तृहरिको दीजिये और उनसे बदलेमें धन लेकर सुखसे शेष जीवन व्यतीत कीजिये।"

तपस्वी ब्राह्मण महाराजाधिराज भर्तृहरि को "अमरफल" दे रहा है। पृ० २८

महाराजाधिराज भर्तृहरि "अमरफल" जैसे अलभ्य फलको, आप न खाकर, आपनी प्यारी रानी पिंगला को देते हैं। पृष्ठ ३०
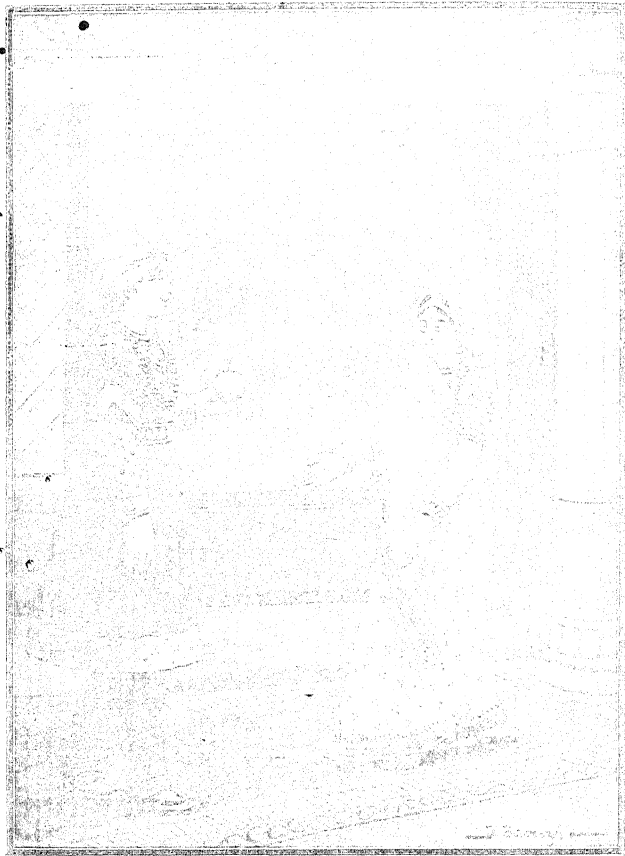
बहुत कुछ तर्क-वितर्क और सोच-विचारके बाद ब्राह्मण-देवता भी इसी बात पर जम गये। उन्हें ब्राह्मणीकी बातही सोलह आने ठीक जची। इसलिये वह कपड़े पहन, फल हाथमें ले, महाराजकी सभामें पहुँचे। चोबदारने ख़बर दी। महाराजने उस ब्राह्मणको अपने निकट बुला लिया और पूछा—"देवता! क्या चाहते हो? आज्ञा कीजिये; इसी क्षण आपकी आज्ञा पालन की जायगी।" ब्राह्मणने उस अमर फलकी सारी कहानी सुना-कर, वह फल राजाके हाथमें दे दिया। राजाने भी उसे खुशीसे ले लिया और ब्राह्मणको कई लक्ष सुवर्ण मुद्रा देनेका हुक्म दिया। ब्राह्मण अशरफियाँ लेकर हँसता-हँसता अपने घर आया।

अब महाराज मन-ही-मन विचार करने लगे—"वास्तवमें यह फल परमात्माने ही दया करके मेरे पास भिजवाया है। पर अब यह समझमें नहीं आता, कि इस फलको मैं खाऊँ या अपनी प्राणप्रतिमा, प्राणाधिका, प्राणप्रदा रानी पिङ्गलाको खिलाऊँ? अगर मैं इसे खाऊँगा, तो सदा अमर रहूँगा; मेरा रूप-यौवन सदा स्थिर रहेगा; दुःखदायी बुढ़ापा पास न आवेगा, पर मेरी प्यारी पिङ्गला, मेरे सुखोंकी मूल पिंगला तो कुछ दिन बाद ही बूढ़ी हो जायगी—उसका यह रूप-लावण्य नष्ट हो जायगा। उस दशामें, मैं किसके साथ सुख उपभोग करूँगा? इसलिये मैं इसे पिंगलाको ही खिलाऊँगा। वह यदि अमर रहेगी, वह यदि बूढ़ी न होगी, यदि उसकी सौन्दर्य्य-प्रभा ज्यों की त्यों बनी रहेगी; तो मैं उसीके साथ संसारी सुखोंका आनन्द

उपभोग करूँगा। यह सोच और इस विचार पर दृढ़ हो, महाराजा फलको हाथमें लेकर रनवासको चल दिये।

महाराजके महलके द्वार पर पहुँचते ही दासियोंने जाकर महारानीको महाराजके आगमन की सूचना दी। पिङ्गला शीघ्रही तैयार हो, उन्हें लेनेके लिये द्वार तक आई और उनके गलेमें हाथ डाल उन्हें अन्दर लिवा ले गई। उन्हें एक परमोत्कृष्ट आसन पर बिठा आप भी उनकी बग़लमें बैठ गई और अपने हाव-भाव और नाज़ोनख़रोंसे उनका मन अपने हाथमें करने लगी। शेषमें पूछा—"महाराज! आज असमयमें इस दासी पर कैसे कृपा की?" महाराजने कहा—"प्रिये! आज एक अपूर्व फल मेरे हाथ लगा है। उसीको लेकर तुम्हारे पास आया हूँ।"

रानीने कहा—"महाराज? वह फल मुझे दिखाइये और यह भी बताइये, उसमें ऐसा कौनसा गुण है, कि जिससे आप उसकी इतनी लम्बी-चौड़ी तारीफ करते हैं?

राजाने कहा—"रानी! यह फल, जिसे आप मेरे हाथमें देख रही हैं, "अमरफल" है। इसे एक देवताने एक ब्राह्मणको उसके तपसे सन्तुष्ट होकर दिया था। ब्राह्मणने इसे मुझे दिया। इसमें यह गुण है, कि इसका खानेवाला न कभी बूढ़ा होता और न कभी मरता है; सदा नौजवान रहता है। मैं चाहता हूँ कि इस फलको तुम खाओ, जिससे तुम सदा नवयुवती बनी रहो—तुम्हारा रूपलावण्य सदा आज जैसा ही बना रहे।" यह कहकर राजाने वह अमर फल रानीके हाथमें दे दिया।
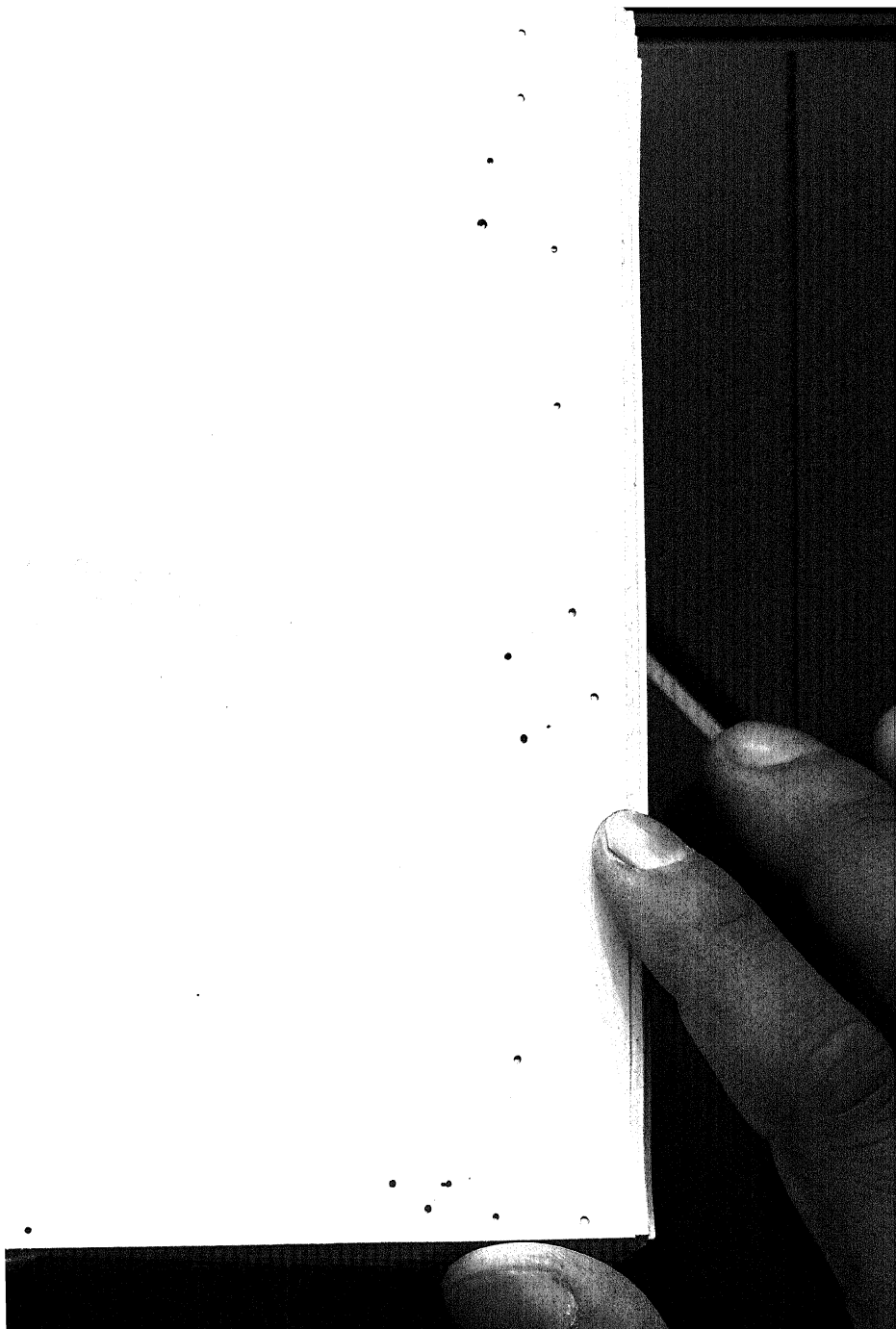
महाराजाधिराज भर्तृहरि की परमप्यारी रानी पिंगला, महाराज का दिया हुआ 'अमरफल' अपने यार दारोगा को दे रही है।
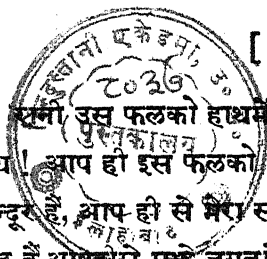
रानी उस फलको हाथमें लेकर कहने लगी,—"नहीं, प्राण-नाथ! आप ही इस फलको खायँ ; क्योंकि आप ही मेरी माँगके सिन्दूर हैं, आप ही से मेरा सौभाग्य है, आप ही मेरे सूर्य्य और चाँद हैं,आपहीसे मुझे जगत्में उजियाला है।" परमात्मा आपको सदा अजर-अमर रखे, इसीमें मेरा सुख-सौभाग्य है ; रानीकी ये बातें बनावटी थीं। मुँहमें राम और बग़लमें छुरीवाली बात थी। उसके पेटमें कपटकी कतरनी चल रही थी। राजा उसके जालमें पूर्णरूपसे फँसे हुए थे, इसलिये वह उसके फरेबोंको कैसे समझ सकते थे? उन्होंने फिर कहा—"नहीं, यह फल तुमको ही खाना होगा। तुम्हारे फल खानेसे ही मुझे सन्तोष होगा।" रानी तो यह चाहती ही थी, कि फलको राजा न खावे और वह मेरे हाथमें रहे ; इसलिये शेषमें वह राज़ी होगई और कहने लगी—"आपकी आज्ञाको मैं उल्लङ्घन नहीं कर सकती। जिसमें आप राज़ी उसीमें मैं राज़ी हूँ। आपके ही सन्तोषमें मुझे सन्तोष है। आपका जब यही हुक्म है, तो मैं ही इस फलको खाऊँगी ; पर यह देवता का दिया हुआ है, इसलिये इसे अशुद्ध अवस्थामें न खाऊँगी। स्नान-ध्यान पूजा-पाठ करके खाऊँगी।" राजा उस मक्काराकी बात पर राज़ी हो गये और फल उसे देकर सभामें लौटआये।

राजाके पीठ फेरते ही, रानीने दासी भेजकर, अपने उपपति —अस्तबलके दारोग़ाको बुला भेजा। वह शैतान सन्देशा पाते ही दौड़ा चला आया। रानी उसे लेनेको दरवाज़े पर पहुँची और उसके गलेमें हाथ डालकर महलमें ले आई। उसे मख़मली

पलँगपर बैठाकर, आप उसकी गोदमें पड़ गई और उसे प्यार करने लगी।

दारोग़ाने पूछा—"रानी साहिबा! आज यह गुलाम असमयमें ही क्यों याद किया गया? क्या बात है?"

रानी—प्यारे! आज महाराजने मुझे एक फल दिया है। उसके खानेसे मनुष्य अमर बना रहता है, जवानी सदा स्थिर रहती है, बुढ़ापा कभी नहीं आता। राजा साहब मुझसे उस फलके खानेको कह गये हैं। मैंने उनसे वादा भी कर लिया है। पर, प्राणाधार! संसारमें मुझे आपसे अधिक कोई प्रिय नहीं, आप ही मेरे सुखके कारण हो, आप ही से मेरा आनन्द है; इसलिये मैं चाहती हूँ, कि आप ही उस फलको खावें।

दारोग़ा—अच्छा प्यारी! आपकी आज्ञा सर आँखोंपर। मैं ही इसे खाऊँगा; पर यह देव-दत्त वस्तु है, इसलिये पवित्र होकर खानी चाहिये। मैं अभी जाकर क्षिप्रामें स्नान करूँगा और इसे खा लूँगा।

यह सुनते ही रानीने दारोग़ाको वह फल दे दिया। वह भी फल लेकर चलता हुआ। रानी उसे द्वार तक पहुँचा आई। दारोग़ा जाते-जाते राहमें सोचने लगा—"उस रण्डीको मैंने अच्छा चकमा दिया। मैं इस फलको खाऊँगा, तो क्या फायदा होगा? यदि मैं अपनी आशनाको खिलाऊँगा, तो सच-मुच ही बड़ा लाभ होगा। मेरी प्राणप्यारी इसके खानेसे सदा आज जैसी ही रूपलावण्य-सम्पन्ना नवयुवती बनी रहेगी और

नमकहराम दारोग़ा साहब दुराचारिणी असती रानी के दिये हुए अमरफल को अपनी प्रणयिनी वेश्या को दे रहे हैं।

दरोगा की प्यारी वेश्या उसी अमरफलको लेकर महाराजा भर्तृहरि के सामने खड़ी है। वह उस फलको महाराज को देना चाहती है।

मैं सदा उसके साथ आनन्द उपभोग करूंगा।" यह सोचता हुआ वह अपनी आशना—वेश्याके मकान पर जा पहुँचा। उस समय वह वेश्या एक तकिये के सहारे बैठी हुई थी। उसके चन्द यार उसकी सेवामें बैठे थे। दारोग़ा साहबको वेश्याने आदर से सामने बिठाया और आनेका कारण पूछा।

दारोग़ाने कहा—"प्रिये ! आज मुझे एक अद्भुत फल मिला है। इसको खानेवाला कभी बूढ़ा नहीं होता और मृत्यु उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकती। मैं चाहता हूँ, इस फल को तुम खाओ। तुम्हारे सदा-सर्वदा आज जैसी नव-युवती बनी रहनेसे मेरी ज़िन्दगी सुख से कटेगी।"

वेश्याने कहा,—"अच्छा प्यारे ! आपकी आज्ञाको मैं टाल नहीं सकती। मैं स्नान करके इस फल को खालूँगी।"

वेश्याकी यह बात सुनते ही दारोग़ा ने वह अमर फल उसे दे दिया और आप अपने डेरे को चला आया। उसके जाते ही वेश्या सोचने लगी—"मुझे सारी उम्र पाप कमाते बीती। न जाने इतने पापोंका ही मुझे क्या-क्या दण्ड भोगना होगा? यदि मैं इस फल को खाऊँगी, तो अन्तकाल तक इसी तरह पापोंकी गठरियाँ बटोरती रहूँगी; अतः मुझे यह फल खाना हरगिज़ मुनासिब नहीं। इसे तो मेरे प्यारे महाराज भर्तृहरि खायँ तो अच्छा। उनके अजर अमर रहने से मेरी आत्माको सन्तोष होगा। ऐसे राजाके राज्यमें प्रजा सदा सुखी रहेगी। हमारे महाराज आदर्श राजा हैं। ऐसे राजा बहुत कम हैं।"

यह सोचकर, वह कपड़े-लत्तोंसे टिचन हो, फल लेकर राज-सभाकी ओर चली। सभामें पहुँचते ही चोपदार ने महाराज को ख़बर दी, कि एक बाईजी साहिबा तशरीफ लाई हैं। महा-राजने वेश्या को सामने बुलाया और उसके आनेका सबब पूछा।

वेश्याने कहा—"महाराज! आज मुझे एक अपूर्व फल मिला है। यह फल अजीब तासीर रखता है। इसके खानेवाला सदा अमर रहता है। मैं इस फल को खाऊँगी, तो सदा पाप कमाऊँगी; इसलिए यह फल आप ही के खाने योग्य है। आप अजर अमर रहेंगे, तो पृथ्वी सुखी रहेगी।"

वेश्याके हाथमें उस फल को देख तथा उसकी बातें सुनकर महाराजके चेहरे का रंग उड़ गया। वह आश्चर्य चकित हो गये। ऊपर का साँस ऊपर और नीचे का साँस नीचे रह गया। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो सोचमें पड़ गये। शेषमें; होश-हवाश ठिकाने आने पर, उन्होंने वह फल वेश्या के हाथसे ले लिया और धोकर खा गये।

परमात्माकी इच्छासे ही, वह फल घूमघामकर फिर राजाके पास पहुँचा। राजाने अनुसन्धान द्वारा सारा भेद जान लिया। उन्हें पिङ्गला के छल-छिद्र-युक्त कपट व्यवहार पर बड़ी घृणा उत्पन्न हो गई। उन्हें अपनी सबसे अधिक प्यारी रानीके दुर्व्यवहार और विश्वासघात से बड़ा दुःख हुआ। उनके दिल पर सख़्त चोट लगी। मालूम हो गया, कि स्त्रियों की

महाराजाधिराज भर्तृहरि को संसार से विरक्ति हो गई है।
आप राजपाट धनदौलत प्रभृति को तृणवत परित्याग कर वन
को जा रहे हैं।

प्रीतिमें सार नहीं ; स्त्री-जातिकी मुहब्बत का कोई ठिकाना नहीं। उन्हें संसार से विरक्ति हो गई। उन्हें संसार और विषय-भोगोंसे एकदम नफरत हो गई। उन्होंने समझ लिया, संसारमें कोई किसीका नहीं है। यह मिथ्या जाल है। इसमें फँस कर लोग अपना दुष्प्राप्य जीवन वृथा खोते हैं। उन्होंने अपने तईं धिक्कारते हुए कहा—

> "यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता ।
> साप्यन्यमिच्छति जनं सजनोऽन्यसक्तः ॥
> अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या ।
> धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥"

मैं जिसको सदा चाहता हूँ, वह (मेरी रानी पिंगला) मुझे नहीं चाहती ; वह दूसरे पुरुषको चाहती है ! वह पुरुष (दारोगा) रानी को नहीं चाहता ; वह दूसरी ही स्त्री पर मरता है ! वह स्त्री जिसे रानीका यार दारोगा चाहता है, वह मुझे चाहती है ! इसलिए रानीको धिक्कार है ! उस दारोगाको धिक्कार है ! उस वेश्या को धिक्कार है ! मुझको धिक्कार है और उस कामदेव को धिक्कार है, जो ये सब काण्ड कराता है।

इस घटना से संसार महाराज के लिये बिलकुल ही बुरा मालूम होने लगा। आपने प्रधान मंत्री को सामने बुला, राज का सारा काम उसे सम्हला, अपनी राजसी पेशाक उतार कर उसे दे दी और

''भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम् ।
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ॥
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

''अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा ।
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा ॥
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यांतु दिवसाः ।
क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥''

"विषयों के भोगने में रोगों का भय है, कुल में दोष होनेका भय है, धनमें राजका भय है, चुप रहनेमें दीनताका भय है, बलमें शत्रुओंका भय है, सौन्दर्य्यमें बुढ़ापे का भय है, गुणों में दुष्टोंका भय है, शरीरमें मौतका भय है, संसारकी सभी चीज़ों में मनुष्यको भय है, केवल "वैराग्य" में किसी प्रकार का भय नहीं है।

"हे परमात्मन्! मेरे शेष दिन किसी पवित्र वनमें शिव-शिव रटते बीतें; सर्प और पुष्पहार, बलवान् शत्रु और मित्र, कोमल पुष्प-शय्या और पत्थरकी शिला, मणि और पत्थर, तिनका और सुन्दरी स्त्रियोंके समूहमें मेरी दृष्टि एकसी हो जाय—यही मेरी इच्छा है।"

यह कहते हुए आपने सारा राज-पाट धन-दौलत प्रभृति एक क्षणमें त्याग कर वनका रास्ता लिया। चलते समय

उन्होंने मन्त्रीसे और भी कहा,—"मैंने अपने धर्मात्मा और सत्यवादी सहोदर भाई विक्रमके साथ बड़ा अन्याय किया! उस समय मेरी अक्ल पर पर्दा पड़ा हुआ था। मुझे उचित-अनुचितका ज़रा भी ज्ञान नहीं था। उस कुलटाने मुझ पर जादू सा कर दिया था। मैं अब संसारके लोगोंको सलाह देता हूँ कि, वे अगर सुखसे जीवन बिताना चाहें, तो स्त्रियोंका विश्वास न करें और जो परमपदके अभिलाषी हों, वे तो उनका नाम भी न लें। मन्त्रीवर! आप विक्रमका पता लगाना। यदि वह मिल जाय, तो उसे राजगद्दी पर बिठा देना।"

यदि महाराज भर्तृहरि चाहते, तो रानी पिङ्गलाको जीती ही ज़मीनमें गड़वा देते, उस दारोग़ाको तोपके मुँहसे बँधवा कर उड़वा देते तथा और शादी कर लेते; पर आपको तो निर्मल ज्ञान हो गया था, आप संसारकी असलियतको समझ गये थे, इसीसे आपको संसारसे घृणा हो गई। आपने उपभोग, वस्त्र, चन्दन, वनिता, रत्न और राज-पाट सबको तृणके समान समझ कर एक क्षणमें त्याग दिया। ऐसा सब किसी से नहीं हो सकता। ऐसा उनसे ही होता है, जिन पर जगदीशकी दया होती है या पूर्व संचित पुण्योंका उदय होता है। मनुष्यसे फूटे-टूटे हाँडी बर्तन और गुदड़े ही नहीं छोड़े जाते, कोरी इच्छाओंका भी त्याग नहीं होता, तब राजपाट और धन-दौलतका छोड़ना तो बड़ी बात है।

महाराजा भर्तृहरि भूपालोंमें आदर्श भूपाल हो गये हैं। उन्होंने जो किया है वह शायद ही कोई भूपाल उनके बाद कर सका हो। जब तक सूर्य्य चन्द्रमा रहेंगे, जब तक यह दुनिया रहेगी, तब तक महाराजका प्रातःस्मरणीय पुण्यश्लोक नाम लोगोंकी ज़बान पर रहेगा।

हमने महाराजा भर्तृहरि और महाराजा विक्रमादित्यके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है, वह एक थियेट्रिकेल कम्पनीके तमाशे और एक पुरानी पुस्तकके आधार पर लिखा है, जो हमने, कोई २५ साल पहले, एक पल्टनकी लाइब्रेरीमें अङ्गरेज़ी और हिन्दीमें देखी थी। हमें जो याद था वही लिखा है। इस समय न तो हमारे पास वह पुस्तक ही है और न हमें उसका नाम ही याद है।
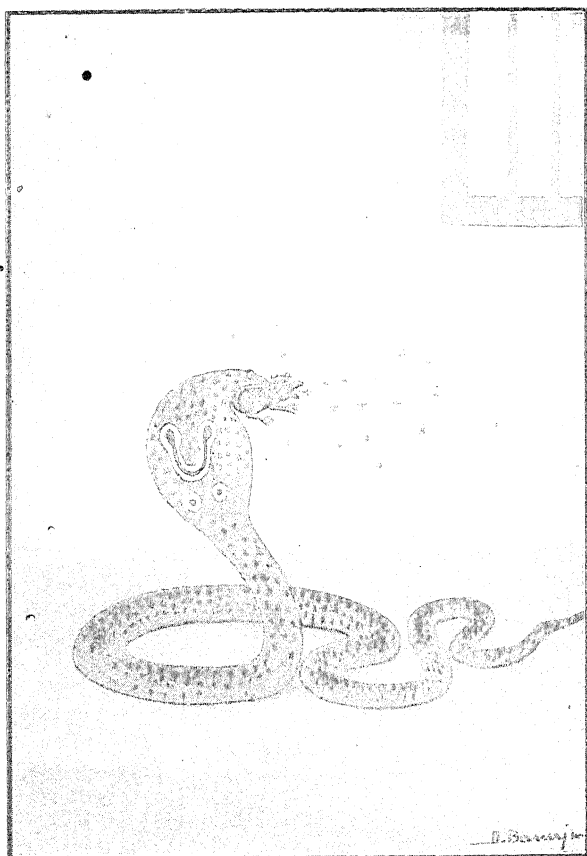
साँप के मुख में मैंडक है, मौतमें कसर नहीं है ; तथापि मैंडक मच्छरों को खाना चाहता है ; बस यही हालत संसारी मोहान्धों की है। वे हर क्षण मौत के मुख में रहते हुए भी, मैंडक की तरह विषयोंको भोगने की चेष्टा करते हैं।

॥ श्रीः ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनन्तचिन्मात्रमूर्त्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

जो दशों दिशाओं और तीनों कालोंमें परिपूर्ण है, जो अनन्त है, जो चैतन्य-स्वरूप है, जो अपने ही अनुभवसे जाना जा सकता है, जो शान्त और तेजोमय है, ऐसे ब्रह्म रूप परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

जो परमेश्वर पूरब पच्छम प्रभृति दशों दिशाओं एवं भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल,—इनसे संकुचित नहीं है ; यानी जो सब दिशाओं और तीनों कालोंमें मौजूद रहता है, किसी दिशा और किसी कालकी क़ैदमें नहीं है, जो तीनों लोक

और चौदहों भुवनोंमें व्याप रहा है, जो पहले भी था, अब भी है और आगे आनेवाले समयमें भी रहेगा, इसलिये वह अनन्त है, उसका विनाश नहीं है, वह चैतन्य स्वरूप है, वह केवल अपने ही अनुभवसे जाना जा सकता है, वह परम शान्त और तेजोरूप है, उसीको मैं वन्दना करता हूँ ।

1. To One unlimited by time or space, to the Boundless, to Him who is all consciousness, to one who is know-able only by self-contemplation and to the Supreme Peace and Light I bow down in prayer.

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम् ॥२॥

जो विद्वान् हैं, वे ईर्षासे भरे हुए हैं ; जो धनवान् हैं, उनको अपने धनका गर्व है ; इनके सिवा जो और लोग हैं, वे अज्ञानी हैं ; इसलिये विद्वत्तापूर्ण विचार, सुन्दर-सुन्दर सारगर्भित निबन्ध या उत्तम काव्य शरीरमें ही नाश हो जाते हैं ॥२॥

खुलासा ।

जो विद्वान् है, पण्डित हैं, जिन्हें अच्छे-बुरेका ज्ञान या तमीज़ है, वे तो अपनी विद्वत्ताके अभिमानसे मतवाले हो रहे हैं, वे दूसरोंके उत्तम-से-उत्तम कामोंमें छिद्रान्वेषण करने या नुक़ताचीनी करनेमें ही अपना पाण्डित्य समझते हैं ; अतः ऐसोंसे कुछ कहनेमें लाभकी ज़रा भी सम्भावना नहीं ।

दूसरे प्रकारके लोग जो धनी हैं, वे अपने धनके गर्व्वसे भूले हुए हैं। उन्हें धन-मदके कारण कुछ सूझता ही नहीं, उन्हें किसीसे बातें करना या किसीकी सुनना ही पसन्द नहीं; अतः उनसे भी कुछ लाभ नहीं। अब रहे तीसरे प्रकारके लोग; वे नितान्त मूर्ख या अज्ञानी हैं; उन गँवारोंमें अच्छे-बुरेकी तमीज़ नहीं, अतः उनसे कुछ कहने या अपनी कृति दिखाने सुनानेको दिल नहीं चाहता; इसलिये हमारे मुँहसे निकल सकनेवाले उत्तमोत्तम विचार, निबन्ध, काव्य या सुभाषित संसारके सामने न आकर, हमारे शरीरमें ही नष्ट हुए जाते हैं, हमारा परिश्रम व्यर्थ जाता है और संसार हमारे कामोंके देखने और लाभान्वित होनेसे वञ्चित रहता है!

और भी स्पष्ट।

संसारमें घमण्डियोंकी संख्या बहुत है। कितने ही अपनी विद्याके गर्व्वसे चूर हो रहे हैं और कितने ही लक्ष्मीके नशे से मतवाले हो रहे हैं। यदि कोई विद्वान् या कारीगर विद्या-गर्व्वियोंके पास जाता है, तो अव्वल तो वे धुरन्धर विद्वान् बेचारेको पास ही नहीं फटकने देते और यदि कोई श्रीचरणों में पहुँच गया, तो वे उसके कामके उत्तम अंशों पर ध्यान न देकर, बुरे अंशोंको देखते हैं और उसमें तरह-तरहके दोष निकालकर उसके दिलको चोट पहुँचाते हैं; इसलिये ऐसे विद्या-गर्व्वियोंके पास जाना और अपने कामकी क़दरदानी

की आशा करना भूल है। अब रहे धन-गर्व्वी; धनसे मतवालों की तो बात ही न पूछिये। प्रथम तो उन तक पहुँचना ही कठिन काम है। यदि पहुँच भी गये, तो उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। सैकड़ों बार उनकी देहलकी धूल चाटने पर कदाचित् ही कभी नम्बर आवे-तो-आवे। फिर; वहाँ पराई बुराई करनेवालों या चुग़लख़ोरोंकी तूती बोलती है, अतः वहाँ भी सफलता नहीं होती। इन दोनों प्रकारके लोगोंके सिवा, जो तीसरे प्रकारके लोग हैं, वे तो निरे मूर्ख—अज्ञानी या कोरे बाबाजी हैं। उनको किसी प्रकारका ज्ञान ही नहीं, वे सुभाषित और कुभाषित, सुशिक्षा और कुशिक्षा, काव्य और अलङ्कार को समझते ही नहीं। ऐसी दशामें क़दरदान या गुणग्राहक के अभावसे ख़ामुख़ाह मनमें विरक्ति या वेदना होती है। मन दुःखी होकर कहता है—"हाय! रसिक और समझदारोंके दिल साफ़ नहीं हैं, उनके चित्त मत्सरतासे कलुषित हो रहे हैं। धनवानोंको धनके नशेके मारे कुछ सूझता ही नहीं, वे किसीसे बात ही नहीं करते। अज्ञानियोंकी समझमें कुछ आ नहीं सकता। अब हम अपना पाण्डित्य या कारीगरी किसे दिखावें?

शिक्षा—जो तुम्हारी तरफ़ मुख़ातिब हों, तुम्हारी बातों पर कान दें, तुम्हारी बातोंको ध्यानसे सुनें, उन्हींको अपनी बातें सुनाओ। जो तुम्हारी बातें सुनना न चाहें, उनके गले मत पड़ो। ऐसा करनेसे आपकी आत्म-प्रतिष्ठामें बट्टा लगेगा—आपका अपमान होगा।

कुण्डलिया ।

पण्डित मत्सरता भरे, भूप भरे अभिमान ।
और जीव या जगतके, मूरख महाअजान ॥
मूरख महा अजान, देखके संकट सहिये ।
छन्द प्रबन्ध कवित्त, काव्यरस कासों कहिये ॥
वृद्धा भई मनमाँहि, मधुर बाणी गुणमण्डित ।
अपने मनको मार, मौन धर बैठत पण्डित ॥२॥

2 The learned are full of jealousy; the wealthy are intoxicated with vanity; while others are in the hold of ignorance. Hence there is no other resource for one's literary talents save that of their being suffocated within one's own self.

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं ।
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः ॥
महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया ।
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम् ॥३॥

मुझे संसारी कामोंमें ज़रा सुख नहीं दीखता। मेरी रायमें तो पुण्यफल भी भयदायक ही हैं। इसके सिवा, बहुतसे अच्छे-अच्छे पुण्यकर्म करनेसे जो विषय-सुखके सामान प्राप्त किये और चिरकाल

तक भोगे गये हैं, वे भी विषय-सुख चाहनेवालोंको, अन्त समयमें, दुःखोंके ही कारण होते हैं ॥३॥

खुलासा ।

इस जीवनमें सुखका लेश भी नहीं है। जिनके पास अक्षय लक्ष्मी, धन-दौलत, गाड़ी-घोड़े, मोटर, नौकर-चाकर, रथ-पालकी प्रभृति सभी सुखके सामान मौजूद हैं, राजा भी जिनकी बातको टाल नहीं सकता, जिनके इशारोंसे ही लोगों का भला या बुरा हो सकता है, ऐसे सर्व्वसुख-सम्पन्न लोग भी, चाहे ऊपरसे सुखी दीखते हों, पर वास्तवमें सुखी नहीं हैं ; भीतर-ही-भीतर उन्हें भी घुन खाये जाता है ; किसी न किसी दुःखसे वे जर्ज्जरित हुए जाते हैं। इस मौक़ेकी दो कहानियाँ हमें याद आई हैं। हम उन्हें दृष्टान्तके तौर पर यहाँ लिखते हैं :—

एक महात्मा अपने शिष्यके साथ किसी नगरमें गये। वहाँ उन्होंने देखा कि, एक साहूकार इन्द्रभवन जैसे मकानमें बैठा है, सैकड़ों सेवक आज्ञापालनको तैयार खड़े हैं, जोड़ी-गाड़ी द्वारपर खड़ी हैं, हाथी झूम रहे हैं, सामने सोने चाँदी और हीरे पन्नोंके ढेर लग रहें हैं। महात्माको देखकर सेठने अपने एक कर्मचारीको उनको भोजन करानेकी आज्ञा दी। जब गुरु चेले भोजन करने बैठे, तब चेला बोला—"गुरु-जी! आप कहते थे, संसारमें कोई भी सुखी नहीं है। देखिये,

यह सेठ कैसा सुखी है! इसे किस बातका अभाव है? लक्ष्मी इसकी दासी हो रही है।" गुरुने कहा—"ज़रा सब्र करो। हम पता लगाकर कुछ कह सकेंगे।" महात्माने जब भोजन कर लिया, तब सेठसे कहा—"सेठजी! परमात्माने आपको सभी सुख दिये हैं।" सेठने रोकर कहा—"महाराज! मेरे समान इस जगत्‌में कोई दुःखी नहीं है। मुझे परमात्माने धनैश्वर्य्य सब कुछ दिया है, पर पुत्र एक भी नहीं। पुत्र बिना, ये सुख बिना नमकके पदार्थकी तरह अलौने और बेस्वाद हैं। मेरा दिल रात-दिन जला करता है, कभी मुझे सुखकी नींद नहीं आती। मैं इसी सोचमें जला जाता हूँ कि, पुत्र बिना इस सम्पत्तिको कौन भोगेगा?" सेठकी बातें सुनकर चेलेने कहा—"हाँ गुरुजी, आपकी बात राई-रत्ती सच है। संसारमें कोई भी सुखी नहीं। कोई किसी दुःख-से-दुःखी है तो कोई किसी दुःख से।

और भी :—

किसी नगरमें एक साहूकार था। उसके यहाँ धन-दौलत की कमी न थी। उसका धन-भाण्डार कुबेरके समान अक्षय था। जिसके पास अतुल धन है, उसे किस पदार्थका अभाव है? वह साहूकार सब तरहसे इन्द्रके समान स्वर्ग-सुख भोग रहा था। इसी बीचमें दैवयोगसे उसकी स्त्री बीमार हो गयी। हर तरहकी उत्तम चिकित्सा होने पर भी उसके बचने की आशा न रही। सेठ रोने लगा। स्त्रीने कहा—"आप क्यों

रोते हैं ? आप धनी हैं, आपके सैकड़ों विवाह हो सकते हैं। मेरे मरते ही आपकी दूसरी शादी फौरन हो जायगी। दुःख मुझे है कि, मैंने जगत्में आकर कुछ भी सुख न देखा।" सेठ ने कहा—"अगर तुम मर गयीं, तो मैं हरगिज़ दूसरी शादी न करूँगा।" सेठानीने कहा—"क्यों बातें बनाते हो ? मेरे चल बसते ही, आप ये सब बातें भूल जायँगे !" सेठने जोशमें आकर मोहसे अपनी लिंगेन्द्रिय काटकर फैंक दी। दैवयोग से सेठानी उसी समयसे चङ्गी होने लगी और चन्द रोज़में हृष्ट-पुष्ट हो गयी। शरीर सुखी होने पर उसे पुरुषकी दरकार होने लगी। सेठको निकम्मा देखकर उसने नौकर चाकरोंसे कुकर्म करना आरम्भ कर दिया। सेठ यह हाल देखकर दिन-रात कुढ़ने और जलने लगा। इसी बीचमें एक दिन गुरु नानक, भाई मरदानके साथ, उस नगरीमें पहुँचे। भाई मर-दानने उस सेठका सुखैश्वर्य्य देखकर कहा—"गुरुजी ! आप कहा करते हैं कि, इस जगत्में सुखी कोई भी नहीं है। कहिये इस सेठको क्या दुःख है ?" गुरु नानकने कहा—"मरदान ! यह सेठ ऊपरसे सुखी दीखता है, पर भीतरसे किसी-न-किसी दुःखसे अवश्य दुःखी होगा। चलो, हम इससे पुछवा देते हैं।" गुरुजीने सेठसे बात-चीतकी, तो सेठने कहा—"महाराज ! सचमुच ही मुझे कोई दुःख न था ; पर अब इस दुःखसे जल-जलकर ख़ाक हुआ जाता हूँ।" यह सुन गुरुजी ने कहा—"मरदान ! इस गृहस्थाश्रममें कोई भी सुखी नहीं।"

संसारी लोग धनवानोंको सुखी समझते हैं, पर धन अनर्थों का मूल है। धन बड़े-बड़े अनर्थोंसे जमा होता है और जमा होनेपर भी दुःखोंका ही कारण होता है। इसके कमानेमें कष्ट और इसके रखनेमें कष्ट। मतलब यह कि, इसमें सब तरह दुःख-ही-दुःख हैं। धन-लोभसे चोर मार डालते हैं। अगर मार भी नहीं डालते, तो धन हर ले जाते हैं, तब धनीको महा कष्ट होता है। धनीके पुत्र-पौत्र या अन्य रिश्तेदार धनीकी मरण-कामना करते रहते हैं। धनीको हज़ारों तरहकी चिन्तायें घेरे रहती हैं। फलाँ आदमीमें रक़म डूब जायगी ; अमुक दिसावरमें घाटा होनेका भय है इत्यादि चिन्ताओंमें वह जला करता है।

अनेक लोग राजाओंको सुखी समझते हैं ; पर राजाओं को ज़रा भी सुख नहीं। राज्य महा अनर्थोंका कारण है। राजाको सदा यह भय लगा रहता है कि, कहीं ग़नीम चढ़ न आवे। चोरोंका भय रहता है कि, कहीं वे राजलक्ष्मीको हर न ले जावें। अपने सगे-सम्बन्धियोंका भय लगा रहता है कि, वे कहीं राज्य-लोभसे धोखेमें मार न डालें। क्योंकि अनेक पुत्रों या भाइयोंने राज्य-लोभसे राजा-बादशाहोंको मार डाला है। दुर्योधनने राज्य हड़पनेके लिये भीमको विष दिया था ; पाँचों पाण्डवोंको लाक्षाभवनमें जीते ही जलाना चाहा था ; कैकेयीने अपने पुत्रको राज्य दिलानेकी ग़रज़से रामचन्द्रजीको वनवासकी आज्ञा दी थी। राज्यके लिये ही सुग्रीवने बालिको मरवा डाला था। राज्यके लिये

कंसने अपनी सगी बहन देवकीके नवजात पुत्रोंकी हत्या करवा डाली थी। औरङ्गज़ेबने अपने भाइयोंको जानसे मरवा डाला और पूज्यपाद पिताको क़ैद कर दिया। इससे स्पष्ट है कि, राजाको भी सुख नहीं। राजा लोग भयके मारे कभी एक पलँग पर नहीं सोते। मख़मली पलँग होने पर भी उन्हें सुख की नींद नहीं आती।

जिसके अतुल धन-सम्पत्ति है, वह स्त्रीके व्यभिचारिणी होने या पुत्रके अभाव अथवा पुत्रके सुपुत्र न होनेसे दुःखी है। जो राजराजेश्वर है, वह राज्यके सदा बने रहनेकी चिन्ता से दुःखी है। जिसके स्त्री-पुत्र प्रभृति हैं, वह उनके मरण हो जाने या वियोगसे दुःखी है। कोई जवानीके चले जाने और बुढ़ापेके आ जानेसे दुःखी है। कोई मौतका ख़याल करके दुःखी है। सारांश यह कि, संसारमें कोई भी सुखी नहीं। इस जीवनमें सुखका नाम भी नहीं।

संसारी सुख अनित्य हैं।

सांसारिक सुख-भोग असार, अनित्य और नाशमान् हैं। ये सदा स्थिर रहने वाले नहीं; आज जो लक्ष्मीका लाल है, वह कल दर-दरका भिखारी देखा जाता है; जो आज जवान-पट्ठा है, मिर्ज़ा अकड़बेगकी तरह अकड़ता हुआ चलता है, वही कल बुढ़ापेके मारे लकड़ी टेक-टेककर चलता है। जिसे पहले सब लोग ख़ूबसूरत कहते थे और मुहब्बतसे पास बिठाते

थे, अब उसके पास खड़ा होना भी नहीं चाहते। मतलब यह है कि, यौवन, जीवन, मन, धन, शरीर-छाया और प्रभुता ये सब अनित्य और चञ्चल हैं ; अतः दुःखके कारण हैं। काया में मरण, लाभमें हानि, जीतमें हार, सुन्दरतामें असुन्दरता, भोगमें रोग, संयोगमें वियोग और सुखमें दुःख—ये सब दुःख के कारण हैं। अगर बिना मृत्युका जीवन, बिना रञ्जकी खुशी, बिना बुढ़ापे की जवानी, बिना दुःखका सुख, बिना वियोगका संयोग और सदा-सर्व्वदा रहने वाला धन होता, तो मनुष्यको इस जीवनमें अवश्य सुख होता।

विषय-भोगोंमें सुख नहीं है। ये असार हैं; केलेके पत्ते या प्याज़के छिलकोंकी तरह सारहीन हैं। फिर भी ; मोहवश मनुष्य विषयोंमें फँसा रहता है। पर एक-न-एक दिन मनुष्य को इन विषय-भोगोंसे अलग होना ही पड़ता है। अलग होने के समय विषय-भोगीको बड़ा दुःख होता है। इससे विषय परिणाममें दुःखदायी ही हैं।

इसके सिवा, तरह-तरहके पुण्य सञ्चय करने, यज्ञ-याग आदि करने अथवा दान करनेसे मनुष्यको स्वर्ग मिलता है। वहाँ वह अमृत पीता और अप्सराओंको भोगता है, कल्प-वृक्षसे मनवाञ्छित पदार्थ पाता है, पर पुण्य-कर्मोंके नाश हो जाने या उनके फल भोग चुकने पर वह स्वर्गसे नीचे गिरा दिया जाता है, उसे फिर इसी मृत्युलोकमें आना होता है। उस समय वह स्वर्ग-सुखोंकी याद कर-करके मन-ही-मन

रोता और दुःखी होता है। इसीसे मुझे वे पुण्य-फल भी भया-वह मालूम होते हैं। परिणाममें वे भी दुःखोंके ही कारण होते हैं। तात्पर्य्य यह कि, संसार मिथ्या और सारहीन है। इसके सुख-भोग अनित्य, चञ्चल और सदा न रहने वाले हैं। इसोसे दुःखके कारण हैं। मृत्युलोक और स्वर्गलोकमें कहीं भी प्राणीको सुख नहीं है।

शिक्षा—अगर मनुष्य दुःखोंसे दूर रहना चाहे, सदा सुख भोगना चाहे, तो उसे अनित्य और नाशमान् पदार्थोंसे अलग रहना चाहिये। उनमें मोह न रखना चाहिये। स्त्री, पुत्र, धन, यौवन और स्वामित्व प्रभृति अनित्य हैं। ये आज हैं और सम्भव है कि, कल न रहें। स्त्री-पुत्र प्रभृति नातेदार हमारे सदाके सङ्गी नहीं। आज ये और हम सरायके मुसाफिरों की तरह मिल गये हैं, पर उम्मीद नहीं कि, फिर कभी मिलें। आज इनसे संयोग हुआ है, तो कल इनसे वियोग अवश्य होगा। ये तो क्या—जिस कायाको हम सबसे ज़ियादा चाहते हैं, मलते हैं, धोते हैं, सजाते हैं, वह भी तो एक दिन हमसे अलग हो जायगी। एक क्षणमें जीवका जन्म होता है, दूसरे क्षण ही नाश हो जाता है। जो अज्ञानी ऐसे नाशमान् पदार्थोंसे राग करते हैं, उन्हें दुःखोंके गहरे खड्डेमें गिरना ही होता है। इसलिये बुद्धिमान्को लोक-परलोककी असारता और संयोग-वियोगका विचार करके अनित्य पदार्थोंसे प्रेम न करना चाहिये। उसे सदा नित्य अविनाशी आत्मा या परमात्मासे प्रेम करना चाहिये। शरीर नाश हो जाता है; स्त्री-पुत्र धन आदि नाश हो जाते हैं, पर परमात्माका कभी, किसी कालमें भी, नाश नहीं होता। यह जगत मिथ्या नाशमान्, जड़ और दुःखमय है; पर यह आत्मा—ब्रह्म—चेतन, नित्य और सुखमय है। इस देह रूपी देवमन्दिरमें आत्मा ही देवता है। यही आत्मा संसारके सभी प्राणियों
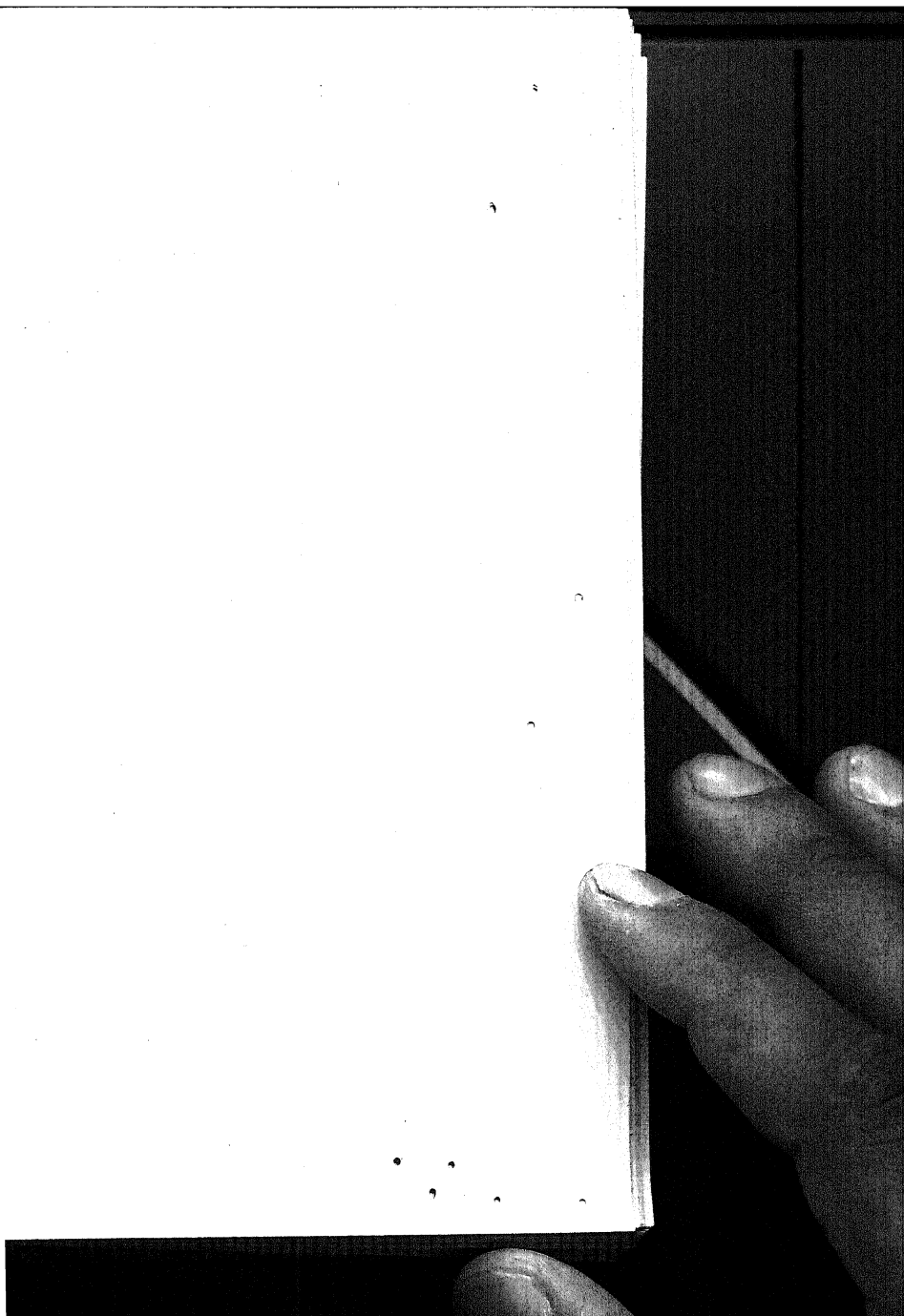
धन के लिये मैंने अनेक उपाय किये, ज़मीन खोदी, समुद्र में गोते लगाये, धातुएँ फूँकीं, रात-रात भर श्मशान में मन्त्र जपे,—पर हाय ! मुझे एक कानी कौड़ी भी न मिली ।

में वर्त्तमान है। इसी आत्माका चिन्तन करो, तो सदा सच्चा सुख भोग करोगे ; पर आत्मचिन्तन करना सहज काम नहीं है। इसके लिये मनको वशमें करना होगा, उसे विषयोंसे हटाना होगा, उसे वृत्तियोंसे अलगकर एकाग्र करना होगा। जब चित्त एकाग्र होगा, तभी सफलता हो सकेगी।

I do not see a good end of the deeds done in this world, and when I consider deeply even acts of benevolence which might have lost their their usefulness after they have given the results, fill me with fear. The objects of pleasure which have been acquired by the accomplishment of meritorious deeds and after long sustained efforts, do only give anxiety and torture to the pleasure-seeking mortals when they have to part with them in the flag-end.

उत्खातं निधिशंकया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो
निस्तीर्णः सरितांपतिर्नृपतयो यत्नेन संतोषिताः ॥
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्चमाम् ॥ ४

धन मिलनेकी उम्मीदसे, मैंने ज़मीनके पैंदे तक खोद डाले ; अनेक प्रकारकी पार्वतीय धातुएँ फूँक डालीं ; मोतियोंके लिये समुद्र की भी थाह ले आया ; राजाओंको राज़ी रखनेमें भी कोई बात उठा न रखी ; मन्त्रसिद्धिके लिये रात-रात भर श्मशानमें एकाग्रचित्तसे बैठा हुआ जप करता रहा ; पर अफ़सोसकी बात है, कि इतनी आफ़तें उठाने पर भी एक कानी कौड़ी न मिली। इसलिये हे तृष्णे ! अब तो तू मेरा पीछा छोड़ ॥४॥

यह जान-सुनकर, कि ज़मीनमें धन है, मैंने ज़मीनको पैंदे तक खोद डाला, पर कुछ भी न मिला। रसायन सिद्ध करने या सोना-चाँदी बनानेके लिये, मैंने अनेक तरहकी धातुयें फूँक डालीं, पर रसायन न बनी। फिर मैंने यह जानकर, कि समुद्र रत्नोंकी खान है—उसमें मोतियोंकी इफ़रात है; मैं समुद्रमें भी घुसा और उसकी थाह ले आया, मगर कुछ हाथ न आया। फिर यह सोचकर, कि राजाओंकी सेवा करनेसे धन हाथ आता है; मैंने उनके सन्तुष्ट करनेकी भी भरपूर चेष्टायें कीं; उन्हें सब तरह खुश किया, पर फिर भी धन हाथ न आया। शेषमें, मैंने मन्त्रसिद्धि करनी चाही, इसलिये मैं रात-रातभर अकेला मरघटमें मुर्दोंके पास बैठकर मन्त्र जपता रहा, कि वशीकरण मन्त्र सिद्ध हो जाय और राजाओंको वश करके धन प्राप्त करूँ; पर यहाँ भी मुझे निराशाका ही सामना करना पड़ा। सारी चेष्टायें करनेपर भी एक फूटी कौड़ी न मिली! इसलिये हे तृष्णा! अब मैं निराश हो गया हूँ। मुझे सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार दीखता है। अब तो तू दया करके मेरा पीछा छोड़ दे!

इसका यही मतलब है कि, भाग्यके विरुद्ध चेष्टा करना वृथा है। जितना धन भाग्यमें लिखा है, उतना तो बिना कोशिश किये, बिना किसीकी खुशामद किये, बिना देश-विदेश डोले, घर बैठे ही मिल जायगा। भाग्यके लिखेसे अधिक हज़ारों चेष्टायें करने पर भी न मिलेगा। सिकन्दर

अमृतके लिये अँधेरी दुनियामें गया ; पर अमृतके कुण्डके पास पहुँच जाने पर भी, वह अमृतको चख न सका ; क्योंकि उसके भाग्यमें अमृत न था। मूर्ख मनुष्य भाग्यपर सन्तोष नहीं करता ; धनके लिये मारा-मारा फिरता है। जब कुछ भी हाथ नहीं लगता, तब रोता और कलपता है। किसी कविने ठीक ही कहा है :—

कवित्त।

जो कुछ विधाता तेरे लिख्यो ललाट-पाट,
ताही पर आपनो आप अमल करले।
सोनेको सुमेर भावे देख वार पार माँझ,
घटै बढ़ै नाहिं यह निश्चय जिय धारले।
देवीदास कहै जोई होनहार सोई ह्वै है,
मनमें विचार रैन दिन अनुसर ले।
वापी कूप सरिता भरे हैं सात सागर पै,
तू तो तेरे बासन-समान पानी भर ले।

शिक्षा—हे मनुष्य ! यदि तू सुख-शान्तिसे जीवन यापन करना चाहता है, तो तृष्णा-पिशाचीके फन्देसे निकल कर भाग्य पर सन्तोष कर। सन्तोष के सिवा सुख-शान्ति लाभ करनेका और उपाय नहीं है। यदि सन्तोष न करेगा, तो तृष्णाके मारे भटक-भटक कर सारी उम्र योंही गँवा देगा, और अन्तमें कुछ हाथ भी न आयेगा।

छप्पय ।

खोदत डोल्यो भूमि, गड़ीहु न पाई सम्पति ।
धौंकत रह्यो पखान, कनकके लोभ लगी मति ॥
गयो सिन्धुके पास, तहँा मुक्ताहु न पायो ।
कौड़ी कर नहीं लगी, नृपनको शीश नवायो ॥
साधे प्रयोग श्मशानमें, भूत प्रेत बैताल सजि ।
कितहूँ भयो न बांछित कछू, अब तो तृष्णा मोहि तजि ॥४

4. I dug up the surface of the earth in search of treasure, burnt down various minerals in my hankering after alchemy, explored the ocean in search of pearls or in my greed after trade, tried my best to please the kings, and spent the whole nights in lonely cremation grouuds reproducing chants with an all attentive mind, but it is a pity that I have gained not a single broken cowrie although 1 did all this. Do thou, O Greed, now leave me !

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित्फलं
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला ॥
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहेष्वाशंकया काकव-
त्तृष्णे दुर्मतिपापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥५॥

मैं अनेक दुर्गम और कठिन स्थानोंमें डोलता फिरा, पर कुछ भी नतीजा न निकला । मैंने, अपनी जाति और अपने कुलका

अभिमान त्यागकर, पराई चाकरी भी की ; पर उससे भी कुछ न मिला। शेषमें, मैं कव्वेकी तरह डरता हुआ और अपमान सहता हुआ पराये घरोंके टुकड़े भी खाता फिरा। हे पाप-कर्म कराने वाली और कुमतिदायिनी तृष्णे ! क्या तुझे इतने पर भी सन्तोष नहीं हुआ ? ॥५॥

धनके लालचमें, मैं अपना देश और घर-द्वार छोड़कर ऐसे-ऐसे स्थानोंमें गया, जहाँ मनुष्य बड़ी कठिनाईसे पहुँच सकते हैं ; पर वहाँ जानेपर भी मुझे एक पाई न मिली। मैंने अपने द्विजत्व या ऊँची जातिके अभिमानको त्यागकर पराई नौकरी भी की और मालिकने जो-जो नीच कर्म कराये वही किये, लेकिन उससे भी मुझे धन न मिला। शेषमें, मैं मान-अपमान को छप्पर पर रखकर, बिना बुलाये ही लोगोंके घर गया और कव्वेकी तरह डरते-डरते खाता रहा। मुझे इन सब कामों से बड़ी ठेस लगी। मैंने अनेक प्रकारके कष्ट उठाये, मान खोया, लोगोंके कुवचन सहे, पर फिर भी मेरी कामना सिद्ध न हुई ! इसलिये कम्बख़्त तृष्णा ! मैं तुझसे पूछता हूँ कि, इतने कुकर्म कराकर भी तुझे सन्तोष हुआ या नहीं ?

छप्पय ।

भटको देश-विदेश, तहाँ फल कछुहु न पायो ।
निज कुलको अभिमान छोड़, सेवा चित लायो ॥

सहि गारी अरु खीझ, हाथ झारत घर आयो ।
दूर करत हूँ दौरि, स्वान-जिमि परगृह खायो ॥
इहि भाँति नचायो मोहि तैं, बहकायो दै लोभतल ।
अबहूँ न तोहि सन्तोष कहु, तृष्णा ! तू पापिन प्रबल ॥५॥

5. I roamed about many difficult and impassable lands but it was all fruitless. I served others forsaking the reasonable pride of my tribe and family but it was of no use. I even dined in other people's houses where no respect was shown to me and where I had always been in suspense like a crow. Art thou not O evil natured Avarice, even now satisfied with having perpetrated so many misdeeds ?

खलोल्लापाः सोढाः कथमपि तदाराधनपरै-
र्निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपिशून्येन मनसा ॥
कृतश्चित्तस्तम्भः प्रहसितधियामञ्जलिरपि
त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्त्तयसि माम् ॥ ६ ॥

मैंने दुष्टोंकी सेवा करते हुए उनकी तानेज़नी और ठट्ठेबाज़ी सही, भीतरके दुःखसे आये हुए आँसू रोके और उद्विग्न चित्तसे उनके सामने हँसता रहा । उन हँसनेवालोंके सामने, चित्तको स्थिर करके, हाथ भी जोड़े । हे झूठी आशा ! क्या अभी और भी नाच नचायेगी ? ॥६॥

मैंने नीचोंकी नौकरी करली । उनकी सेवा करते हुए मैंने

उन दुष्टोंके अवाज़े-तवाज़े, गाली-गलौज़ और दिल्लगी सभी कुछ बर्दाश्त की। उनके वाग्वाणोंसे मेरे कलेजेमें छेद हो जाते थे और हृदय रोने लगता था। उसके कारणसे जो आँसू आते थे, उन्हें मैं रोक लेता था। भीतरसे मेरा दिल एकदम मुर्झा गया था, पर फिर भी मैं उनके सामने हँसा करता और क्रोधको दबाकर और चित्तको स्थिर और शान्त करके उन मसख़रोंको मैंने हाथ भी जोड़े; पर फिर भी उनसे मुझे कुछ न मिला! हे आशा! निष्फला आशा! इतने नाच तो नचाये, अब और तेरे दिलमें क्या है?

छप्पय।

सहे खलनके बैन इतै, पर तिनहिं रिझाये।
नैननको जल रोक, शून्य मन मुख मुसक्याये॥
देत नहीं कछु वित्त, तऊ कर जोर दिखाये।
कर कर चाव करोर, मोरही दौरत आये॥
सुनि आस! प्यास तेरी प्रबल, तू अति अद्भुत गति रहत।
इहि भाँति नचायो मोहि, अब और कहा करिबो चहत?॥६॥

6, I tolerated the jokes of evil-minded persons some how or other in my efforts to please them and while trying to stop my tears, I smiled at heart with an extremely desolate heart and even clasped my hands in feigned satisfaction before these sneering per-

sons while trying hard to control the indignation of my heart. Wilt thou, O delusive Hope, make me dance still further ?

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ॥
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥७॥

सूर्यके उदय और अस्तके साथ मनुष्योंकी ज़िन्दगी रोज़ घटती जाती है। समय भागा जाता है, पर कारोबारमें मशगूल रहनेके कारण, वह भागता हुआ नहीं दीखता। लोगोंको पैदा होते, बूढ़े होते, विपत्ति-ग्रसित होते और मरते देखकर भी मनमें भय नहीं होता। इससे मालूम होता है कि, मोहमयी प्रमादरूपी मदिरा (शराब) के नशेमें संसार मतवाला हो रहा है ॥७॥

देखते हैं, रोज़ ही सूर्य्य उदय होते हैं और अस्त होते हैं। रोज़ ही सवेरा होता है और रोज़ ही सन्ध्या होती है। सूर्य्यके उदयास्तके साथ-ही-साथ मनुष्योंकी आयु क्षीण होती जाती है; यानी उम्र घटती जाती है। किसीने क्या ख़ूब कहा है—

सुबह होती है शाम होती है।
योंही उम्र तमाम होती है ॥

और भी खुलासा।

रोज़ सवेरा होता है और साँझ होती है ; इस तरह नित्य हमारी आयु कम होती जा रही है। विचारकर देखने से बड़ा विस्मय होता है कि, दिन और रात कैसी तेज़ीसे होते चले जाते हैं। जिनको कोई काम नहीं है अथवा जो दुखिया हैं, उन्हें तो ये बड़े भारी मालूम होते हैं, काटे नहीं कटते—एक-एक क्षण एक-एक वर्षके बराबर बीतता है ; पर जो कारोबार या नौकरी-चाकरीमें लगे हुए हैं, उनका समय हवासे भी अधिक तेज़ीसे उड़ा चला जाता है, यानी कारोबार या धन्धेमें लगे रहनेके कारण उन्हें मालूम नहीं होता। वे अपने कामोंमें भूले रहते हैं और मृत्युकाल तेज़ीसे नज़दीक आता जाता है। जिस तरह डाक गाड़ीमें बैठने वाला यात्री अगर अकेला और उदासचित्त रहता है, तो उसके सफ़रका समय बड़ी कठिनाईसे बीतता है ; पर यदि उसके साथ दो-चार मित्र या स्त्री-पुत्र प्रभृति होते हैं और वे उस गाड़ीमें हँसते-बोलते, खाते-पीते या आनन्द करने लगते हैं, आपसमें मनो-रञ्जक कथा-वार्त्ता करते हैं, तो वह लोग तो आनन्दमें मग्न रहते हैं, और गाड़ी अपनी पूरी तेज़ीसे चली जाती है, उन्हें यह भी नहीं मालूम होता कि, कितनी राह तय हो गयी। जब सुनते हैं कि, देहली आ गयी, तब उन्हें विस्मयसा होता है ; इसी तरह कारोबारमें लगे हुए लोगोंको मालूम नहीं होता और समय हवासे भी अधिक तेज़ीसे उडा चला जाता है और अन्तमें उनका अन्त करने वाला काल आ जाता है।

मनुष्य नित्य आँखोंसे देखता है कि, आज फलाँ मनुष्य चल बसा ; आज अमुक आदमी जो जवानीमें ऐश आराम करता था, घोड़े गाड़ियों पर चढ कर चलता था, बूढ़ा हो गया है ; उसकी जवानी, उसकी सुन्दरता न जाने कहाँ विलीन हो गयी है। अमुक आदमी जो करोड़पति था, जिसके यहाँ सैंकड़ों दास-दासी थे, जिसके सामने हीरे पन्ने और सोने चाँदीके ढेर लगे रहते थे,स्वयम् भिखारी हो गया है ; राजाने उसे जेलमें बन्द कर दिया है और उसके स्त्री-पुत्र उसकी ख़बर भी नहीं लेते। नित्य मरण, जीवन, बुढ़ापा और :विपत्ति देख कर भी मनुष्यके मनमें भय नहीं होता। वह दूसरेको बूढ़ा हुआ देखता है, पर आप यही समझता है कि, मैं तो सदा जवान बना रहूँगा। अपने मित्र और नातेदारों को सर्व्वस्व छोड़कर मरते देखता है, पर आप समझता है कि, वे मर गये तो मर गये, मैं न मरूंगा। दूसरों पर विपत्ति पड़ी देखता है, पर इतना नहीं समझता कि, मुझ पर भी किसी दिन ऐसी ही विपद् आ सकती है। बहुतोंको श्मशान पर जाकर वैराग्य होता है, पर वह क्षण-भर ही टिकता है। स्नान करके घर आते ही याद भूलने लगती है और मनुष्य अपने धन्धोंमें लगकर तो बिल्कुल ही भूल जाता है। मनुष्य इतनी ग़फ़लत क्यों करता है ? इस ग़फ़लत और बेहोशी का कारण मोहमयी मदिरा है, जिसे पीकर संसार मतवाला हो रहा है ; क्योंकि मनुष्यको औरोंको बूढ़े होते और मरते देखकर भी चेत नहीं होता। इतना ही नहीं, अपनी कायामें रोग

और बुढ़ापा प्रभृति देखकर भी उसे जीने और सुख भोगनेकी आशा बनी रहती है। वह उसी आशाके सहारे लटका हुआ अपना जीवन नष्ट करता है और उधर काल अपनी कतरनीसे उसकी जीवन-डोरीको काटता रहता है। शंकराचार्य्यजीने "मोहमुद्गर" में कहा है—

दिन यामिन्यौ सायं प्रातः,
शिशिर वसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीड़ति गच्छत्यायुः,
तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥

दिन-रात, सवेरे-साँझ, शीत और वसन्त आते और जाते हैं, काल क्रीड़ा करता है, जीवनकाल चला जाता है; तोभी संसार आशाको नहीं छोड़ता।

शिक्षा—मनुष्यो! मिथ्या आशाके फेरमें दुर्लभ मनुष्य-देहको योंही नष्ट न करो। देखो, सिर पर काल नाच रहा है; एक साँसका भी भरोसा न करो। जो साँस बाहर निकल गया है, वह वापस आवे या न आवे। इसलिये ग़फ़लत और बेहोशी छोड़कर, अपनी कायाको क्षणभंगुर समझकर, दूसरोंकी भलाई करो और अपने सिरजनहारमें मन लगाओ; क्योंकि नाता उसीका सच्चा है; और सब नाते झूठे हैं। कहा है:—

माया सगी न मन सगो, सगो न यह संसार।
परशुराम या जीवको, सगो सो सिरजनहार॥

छप्पय ।

उदै अस्त रवि होत, आयुको छीन करत नित ।
गृह-धन्धे के माहिं, समय बीतत अजान चित ।
आँखिन देखत, जन्म जरा अरु विपति मरण नित ।
तऊ डरत नहिं नैक, शंकहु नाहिं करत चित ।
जग जीव मोह-मदिरा पिये, छाके फिरत प्रमादमें ।
गिर परत उठत फिर फिर गिरत, विषय-वासना स्वादमें ॥७॥

7. Along with the rising and setting of the sun, one's life is being daily exhausted. The Flight of Time is not perceived owing to the heavy transaction of business absorbing all attention. O even the phenomena of birth, old age, distress and death do not strike terror into heart of man. It seems the head of the world has been turned by drinking the intoxicating wine of carelessness.

दीना दीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्टजीर्णाम्बरा
क्रोशद्भिः क्षुधितैर्नरैर्न विधुरा दृश्येत चेद्गेहिनी ॥
याञ्चाभंगभयेन गद्गद्गलत्रुटद्विलीनाक्षरं
को देहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी जनः ॥८॥

स्त्रीके फटे हुए कपड़ोंको दीनातिदीन बालक खींचते हैं, घरके और मनुष्य भूखके मारे उसके सामने रोते हैं—इससे स्त्री अतीव दुःखित है । ऐसी दुःखिनी स्त्री यदि घरमें न होती, तो कौन धीर

रोटी के टुकड़ोंके लिये बच्चे स्त्रीका कपड़ा खींच रहे हैं। इस अवस्थाको देखकर पुरुषके दिलमें कैसी वेदना हो रही है! संसार में स्त्री ही सब दुःखोंकी कारण है। पृ० २४

पुरुष, जिसका गला माँगनेके अपमान और इनकारीके भयसे रुका आता है, अस्पष्ट भाषा या टूटे-फूटे शब्दोंमें, गिड़-गिड़ाकर "कुछ दीजिये" इन शब्दोंको, अपने पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिये, कहता ? ॥८॥

यदि किसीके घरमें ऐसी दुखिया स्त्री न हो, जिसके फटे हुए कपड़ोंको दीनातिदीन बच्चे खींच रहे हों और जो घरके दूसरे मनुष्योंके अन्नके लिये रोनेसे दुःखित हो ; तो कौन धीर पुरुष है, जो अपना पेट भरनेके लिये, याचना-भङ्ग होनेके भयसे, टूटे-फूटे शब्दोंमें गिड़-गिड़ाकर "दीजिये" शब्द कहे ?

मतलब यह है, कि स्त्रीके कारणसे ही पुरुषको तरह-तरहके कष्ट उठाने और अपमान सहने पड़ते हैं ; इस लिये स्त्री-पुत्र प्रभृति दुःखके कारण हैं। जब दरिद्रतामें खानेको अन्न नही होता, बालक माँके कपड़े पकड़-पकड़कर खींचते और रोटी माँगते हैं, तब वह बेचारी एकदमसे दुःखित हो जाती है। उसके मलिन चेहरेको देखकर पुरुष, अपने मानापमानका ख़याल छोड़कर, भीख तक माँगने पर उतारू हो जाता है। उस समय, इस डरसे कि कहीं मुझे कोई भिक्षा देनेसे नाहीं न करदे, पुरुषका गला घुटता है ; पर बेचारा लड़खड़ाती ज़बानसे "कुछ मुझे दीजिये" शब्द कहता ही है। यदि स्त्री न होती, तो कौन पुरुष अपने पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिये ऐसा करता ?

संसारमें परसे माँगनेके समान मनुष्यका मान नाश करानेवाली दूसरी बात नहीं है। माँगना और मरना दोनों समान हैं। किसी-किसीका तो यह मत है कि, माँगनेसे मरना भला। याचना करनेसे त्रिलोकीनाथ भगवान्‌को भी छोटा होना पड़ा, तब औरोंकी कौन बात है? इसीलिये तुलसीदासजीने कहा है—

तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरण करो॥

हाथके ऊपर हाथ करो, पर हाथके नीचे हाथ न करो, जिस दिन हाथके नीचे हाथ करो, उस दिन मरण करो; यानी दूसरोंको दो, पर दूसरोंके आगे हाथ न फैलाओ। जिस दिन दूसरोंके आगे हाथ फैलानेको नौबत आवे, उस दिन मरण हो जाय तो भला।

दरिद्रतामें माँगनेकी बात कण्ठ तक आती है; फिर बड़ी-बड़ी तकलीफोंसे किसी तरह ज़बान तक आती है; पर ज़बान पर ताले लग जाते हैं; अतः वहाँ से आगे नहीं निकलती। प्राणोंकी बाज़ी लगाने पर भी, महत् पुरुषोंकी ज़बान से "कुछ दो" ये शब्द नहीं निकलते; पर स्त्रीके लिये बड़े-बड़ोंको भी नीचा देखना ही पड़ता है। अगर स्त्री न होती, तो महत् पुरुष अपने पापी पेटके लिये कभी किसीसे याचना न करते; अतः स्त्री ही सब दुःखोंकी मूल है। इस स्त्रीके लिये

पुरुष क्या-क्या कष्ट नहीं भोगता ? स्त्री-पुत्रोंके पालन-पोषण की चिन्तामें उसकी सारी आयु बीत जाती है ; पर परमात्माके भजनमें उसका मन नहीं लगता ! मन तो तब लगे, जबकि वह शुद्ध हो। उसे तो हरदम नोन-तेल लकड़ी और आटे दालकी चिन्ता लगी रहती है। ईश्वरमें मन न लगने और शेष दिन आ जानेसे, उसे फिर जन्म-मरणके झञ्झटोंमें फँसना होता है। अतः जो लोग संसारमें सुख-शान्तिसे जीवन बिताना और मरने पर फिर संसारमें न आना चाहें, वे स्त्री रूपी माया की क़ैदमें न पड़ें। यह स्त्री-माया ही संसार-वृक्षका बीज है। शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध उसके पत्ते ; काम क्रोधादि उसकी डालियाँ और पुत्र-कन्या प्रभृति उसके फल हैं। तृष्णारूपी जलसे यह संसार-वृक्ष बढ़ता है। स्पष्ट है कि, संसार-बन्धनका कारण नारी ही है। जिसने नारीसे नाता नहीं जोड़ा अथवा जिसने स्त्रीको त्याग दिया, वह सच्चा संसारत्यागी है। उसे दुःख कहाँ ? वह निश्चय ही मोक्ष पावेगा। पर जो इस पिशाचीके फन्देमें फँस गया, उसे सुख कहाँ ? वह न इस जन्ममें सुख पा सकता है और न पर जन्ममें ही। संसारबन्धनसे मुक्त होनेमें "कनक और कामिनी" ये दो ही बाधक हैं। कहा है :—

> चलूँ-चलूँ सब कोई कहै, पहुँचे विरला कोय।
> एक कनक और कामिनी, दुर्लभ घाटी दोय॥

एक कनक और कामिनी, ये लम्बी तरवारि।
चाले थे हरिमिलन को, बिचही लीने मारि॥
नारि नसावै तीन सुख, जेहि नर पासे होय।
भक्ति-मुक्ति अरु ज्ञानमें, पैठ सके ना कोय॥

एक बार व्यासजीने शुकदेवजीसे शादी करनेको कहा। व्यासजीने समझानेमें घाटा न रखा, पर शुकदेवजीने एक न मानी। उन्होंने कहा—"पिता जी! लोह और काठकी बेड़ियोंसे चाहे कभी छुटकारा हो जाय ; पर स्त्री-पुत्र प्रभृतिकी मोहरूपी बेड़ियोंसे पुरुषका पीछा नहीं छूट सकता। हे पिता, गृहस्थाश्रम जेलख़ाना है; इसमें ज़रा भी सुख नहीं। स्त्रीके लिये पुरुषको संसारमें नीचे-से-नीचे काम करने पड़ते हैं। जिनके मुँह देखनेसे पाप लगता है, उनकी ख़ुशामदें करनी पड़ती हैं; इसवास्ते मैं स्त्रीके बन्धनमें नहीं पड़ना चाहता।"

छप्पय।

फट्यो पुरानो चीर, ताहि खैंचत अरु फारत।
छोटे-छोटे बाल, दुःख-ही-दुःख पुकारत।
घरमाहीं नहिं अन्न, नारिहू निर्दय याते।
भई महा जड़रूप, करत मुखसों नहिं बातें।

यह दशा देखि अखरत्त चित, जीव थरथरत रुकत मुख ।
अपने मुजरे या उदरहित, "देह", कहै को सतपुरुष ?॥८॥

8. If one had not to see the distressed face of a housewife, wearing worn out clothes, the skirts of which are continually being drawn by miserable looking children and who has to feel the agony of listening to the cries of hunger-stricken members of her family, who having a sense of self-respect would utter, for the satisfaction of his own hunger, the word "Give" spoken in a faltering tone, owing to his throat being choked by the fullness of his heart, in fear of his appeal for charity being refused.

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः ॥
शनैर्यष्ट्योत्थानं घनतिमिररुद्धे च नयने
अहो धृष्टः कायस्तदपि मरणापायचकितः ॥९॥

बुढ़ापेके मारे भोग भोगनेकी इच्छा नहीं रही ; मान भी घट गया ; हमारी बराबर वाले चल बसे ; जो घनिष्ट मित्र रह गये हैं, वे भी निकम्मे या हम जैसे हो गये हैं। अब हम बिना लकड़ीके उठ भी नहीं सकते और आँखोंमें अँधेरी छा गई है। इतना सब होनेपर भी, हमारी काया कैसी बेहया है, जो अपने मरनेकी बात सुनकर चौंक उठती है ! ॥९॥

खुलासा यह है, कि हमारी जवानी चली गयी है ; वह

जोशख़रोश और चटक-मटक अब नहीं रही है; बुढ़ापेका दौरदौरा हो गया है; गालोंमें खड्डे हो गये हैं; बदनपर झुरियाँ पड़ गयी हैं; सिरके बाल सफेद हो गये हैं; दाँतोंने जवाब दे दिया है;—यह तो हमारी दशा हो गयी है। लोगोंमें जो हमारा आदरमान था, अब वह भी घट रहा है। अब लोग हमें निकम्मा बूढ़ा समझकर घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। हमारी उम्रके लोग हमारे देखते-देखते चल बसे। जो रह गये हैं, वे भी हम जैसे निकम्मे हैं। अब हम ऐसे कमज़ोर हो गये हैं, कि बिना लकड़ी टेके चल भी नहीं सकते। आँखोंसे सूझता नहीं। इतने पर भी, हमारी काया मरनेके नामसे काँप उठती है! जीवनके मोहकी अजब हालत है!!

जगत्की विचित्र गति है! इस जीवनमें ज़रा भी सुख नहीं है। मनुष्यके मित्र और नातेदार मर जाते हैं, आप निकम्मा हो जाता है, आँख-कान प्रभृति इन्द्रियाँ बेकाम हो जाती हैं, आँखोंसे सूझता नहीं और कानोंसे सुनाई नहीं देता, घर-बाहरके लोग अनादर करते हैं, बुढ़ापेके मारे चला-फिरा नहीं जाता, खानेको भी कठिनाईसे मिलता है; तोभी मनुष्य मरना नहीं चाहता, बल्कि मरनेकी बात सुनकर चौंक उठता है। इसे मोह न कहें तो क्या कहें?

लकड़हारा और मौत।

एक वृद्ध अतीव निर्धन था। बेटे-पोते सभी मर गये थे।

एक मात्र बुढ़िया रह गयी थी। बूढ़ेके हाथ-पैरोंने जवाब दे दिया था। आँखोंसे दीखता न था। फिर भी ; अपने और बूढ़ी के पेटके लिये, वह जङ्गलसे लकड़ी काटकर लाता और बेचकर गुज़ारा करता था। एक दिन उसने जीवनसे निहायत दुःखी होकर मौतको पुकारा। उसके पुकारते ही मौत मनुष्य-रूप में उसके सामने आ खड़ी हुई। बूढ़ेने पूछा—"तुम कौन हो ?" उसने कहा—"मैं मृत्यु हूँ, तुम्हें लेने आई हूँ।" मौतका नाम सुनते ही लकड़हारा चौंक उठा और कहने लगा—"मैंने आपको यह भारी उचवानेको बुलाया था।" मौत उसकी भारी उचवा कर चली गयी।

देखिये! बूढ़ा लकड़हारा हर तरह दुःखी था, उसे जीवन में ज़रा भी सुख न था ; फिर भी वह मरना न चाहता था ; बल्कि मौत को देखते ही चौंक पड़ा था। यही गति संसार की है।

एक दुःखित बूढ़ा सेठ।

एक वैश्यने उम्र-भर मर-पचकर खूब धन जमा किया। बुढ़ापेमें पुत्रोंने सारे धन पर क़ब्ज़ा कर, बूढ़ेको पौलीमें एक टूटी सी खाट और फटीसी गुदड़ी पर डाल दिया और कुत्ता मारनेके लिये हाथमें लकड़ी दे दी। सुबह-शमम घरका कोई आदमी बचा-खुचा बासी-कूसी उसे खानेको दे जाता। सेठ बड़े दुःखसे अपनी ज़िन्दगी पार करता था। पुत्र-बधूएँ दिन-भर

कहा करती थीं—"यह मर नहीं जाते। सबको मौत आती है, पर इनको मौत नहीं। दिन-भर पौलीमें थूक-थूककर मैला करते हैं।" एक दिन एक पोता उन्हें पीट रहा था। इतनेमें नारदजी आ निकले। उन्होंने सारा हाल देख कर कहा—"सेठजी! आप बड़े दुःखी हैं। स्वर्गमें कुछ आदमियों की ज़रूरत है। अगर तुम चलो तो हम ले चलें।" सुनतेही सेठ ने कहा—"जारे वैराग्नीड़ा! मेरे बेटे-पोते मुझे मारते हैं चाहे गाली देते हैं तुझे क्या? तू क्या हमारा पंच है? मैं इन्हींमें सुखी हूँ। मुझे स्वर्गकी ज़रूरत नहीं।" सेठकी बातें सुनते ही नारदजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। कहने लगे—"ओह! संसार सचमुच ही मोह-पाशमें फँसा है। मोहकी मदिराके मारे इसे होश नहीं। मनुष्यने क़ब्रमें पैर लटका रक्खे हैं; फिर भी विषयोंमें ही उसका मन लगा है!" किसीने ठीक ही कहा है :—

गतं तत्तारुण्यं तरुणिहृदयानन्दजनकं,
विशीर्णा दन्तालिर्निजगतिरहो यष्टिशरणं।
जड़ीभूता दृष्टिः श्रवणरहितं कर्णयुगलं,
मनोमे निर्लज्जं तदपि विषयेभ्यःस्पृहयति ॥

तरुणियोंके हृदयमें आनन्द पैदा करनवाली जवानी चली गई है, दन्तपंक्ति गिर गयी है, लकड़ीका सहारा लेकर चलता हूँ, नेत्र ज्योति

मारी गयी है, दोनों कानोंसे सुनाई नहीं देता, तोभी मेरा बेहया मन विषयोंको चाहता है ।

छप्पय ।

गयी भोगकी चाह, गयो गौरव गुमान सब ।
मित्र गये सुरलोक, अकेले आप रहे अब ।
उठत सु लकड़ी टेक, तिमिर आँखन में छायो ।
शब्द सुनत नहिं कान, बचन बोलत बहकायो ।
यह दशा वृद्धतनकी, तऊ चकित होत मरिबौ सुनत ।
देखो विचित्र गति जगतकी, दुखहूँको सुखसों लुनत ॥९॥

9, Along with the approach of old age the power for the enjoyment of sensual pleasures has vanished and the great respect and honour paid by the people have also declined, Our equals in age have already died. Our surviving friends are not so better off in the world as to be of any use to us. Owing to physical weakness we can only rise and that slowly with the help of a stick. Our eyes has become dim with ever-increasing darkness. How shameless should our body be to think that notwithstanding all these disabilities it still fears to meet death ?

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रामरुत्कल्पितं
व्यालानां पशवस्तृणांकुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः ॥
संसारार्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां
यामन्वेषयतां प्रयांति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः ॥१०॥

विधाताने हिंसा-रहित और बिना उद्योगके मिलनेवाली हवाका भोजन साँपोंकी जीविका बनाई, पशुओंको घास खाना और ज़मीन पर सोना बताया ; किन्तु जो मनुष्य अपनी बुद्धिके बलसे भव-सागरके पार हो सकते हैं, उनकी जीविका ऐसी बनाई, कि जिसकी खोजमें उनके सारे गुणोंकी समाप्ति हो जाय, पर वह न मिले ॥ १० ॥

विधाता या रचयिताने साँपोंके लिये तो हवाका भोजन बता दिया है, जिसके हासिल करनेमें किसी प्रकारकी हिंसा भी नहीं करनी पड़ती और वह बिना किसी प्रकारकी चेष्टा या उद्योगके उन्हें अपने वासस्थानोंमें ही मिल सकता है। जानवरोंके लिये घास चरनेको और ज़मीन सोनेको बतादी, इससे उनको भी अपने खानेके लिये किसी प्रकारकी विशेष चेष्टा नहीं करनी पड़ती, वे जङ्गलमें उगी-उगाई घास तैयार पाते हैं और इच्छा करते ही पेट भर लेते हैं। उन्हें सोनेके लिये पलँगों और गद्दे-तकियोंकी फिक्र नहीं करनी पड़ती, ज़मीन पर ही जहाँ जी चाहता है पड़ रहते हैं। सर्प और पशुओंके साथ भगवान्ने पक्षपात किया, उन्हें बेफिक्रीकी ज़िन्दगी भोगनेके उपाय बता दिये, किन्तु मनुष्योंके साथ ऐसा नहीं किया ! उन बेचारोंको बुद्धि तो ऐसी दी, कि जिससे वे संसार-सागरसे पार हो सकें अथवा दुर्लभ मोक्षपदको प्राप्त कर सकें ; पर उन्हें जीविका ऐसी बताई, कि जिसको

खोजमें उनकी सारी कोशिशें बेकार हो जायँ, पर जीविकाका ठिकाना न हो। यह क्या कुछ कम दुःखकी बात है? यदि विधाता मनुष्योंको भी साँपों और पशुओंकी सी ही जीविका बताता, तो कैसा अच्छा होता? मनुष्य, जीविकाकी फ़िक्र न होनेसे, सहजमें ही अपनी बुद्धिके ज़ोरसे मोक्ष पा जाते।

उस्ताद ज़ौक़ भी कुछ इसी तरहकी शिकायत करते हैं,—

बनाया ज़ौक़ जो इन्साँ को उसने ज़ुज़्व ज़ईफ़।
तो उस ज़ईफ़से कुल काम दो जहाँके लिए॥

ऐ ज़ौक़! ईश्वरको देखो, कि उसने मनुष्यको कितना कमज़ोर बनाया, पर काम उससे दोनों लोकोंके लिये। उसे इस लोक और परलोक दोनोंकी फ़िक्र लगादी।

किसीने ठीक ही कहा है:—

घृतलवणतैलतण्डुल शाकेन्धनचिन्तयाऽनुदिनम्।
विपुल मतेरपि पुंसा नश्यति धीर्मन्दविभवत्वात्॥

घी, नोन, तेल, चाँवल, साग और ईंधनकी चिन्तामें बड़े-बड़े मतिमानोंकी उम्र भी पूरी हो जाती है; पर इस चिन्ता का ओर-छोर नहीं आता। इसीसे मनुष्यको ईश्वर-भजन या परमात्माकी भक्ति-उपासनाको समय नहीं मिलता। अगर मनुष्य इतनी आपदाओंके होते हुए भी परलोक बनाना चाहे, तो उसे चाहिये कि, अपनी ज़िन्दगीकी ज़रूरियातोंको कम करे,

क्योंकि जिसकी आवश्यकतायें जितनी ही कम हैं, वह उतनाही सुखी है। इसीलिये महात्मा लोग महलोंमें न रहकर वृक्षोंके नीचे उम्र काट देते हैं। बनमें जो फल-फूल मिलते हैं, उन्हें खाकर और झरनोंका शीतल जल पीकर पेट भर लेते हैं। आवश्यकताओंको कम करना ही सुख-शान्तिका सच्चा उपाय है।

छप्पय ।

बिन उद्यम बिन पाप, पवन सर्पनको दीन्हीं ।
तैसेही सब ठौर, घास पशुवनको कीन्हीं ।
जिनकी निर्मल बुद्धि, तरन भवसागर समरथ ।
तिनकी दूवर वृत्ति, हरत गुण ज्ञान ग्रन्थ गथ ।
विधि ! अविधि करी तें अति अधिक, यातें नर पर घर फिरत ।
निशि-दिवस पचत तनमन नचत, लचत रचत उरझत गिरत ॥१०॥

10. Tbe Creator has designed the harmless and easily obtainable air to be the food of serpents. The quadrupeds have been made to eat the green grass and to sleep on the flat earth. But the tendency of human beings, who have been endowed with sufficient reason to enable them to attain a life of everlasting bliss, has been created such as to baffle all the faculties of an observer in his attempt to explain its working.

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ॥

नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिंगितं
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥११॥

हमने संसार-बन्धनके काटनेके लिये, यथाविधि, ईश्वरके चरणोंका ध्यान नही किया; हमने स्वर्गके दरवाज़े खुलवाने वाले धर्म का भी सञ्चय नहीं किया; और हमने स्वप्नमें भी स्त्रीके कठोर कुचोंका आलिङ्गन नहीं किया। हम तो अपनी माँके यौवन रूपी बनके काटनेके लिये कुल्हाड़े ही हुए ॥ ११ ॥

हमने लोक-परलोक साधनके लिये, जन्म-मरणका फन्दा काटनेके लिये अथवा परमपदकी प्राप्तिके लिये, शास्त्रोंमें लिखी विधिसे, परमात्माके कमल-चरणोंका ध्यान नहीं किया ; उसकी पूजा-उपासना नहीं की ; सारी उम्र पेटकी चिन्तामें ही बिता दी। हमने पूर्वजन्म वा वर्तमान जन्मके पापोंके समूल नाश करनेके लिये प्रायश्चित्त नहीं किये, न जीवोंको अभय किया, न दानपुण्य किया ; फिर हमारे लिये स्वर्गका द्वार कैसे खुल सकता है ? क्योंकि धर्मका सञ्चय करनेसे ही स्वर्गका द्वार खुलता है। न हमने परमात्माके पदपङ्कजोंका ध्यान किया, न धर्म सञ्चय किया और न स्त्रीके पीनपयोधरोंका स्वप्नमें भी आलिङ्गन किया ! मतलब यह है, न हमने संसारके मिथ्या विषय-सुख ही भोगे और न हमने मोक्ष या स्वर्ग-प्राप्तिके उपाय ही किये। "दुविधामें दोनों गये, माया मिली न राम" अथवा "इधरके रहे न उधरके रहे,

खुदा ही मिला न विसाले सनम।" हमने योंही संसारमें जन्म लेकर अपनी माताकी जवानी और नाशकी! अगर हम जैसे निकम्मे न पैदा होते, तो बेचारीकी जवानीको रेढ़ तो न होती!

छप्पय।

विधि सों पूजे नाहिं, पाँय प्रभुके सुखकारी।
प्रभुको धरो न ध्यान, सकल भव-दुखको हारी।
खोले स्वर्ग-कपाट, धर्महू कर्‌यो न ऐसो।
कामिन-कुचके संग, रंगभर रह्यो न तैसो।
हरि! हाय २ कीन्हौं कहा, पाय पदारथ नर जनम?।
जननी यौवन वन दहन कों, अग्नि रूप मे प्रगट हम।।११।।

11, We did not meditate in an appropriate way upon the essence of Godhead for the termination once for all of our ever recurring births and deaths. Neither did we practise religion which is the surest means for throwing open the door leading to Paradise. Nor did we embrace even in our dreams the pair of fat breasts or seductive niples of a woman. Having done nothing for the present or the next world, we are only like an axe meant to hew down the wood of our mothers' youth.

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः॥

कालो न यातो वयमेव याता-

स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥१२॥

विषयोंको हमने नहीं भोगा, किन्तु विषयोंने हमारा ही भुगतान कर दिया ; हमने तपको नहीं तपा, किन्तु तपने हमें ही तपा डाला ; कालका ख़ात्मा न हुआ, किन्तु हमारा ही ख़ात्मा हो चला । तृष्णाका बुढ़ापा न आया, किन्तु हमारा ही बुढ़ापा आ गया ॥ १२ ॥

हमने बहुत कुछ भोग भोगे, पर भोगोंका अन्त न आया ; हाँ हमारा अन्त आ गया । काल या समयका अन्त न आया, किन्तु हमारा अन्त आ गया—हमारी उम्र पूरी हो चली । हमें जो धर्म-कार्य करने थे, वह हम न कर सके । हमने तप तो नहीं तपा, किन्तु संसारी तापोंने हमारे तईं तपा डाला—संसारके जञ्जालोंमें फँसकर हम ही शोक-तापोंसे तप गये । हमारा अन्त आ पहुँचा, हम निर्बल और वृद्ध हो गये ; पर तृष्णा बूढ़ी और कमज़ोर न हुई—हमें संसारसे विरक्ति न हुई । ऐसी ही बात उस्ताद ज़ौक़ने कही है—

दुनियासे ज़ौक़ ! रिश्तये उल्फ़तको तोड़ दे ।
जिस सरका है यह बाल, उसी सरमें जोड़ दे ॥१॥
पर ज़ौक़ न छोड़ेगा, इस पीरा ज़ालको ।
यह पीरा ज़ाल, गर तुझे चाहे तो छोड़ दे ॥२॥

मतलब यह, कि लोग दुनियाको नहीं छोड़ते, दुनिया ही उन्हें निकम्मा करके छोड़ देती है।

छप्पय।

भोग रहे भरपूर, आयु यह भुगत गई सब।
तप्यो नाहिं तप मूढ़, अवस्था तपत भई अब।
काल न कितहूँ जात, वैस यह चली जात नित।
वृद्ध भई नहिं आस, वृद्ध वय भई छाँड़ हित।
अजहूँ अचेत चित! चेतकर, देह-गेहसों नेह तज।
दुख-दोषहरण मंगलकरन, श्रीहरिहरके चरण भज ॥१२॥

12. We did not exhaust the enjoyments of life, rather we ourselves were exhausted, We did not practise penances, but it was rather undergoing a life of extreme misery. It was not Time that passed, rather it was ourselves that passed away. It is not Avarice that has become monotonous and weak, rather we ourselves have become so.

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषतः
सोढा दुःसहशीतवाततपनक्लेशा न तप्तं तपः ॥
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शंभोः पदं
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैःफलैर्वंचितम् ॥१३॥

क्षमा तो हमने की, परन्तु धर्मके ख़यालसे नहीं की। हमने
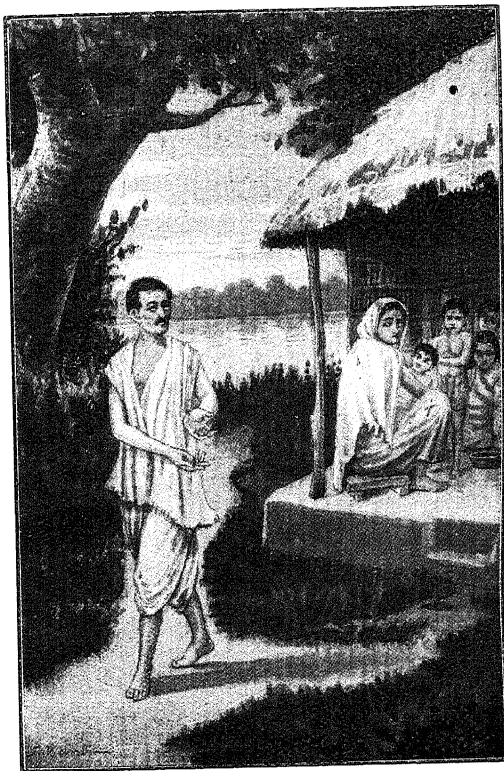
दरिद्रावस्था में वैराग्य ।

आपके घरमें कंगाली और मुहताजी का राज है । आप स्त्री-बच्चोंका पालन कर नहीं सकते । इसलिए स्त्री आपको नफ़रतकी नज़र से देखती है । यह सब देखकर आपके दिलमें वैराग्य पैदा हुआ है । यह नीचे दर्जेका वैराग्य है । पृष्ठ ४०

सुखैश्वर्य में वैराग्य ।

आपका अन्तःकरण शुद्ध होगया है; अतः आप धनैश्वर्य और पुत्रकलत्रादि को त्यागकर वन को जारहे हैं। आप कहते हैं, "अब मुझे विषय सुख अच्छे नहीं लगते। मैं वन में जाकर जगदीश का भजन करूँगा।" यही वैराग्य उत्तम वैराग्य है और ऐसे नररत्न प्रशंसा के पात्र हैं। पृष्ठ ४१

Popular Press, Calcutta.

घरके सुख-चैन तो छोड़े, परन्तु सन्तोषसे नहीं छोड़े। हमने सर्दी-गर्मी और हवाके न सह सकने योग्य दुःख तो सहे; किन्तु हमने ये सब दुःख तपकी ग़रज़से नहीं, किन्तु दरिद्रताके कारण सहे। हम दिन-रात ध्यानमें लगे तो रहे, पर धनके ध्यानमें लगे रहे—हमने प्राणायाम-क्रिया द्वारा शम्भुके चरणोंका ध्यान नहीं किया। हमने काम तो सब मुनियोंकेसे किये, परन्तु उनकी तरह फल हमें नहीं मिले! ॥ १३ ॥

हमने क्षमा तो की, परन्तु दयाधर्म्म-वश नहीं की, हमारी क्षमा असमर्थताके कारणसे हुई; हममें सामर्थ्य नहीं थी, इसीसे हम शान्त हो गये। हमने अच्छा खाना-पीना ऐश-आराम छोड़े, पर मजबूरीसे छोड़े; अपनी भीतरी इच्छासे नहीं छोड़े। हमने उन्हें रोग प्रभृतिके कारण या और किसी घटनाके कारण त्यागा, पर सन्तोषसे नहीं त्यागा। हमने गर्म-सर्द हवाके झोके सहे; हमने सर्दी-गर्मी सही ज़रूर, पर तपकी ग़रज़से नहीं; किन्तु घरमें पैसा न होनेकी वजहसे। हम सोते-जागते आठ पहर चौंसठ घड़ी ध्यान तो करते रहे, पर पैसे या स्त्री-पुत्रोंका अथवा संसारके और झगड़ोंका। हमने भोलानाथके कमल-चरणोंका ध्यान नहीं किया! सारांश यह, हमने मुनियोंकी तरह विषय-सुख भी त्यागे, उनकी तरह सर्दी-गर्मीके दुस्सह कष्ट भी उठाये, उनकी तरह हम ध्यान-मग्न भी रहे—पर वे जिस तरह सामर्थ्य होते भी शान्त होते

हैं—सन्तोषके साथ विषय-सुखोंसे मुँह मोड़ लेते हैं—शिवका ही ध्यान करते हैं, उस तरह हमने नहीं किया ; इसीसे हम उन फलोंसे वञ्चित—महरूम—रहे, जिनको वे लोग प्राप्त करते हैं।

जो लोग शक्ति-सामर्थ्य रहते विषयोंको छोड़ते हैं, वे ही प्रशंसा-भाजन होते हैं। सामर्थ्य न रहने या धातुओंके क्षीण होने पर जो लोग विषयोंको छोड़ते हैं, वे तो मनसे नहीं—लाचारीसे छोड़ते हैं ; इसलिये वे प्रशंसा-भाजन नहीं हो सकते। घर-जञ्जालमें रहकर, सर्दी-गर्मी और शोक-ताप आदि के कष्ट उठाने ही पड़ते हैं ; फिर तप ही क्यों न किया जाय? क्योंकि घर-जञ्जालोंके शोक-तापसे कोई लाभ नहीं, किन्तु तपसे स्वर्ग और मोक्ष-की प्राप्ति हो सकती है। धनका ध्यान करनेसे सच्चा सुख नहीं मिल सकता। धनसे जो सुख मिलता है, वह क्षणस्थायी और झूठा है। इस लिये धन-ध्यान छोड़-कर, आशुतोष भगवान् शिवके चरणोंका ध्यान करना अच्छा ; जिससे सभी मनोरथ पूरे होते हैं और अन्तमें जन्म-मरणके झगड़ोंसे छुटकारा मिलकर परमपद—मोक्ष मिल जाती है। वह बड़े मूर्ख हैं, जो कष्ट तो उठाते हैं, पर वे कष्ट नहीं उठाते, जिनसे उभय लोक साधन हों।

छप्पय।

छमा छमा-बिन कीन, बिना सन्तोष तजे सुख।
सहे सीत तप घाम, बिना तप पाय महा दुख।

धर्‌यो विषैकौ ध्यान, चन्द्रशेखर नहिं ध्यायौ।
तज्यौ सकल संसार, प्यार जब उन बिसरायौ।
मुनि करत काज सोई करे, फल दीसत विपरीत अति।
अब होत कहा चिन्ता किये ? अजहूँ कर हरचरणरति ॥१३॥

13. We forgave, but not for the sake of forgiveness. We renounced the comforts of the home, but not for the sake of renunciation and contentment. We suffered the unbearable rigours of cold, heat and the winds, but it was through adversity that we did so and not for the sake of practising Tapa. We meditated day and night with regulated breath on Mammon and not on God. We practised the very deeds which the sages do, but devoid of the fruits which the latter reap of them.

वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरंकितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥१४॥

चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं, सिरके बाल पककर सफेद हो गये, सारे अंग ढीले हो गये,—पर तृष्णा तो तरुण होती जाती है ! ॥१४॥

बुढ़ापा आ गया है, क्योंकि चेहरेका चमड़ा सुकड़ गया है, झुर्रियाँ पड़ गयीं हैं, रङ्ग-रूप हवा हो गया है, हाथ पैर आदि अङ्ग शिथिल या ढीले हो गये हैं, किसी कामकी सामर्थ्य नहीं रही है। शरीरकी तो यह दशा हो गयी; पर तृष्णाका न तो बुढ़ापा आयो, न बल घटा; वह तो उल्टी तेज़ हो रही है।

हमारे शरीरका बुढ़ापा आ गया, पर तृष्णाकी तो जवानी चढ़ रही है ! महात्मा सुन्दरदासजी कहते हैं—

नैननकी पलही पलमें, छण आधि घरी घरी घटिका जु गई है।
जाम गयो जुग जाम गयो, पुनि साँझ गई तब रात भई है।
आज गई अरु काल गई, परसों तरसों कछु और ठई है।
सुन्दर ऐसे ही आयु गई, तृष्णा दिन ही दिन होत नई है।

आज सारा संसार तृष्णाके फेरमें पड़ा हुआ है। अमीर और ग़रीब सभी इसके बन्धनमें बँधे हैं। ग़रीबीकी अपेक्षा धनियोंको तृष्णा बहुत है। धनी हमेशा निन्न्यानवेँ के फेरमें लगे रहते हैं। ६६ होने पर १०० पूरे करनेकी फिक्र रहती है। हज़ार होनेपर दस हज़ारकी, दस हज़ार होनेपर लाख-की, लाख होनेपर करोड़की और करोड़ होनेपर अरब-खरबकी तृष्णा लगी रहती है। इसी फेरमें मनुष्य रोगी और बूढ़ा हो जाता है, पर तृष्णा न रोगिणी होती है और न बूढ़ी। "सुभाषितावलि"में लिखा है :—

यौवनं जरया ग्रस्तमारोग्यं व्याधिभिर्हतम्।
जीवितम् मृत्युरभ्येति तृष्णैका निरुपद्रवा ॥

जवानी बुढ़ापेसे, आरोग्यता व्याधियोंसे और जीवन मृत्यु से ग्रसित है ; पर तृष्णाको किसी उपद्रवका डर नहीं।
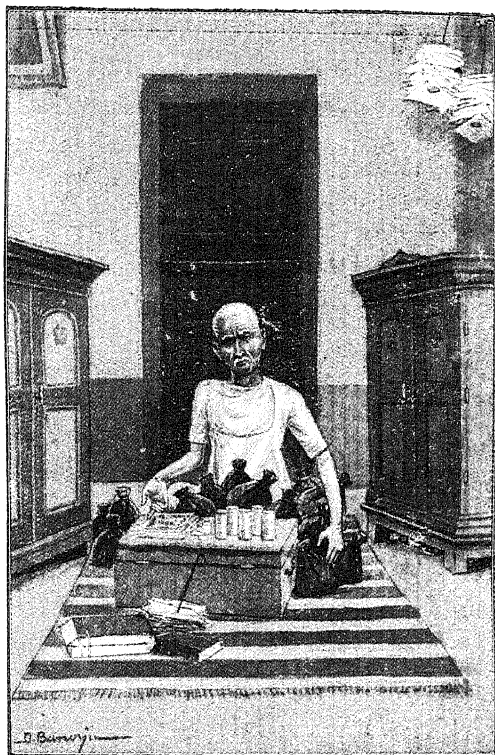
बुढ़ापे में तृष्णा ।

आप बूढ़े हो गये हैं, पर आपकी तृष्णा बूढ़ी नहीं हुई है। आप रात-दिन निन्यानवे के फेर में लगे रहते हैं! पृष्ठ ६३

पेट पसार दियो जितही तित
तैं यह भूख किती इक थापी।
ओर न छोर कहूँ नहिं आवत।
मैं बहु भाँति भली विधि मापी।
देखत देह भये सब जीरन।
तू नित नूतन आहि अद्यापि।
सुन्दर तोहि सदा समुझावत,
हे तृष्णा! अजहूँ नहि धापी॥

और भी :—

जीर्य्यन्ते जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः,
जीर्य्येतेचक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरुणायते॥

जीर्ण होनेसे बाल जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होनेसे दाँत जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होनेसे आँख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं; पर एक तृष्णा तरुण होती जाती है।

सारांश यह कि, मनुष्य नितान्त निकम्मा और जर्ज्जर शरीर होनेपर भी तृष्णाको नहीं त्यागता, यही बड़े आश्चर्य्यकी बात है। शङ्कराचार्य्य महाराजने "मोहमुद्गर" में ठीक ही कहा है :—

अंगं गलितं पलितं मुण्डं
दन्तविहीनम् यातं तुण्डम्।

करधृतकम्पितशोभितदण्डम्।
तदपि न मुञ्चत्याशाभण्डम् ॥

अंग शिथिल हो गये हैं, बुढ़ापेसे सिर सन हो गया है, मुहमें दाँत नहीं रहे हैं, हाथमें ली लकड़ीकी तरह शरीर काँपता है; तोभी मनुष्य आशा रूपी पात्रको नहीं त्यागता!

संसार आशा और तृष्णाके बन्धनमें बँधा है। तृष्णा न होती तो मनुष्यको स्वर्ग या मोक्ष पानेमें कुछ भी दिक्कत न होती; क्योंकि तृष्णाका नाश ही तो मोक्ष या स्वर्ग है। शंकराचार्य्यकृत "प्रश्नोत्तरमाला"में लिखा है :—

बद्धो हि को यो विषयानुरागी।
का वा विमुक्तिर्विषयेविरक्तिः ॥
को वास्ति घोरो नरकस्स्वदेह—
स्तृष्णाक्षयस्स्वर्गपदं किमस्ति ?

बन्धनमें कौन है? विषयानुरागी।
विमुक्ति क्या है? विषयोंका त्याग।
घोर नरक क्या है? अपना शरीर।
स्वर्ग क्या है? तृष्णाका नाश।

और भी किसी ने कहा है :—

कामानां हृदये वासः संसार इति कीर्त्तितः।
तेषां सर्वात्मना नाशो मोक्ष उक्तो मनीषिभिः ॥

हृदयमें जो कामनाओंका निवास है, उसीको "संसार" कहते हैं और उनके सब तरहसे नाश हो जानेको "मोक्ष" कहते हैं।

संसारमें बारम्बार आना और यहाँसे जाना ; यानी जन्म लेना और मरना ये बहुत ही दुःखदायी हैं ; अतः जिन्हें अपने तईं जन्म-मरणसे मुक्त करना हो, वे कभी भूल कर भी तृष्णा-राक्षसीके भुलावेमें न आवें ; क्योंकि इसके चक्रमें पड़नेसे इस लोकमें नीच-से-नीच कर्म्म करने होंगे और इतने पर भी तृष्णा शान्त न होगी और उधर परलोक भी न बनेगा। जो निस्पृह हैं, जिन्हें कामना या तृष्णा नहीं, वे मनुष्यरूपमें ही देवता हैं। मरने पर वे स्वर्ग या मोक्षके अधिकारी होंगे, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।

दोहा।

सेत चिकुर तन दशन बिन, बदन भयो ज्यौं कूप।
गात सबै शिथिलित भये, तृष्णा तरुण स्वरूप ॥१४॥

14. In old age, the face is marked with wrinkles, the head is lined with grey hair and the limbs all grow loose, but Desire alone becomes rejuvenated and predominant.

येनैवाम्बरखण्डेन संवीतो निशि चन्द्रमाः ।
तेनैव च दिवा भानुरहो दौर्गत्यमेतयोः ॥१५॥

आकाशके जिस टुकड़ेको ओढ़कर चन्द्रमा रात बिताता है, उसी को ओढ़कर सूर्य्य दिन बिताता है। इन दोनोंकी कैसी दुर्गति होती है! ॥ १५ ॥

आकाशके जिस हिस्सेको, रातके समय, चन्द्रमा तय करता है, उसीको दिनमें सूर्य्य तय करता है। सूरज और चाँद—ज्योतिष्कोंमें सर्व्वश्रेष्ठ और सबसे बड़े हैं। जब ऐसे-ऐसोंकी ऐसी दुर्गति होती है, कि बेचारोंको रात-दिन इधर-से-उधर और उधर-से-इधर चक्कर लगाने पड़ते हैं और परिणाममें कोई फल भी नहीं मिलता ; तब हमारी आपकी कौन गिन्ती है? जब ये पराधीनताकी बेड़ियोंमें जकड़े हुए हैं, इन्हें ज़रासी भी आज़ादी नहीं है, एक दिन क्या—एक क्षण भी ये अपनी इच्छानुसार आराम नहीं कर सकते, तब इतर छोटे प्राणियोंकी क्या बात है?

शिक्षा—बड़ोंकी दुर्दशा देखकर छोटोंको अपनी विपत्ति पर रोना-कलपना नहीं, बल्कि सन्तोष करना चाहिये। संसारमें कोई भी सुखी नहीं है।

दोहा।

इक अम्बरके टूककों, निशिमें ओढ़त चन्द।
दिनमें ओढ़त ताहि रवि, तू कत करत छन्द? ॥ १५ ॥

15. The Sun has to move during the day through the same parts of the heavens as the Moon does at night. Being the two
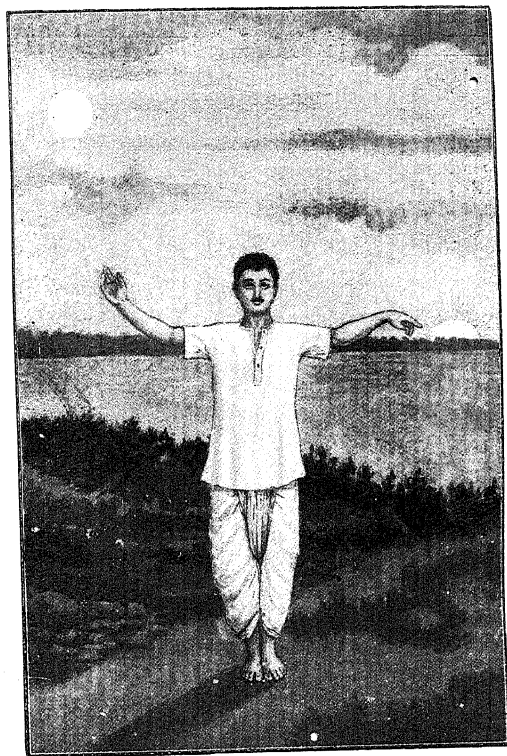
जब ये सूरज और चाँद पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं। इन्हें ज़रा भी आज़ादी और सुख नहीं—तब और प्राणियों की क्या बात है? पृष्ठ ४७

greatest Luminaries, mark how wonderful is their dependent career !
Can a tiny mortal hope to be more free ?

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वाऽपि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून् ॥
व्रजन्तः स्वातंत्र्यादतुलपरितापाय मनसः
स्वयं त्यक्त्वा ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ॥१६॥

विषयोंको हम चाहे जितने दिनोंतक क्यों न भोगें, एक दिन वे निश्चय ही हमसे अलग हो जायेंगे ; तब मनुष्य उन्हें स्वयम् अपनी इच्छासे ही क्यों न छोड़ दे ? इस जुदाईमें क्या फ़र्क़ है ? अगर वह न छोडेगा, तो वे छोड़ देंगे। जब वे स्वयं मनुष्यको छोड़ेंगे, तब उसे बड़ा दुःख और मनःक्लेश होगा। अगर मनुष्य उन्हें स्वयँ छोड़ देगा, तो उसे अनन्त सुख और शान्ति प्राप्त होगी ॥१६॥

जिन विषय-सुखोंको हम चिरकालसे भोगते आ रहे हैं, वे सदा हमारे साथ न रहेंगे ; निश्चय ही वे एक दिन हमारा साथ छोड़ देंगे। इससे, यदि हम ही उन्हें पहलेसे ही छोड़ दें, तो हमें महासुख और शान्ति मिलेगी। यदि हम न छोड़ेंगे और वे हमें छोड़ेंगे, तो हमें महादुःख और मनस्ताप होगा।

जो लोग विषयोंको पहले ही त्याग देते हैं, उन्हें उनके न होनेपर दुःख नहीं होता ; किन्तु जो उन्हें नहीं छोड़ते, उन्हें

उनके न होनेपर महाकष्ट होता है। जो बुद्धिमान पहलेसे ही धन-दौलत स्त्री-पुत्र आदिसे मोह हटा लेते हैं, उन्हें मरते समय कष्ट नहीं होता। जो अपना मन उनमें लगाये रहते हैं, वे मरते समय रोते हैं, पर ज़बान बन्द हो जानेसे अपने मनकी बात जता नहीं सकते। इसलिये जो सुखसे मरना चाहें, उन्हें पहले सेही विषयोंसे मुँह मोड़ लेना चाहिये। इसी तरह जो आज नाना प्रकारके सुख भोग रहा है, यदि कल उसे वे सुख न मिलें, तो वह बडा दुःखी होता है; किन्तु जो विषयोंको भोगते तो हैं, किन्तु उनमें आसक्ति नहीं रखते, उन्हें विषय-सुखोंके न मिलने या उनसे बिछुड़ने पर ज़रा भी कष्ट नहीं होता।

शिक्षा—जो विषय एक दिन तुम्हें निश्चय ही छोड़ देंगे, उन्हें तुम स्वयं ही क्यों न छोड़ दो? तुम्हारे छोड़नेसे तुम्हें अनन्त सुख मिलेगा और उनके छोड़नेसे तुम्हें घोर मनस्ताप वा मनोवेदना होगी।

16. The objects of the sensual pleasure are sure to part from us, even if we enjoy them for a considerable length of time. A man can part with them of his own accord. What is the difference in parting if he does not follow the latter course? They generate great agony and distress in our mind if they themselves leave us; but if we renounce them ourselves, they are sure to give us unbounded peace of mind and happiness,

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा-

परिष्वंगे तुंगे प्रसरतितरां सा परिणतिः ॥

जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपणस्तृषापात्रं
यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः ॥ १७ ॥

जब ज्ञानका उदय होता है, तब शान्तिकी प्राप्ति होती है। शान्तिकी प्राप्तिसे तृष्णा शान्त हो जाती है, किन्तु वही तृष्णा विषयोंके संसर्गसे बेहद बढ़ती है। मतलब यह है, कि विषयोंसे तृष्णा कभी शान्त नहीं हो सकती। सुन्दरीके कठोर कुचोंपर हाथ लगानेसे काम-मद बढ़ता है, घटता नहीं। जराजीर्ण ऐश्वर्य्य को देवराज इन्द्र भी नहीं त्याग सकते ॥ १७ ॥

ज्ञानसेही तृष्णाका नाश और शान्ति की प्राप्ति होती है। विषयोंके भोगनेसे तृष्णा घटती नहीं, उल्टी बढ़ती है। जो तृष्णाको त्यागते हैं, तृष्णासे नफ़रत करते हैं, उसे पास नहीं आने देते, उनसे तृष्णा भी दूर भागती है। हम जब किसी स्त्रीको प्यार करते हैं, उसका आदर-मान करते हैं, तब वह हमारे चेंटती है; किन्तु जब हम उससे मुँह फेर लेते हैं, उसे मुँह नहीं लगाते, उसे प्यार नहीं करते, उसे नफ़रत की नज़र से देखते हैं; तब वह भी हमसे अलग रहती है,—हमारे पास आनेकी उसे हिम्मत नहीं होती। इसलिये जो तृष्णा से पीछा छुड़ाना चाहें, उन्हें विषयोंसे मुँह मोड़ लेना चाहिये। देखिये, यद्यपि स्वर्गके राज्यको भोगते लाखों-करोड़ों वर्ष बीत गये, तोभी इन्द्र उस स्वर्ग-राज्यको छोड़ नहीं सकता। जब इन्द्रकी भी तृष्णा लाखों-करोड़ों वर्ष राज्य भोगनेसे शान्त

नहीं होती, तब मनुष्य बेचारे किस खेतकी मूली हैं? तृष्णा पुरानी होनेसे बढ़ती है, घटती नहीं। हम ज्यों-ज्यों विषय भोगते हैं, त्यों-त्यों वे पुराने होते हैं और हमारी तृष्णा बढ़ती है। पुराने होने पर, उन्हें छोड़नेमें हमें बड़ा कष्ट होता है।

शिक्षा—तृष्णाको शीघ्र छोड़ो। पुरानी होनेसे वह पापीयसी औरभी बलवती हो जायगी; फिर उसे त्यागना आपकी शक्तिके बाहर हो जायगा। उसके नाशके लिये "ज्ञान" का पैदा होना ज़रूरी है; क्योंकि उसका सच्चा मार "ज्ञान" ही है।

छप्पय।

तृष्णा-मूल नसाय, होय जब ज्ञान उदय मन।
भये विषयमें लीन, बढ़ै दिन-पर-दिन चौगुन।
जैसे मुग्धा नार-कठिन कुच, हाथ लगावत।
बढ़त काममद अधिक, अधिक तनमें सरसावत।
जराजीर्ण ऐश्वर्यको, त्यागत लागत दुःख अति।
तोहि तजिवेको असमर्थ यह, वासव जो है वायुपति॥१७॥

17 Desire cools down when peace of mind is attained through the advent of knowledge. The same expands to an unlimited extent when its connection is established wlth its highest objects. Hence Desire can never be satisfied by enjoyment or Desire is only insatiable in its fulfilment. The proof of this lies in the person of Indra, the great king of the gods, who is totally unable to give up his king-

मरणासन्न कुत्ते को कुतिया के पीछे दौड़ते हुए देखकर कहना पड़ता है, कि कामदेव मरे हुए को भी मारता है!
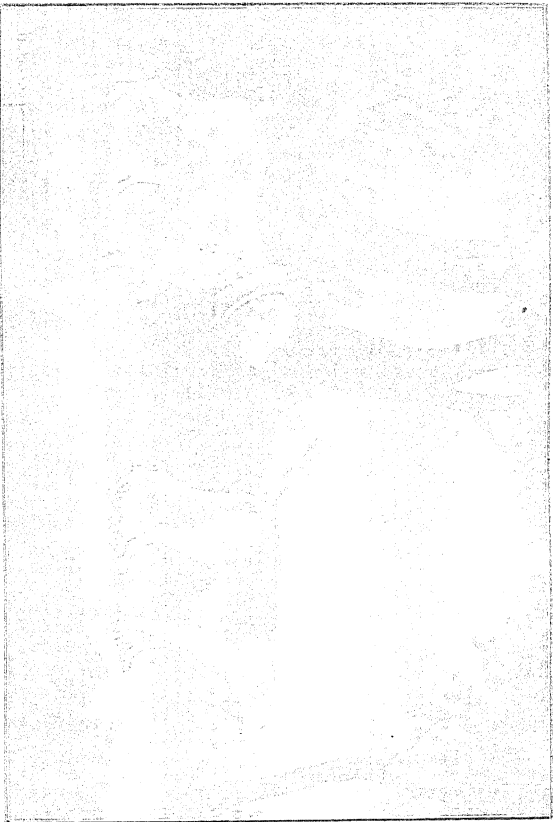
dom of Swarga, although it is worn out by long, long ages having passed over it.

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो

व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः ॥

क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरजकपालार्पितगलः

शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हन्त्येव मदनः ॥१८॥

दुबला काना और लँगड़ा कुत्ता, जिसके कान और पूँछ नहीं हैं, जिसके ज़ख्मोंसे राध बह रही है, जिसके शरीरमें कीड़े किल-बिला रहे रहैं, जो भूखा और बूढ़ा है, जिसके गलेमें हाँडीका घेरा पड़ा है—कुतियाके पीछे-पीछे दौड़ता है। कामदेव मरे हुएको भी मारता है ॥१८॥

जिस कुत्तेकी ऐसी बुरी हालत है, वह कुत्ता भी मैथुन करनेके लिये कुतियाके पीछे-पीछे दौड़ता है; तब मोटे-ताज़े मावा-मलाई और मिष्टान्न खाने वाले अपनी कामवासनाको कैसे रोक सकते हैं? इसीसे बचनेके लिये, ज्ञानी लोग अपनी देहको एकदम गला देते हैं, तरह-तरहके व्रत और उपवास करते हैं, धूनी तपते हैं और शीत-घाम सहते हैं। कामदेव बड़ा बलवान् है। जो उसके क़ाबूमें नहीं आते, वे सबसे बलवान् और सच्चे योद्धा हैं। वे भीष्म और अर्जुन हैं।

18. The lean, blind and lame dog, without either ears or tail, with blood oozing out of its wounds, hundreds and thousands of

worms sticking to his body, hungry and old, with the upper portion of a broken earthen vessel hanging round his neck, is pursuing the bitch. How cruel is Cupid to shoot his arrows at those who are already dead.

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम् ॥
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमलीनकन्था
हा हा तथाऽपि विषया न परित्यजन्ति ॥१६॥

वह मनुष्य जो भीख माँगकर दिनमें एक समय ही नीरस अलौना अन्न खाता है, धरती पर सो रहता है, जिसका शरीर ही उसका कुटुम्बी है, जो सौ थेगलियोंकी गुदड़ी ओढ़ता है, आश्चर्य्य है कि, ऐसे मनुष्यको भी विषय नहीं छोड़ते !॥१६॥

जो दिन-भरमें एक बार अलौना—फीका अन्न खाते हैं और वह भी माँग-ताँग कर ; जिनके पास सोनेके लिये पलँग और गद्दे-तकिये नहीं, बेचारे पेड़ोंके नीचे या खुले मैदानमें घास-पात पर सो रहते हैं ; जिनके नाते-रिश्तेदार कोई नहीं, उनका अपना शरीर ही उनका नातेदार है ; जिनके पास पहनने को कपड़े नहीं, बेचारे ऐसी गुदड़ी ओढ़ते हैं, जिसमें सैकड़ों चीथड़े लटकते हैं—ऐसे लोगोंका भी विषय पीछा नहीं छोड़ते, तब धनियोंका पीछा तो वे कैसे छोड़ने लगे, जहाँ उन्हें सब तरहके ऐशो-आराम मिलते हैं ? कहा है :—

स्त्रीका दर्शन ही ऐसा है कि जिससे देवता भी धैर्य्य त्याग देते हैं। ब्रह्माजी शान्तनु ऋषि की स्त्री अमोघा का रूप देखकर मुग्ध होगये। पृष्ठ ५४

Popular Press, Calcutta.
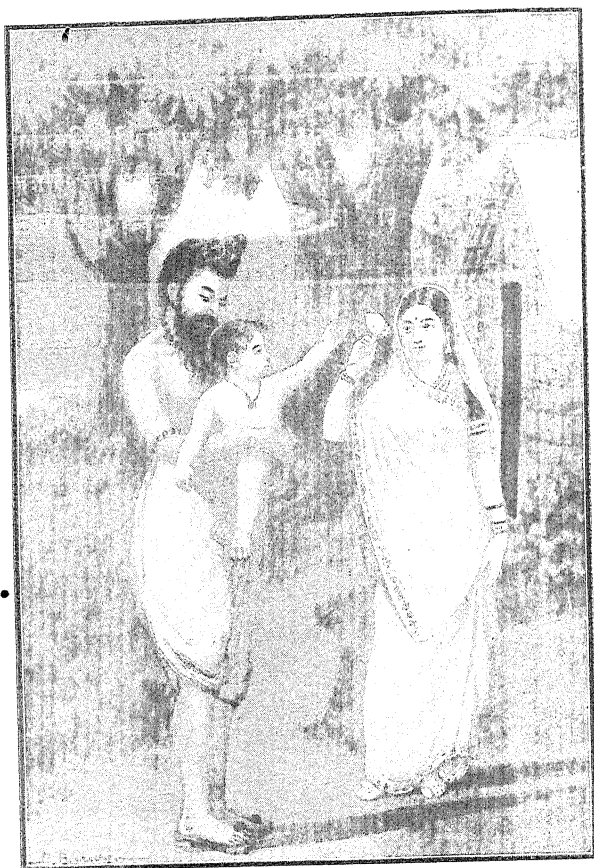
महामुनि विश्वामित्र जैसे तपस्वीको मेनकाने गृहस्थी के जंजाल में जकड़ दिया, तब मोहिनियों से और कौन बच सकता है ? देखिये, आप कन्या को गोद में लिये खड़े हैं।

पृ० ५४

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहंगताः ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत् सागरे ॥

विश्वामित्र और पराशर प्रभृति ऋषि भी,—जो हवा, जल और पत्ते खाते थे—स्त्रीका कमल-मुख देखकर मोहित हो गये ; फिर शालिचाँवल, दही और घी मिला भोजन जो खाते हैं, उनकी इन्द्रियाँ यदि उनके वशमें हो जायँ, तो विन्ध्याचल पर्वत भी समुद्रमें तैरने लगे। मतलब यह है कि, पत्तों और जल पर गुज़र करनेवाले ऋषि भी जब स्त्रियों पर मोहित हो गये, तब घी दूध खानेवालोंकी क्या बात है? कामदेवका वश करना बड़ा कठिन है। पराशर ऋषिने दिनकी रात कर दी और नदीको रेतमें परिणत कर दिया, पर वे भी कामको वश में न कर सके। इतना ही नहीं; बड़े-बड़े देवता भी कामको वशमें न कर सके। स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश तकको कामने जीत लिया। "आत्मपुराण"में लिखा है :—

कामेन विजितो ब्रह्मा, कामेन विजितो हरिः
कामेन विजितः शम्भुः, शक्रः कामेन निर्जितः ॥

कामदेवने ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्रको जीत लिया।

"पद्मपुराण"में लिखा है,—शान्तनु नामक ऋषिकी स्त्रीका नाम अमोघा था। वह परमा सुन्दरी और पतिव्रता थी। एक

दिन ब्रह्माजी ऋषिसे मिलने गये। ऋषि उस समय कहीं बाहर गये हुए थे। उस पतिव्रताने ब्रह्माजीको आसन बिछा कर बिठाया। ब्रह्माजी उसका रूप देखकर मुग्ध हो गये। उनका वीर्य निकल गया ; अतः वे लज्जित हो उठ गये। इतनेमें ऋषि आ गये। उन्होंने वीर्य पड़ा देख स्त्रीसे पूछा—"यह क्या !" उसने कहा—"स्वामिन्! ब्रह्माजी आये थे।" सुनकर ऋषिने कहा—"स्त्रीका दर्शन ही ऐसा है कि, जिससे देवता भी धैर्य्य त्याग देते हैं।"

एक बार महादेवजी समाधिस्थ थे। वहीं वनमें मनुष्योंकी सुन्दरी और युवती स्त्रियाँ क्रीड़ा कर रही थीं। शिवजीका मन चल गया। उन्होंने अपने तपोबलसे उन्हें आकाशमें ले जाकर उनसे भोग किया। अन्तमें पार्वतीजीने स्त्रियोंको नीचे गिरा दिया और शिवजीको समाधिमें लगाया।

विष्णु भगवान्ने जलन्धर नामक राक्षसकी वृन्दा नामक पतिव्रता स्त्रीसे छलकर भोग किया। उसने उन्हें श्राप दिया।

इन्द्रने गौतम ऋषिकी स्त्री अहिल्यासे छलसे भोग किया और इतनेमें ऋषि आ गये। उन्होंने इन्द्रको देखते ही श्राप दिया। ऋषिके श्रापसे इन्द्रके शरीरमें भग-ही-भग हो गयीं।

एक बूढ़ा तपस्वी किसी मन्दिरमें अकेला रहता था। वह पूरा जितेन्द्रिय था। दैवात् एक युवती उस मन्दिरके सामनेसे निकली। तपस्वी मुग्ध हो गया और उसके पीछे हो लिया। जब वह अपने घर पहुँची, तब ऋषि भी द्वार पर जाकर उससे

वैराग्यशतक
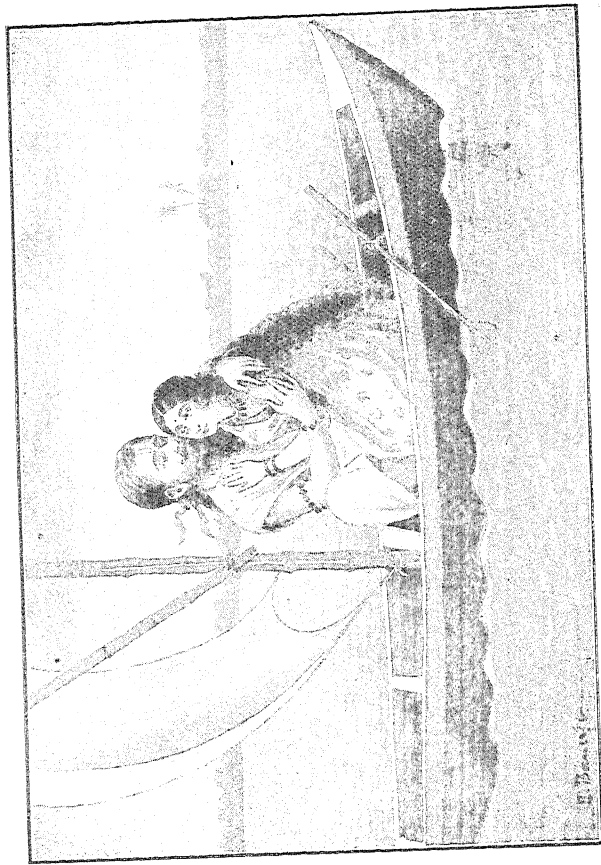
वृक्षके पत्तों और जल पर गुजर करनेवाले, दिन को रात में और नदी को रेतमें परिणत कर सकनेवाले पराशर ऋषि नाविक की कन्या को आलिंगन कर रहे हैं। (पृष्ठ ५४)

प्रार्थना करने लगा। उसने द्वार बन्द करना चाहा और ऋषिने सिर अड़ा कर घुसना चाहा। उसने ज़ोरसे द्वार बन्द करने की चेष्टा की। इससे ऋषिका सिर कट गया और वह वहीं मर गया। ऐसे-ऐसे बूढे और अभ्यासी जितेन्द्रिय पुरुष जब स्त्रियों-को देखते ही पागल हो जाते हैं, तब औरोंका क्या कहना?

यद्यपि कामको क़ाबूमें करना महाकठिन है;
तथापि कामदेव को वशमें करो; क्योंकि स्त्री
संसार-बन्धनकी मूल या जन्म-मरणकी कारण है।

स्त्री भक्ति-मुक्ति और सुख-शान्तिकी नाशक है। जिनके स्त्री है, वे परमेश्वरकी भक्ति कर नहीं सकते, क्योंकि उन्हें जञ्जालोंसे ही फुरसत नहीं मिल सकती। यों तो सभी विषय विषके समान घातक हैं, पर स्त्री सबसे ऊपर है। जहाँ स्त्री है, वहाँ सभी विषय हैं। विषय दुःख और तापके कारण हैं, अतः बुद्धिमानोंको विषयोंसे बचना चाहिये। मोक्ष चाहने वालोंको तो स्त्री के दर्शन भी न करने चाहियें। कहा है :—

संभाषयेत् स्त्रियं नैव पूर्वदृष्टां च न स्मरेत्।
कथां च वर्जयेत्तासां नो पश्येल्लिखितामपि॥

न तो स्त्रीके साथ बात करनी चाहिये, न पहलेकी देखी स्त्रीकी याद करनी चाहिये और न उसकी चर्चा करनी चाहिये। यहाँ तक कि, उसका चित्र भी न देखना चाहिये।

जो स्त्री-जातिसे इस तरह अलग रहेंगे, वे ही कदाचित् इस बलासे बच सकेंगे। इसे देखकर मनको वशमें रखना बड़ा कठिन काम है। सभी भीष्म और अर्जुन नहीं हो सकते। संसारी लोग कितने ही दुःख, ताप और कष्ट क्यों न पावें ; किन्तु उनका मन उस ऊँटकी तरह है, जो काँटेदार वृक्षोंको खाना पसन्द करता है ; काँटेदार वृक्षोंके खानेसे उसके मुँह से खून बहने लगता है, पर वह उनका खाना नहीं छोड़ता ; इसी तरह जिन्हें विषयोंका स्वाद आ गया है, वे अनेक तरह के कष्ट भोगने पर भी उन्हें नहीं त्यागते ; किन्तु जब उनमें विवेक आ जाता है, उनमें सत-असतके विचारकी शक्ति हो जाती है, तब उन्हें उनसे विरक्ति हो जाती है। उस अवस्थामें स्त्री जातिसे नफ़रत हो जाती है।

शिक्षा—विषय विष हैं। इनका त्याग ही सुखकी जड़ है। जो विषयी हैं, उन्हें कहीं सुख नहीं है। अतः कामको जीतो। जिसने कामको जीत लिया, उसने सबको जीत लिया।

छप्पय।

भीख-अन्न इकबार, लौन बिन खाय रहत हूँ।
फटी गूदरी ओढ़, वृक्ष की छांह गहत हूँ।
घास पात कछु डारि, भूमि पर नित प्रति सोवत।
राख्यौ तन परिवार, भार यह ताको ढोवत।

इहि भाँति रहत चाहत न कछु, तऊ, विषय बाधा करत।
हरि! हाय २ तेरी शरण, आय पर्यो इनसे डरत ॥१९॥

19, A man may go a-begging for his food and get a tasteless meal once a day, he may have earth only for his bed and his own body for his servant. His clothes may only consist of an old and dirty sheet with hundreds of rags hanging from it, But what a pity that the objects of pleasure do not desert even such a man.

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम् ॥
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्द्धि जघन-
महो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम् ॥२०॥

स्त्रियोंके स्तन मांसके लौंदे हैं, पर कवियोंने उन्हें सोनेके कलशोंकी उपमा दी है। स्त्रियोंका मुँह कफका घर है, पर कवि उसे चन्द्रमाके समान बताते हैं और उनकी जाँघोंको, जिनमें पेशाव प्रभृति बहते रहते हैं, श्रेष्ठ हाथीकी सूँडके समान कहते हैं। स्त्रियोंका रूप घृणायोग्य है, पर कवियोंने उसकी कैसी तारीफ़ की है! ॥२०॥

स्त्री नरककुण्ड है।

स्त्रियोंकी छातियाँ—जिनपर विषयी मरे मिटते हैं, जिनकी कवियोंने बड़ी-बड़ी प्रशंसायें की हैं, जिन्हें वे सोनेके कलसों अथवा अनार और नारङ्गियोंके समान बताते हैं—वास्तवमें

मांसकी पोटली हैं। उनके मुखको वे चन्द्रमाके समान बताते हैं, पर वास्तवमें वे कफके आगार हैं। जिन जाँघों को वे गजवरकी सूँडके समान बताते हैं, वास्तवमें वे मूत और सफ़ेदेके टपकनेसे सूगली रहती हैं। स्त्रियोंका शरीर सर्व्वथा निन्दायोग्य है, उसमें प्रशंसा की कोई बात नहीं; पर अज्ञानी और मूर्ख विषयी उन पर मरे मिटते हैं!! यह उनकी भारी भूल है। महात्मा सुन्दर दासजी कहते हैं—

(१)

कामिनीको तन, मानु कहिये सघन बन।
वहाँ कोउ जाय, सो तौ भूले ही परत है॥
कुञ्जर है गात, कटि-केहरीको भय जामें।
बेनी काली नागिनीऊ, फनिकूँ धरत है॥
कुच हैं पहार जहाँ, काम-चोर बसे तहाँ।
सन्धिके कटाक्ष बाण, प्राण कूँ हरत हैं॥
सुन्दर कहत, एक और डर जामें अति।
राक्षसी-बदन, खाउँ-खाउँ ही करतु है॥ १॥

(२)

कामिनीको अंग, अति मलिन महा अशुद्ध।
रोम-रोम मलिन, मलिन सब द्वार हैं॥

तपस्वी स्त्रीपर मुग्ध होकर ज़बरदस्ती उसके घरमें घुसने लगा। स्त्रीने द्वार बन्द करना चाहा और ऋषिने सिर अड़ा कर घुसना चाहा। स्त्री ने ज़ोर से द्वार बन्द करने की चेष्टा की; इससे ऋषिका सिर कट गया। पृष्ठ ५५

Popular Press. Calcutta.

ज

इस

बड़ा

संसा

किन्तु

खाना

से

इसी

के व

विवे

जार

स्त्री
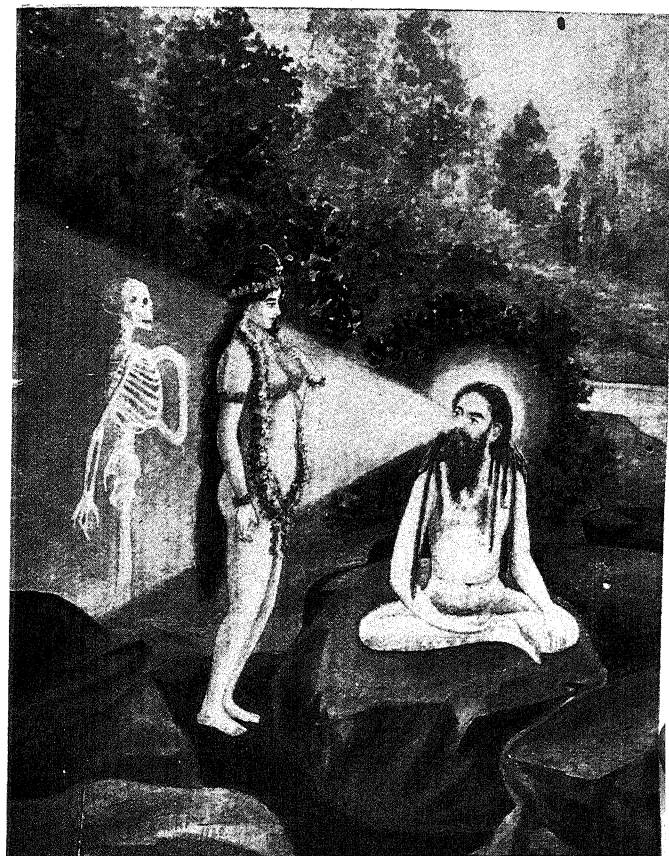
महापुरुष ज्ञान-दृष्टिसे कामिनी की असलियत को देख रहे हैं। कामी लोग भी स्त्रियों की असलियत को बग़ौर देखें और इनसे घृणा करें। वास्तवमें, स्त्री में कुछ भी नहीं है। मांसचर्म-हीन स्त्री कंकाल है। (पृ० ५८)

Popular Press. Calcutta.

हाड़ मांस मज्जा मेद, चामसुँ लपेटि राखै ।
ठौर-ठौर रकतके, भरेइ भण्डार हैं ॥
मूत्रहु पुरीष आँत, एकमेक मिलि रहीं ।
और ही उदर माँहि, विविध विकार हैं ॥
सुन्दर कहत, नारी नखशिख निन्दा-रूप ।
ताहि जो सराहै, सो तो बड़ोई गँवार है ॥२॥

(३)

(राग सोरठ)

अनाड़ी मन ! नारी नरकका मूल ।
रंग रूप पर भया लुभाना,
क्यों भूल गया हरि नाम दिवाना ? ।
इस धन यौवनका नाहिं ठिकाना,
दो दिनमें हो जाय धूल ॥१॥
कंचन भरे दो कलश बतावे,
ताहि पकड आनन्द मनावे ।
यह तो चमड़ेकी थैली हैं मूरख,
जिन पै रह्यो तू भूल ॥२॥
जा मुखको तू चन्दा कर माने,
थूक राल वामें लिपटाने ।
धिक धिक धिक ! तेरे या मुख पै,
मिष्टामें रह्यो तू भूल ॥३॥

कैसा भारी धोका खाया,
तन पर कामिनके ललचाया ! ।
कहें कबीर आँखसे देखा,
यह तो माटीका स्थूल ॥४॥

(४)

उदरमें नरक, अध द्वारनमें नरक,
कुचनमें नरक, नरक भरी छाती हैं ।
कण्ठमें नरक, गाल चिबुक नरक-बिम्ब,
मुखमें नरक, जीभ लालहु चुवाती है ।
नाकमें नरक, आँख कानमें नरक बहे,
हाथ पाँउ नखशिख, नरक दिखाती है ।
सुन्दर कहत, नारी नरकको कुण्ड यह,
नरकमें जाइ परे, सो नरक पाती है ॥

स्त्रीमें रूप नहीं ।

स्त्रियोंके जिस शरीरकी कामियोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है, तत्त्वविद् वेदान्तियोंने उसीकी पेट-भर निन्दा की है। वास्तवमें बात भी ऐसी ही है। असलमें नारी उतनी सुन्दरी नहीं, जितनी कि कवियोंने लिखी है। गुम्बद पर क़लई है। सचमुच ही नारी नरकका कूप है ; इसके भीतर मल-मूत्र थूक और खखार भरे हैं। पर लोग ऊपरकी चमक-दमक पर मरे मिटते
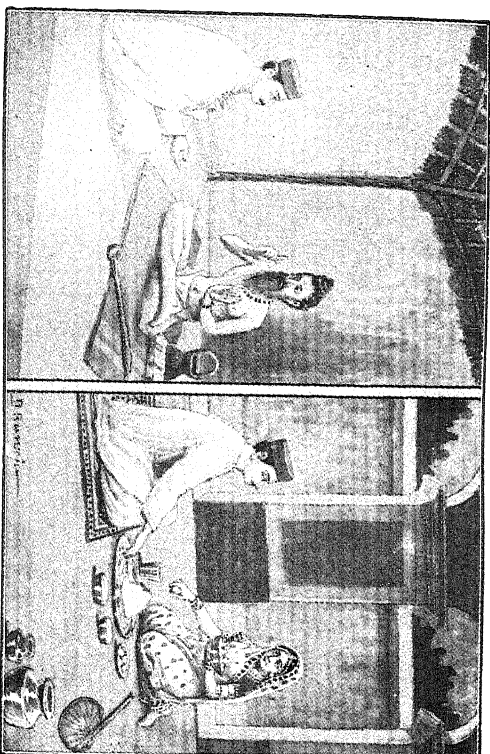
महात्मा कहते हैं—"भैया! सब अपने मतलबसे प्रीति करते हैं। अगर विश्वास न हो तो परीक्षा कर लो। पृष्ठ ६६

बहू अपनी सेवा-टहल और नाज़-नखरोंसे पतिको वशमें करती है।

Popular Press—Calcutta.

पृष्ठ ६५
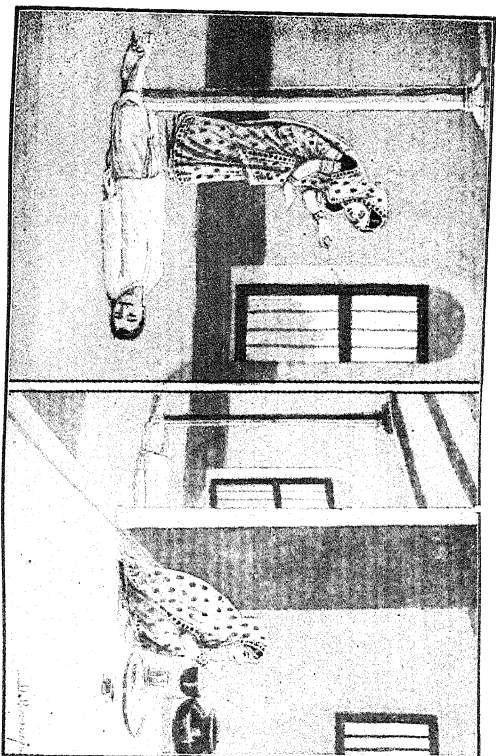
लड़का सांस चढ़ाकर पड़ गया और मुर्दा सा हो गया। आवाज़ देने पर जब वह खानेको न आया ; स्त्रीने जाकर देखा और उसे मरा हुआ पाया। (पृष्ठ ६५)

अगर मैं पहले रोना पीटना आरंभ कर दूं, तो न जाने कब तक भूखी मरूंगी, इसलिये पहले खीर खा लूं और बचे सो छींके पर धर दूँ। (पृष्ठ ६६)

Popular Press—Calcutta.

चाहिये। किसी ही पुण्यात्मा को ऐसी स्त्री मिलती है, जो उसे दिलसे चाहती हो। स्त्री का स्वभाव है कि, वह देखती किसी को है, बात किसी से करती है और चाहती किसी को है।

स्त्री की प्रीति-परीक्षा।

एक सेठ का पुत्र, सत्संगके लिये, नित्य किसी महात्मा के पास जाया करता था। माँ-बापको उसका महात्मा के पास जाना पसन्द न था। उन्हें भय था कि, हमारा पुत्र वैरागियों की संगतिमें कहीं वैरागी न हो जाय, इसलिये उन्होंने शीघ्र ही उसकी शादी कर दी। घर में बहू आ गयी। फिर भी लड़के का महात्माके पास जाना कम न हुआ। तब सेठ-सेठानीने बहूसे कहा कि, तू इसकी ऐसी सेवा कर, जो यह महात्माके पास जाना छोड़ दे। बहूने अपनी सेवा-टहल और नाज़-नख़रों से पति को वशमें कर लिया। लड़के का मन महात्माकी संगतिसे हटने लगा। पहले वह रोज़ जाता था, आगे दूसरे-तीसरे दिन जाने लगा। एक दिन स्त्रीने कहा— "आप जब रातको चले जाते हैं, मैं अकेली पड़ी रहती हूँ। रात में स्त्रीका अकेला रहना अच्छा नहीं ; इसके सिवा, रातको मुझे डर भी लगता है। यह बात सुन कर, लड़केने महात्माके पास जाना क़तई छोड़ दिया।

५

एक दिन महात्मा कहीं जा रहे थे। राहमें वही लड़का उन्हें मिल गया। उन्होंने उससे न आनेकी वजह पूछी। लड़केने कहा—"महाराज! मेरी स्त्री बडी ही पतिव्रता है। वह मुझे हर तरह सुखी रखती है। मेरे बिना वह क्षण-भर भी अकेली नहीं रह सकती। मेरे लिये वह प्राण देती है। उसकी सच्ची प्रीति देखकर, मैं उसके वशमें हो गया हूँ और इसीसे आपकी सेवामें नहीं आ सकता।"

महात्माने कहा—"भैया! सब अपने मतलबसे प्रीति करते हैं। तुम्हारी स्त्री भी अपने सुखके लिये तुमसे प्रीति करती है, तुम्हारे सुखके लिये नहीं। अगर विश्वास न हो, तो आज़-माइश कर लो।" लड़का इस बात पर राज़ी हो गया। महात्मा ने उसे श्वास रोकनेकी विधि समझा दी और कहा,—"एक दिन तुम अपनी स्त्रीसे कहना कि, आज हम खीर-पूरी खायेंगे। जब वह खीरपूरी बनाने लगे, तब तुम श्वास रोककर लम्बे पड़ जाना। जब वह समझेगी कि तुम मर गये, तब हमारी बातकी सचाईकी परीक्षा हो जायगी।"

एक दिन लड़केने घर पहुँचतेही स्त्रीसे कहा—"आज हमारा मन खीर-पूरी खाने पर है।" स्त्रीने कहा—"स्वामिन्! अभी बनाती हूँ।" यह कह वह खीर-पूरी बनाने लगी। उधर लड़का साँस चढ़ाकर पड़ गया और मुर्दा हो गया। थोड़ी देर बाद जब खीर-पूरी बन गयी, स्त्रीने आवाज़ दी,—"आइये, खाना खा लीजिये।" जब वह न आया, तो स्त्री स्वयम् आयी। देखा

तो लड़का मरा पड़ा है। कहीं साँस नहीं है। स्त्री ने विचार किया, यह तो मर गया। अगर मैं अभी रोना-पीटना आरम्भ करती हूँ, तो न जाने कब तक भूखी मरूँगी, और खीर भी बिगड़ जायगी। इसलिये पहले खालूँ और जो बचे उसे छींके पर रख दूँ। स्त्री ने अपने विचारानुसार पहले खूब खीर-पूरी खाई, और शेष रख दी। इसके बाद रोना और छाती-माथा कूटना शुरू किया। उसका रोना सुन, घरके लोग इकट्ठे हो गये और पूछा, "यह कैसे मर गया ?" स्त्री ने कहा—"पेटमें दर्द बताते थे, शायद उसीसे मरे हैं।" लोगोंने कहा—"अब देर करना व्यर्थ है। इसे शीघ्र श्मशान पर ले चलो।" वे लोग उसे उठाने लगे, लेकिन उसके पैर दो खंभोंमें फँस जानेसे न निकले। तब लोगोंने कहा कि, इन खंभोंको काटकर पाँव निकालने चाहियें। यह सुनते ही स्त्री ने कहा—"ऐसा न करो ; खंभे कट जायँगे, तो फिर कौन बनवा देगा ? इसलिये खंभ न कटाकर, इनके पैर ही काट डालो ; क्योंकि पाँव आख़िर जलाये ही जायेंगे।" लोगोंने कहा "ठीक है।" ज्योंही उन्होंने पैर काटनेको कुल्हाड़ा उठाया कि, लड़का उठ बैठा और बोला—"मेरा दर्द मिट गया।" यह देख, लोग अपने-अपने ठिकाने चले गये। लड़का महात्माके पास गया और कहने लगा—"महात्मन्! आपका कहना राई रत्ती सच है। अब मुझे ज़रा भी शक नहीं। निस्सन्देह स्त्री अपने ही लिये पतिको प्यार करती है। सबकी प्रीति झूठी है। अब मैं गृहस्थाश्रममें न

रहूँगा। बस, उसी दिनसे उसने अपनी स्त्रीको त्यागकर वैराग्य ले लिया।

स्त्री आफ़तोंकी जड़ है।

स्त्री अनेक आपदाओं की मूल है। अनेक रूपवती स्त्रियों के कारण उनके पतियोंके प्राण नष्ट हुए हैं। नूरजहाँके कारण शेर अफ़ग़ानकी जान मारी गई। स्त्रीके पीछे सुन्द-उपसुन्द आपसमें लड़कर मर गये। स्त्रीके पीछे राजा नहुषको स्वर्ग से गिरना पड़ा। स्त्रीके कारण बालि मारा गया और रावण का सर्वनाश हुआ एवं शिशुपालका सिर काटा गया। स्त्री के पीछे ही भारतको ग़ारत करने वाला महाभारत हुआ। स्त्री साँपसे भी भयङ्कर है। साँपके तो काटनेसे मनुष्य मरता है, पर स्त्रीकी रूप-चिन्तना-मात्रसे ही मनुष्य मर जाता है। विष खानेसे मनुष्य एक बार ही मरता है, पर स्त्री-विष के सम्बन्धसे मनुष्यको बारबार जन्म लेना और मरना पड़ता है; क्योंकि मरते समय पुरुष का मन अपनी स्त्रीमें ज़रूर जाता है। मरण-समय जिसकी वासना जिसमें रहती है, वह उसे अवश्य मिलता है। कहा है :—

वासना यत्र यस्य स्यात्सतं स्वप्नेषु पश्यति।
स्वप्नवन्मरणे ज्ञेयं वासनातो वपुर्नृणाम्॥

(३)

कामिनि काली नागिनी, तीन लोक मंझारि।
नाम-सनेही ऊवरा, विषिया खाये झारि॥

(४)

नारी कहूँ कि नाहरी, नख-सिखसों यह खाय।
जल बूड़ा तो ऊबरे, भग बूड़ा बहि जाय॥

(५)

एक कनक अरु कामिनी, तजिये भगिये दूर।
हरि विच पारें अन्तरा, यम देसी मुख धूर॥

(६)

जहाँ काम तहाँ राम नहीं, राम तहाँ नहीं काम।
दोऊ कबहूँ ना रहें, काम राम इक ठाम॥

(७)

अविनाशी विच धार तिन, कुल कंचन अरु नार।
जो कोई इन ते बचै, सोई उतरे पार॥

(९)

स्त्रीको घूर कर न देखना चाहिये और देख कर उसके पीछे न लगना चाहिये; क्योकि स्त्रीको देखने-मात्रसे ही ज़हर चढ़ जाता है और मन और ही तरहका हो जाता है।

(२)

सुन्दरी सोनेकी ही क्यों न हो और उसमें मनभावन सुगंध भी क्यों न आती हो, यदि वह अपनी जननी भी हो, तोभी उसके पास न बैठो।

(३)

स्त्री काली नागिन है। केवल ईश्वरका नाम जपने वाले उससे बचे ; विषय-भोगियोंको तो वह एकदमसे खागई—कोई न छोड़ा।

(४)

इसे मैं नारी कहूँ या नाहरी—सिंहनी कहूँ ? क्योंकि यह नख-सिखसे खा जाती है। जलमें डूबा बच जाता है ; पर स्त्रीमें डूबा नहीं बचता।

(५)

एक सुवर्ण और दूसरी स्त्री इनसे बच कर रहो। यह भगवान्के और जीवके बीचमें खाई बनाते हैं, जिससे यमराज मुँहमें धूल डालता है।

(६)

जहाँ स्त्री है वहाँ राम नहीं है और जहाँ राम है वहाँ स्त्री नहीं। स्त्री और राम दोनों एक जगह नहीं रह सकते।

(७)

अविनाशी भगवान् और जीवके बीचमें तीन खाइयाँ हैं:— (१) कुल, (२) कंचन, और (३) कामिनी। जो इन तीनों से बचता है, वही पार होकर भगवान् तक पहुँच जाता है।
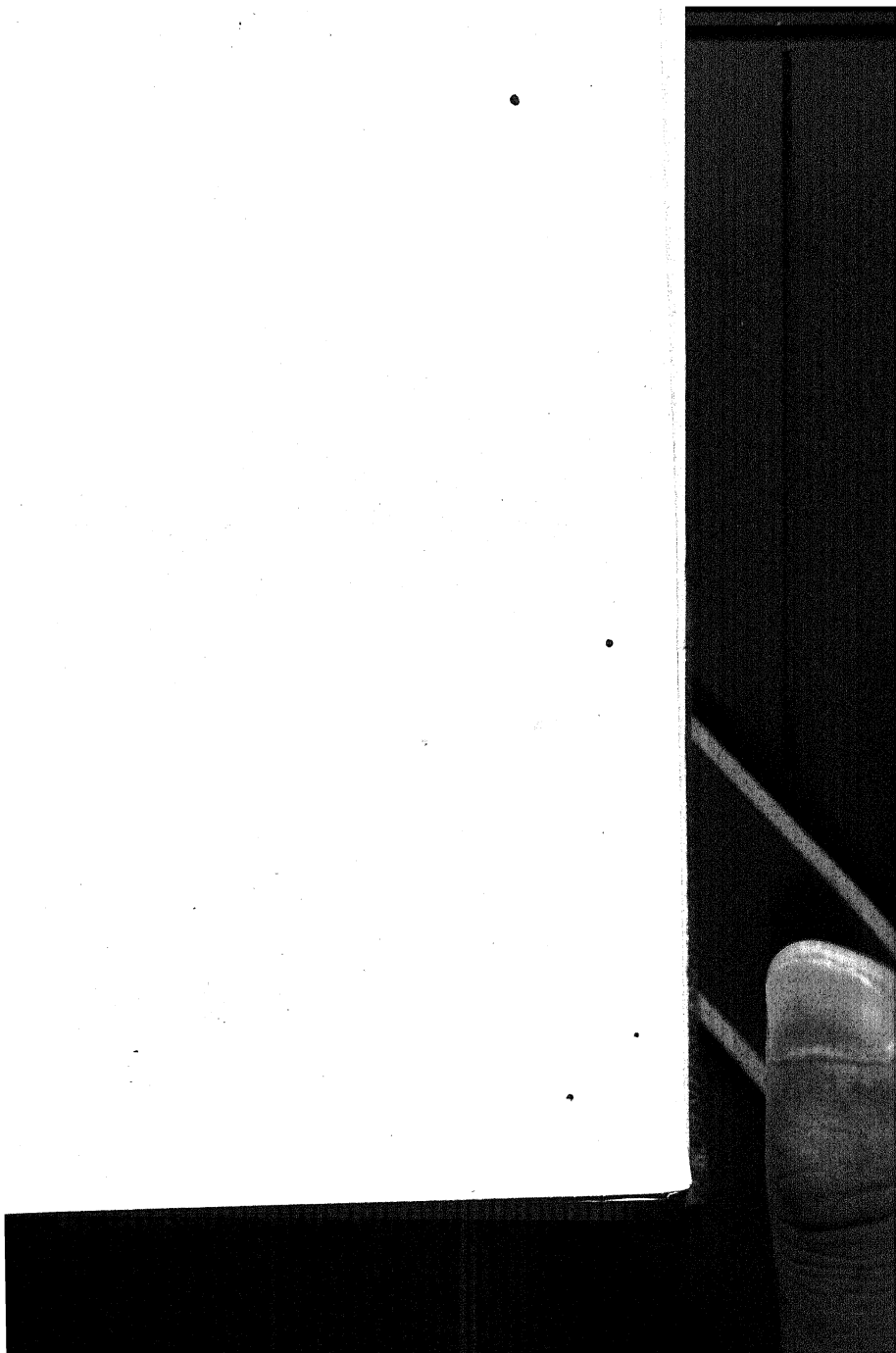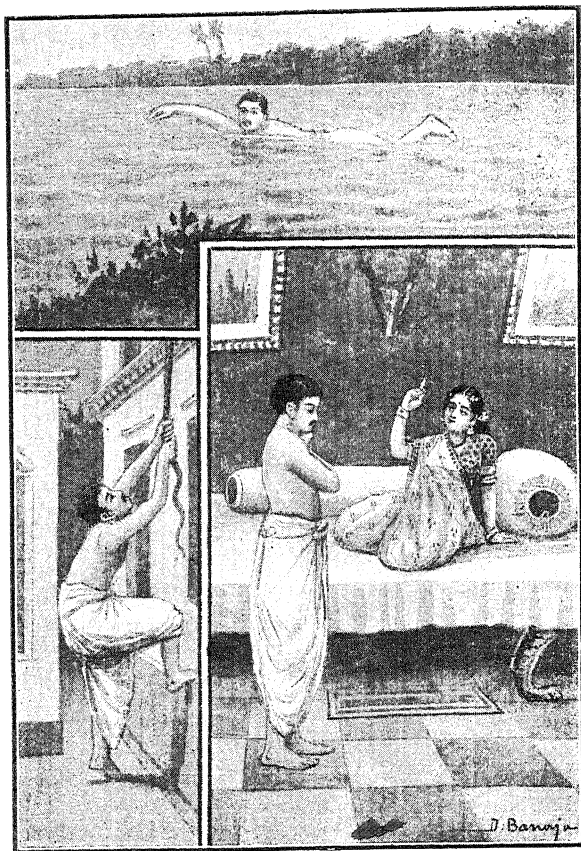
गोस्वामी तुलसीदासजी नदी पार कर ससुराल पहुँचे, द्वार बन्द पाकर सर्प को रस्सी समझ उसे पकड़ ऊपर चढ़ गये। जब स्त्री के सामने पहुँचे—स्त्री कहने लगी;—"आप का जितना प्रेम मुझ में है, उतना उस जगदीश में हो, तो आप का भला हो जाय।

क्या स्त्रीमें आनन्द है ?

स्त्रीमें कुछ भी आनन्द नहीं है। स्त्री हर तरह दुःखोंकी खान और मनकी अशान्तिकी मूल है। स्त्रीसे मैथुन करनेमें पुरुषको जो आनन्द आता है, वह उसका अपना आनन्द है ; स्त्रीका नहीं। कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है ; पर सूखी हड्डीमें खून नहीं होता। कुत्तेका अपना खून निकलता है और उसे उसीका स्वाद आता है, पर वह अज्ञानी उस आनन्दको हड्डी में समझता है। विषयी पुरुष भी कुत्तेकी तरह ही हैं। विषय जड़ हैं। विषयोंमें आनन्द कहाँ ? आनन्द आत्मामें है। जब पुरुषका वीर्य मैथुनके अन्तमें स्खलित होता है, तब क्षण-भरके लिये मनकी वृत्ति स्थिर हो जाती है। उस स्थिर वृत्तिमें चेतन आत्माका अक्स पड़ता है। बस, उसीसे पुरुषको आनन्द आता है। पर अज्ञानसे, कुत्तेकी तरह, वह उस आनन्दको स्त्रीमें समझता है। तात्पर्य्य यह निकला कि, स्त्रीमें कुछ भी आनन्द नहीं, आनन्द आत्मामें है।

स्त्री-त्यागी ही पण्डित है।

मनुष्यों और पशुओंमें क्या भेद है ? मनुष्य खाते, सोते, डरते और स्त्री-भोग करते हैं और पशु भी यही चारों काम करते हैं। पर इन दोनोंमें अन्तर यही है कि, मनुष्यको धम्म-

ज्ञान है और पशु को नहीं। यदि मनुष्य पशुओंकी तरह अज्ञानी हो, तो वह भी पशु ही है। कहा है—

अधीत्य वेदशास्त्राणि, संसारे रागिणश्च ये।
तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति, सधर्मा श्वाश्वसूकरैः॥

जो पुरुष वेद-शास्त्रोंको पढ़कर भी संसार से या स्त्री-पुत्र आदिसे प्रीति रखते हैं, उनसे बढ़कर मूर्ख कौन है? क्योंकि स्त्री-पुत्र प्रभृतिमें तो कुत्ते, घोड़े और सूअर भी प्रेम रखते हैं। शुकदेवजीने भी "भागवत"में कहा है :—

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य, वेदशास्त्राण्यधीत्य च।
वध्यते यदि संसारे, को विमुच्येत मानवः?

दुर्लभ मनुष्य-चोला पाकर और वेद-शास्त्र पढ़कर भी यदि मनुष्य संसारमें फँसा रहे, तो फिर संसार-बन्धनसे छुटेगा कौन?

कबीरदासजी कहते हैं :—

काम क्रोध मद लोभकी, जब लग घटमें खानि।
कहा मूर्ख कहा पंडिता, दोनों एक समान॥

जब तक मनमें काम, क्रोध, मद और लोभ है, तब तक पण्डित और मूर्ख दोनों समान हैं। जिसमें काम, क्रोध, मद और लोभ नहीं, वही पण्डित है और जिसमें ये हैं वह मूर्ख या अज्ञानी है।

शङ्कराचार्य्यकृत "प्रश्नोत्तरमाला"में लिखा है :—

शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा ?
मनोजवाणैर्व्यथितो न यस्तु ।
प्राज्ञोऽति धीरश्च शमोऽस्ति कोवा ?
प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः ॥

संसारमें सबसे बड़ा शूरवीर कौन है ? जो काम-बाणों से पीड़ित नहीं है । प्राज्ञ, धीर और समदर्शी कौन है ? जिसे स्त्रीके कटाक्षोंसे मोह नहीं होता ।

महात्मा तुलसीदासजीको स्त्रीसे विरक्ति ।

एक बार महात्मा तुलसीदासजी की स्त्री अपने पीहर चली गई ; महात्माजीको आधी रातके समय स्त्री-प्रसंगकी इच्छा हुई । आपकी ससुराल और आपके गाँवके बीचमें नदी पड़ती थी । आप फौरन ही घर छोड़ ससुरालको चल दिये । भयङ्कर रातमें प्रबल बेगसे बहती हुई नदीको पार कर आप ससुराल पहुँच गये । लेकिन जब घरके द्वार पर पहुँचे तो पौलीका द्वार बन्द पाया । अब आप मकानमें चढ़ने की तरकीब सोचने लगे । इतनेमें आपको एक रस्सी सी नज़र आई, आप उसे पकड़ कर चढ़ गये और अपनी स्त्रीके कमरे में जा पहुँचे । स्त्री आपको देखते ही चौकन्नीसी हो गयी ।

आपने कहा—"प्यारी! मैं तेरे लिये इस समय महा कष्ट भोग कर आया हूँ। मेरी अभिलाषा पूर्ण कर।"

स्त्री आपको देखते ही पलँगसे नीचे बैठ गई और बोली —"हे मेरे पतिदेव! देखिये तो रात कैसी भयावनी हो रही है। बादलोंकी गड़गड़ाहट और बिजलीकी कड़कसे मनुष्य का हृदय काँप उठता है। उधर नदी चढ़ रही है। आपने अपने शरीरकी परवा न कर मुझे दर्शन दिये; इसलिये मैं आप की अनुग्रहीत हूँ। परन्तु स्वामिन्! यह तो बताइये, आप मकानमें आये कैसे, क्योंकि द्वार बन्द है?" आपने कहा— "एक रस्सी लटक रही थी, उसीके सहारे मैं चढ़ आया।" स्त्रीने जाकर देखा, तो वह रस्सी नहीं, वरन् एक लम्बा-चौड़ा काल-सर्प था। देखते ही स्त्रीके सिरमें चक्कर आगया। उसके मुँहसे इतना ही निकला—"स्वामिन! जितना प्रेम आपका मुझमें है, यदि इतना ही हरिमें होता, तो आपका निश्चय ही बड़ा उपकार होता।

"जितना प्रेम हरामसे, उतना हरिसे होय।
चला जाय बैकुण्ठको, पला न पकड़े कोय।"

कहते हैं, तुलसीदासजी तत्क्षण उसे गुरु कह कर वनको चले गये।

पुरुष आठ पहर-चौंसठ घड़ी स्त्रीकी सेवा करता है, उसे हर तरह प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता है, उसकी आज्ञा-पालनके लिये तैयार रहता है, आप नाना प्रकारके कष्ट

बीच महलसे राजाको ले गया। सब देखते-के-देखते रह गये। वही बलवान काल तुम्हारी घातमें तुम्हारे सिरपर मँडरा रहा है। आप भी उससे किसी तरह बच नहीं सकते।

यह दुनिया नापायेदार है, मनुष्य-शरीरका कोई ठिकाना नहीं; फिर भी मनुष्यके अभिमानकी सीमा नहीं। थोड़ी सी विषय-सम्पत्ति पर वह इतना इतरा उठता है, कि ईश्वरको भी माल नहीं समझता। उस्ताद ज़ौक़ने ठीक ही कहा है—

मौत ने कर दिया नाचार, वगर्ना इन्सॉं।
है वह ख़ुदबीं, कि ख़ुदाका भी न क़ायल होता॥

मनुष्य के घमण्डका कुछ ठिकाना है—किसीको कुछ नहीं समझता। मौत ने इसे लाचार कर रक्खा है, नहीं तो यह ईश्वरको भी कुछ न समझता।

शिक्षा—अगर अपना भला चाहते हो, तो अभिमान को त्यागो; यह बड़ा भारी शत्रु है। जिन्होंने इसकी संगति की, उन्हींका नाश हुआ। अभिमान से ही उस लंकाधिपति रावणका नाश हुआ, जिसने त्रिलोकीको अपने अधीन कर रक्खा था और जो देवताओंसे सेवा और हवा-पानीसे टहल कराता था। अभिमानसे ही मध्याह्नके मार्त्तण्डकी भाँति तपते हुए देहलीके मुग़ल बादशाह औरङ्गज़ेबकी सल्तनतकी जड़ हिल गई, मुग़लिया ख़ान्दानसे बादशाहत विदा हो हो गई। अभिमान ने ही उस जर्मन कैसरको राव से रङ्क बना दिया, जिसने छोटेसे देशका राजा होकर भी, सारी पृथ्वी को चार साल तक अपनी उँगली पर नचाया। भाइयो, इन दृष्टान्तोंको ध्यानमें रखकर, अपने प्रबल शत्रु-अभिमानका नाश करो।

छप्पय ।

छिनहूँ छाँड़ी नाहिं, भोग भुगती वह भूपनि ।
कुलटासी यह भूमि, लाभ मानत महीप मनि ।
ताहू के इक अंग के, सु अंगहि को पावत ।
राखत हैं करि कष्ट, दिवस निशि चहूँ दिशि धावत ।
अपनी ओरकी होत यह, यातें पचि-पचि रचि रहे ।
पच्छितैबौ तजि, जग-विषयसों, जड़ उल्टे सुख गनि रहे ।। २५ ।।

25, Why should kings feel so much pride in the ownership of the earth, which has successively been owned by hundreds of kings without the break of even a second. It is a pity that petty kings who possess even a very small portion of it, foolishly find pleasure in the possession of their estates while really they ought to grieve over it as their power is not going to endure for ever.

मृत्पिण्डो जलरेखया वलयितः सर्वोऽप्ययं नन्वणु-
रंगीकृत्य स एव संयुगशतै राज्ञां गणैर्भुज्यते ।
तद्दद्युर्ददतेऽथवा न किमपि क्षुद्रा दरिद्रा भृशं
धिग्धिक्तान्पुरुषाधमान्धनकणं वाञ्छन्ति तेभ्योऽपि ये ॥२६

भूपति=राजा लोग। महीप=राजा। कुलटा=व्यभिचारिणी स्त्री। दिवस निशि=रात-दिन। चहुँ दिशि=चारों दिशाओंमें। धावत=दौड़ते हैं। पछितैवो तजि=पछताना छोड़कर। जड़=मूर्ख। सुख गनि रहे=सुख मान रहे हैं।

अव्वल तो यह पृथ्वी स्वयं ही बड़ी नहीं है। मिट्टीका सा लौंदा है, जो चारों ओरसे पानीसे घिरा हुआ है। दूसरे; सैकड़ों-हज़ारों राजाओंने आपसमें अनेक लड़ाइयाँ लड़-लड़कर, इसके भागों पर अपना-अपना कब्ज़ा कर रक्खा है। ऐसे क्षुद्र और संकीर्ण-हृदय-राजाओंको जो दानी समझते हैं और उनके मुँहकी ओर ताकते हैं कि वे कुछ देंगे, ऐसे नीच लोगोंको धिक्कार है! ऐसे तुच्छ और दरिद्रियोंसे धन पानेकी आशा करना व्यर्थ है ॥२६॥

अव्वल तो पृथ्वी कोई चीज़ ही नहीं है। फिर, यह ज़रासा मिट्टीका लौंदा है, जो चारों ओरसे सीमा-बद्ध है, चारों ओर इसके समुद्र है। फिर; इस क्षुद्र पृथ्वीको भी अनेक राजाओं ने आपसमें युद्ध कर-करके अपने-अपने अधिकारमें कर रक्खा है। ज़रासी चीज़के हज़ारों टुकड़े हो गये हैं। इन टुकड़ोंके मालिकोंको जो लोग बड़े आदमी और दानी समझते हैं और उनसे कुछ पानेकी आशा करते हैं, उनको बारम्बार धिक्कार है! क्योंकि उन नामके भूपतियोंके पास रक्खा ही क्या है? वे स्वयं दरिद्र हैं। जब वे स्वयं दरिद्र और मुहताज हैं, तब वे किसकी आशा पूरी कर सकते हैं? इसलिये, ऐसे क्षुद्रोंका मुँह ताकना नीचोंका काम है। मुँह उसका ताकना चाहिये, जो किसी लायक़ हो। मनुष्यको जो माँगना हो, सर्वशक्तिमान् भगवान् से माँगना चाहिये; वही सबकी इच्छा पूरी कर सकता है। क्षुद्र धनियोंकी खुशामदमें समय गँवाना, वृथा जन्म खोना

है। वे आप दीन हैं। उनकी इच्छायें क्या पूरी हो गई हैं? अमीर-ग़रीब सभी ज़रूरतें रखते हैं। इसलिये दोनों ही दीन हैं। अमीरोंकी ज़रूरतें ग़रीबोंसे ज़ियादा हैं, इसलिये वे दीनातिदीन हैं। ऐसे दीनोंसे भी जो माँगते हैं, वे बड़े ही निर्बुद्धि हैं। अगर माँगना ही है, तो बादशाहों-के-बादशाहसे माँगो। महात्मा कबीरदास कहते हैं—

कबिरा जग की कहा कहूँ, जो भल बूड़े दास।
पारब्रह्म पति छाँडि के, करै मनुष्य की आस॥
रामहिं थोरा जानि के, दुनिया आगे दीन।
जीवन को राजा कहै, माया के आधीन॥
राम धनी सिर पर खड़ा, कहा कमी तोहि दास!।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छाँड़े पास॥
दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अन्त तिहुँकाल।
पलक एक में परगटे, पल में करे निहाल॥
जाकी गाँठी राम है, ताके हैं सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढ़ी सबैं, अष्ट सिद्धि नव निद्धि॥

कबीरदास कहते हैं कि, मैं जगत्‌के विषयमें क्या कहूँ? वे लोग बुरी तरह डूब रहे हैं, जो परमब्रह्म परमात्माको छोड़कर क्षुद्र मनुष्योंकी आशा करते हैं।

लोग रामको तो कम समझते हैं और दुनियाँके आगे

दीनता करते हैं तथा मायाके वश होकर जीवोंको राजा कहते हैं।

हे दास ! राम जैसा मालिक तेरे सिर पर खड़ा है, फिर तुझे क्या अभाव है ? उसकी कृपासे ऋद्धि-सिद्धि तेरी सेवा करेंगी और मुक्ति तेरे पीछे फिरेगी।

अगर सेवक दुःखी रहेता है, तो परमात्मा भी तीनों कालों में दुःखी रहता है। वह दासको कष्टमें देखकर, क्षणभरमें प्रकट होता और उसे निहाल कर देता है।

जिसकी गाँठमें राम है, उसके पास सब सिद्धियाँ हैं। उसके आगे अष्ट सिद्धि और नौ निधि हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है :—

गरल सुधा, रिपु करै मिताई ; गोपद सिन्धु, अनल सितलाई।
गरुअ सुमेरु रेणु-सम ताही, राम कृपा करि चितवहिं जाही ।।

भगवान् जिसकी ओर कृपासे देखते हैं, उसके लिये ज़हर अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाते हैं, समन्दरमें गौके चरण डूबें उतना जल हो जाता है, आग शीतल हो जाती है, और भारी सुमेरु-पर्वत रेणुके समान हो जाता है।

बहुतसे मूर्ख इन धनमत्तोंसे यहाँतक कह बैठते हैं— "हुजूर ! हम बड़े सङ्कटमें हैं, हमारी नाव मँझधारमें है, उसे पार लगाइये।" यह बड़ी भद्दी भूलकी बात है। नावका पार लगाना, मनुष्यके हाथ नहीं ; डूबती हुई नावको वह सर्व-

शक्तिमान् ही पार लगा सकता है ; अतः बुद्धिमान् लोग उसी के भरोसे रहते हैं, वे तुच्छ मनुष्योंके ऐहसान सिरपर नहीं लेते।

उस्ताद ज़ौक़ने क्या खूब कहा है :—

अहसाने नाखुदा के, उठाये मेरी बला ।
किश्ती खुदा पै छोड दूँ, लंगरको तोड दूँ ॥

माँझीके अहसान मेरी बला उठाये, मैं तो अपनी नावको ईश्वरका नाम लेकर छोड़ दूँगा और उसका लङ्गर तोड़ दूँगा।

छप्पय ।

इक मृतिकाको पिण्ड, रहत जलमाँहि निरन्तर ।
सोऊ सब ही नाहिं, तनकसौ, ताहू में डर ।
करत हजारन अंग, भूप तब भोग करत बित ।
मिटत आपनी प्यास, दान को होत कहा चित ? ।
ऐसे दरिद्र दुखसों भरे, तिनहूँ सों जो चहत धन ।
धिक्कार जन्म वा अधमको, सदा सर्वदा लीन मन ॥२६॥

26. In the first place this earth, which is surrounded on all sides by a line of water, is not large enough itself. Secondly, it is divided and owned by multitudes of kings after fighting hundreds

---

मृत्तिका = मिट्टी। पिण्ड = गोला। निरन्तर = सदा। तनकसो = छोटासा। हजारन अंग = हज़ारों भाग या टुकड़े। अधम = नीच।

सहता, जने-जनेकी खुशामद करता, नर्म-गर्म सहता, पर स्त्री के लिये तो कुछ न कुछ लेकर ही घरमें घुसता है ; रात-दिन बाहर-भीतर उसीका ध्यान रखता और उसके लिये अपने प्राणों तककी परवा नहीं करता। इसके एवज़में स्त्रीसे उसे क्या मिलता है ? भग या पेशाबका पात्र। दिन-रात चिन्ता और अशान्ति। यहाँ नरक और वहाँ नरक। अगर पुरुष इतनी ही या इससे कुछ कम भक्ति भी परमात्माको करे, तो निश्चय ही उसका उपकार हो सकता है। इस जन्ममें उसे सुख-शान्ति मिले और देह छोड़ने पर स्वर्ग या परमपद मिले। शङ्कराचार्य्यजी ने कहा है :—

> कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वात्मानं पश्य हि कोऽहम्।
> आत्मज्ञानविहीना मूढ़ाः ते पच्यन्ते नरकनिगूढ़ाः ॥

काम, क्रोध, लोभ और मोहको छोड़कर आत्मामें देख कि, मैं कौन हूँ। जो आत्मज्ञानी नहीं हैं, जो अपने स्वरूप या आत्माके सम्बन्धमें नहीं जानते, वे मूर्ख नरकोंमें पड़े हुए पकते हैं।

जहाँ स्त्री होगी, वहाँ काम, क्रोध, लोभ और मोह अवश्य होंगे ; और जहाँ ये होंगे, वहाँ भगवान् नहीं होंगे। मतलब यह है कि, जब मनुष्यके हृदयमें काम, क्रोध आदिक नहीं रहते, तब उसका हृदय शुद्ध रहता है। शुद्ध हृदयमें ही आत्माका दर्शन होता है। जिस तरह साफ़ आईनेमें मुँह स्पष्ट दीखता

है, स्थिर और निर्मल जलमें सूर्य-बिम्ब साफ दीखता है; उसी तरह शुद्ध, स्थिर और निर्मल मनमें परमात्मा साफ़ दीखता है।

शिक्षा—जो परमात्माके दर्शन करना चाहें; जो सदा सुख भोगना चाहें, जो भव-बन्धनसे पीछा छुड़ाना चाहें, उन्हें कामिनी और काञ्चनमें आसक्ति न रखनी चाहिये। जो इनमें मन लगाये रहते हैं, उन्हें सिद्धि नहीं मिलती—भगवान् उनसे सदा दूर रहते हैं।

कुच आमिषकी गाँठ, कनकके कलश कहत छवि।
सुखहु कफको धाम, कहत शशिके समान कवि।
झरत मूत्र अरु धातु, भरी दुर्गन्ध ठौर सब।
ताकौ चंपकबेल कहत, रस रेल ठेल दब।
यह नारि निहारी निन्दतन, बहँके बिषयी बावरे।
याकों बढाय, वाकों विरद, बोले बहुत उतावरे ॥२०॥

20. The breasts of a woman which are nothing but lumps of flesh, are likened by poets to a pair of vessel made of gold. Her mouth which is only a depository of saliva is likened to the moon. Her thighs although wet with falling drops of urine are likened to the trunk of an elephant. Oh ! how contemptible is the person of a woman which is so servilely flattered by the poets !

कुच=स्तन। आमिष=मांस। कनक=सोना। कलश=घड़ा। धाम=घर। शशि=चन्द्रमा ठौर=जगह। चम्पकबेल=चम्पकलता बावरे=पागल बिरद=तारीफ कर।

अजानन्माहात्म्यं पततु शलभो दीपदहने
स मीनोऽप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नातु पिशितम् ॥
विजानन्तोऽप्येतान्वयमिह विपज्जालजटिला-
न्नमुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥ २१ ॥

अज्ञानवश, पतङ्ग दीपक की लौ पर गिरकर अपने तईं भस्म कर लेता है ; क्योंकि वह उसके परिणामको नहीं जानता ; इसी तरह मछली भी काँटेके मांस पर मुँह चलाकर अपने प्राण खोती है, क्योंकि वह उससे अपने प्राण-नाशकी बात नहीं जानती। परन्तु हम लोग तो अच्छी तरह जान-बूझकर भी विपद्-मूलक विषयोंकी अभिलाषा नहीं त्यागते। मोहकी महिमा कैसी विस्मय-कर है ! ॥२१॥

पतङ्ग दीपकके रूपपर मरता है, उसके प्रेममें रँगा रहता है ; इसलिये उसको आलिङ्गन करनेके लिये उसपर झपटकर गिरता है और अपना नाश कराता है। पतङ्गको ज्ञान नहीं है, कि इस पर गिरनेसे मेरी मौत हो जायगी। इसी तरह मछली मछुएके लगाये हुए काँटेके मांस पर मुँह लपकाती है और कण्ठमें काँटा लगनेसे मर जाती है ; क्योंकि वह नहीं जानती, कि मेरी मृत्युका सामान है। पतङ्ग और मछली तो अज्ञानवश अपनी जान खोते हैं ; पर आश्चर्य्य तो यह है कि, मनुष्य—जिसे भगवान्ने समझ दी है, जो जानता

है कि, विषयोंकी कामना आफ़तकी जड़ है, विषयोंमें सुख नहीं, घोर विपद् है ; विषय विषसे भी अधिक दुःखदायी हैं,— विषयोंकी इच्छा करता है। इससे कहना पड़ता है कि, मोहकी माया बड़ी कठिन है। महात्मा कबीरदास कहते हैं :—

शंकर हूँ ते सबल है, माया या संसार।
अपने बल छूटे नहीं, छुडावे सिरजनहार॥

21 The moth may burn itself by falling over the flame of a lamp, because it is ignorant of the result of its action, The fish may swallow the bait hung by a fisherman, because it is similarly ignorant, How wonderful should the force of attachment be, that we, being thoroughly conversant with the result of action, do not care to renounce the network which brings distress and misery in the end !

फलमलमशनाय स्वादुपानाय तोयं
शयनमवनिपृष्ठे वल्कले वाससी च।
नवधनमधुपानभ्रान्तसर्वेन्द्रियाणा-
मविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ॥२२॥

खानेके लिये फलोंकी इफ़रात है, पीनेके लिये मीठा जल है, पहननेके लिये वृक्षोंकी छाल हैं ; फिर हम धनमदसे मतवाले दुष्टोंकी बातें क्यों सहें ? ॥२२॥

जबकि भगवान् ने हमारे लिये खानेको फल-ही-फल पैदा कर दिये हैं, पीनेको जगह-जगह मीठा और शीतल जल भर दिया है, पहनने के लिये दरख़्तों को छाल पैदा कर दी हैं; फिर क्या ज़रूरत, जो हम धनसे मतवाले लोगोंके ताने और कठोर बचन सहें ?

मनुष्यको सन्तोष नहीं, उसे तृष्णा नहीं छोड़ती; इसीसे वह विषयोंके भोगनेकी लालसा से धनियों की खुशामदें करता है, उनकी टेढ़ी-सूधी सुनता है, अपनी प्रतिष्ठा खोता है, निरादर और अपमान सहता है। अगर वह सन्तोष कर ले, तो उसे ऐसे दुष्टों और धन-मदसे मतवाले शैतानोंकी खुशामद क्यों करनी पड़े ? अपनी मानहानि क्यों करानी पड़े ? परमात्मा इन शैतानोंसे बचावे ! एक तो नातजरुबेकार और तंगदिल लोग वैसे ही शैतान होते हैं, पर जब उन पर दौलतका नशा चढ़ जाता है, तब तो उनकी शैतानीका ठिकाना ही क्या ? उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं और खूब कहते हैं—

नशा दौलत का बद अतवार को, जिस आन चढ़ा।
सर पै शैतानके, एक और भी शैतान चढ़ा॥

अनुभव-विहीन और तंगदिल मनुष्य पर जिस समय दौलत का नशा चढ़ गया, तब मानो शैतानके सिर पर एक और शैतान चढ़ गया।

जिसे किसी चीज़की ज़रूरत नहीं, वह किसीकी खुशामद क्यों

करेगा ? वह अपना मान क्यों खोयेगा ? निस्पृहके लिये तो जगत् तिनके समान है। इसलिये, सुख चाहो तो इच्छाओंको त्यागो।

अगर आप आशा, तृष्णा और इच्छा को न त्यागोगे, धनियोंके पीछे-पीछे फिरोगे, तो आपको सिवा मानहानि और बे-इज़्ज़तीके कुछ भी न मिलेगा ; पर यदि आप कुछ भी इच्छा न रक्खोगे, किसीके भी पास न फटकोगे तो दुनिया आपकी खुशामद करेगी, आपकी पूजा-प्रतिष्ठा करेगी और लक्ष्मी आपकी चेरी होकर आपके क़दमोंमें पड़ी रहेगी। किसीने ठीक ही कहा है :—

भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम।
अब जो नफ़रत हमने की, तो बेक़रार आनेको है॥

दोहा।

भूमि शयन बल्कल वसन, फल भोजन जल पान।
धनमदमाते नरन को, कौन सहत अहमान ?॥२२॥

22. While there is plenty of fruit to eat, delicious water to drink, the surfacs of the earth to sleep upon and the bark of trees to wear, we should not care to bear the taunts of evil-minded persons whose senses have all been taken prisoner by newly-got wealth.

तलब करना=बुलाना। नफ़रत=घृणा। बेक़रार=बेचैन। भूमि=ज़मीन। शयन=सोना। बल्कल=छाल। वसन=कपड़ा। अहमान=अभिमान-पूर्ण बातें।

विपुलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा ।
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा ।
इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते ।
कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः ॥२३॥

कोई तो ऐसे बड़े दिलवाले लोग हुए, जिन्होंने प्राचीनकालमें इस जगत्‌की रचना की ; कुछ ऐसे हुए जिन्होंने इस जगत्‌को अपनी भुजाओं पर धारण किया ; कुछ ऐसे हुऐ जिन्होंने समग्र पृथ्वी जीती और फिर तुच्छ समझकर दूसरोंको दान कर दी ; और कुछ ऐसे भी हैं जो चौदह भुवनका पालन करते हैं । जो लोग, थोड़ेसे गाँवोंके मालिक होकर, अभिमानके ज्वरसे मतवाले हो जाते हैं, उनके सम्बन्धें में हम क्या कहें ? २३ ॥

इस जगत्‌में ऐसे लोग भी हुए, जिन्होंने जगत्‌की रचना कर डाली, पर उन्हें ज़रा भी अभिमान न हुआ । कुछ ऐसे लोग भी हुए, जिन्होंने इसे अपनी भुजाओं पर रक्खा, पर अभिमान न किया । कुछ ऐसे हुए, जिन्होंने सारी दुनियाँको जीत लिया और फिर तुच्छ समझ कर दान भी कर दिया, पर उन्हें अभिमान न हुआ । कोई ऐसे हैं, जो इस संसारका पालन करते और इस पर आधिपत्य रखते हैं, पर उन्हें ज़रा भी घमण्ड नहीं । फिर वे लोग जो चन्द गाँवोंके मालिक बन जाते हैं, घमण्डके मारे क्यों ऐंठने लगते हैं ?

सज्जन लोग धनैश्वर्य्य और प्रभुता पाकर कभी अहङ्कार नहीं करते ; ओछे या नीच ही थोड़ीसी विषय-सम्पत्ति पाकर अभिमान किया करते हैं। नीति-रत्नमें लिखा है :—

दिव्यं चूतरसं पीत्वा, न गर्वं याति कोकिलः ।
पीत्वा कर्दमपानीयं, भेको मकमकायते ॥
अगाधजलसञ्चारी, न गर्वं याति रोहितः ।
अंगुष्ठोदकमात्रेण, सफरी फरफरायते ॥

उत्तम रसालके रसको पीकर कोकिल गर्व नहीं करता, किन्तु कीचड़-मिला पानी पीकर ही मैंडक टरटराया करता है।

अगाध जलमें रहनेवाली रोहित मछली गर्व नहीं करती, किन्तु अँगूठे जितने जलमें सफरी मछली खुशीसे नाचती फिरती है।

बस ; छोटे और बड़े, पूरे और ओछे लोगोंमें यही अन्तर है। जो जितना छोटा है, वह उतना ही घमण्डी और उछलकर चलनेवाला है और जो जितना ही बड़ा और पूरा है, वह उतना ही गम्भीर और निरभिमानी है। नदी नाले थोड़ेसे जलसे इतरा उठते हैं ; किन्तु सागर, जिसमें अनन्त जल भरा है, गम्भीर रहता है।

अभिमान या अहंकार महा अनर्थोंका मूल है। यह नाशकी निशानी है। अहंकारीसे परमात्मा दूर रहता है।

जिससे परमात्मा दूर रहता है, उसके दुःखोंका अन्त कहाँ? अतः मनुष्यो! अभिमानको त्यागो। जो आज टुकड़ोंका मुहताज है, वह कल राजगद्दीका स्वामी दिखाई देता है और आज जिसके सिरपर राजमुकुट है, सम्भव है, कि कल वह गली-गली मारा-मारा फिरे। संसारकी यही गति है, इसलिये अभिमान वृथा है। परमात्माने एक-से-एक बढ़कर बना दिया है। कहा है :—

एक-एक से एक-एक को, बढ़कर बना दिया।
*दारा किसीको, किसी को सिकन्दर बना दिया * ॥*

आपको किस बातका गर्व है? यह राज्य और धन-दौलत क्या सदा आपके कुलमें रहेंगे या आपके साथ जायँगे? जो रावण लंकेश्वर था, जिसने यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और देवताओं तकको अपने अधीन कर लिया था, आज वह कहाँ है? उसका धन-वैभव क्या उसके साथ गया? जिस रामने समुद्रका पुल बाँधकर, वानर-सेनासे रावणका नाश किया, वही

---

* दारा ईरानका बादशाह था। वह अपने समयमें मध्याह्नके मार्त्तण्डकी तरह तपता था। उसने बहुतसे देश जीत लिये। किसीको उम्मीद न थी कि, दारा भी किसीसे पराजित होगा; पर ईश्वरने तो एकसे एक बढ़ कर बनाये हैं। उसने दाराको भी परास्त करनेवाला सिकन्दर पैदा कर दिया। सिकन्दर आज़मने दाराको शिकस्त दी और भारत पर भी चढ़ाई की।

राम आज कहाँ है ? जिस बालिने रावण जैसे त्रिलोक-विजयी को अपने पुत्रके पालनेसे बाँध रखा था, आज वह बालि कहाँ है ? जिस सहस्रबाहुने रावणके सिरपर चिराग़ रखकर जलाया था, वह सहस्रबाहु ही आज कहाँ है ? चारो दिशाओंको अपने भुजबलसे जीतनेवाले भीमार्ज्जुन आज कहाँ हैं ? हरिश्चन्द्र, कर्ण और बलिसे दानी आज कहाँ हैं ? इस पृथ्वीपर अनेक एक-से-एक बली राजा और शूरवीर हो गये, पर यह पृथ्वी किसीके साथ न गई। क्या आपकी धन-दौलत-ज़मीन्दारी या राजलक्ष्मी अटल और स्थिर है ? क्या यह आपके साथ जायगी ? हरगिज़ नहीं। आप जिस तरह ख़ाली हाथ आये थे, उसी तरह ख़ाली हाथ जायेंगे।

अभिमानियोंका नशा उतारनेके लिये उस्ताद ज़ौक़ने भी खूब कहा है :—

दिखा न जोशो ख़रोश इतना, ज़ोर पर चढ़ कर।
गये जहान में दरिया, बहुत उतर—चढ़कर॥

हे मनुष्य ! ज़ोर में आकर इतना जोश-ख़रोश न दिखा ; इस दुनिया में बहुत से दरिया चढ़-चढ़ कर उतर गये,—कितने ही बाग़ लगे और सूख गये।

महात्मा कबीरदासजी कहते हैं—

धरती करते एक पग, करते समन्दर फाल।
हाथों परवत तोलते, ते भी खाये काल॥

हाथों परवत फाड़ते, समुन्दर घूँट भराय्र ।
ते मुनिवर धरती गले, कहा कोई गर्त्र कराय ?॥

छप्पय ।

भये जगत में धन्य ! धीर, जिन जगत रच्यो है ।
काहू धारी शीश, अजौं वह नाहिं लच्यो है ॥
काहू दीनो दान, जीत काहू बस कीनो ।
भुवन चतुर्दश भोग किह्यो, काहू जस लीनो ॥
इमि अधिक एक सों एक भे, तुम हो तिनसें तुच्छवित ।
दश बीस नगरके नृपति ह्वै, यह मदको ज्वर तोहि कित?॥२३॥

23 There were many large-hearted people in the past who helped in the early creation of the world. There were others who maintained it by the force of their arms and still others who won the whole earth and then gave it away to the needy valuing it no better than a straw. There are some even now in this world who enjoy the overlordship of the fourteen regions. What should we say of the fever of vanity contracted by persons who won only a few villages ?

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः ।

रच्यौ=रचना की। काहू=किसीने। धारो=धारण की। शीश=सिर पर। अजौं=अबतक। लच्यौ=झुका। भुवन चतुर्दश=चौदह भुवन। जस=यश। इमि=इस तरह। भे=हुए। तिनमें=उनमें। च्छवित=नाचीज़। तोहि=तुझे ।

इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं यद्यस्मासु
पराङ्मुखोऽसिवयमप्येकान्ततो निःस्पृहाः ॥२४॥

अगर तू राजा है, तो हम भी गुरुकी सेवासे सीखी हुई विद्याके अभिमानसे बड़े हैं। अगर तू अपने धन और वैभवके लिये प्रसिद्ध है, तो कवियोंने हमारी विद्याकी कीर्त्ति भी चारों ओर फैला रक्खी है। हे मानभञ्जन करनेवाले, तुझमें और हममें ज़ियादा फ़र्क़ नहीं है। अगर तू हमारी ओर नहीं देखता, तो हमें भी तेरी परवा नहीं है ॥ २४ ॥

अगर तुझे अपने बल और धन का अभिमान है, तो हमें भी अपनी विद्या का अभिमान है। तुझमें और हममें कोई बड़ा भेद नहीं है। यदि तुझे हमारी ज़रूरत नहीं है, तो हमें भी तेरी ज़रूरत नहीं है, क्योंकि हमें तुझसे कुछ लेना नहीं।

छप्पय ।

तुम पृथ्वीपति भूप, भरे अभिमान विराजत ।
हम पाई गुरु-गेह बुद्धि, बल ताके गाजत ।
तुम धनसों विख्यात, सुकवि गावत कछु पावत ।
हम यशसों विख्यात, रहत निश द्योस पढ़ावत ।
तुम हमहिं बीच अन्तर बड़ौ, देखो सोच विचार चित ।
एते पर जो मुख फेरहो, तौ हमकों एकान्तहित ॥२४॥

पृथ्वीपति=राजा। गुरु-गेह=गुरुके घर। गाजत=गरजते हैं। विख्यात

24. If thou art a king, we too are great in our pride of knowledge learnt by serving our teacher. If thou art famous for the power and riches, the poets have proclaimed the fame of our knowledge far and wide. Thus O thou? who dost not honour anybody, there is not much difference between us both, If thou dost not care to look towards us, we too are absolutely without any desire to court thy attention.

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतै-
र्भुवस्तस्या लाभे क इव बहुमानः क्षितिभुजाम् ।
तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो
विषादे कर्त्तव्ये विदधति जड़ाः प्रत्युत मुदम् ॥२५॥

सैकड़ों हज़ारों राजा इस पृथ्वीको अपनी-अपनी कहकर चले गये, पर यह किसी की भी न हुई ; तब राजा लोग इसके स्वामी होनेका घमण्ड क्यों करते हैं ? दुःखकी बात है, कि छोटे-छोटे राजा छोटे-से-छोटे टुकड़ेके मालिक होकर अभिमानके मारे फूले नहीं समाते ! जिस बातसे दुःख होना चाहिये, मूर्ख उससे उल्टे खुश होते हैं ॥२५॥

इस पृथ्वी पर रावण और सहस्रबाहु प्रभृति एक-से-एक बढ़कर राजा हो गये, जिन्होंने त्रिलोकी अपनी अङ्गुली पर नचा डाली। वे कहते थे, कि हमारे बराबर जगत्में दूसरा कोई नहीं

=प्रसिद्ध। सुकवि=उत्तम कवि। निशद्यौस=रातदिन। अन्तर=फ़र्क़। एतेपर=इतने पर भी। मुखफेर हो=मुँह फेरोगे।

है। यह पृथ्वी सदा हमारे ही पास रहेगी। पर वे सब एक दिन इसे छोड़कर चल बसे; यह उनकी न हुई; वे इसे सदा न भोग सके। तब आजकालके छोटे-छोटे राजा, जो अपने तईं पृथ्वीपति समझ कर अभिमानके नशेमें चूर रहते हैं, इसके लिये लड़ते हैं, खून-ख़राबी करते हैं, क्या यह उनकी अज्ञानता नहीं है? उनकी यह छोटी सी प्रभुता—मलिकाई सदा-सर्वदा न रहेगी; यह बिजली कीसी चमक और बादल कीसी छाया है। इस पर घमण्ड करना बड़ी भूलकी बात है। महात्मा कबीर कहते हैं:—

चहूँदिशि पाका कोट था, मन्दिर नगर मँझार।
खिरकी-खिरकी पाहरु, गज बन्धा दरबार॥
चहूँदिशि तो योद्धा खड़े, हाथ लिये हथियार।
सब ही यह तन देखता, काल ले गया मार॥
आस-पास योद्धा खड़े, सबै बजावें गाल।
मञ्झ महल ते ले चला, ऐसा परबल काल॥

हे मनुष्य! मौतसे डर, अभिमान त्याग। किसी राजाकी नगरीके चारों तरफ पक्की शहरपनाह थी, उसका महल शहरके बीचों-बीच था, हरेक फाटककी खिड़की पर पहरेदार थे, दरबारमें हाथी बँधाथा, चारों तरफ मुसल्ला सिपाही-हथियार बाँधे हुए खड़े थे। आस-पास खड़े हुए योद्धा गाल बजाते ही रह गये और वह बलवान काल, ऐसा बन्दोबस्त होनेपर भी,

of battles. These small and narrow-minded kings are waited upon by needy whose mind are always in suspense whether they will be given something or not. Fie on the mean persons who hope to get a a little bounty from such givers who are so small and poor in heart themselves.

न नटा न विटा न गायना न परद्रोहनिबद्धबुद्धयः ।
नृपसद्मनि नाम के वयं कुचभारानमिता न योषितः ॥२७॥

न तो हम नट या बाज़ीगर हैं, न हम नचैये-गवैये हैं, न हमको चुगलखोरी आती है, न हमें दूसरोंकी बर्बादी की बन्दिशें बाँधनी आती हैं और न हम स्तनभारावनत स्त्रियाँ ही हैं ; फिर हमारी पूछ राजाओंके यहाँ क्यों होने लगी ? ॥ २७ ॥

राजाओंके दरबारोंमें नटों, बाज़ीगरों, नाचने-गाने वालों तथा पराये नाशकी तदबीरें करनेवालों, चुग़लख़ोरी करनेवालों, इधर-की-उधर लगानेवालों अथवा ऐसी सुन्दरियोंकी पूछ होती है, जो रूपवती हैं और जिनकी कमर उनके स्तनोंके भारसे लची जाती है—हममें इनमेंसे एक भी बात नहीं, फिर हमारा प्रवेश राजसभामें कैसे हो सकता है ? वहाँ तो उन्हींकी पूछ है—उन्हींका आदर है—जो उनकी विषय-वासनाएँ पूरी करते हैं ।

दोहा ।

नट भट विट गायन नहीं, नहिं बादिन के माहिं ।
कौन भाँति भूपति मिलन, तरुणी भी हम नाहिं ? ॥२७

नट=कलाबाज़, नाचनेवाला । भट=योद्धा । विट=कुटना, राँड

27. We are neither jugglers nor dancers or musicians, nor are our minds well-versed in scheming other people's fall. We are not even women walking low with the burden of their breasts. Then what should be our business in the palaces of kings who welcome only such persons as are ready to help them in gratifying their desires ?

पुरा विद्वत्तासीऽदुपशमवतां क्लेशहतये
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्धैय विषयिणाम् ।
इदानीं तु प्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखा
नहो कष्टं साऽपि प्रतिदिनमधोऽधः प्रविशति ॥२८॥

पहले समयोंमें, विद्या केवल उन लोगोंके लिये थी, जो मानसिक क्लेशोंसे छुटकारा पाकर चित्तकी शान्ति चाहते थे। इसके बाद विषय-सुख चाहने वालोंके कामकी हुई। अब तो राजा लोग शास्त्रोंको सुनना ही नहीं चाहते; वे उससे पराङ्मुख हो गये हैं; इसलिये वह दिन-ब-दिन रसातल को चली जाती है। यह बड़े ही दु:खकी बात है ! ॥२८॥

पहले ज़मानेमें, जो विद्या शान्तिकामी लोगोंके अशान्त चित्तोंको शान्त करने, उनकी मनोवेदनाओंको दूर करने और उनको शोक-तापकी आगमें जलनेसे बचानेके काम आती थी,

---

मिलानेवाला। गायन=गवैया। वादी=चुग़लख़ोर। भूपति=राजा। तरुणी=जवान औरत।

होते-होते वही विद्या विषय-सुख भोगनेका ज़रिया हो गई। लोग भाँति-भाँतिकी विद्यायें सीखकर राजाओं और धनियोंको खुश करते और उनसे धन पाकर स्वयं विषय-सुख भोगते थे। यहाँ तक तो ख़ैर थी; किन्तु अब राजा लोग ऐसे हो गये हैं कि, वह विद्या और विद्वानोंकी ओर नज़र उठाकर भी नहीं देखते, पण्डितोंसे धर्मशास्त्र नहीं सुनते; इसलिये अब कोई विद्या नहीं पढ़ता। क़द्र न होनेसे, विद्या अब अधोगतिको प्राप्त होती जाती है। क्या यह दुःखका विषय नहीं है?

दोहा।

विद्या दुखनाशक हती, फेरि विषय-सुख दीन।
जात रसातल को चली, देखि नृपन्ह मतिहीन ॥२८॥

28 Formerly learning was only meant for the pacification of the mental troubles of those who longed for peace of mind alone. Later on, it became an instrument for pleasure-seeking persons to gain the objects of their pleasure. Now-a-days the kings having become unmindful of listening to the holy books which were expounded to them by learned men it is painful to think that the same learning is daily sinking down and down into oblivion.

हती=थी। फेरि=फिर। दीन=दिये। रसातल=पाताल। नृपन्ह=राजाओंको। मतिहीन=निर्बुद्धि।

स जातः कोऽप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं
कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलंकारविधये ।
नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना
नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः ॥२६॥

प्राचीन कालमें ऐसे पुरुष हुए हैं, जिनकी खोपड़ियोंकी माला बनाकर स्वयं शिवने श्रृंगारके लिये अपने गलेमें पहनी । अब ऐसे लोग हैं, जो अपनी जीविका-निर्वाहके लिये सलाम करने वालोंसे ही प्रतिष्ठा पाकर, अभिमानके ज्वर (मद) से गरम हो रहे हैं ॥२६॥

दोहा ।

ऐसेहू जग में भये, मुण्डमाल शिव कीन ।
धनलोभी नर नवत लखि, तुमको मदज्वर दीन ॥२९॥

29. There have been even such great men before, that their skulls were made into a wreath and worn round his neck for the sake of adornment by the great Shiva Himself. What should we think of the boundless vanity of people who become so proud of their position now-a-days even if they are greeted respectfully by a few persons desirous of conducting their living somehow or other ?

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावदित्थं
शूरस्त्वं वादिदर्पज्वरशमनविधावक्षयं पाटवं नः ।

मुण्डमाल = मुण्डोंकी माला ; खोपड़ियोंकी माला । नवत लखि = झुकते हुए या सलाम करते हुए देखकर ।

सेवन्ते त्वां धनान्धा मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामा
मय्यप्यास्था न चेत्तत्त्वयि मम सुतरामेष राजन्गतोऽस्मि ॥३०॥

यदि तुम धनके स्वामी हो, तो हम वाणीके स्वामी हैं। यदि तुम युद्ध करनेमें वीर हो, तो हम अपने प्रतिपक्षियोंसे शास्त्रार्थ करके उनका मद-ज्वर तोड़ने में कुशल हैं। यदि तुम्हारी सेवा धन-कामी या धनान्ध करते हैं, तो हमारी सेवा अज्ञान-अन्धकारका नाश चाहनेवाले, शास्त्र सुननेके लिए करते हैं। यदि तुम्हें हमारी ज़रा भी ग़रज़ नहीं है, तो हमें भी तुम्हारी बिल्कुल ग़रज़ नहीं है। लो, हम भी चलते हैं ॥३०॥

छप्पय।

तुम अवनी के ईश, ईश हमहूँ वाणीके।
तुम हौ रण में धीर, बीर गाढे अति जीके।
त्योंही विद्यावाद करत, हमहूँ नहिं हारे।
प्रतिपक्षके मान मार, अपने बिस्तारे।
धन-लोभी नर सेवत तुम्हें, हमको शिव श्रोता भले।
तुमको न हमारी चाह, तो हमहूँ ह्यांसे उठ चले ॥३०॥

30. O king, if thou art the lord of the wealth, we too are the lord of speech. If thou art brave in fight, our pluck too is unans-

---

अवनी = पृथ्वी। ईश = स्वामी। विद्यावाद = शास्त्रार्थ। प्रतिपक्षी = विपक्षी = मुख़ालिफ़। श्रोता = सुनने वाले। ह्यांसे = इस जगहसे।

werable in breaking down the vanity of our adversary in literary discussions. It thou art served by men hankering after wealth, we too are waited upon by people who are desirous of listening to our learned discourses for the sake of dispelling the ignorance from their minds. If thou dost not care for us, we too cherish no regard for thee. Look, we are off ?

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किंचित्किंचिद्बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥२१॥

जब मैं बहुत थोड़ासा जानता था, तब हाथीके समान मदसे अन्धा हो रहा था ; मैं समझता था, कि मैं सर्व्वज्ञ हूँ। जब मुझे बुद्धिमानोंकी सुहबतसे कुछ मालूम हुआ ; तब मैंने समझा, कि मैं तो कुछ भी नहीं जानता। मेरा झूठा मद ज्वरकी तरह उतर गया ॥२१॥

जो लोग बहुत थोड़ा ज्ञान रखते हैं, समझते हैं कि, हम सब जानते हैं—दुनियाकी सारी अक्ल हममें ही है, हमारे सिवा और सब पशु हैं। अल्पज्ञताके कारण उन्हें बड़ा घमण्ड रहता है ; किन्तु जब वे बुद्धिमान् और विद्वानोंकी सुहबतमें आते हैं और कुछ सीख जाते हैं ; तब वे समझते हैं, कि हम तो कुछ भी नहीं जानते थे, हमारा अभिमान मिथ्या था। उस समय उनका अभिमान हवा हो जाता है।

उस्ताद ज़ौक़ने भी ठीक ऐसी ही बात कही है :—

हम जानते थे, इल्म से कुछ जानेंगे।
जाना तो यह जाना, कि न जाना कुछ भी।

वाल्टेयर नामक पाश्चात्य विद्वान्ने भी ऐसी ही बात कही है—"The more we have read, the more we have learned, the more we have medicated, the better conditioned we are to affirm that we know nothing." अधिकाधिक पढ़ने, सीखने और विचारनेसे हमें कहना पड़ता है कि, हम तो कुछ भी नहीं जानते। किसीने ठीक ही कहा है—"अल्प विद्यो महागर्वी" थोड़ी विद्यावाला बहुत घमण्डी होता है। पर जब वह विद्वानोंकी संगतिसे और सीखता समझता है, तब उसका नशा किरकिरा हो जाता उसे मानना पड़ता है कि, मैं तो एकदम मूर्ख हूँ—मैं तो अभी कुछ भी नहीं जानता।

छप्पय।

जब हों समझौ नेक, तबहि सर्वज्ञ भयो हौं।
जैसे गज मदमत्त, अंधता छाय गयो हौं।
जब सतसंगति पाय, कछुक हों समझन लाग्यौ।
तबहिं भयो अति गूढ, गर्व गुणको सब भाग्यौ।

हों=मैं। नेक=थोड़ासा। सर्वज्ञ=सब जाननेवाला। गज=हाथी।

ज्वर चढ़त-चढ़त अति ताप ज्यों; उतरत, सीतल होत तन।

त्योंही मनकौ मद उतरिगौ, लियौ शील-सन्तोष-पन ॥३१॥

31. As long as I knew only very little I was blind with madness like an elephant and my mind was filled with the idea that I knew all. But when I came to learn a little by intercourse with wise men, my false conceit vanished away with the realisation that I knew nothing,

अतिक्रान्तः कालो लटभललनाभोगसुभगो
भ्रमन्तः श्रान्ताः स्मः सुचिरमिह संसारसरणौ ।
इदानीं स्वःसिन्धोस्तटभुवि समाक्रन्दनगिरः
सुतारैः फूत्कारैः शिवशिवशिवेति प्रतनुमः ॥३२॥

जेवरोंसे सजी हुई स्त्रियोंके भोगने-योग्य जवानी चली गई ; और हम चिरकाल तक विषयोंके पीछे दौड़ते-दौड़ते थक भी गये। अब हम पवित्र जाह्नवी-तट पर, (ललचाने वाली) स्त्रियोंकी निन्दा करते हुए, शिव-शिव जपेंगे ॥३२॥

जिस पुरुषको, स्त्रियोंकी असलियत मालूम हो जानेसे, विरक्ति हो गयी है ; वह कहता है—अब हमारी स्त्रियोंके भोगने-योग्य अवस्था—जवानी चली गई। अब वह लौटकर आयेगी नहीं, और यह बुढ़ापा जायगा नहीं। यह बला जवानोंमें ही

मदमत्त=मतवाला। कछुक=कुछ। हौं=मैं। तबहिं=तभी। सीतल=शीतल=ठण्डा। तन=शरीर। गर्वगुणको=विद्या या गुणका घमण्ड।

अच्छी लगती है—यह बीमारी जवानीमें ही ज़ोर करती है। किसीने ठीक ही कहा है:—

इश्क़का जोश है जब तक, कि जवानीके हैं दिन।
यह मर्ज़ करता है शिद्दत, इन्हीं अय्याममें ख़ास॥

अब तो बुढ़ापेका दौरदौरा है, इस उम्रमें हम नाज़नियोंके साथ ऐश कर भी नहीं सकते। इसके सिवा, अब हम सावधान भी हो गये हैं। हमने बेवक़ूफ़ी छोड़ दी है। हम बहुत दिनोंतक विषयोंमें लीन रहे, हमने बहुत कुछ विषय-भोग भोगे; अब हम उनसे थक गये, उनसे हमारा जी ऊब गया। उनसे हमें कुछ भी सुख नहीं मिला। इसलिये अब हम गङ्गाजीके किनारे बैठकर, संसार-बन्धनकी मूल और नरककी नसैनी सुन्दरियोंकी ममता छोड़, शिवसे प्रीति करेंगे और दिन-रात उन्हींका पवित्र एवं कल्याणकारी नाम जपेंगे, जिससे हमारा अन्तकाल तो सुधर जाय।

दोहा।

रमणकाल यौवन गयो, थक्यो भ्रमत संसार।
देहुँ गंगतट शेष वय, शिव-शिव जपत विसार॥३२॥

इश्क़=प्रेम। मर्ज़=रोग। शिद्दत=ज़ोर। अय्याम=दिन। रमणकाल=स्त्री-भोग करनेका समय। यौवन=जवानी। भ्रमत=भटकते-भटकते। गंगतट=गंगाके किनारे। शेष वय=बाक़ी उम्र।

32. The time of our youth, when we were fit for enjoying the company of jewel-bedecked women, has gone. We are tired of hankering after the pleasures of the world for a long time, Now we will pass our days on the holy banks of the heavenly Ganges cursing the misleading guiles of women and repeating the name of the Great Shiva in prayer.

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थं प्रयातेऽर्थिनि
क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने ।
युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयः-
पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरदरीकुञ्जेनिवासः क्वचित् ॥ ३३ ॥

जब लोगोंमें इज्ज़त-आबरू न रहे; धन नाश हो जाय; याचक लौट-लौट कर जाने लगें ; भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र और नाते-रिश्तेदार मर जायँ ; तब बुद्धिमानको चाहिए, कि किसी ऐसे पर्वत की गुहाके कोनेमें जा बसे, जिसके पत्थर गंगाजीके जलसे पवित्र हो रहे हों ॥३३॥

जब लोगोंमें अपना मान न रहे, लोग नफ़रतकी नज़रसे देखने लगें, अपनी धन-दौलत जाती रहे ; जो याचक पहले कुछ पाते थे, वे अब निर्धनताके कारण विमुख हो-होकर लौट जाते हों ; भाई-बन्धु और स्त्री-पुत्र प्रभृति नातेदार दूसरी दुनियाको चले गये हों, तब तो बुद्धिमान्को चाहिये कि संसारको त्याग दे ; इसमें मोह न रक्खे और किसी ऐसे पहाड़की गुफामें जा

रहे, जिसके पत्थरोंको पवित्र गङ्गाजल पखार-पखारकर पवित्र करता हो। ऐसी हालतमें, संसारमें रहना—वृथा समय खोना है। कम-से-कम उस समय तो बुद्धिमान् एकान्तमें बैठकर, सब तरहकी आशा-तृष्णा छोड़कर, भगवान्‌के चरणकमलोंमें मन लगावे।

दोहा।

गयो मान यौवन सुधन, भिक्षुक जात निराश।
अब तौ मोकों उचित यह, श्रीगंगा तट बास ॥३३॥

33. When all our respect has gone, our riches have flown away, when the poor and the needy who came to us for help before and were given what they wanted have begun to be sent away with refusal, when all our relations and dear ones have left this world, it is but desirable for a wise man to take up his abode somewhere in the corner of some mountain-cave whose stones are washed by the holy waters of the Ganges.

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा
प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदयक्लेशकलिलम् ॥
प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणि गुणे
विमुक्तः संकल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते ॥३४

हे मलिन मन! तू पराये दिलको प्रसन्न करनेमें किसलिए लगा रहता है? यदि तू तृष्णाको छोड़कर सन्तोष करले, अपने

में ही सन्तुष्ट रहे, तो तू स्वयं चिन्तामणि-स्वरूप हो जाय। फिर तेरी कौनसी इच्छा पूरी न हो? ॥३४॥

मन ही सब कामोंका कर्त्ता है। सभी इन्द्रियाँ मनके ही अधीन और मनकी ही अनुगामिनी हैं। मन ही बन्धन और मोक्षका कारण है। मनुष्य मनसे ही पाप-पुण्य और दुःख-सुख प्रभृतिका भागी होता है। मन ही मनुष्यको बुरा-भला, साधु-असाधु सब कुछ बना देता है। मनकी वृत्ति सुधरनेसे ही, मनके वासना-हीन होनेसे ही, सब कुछ त्यागनेसे ही, वह आत्मसाक्षात्कारके योग्य हो जाता है; इसी लिये कोई ज्ञानी पुरुष मनको सम्बोधन करके कहता है,—

"अरे मन! तू स्वयं तो मलिन और दुःखके भारसे दबा हुआ है; फिर तू औरोंके दिल खुश करनेकी इतनी कोशिशें क्यों करता है, क्यों आफ़तें उठाता है, क्यों मान खोता है और क्यों अपमान सहता है? इससे तुझे क्या लाभ होगा? मेरी बात माने तो तू इच्छाको त्याग दे, किसी भी चीज़की इच्छा मत रख; तब तुझे शान्ति मिलेगी—परमानन्दकी प्राप्ति होगी। जब तू चिन्तामणिकी भाँति स्वच्छ हो जायगा, जब तू अपने स्वरूपको पहचान जायगा; तब तुझे आत्मसाक्षात्कार हो जायगा, तुझे ब्रह्मज्ञान हो जायगा, तू ब्रह्मके प्रेममें लीन हो जायगा, हर्ष-विषाद और शोक-मोह तेरे पास न आवेंगे, अष्ट-सिद्धि और नवनिद्धि तेरे सामने हाथ बाँधे खड़ी रहेंगी। उस समय तेरी कोई अभिलाषा पूरी हुए बिना बाक़ी न रहेगी।

इसी लिये कहता हूँ, कि तू दूसरोंको राज़ी करनेकी अपेक्षा अपने तईं ही राज़ी कर, इससे तुझे निश्चय ही उसकी प्राप्ति होगी, जिसके समान त्रिलोकीमें और कोई नहीं है। जिस समय उसकी अनुपम छवि तेरी आँखोंमें समा जायगी, उस समय तुझे और कुछ अच्छा न लगेगा; केवल वही अच्छा लगेगा। महाकवि रहीमने कहा है—

प्रीतम-छवि नयनन बसी, पर-छवि कहाँ समाय।
भरी सराय "रहीम" लखि, आप पथिक फिर जाय॥

जब आँखोंमें प्यारे कृष्णकी सुन्दर मनमोहिनी छवि समा जाती है, तब उनमें और किसीकी छवि समा नहीं सकती। जबतक नयनोंमें मुरली मनोहरकी छवि नहीं समाती, नयन उसकी छविसे ख़ाली रहते हैं, तभीतक मामूली छवि उनमें समाती रहती हैं। जिस तरह सरायको भरी हुई देख कर, उसमें कोठरियाँ ख़ाली न पाकर, मुसाफिर लौट जाते हैं; उसी तरह नयनोंमें मनमोहनकी बाँकी छवि देखकर और संसारी मिथ्या ख़ूबसूरतियाँ नयनोंके पास भी नहीं फटकतीं। जब दिलमें परम प्यारे कृष्णका डेरा लग जाता है, तब उसमें सुन्दरी कामिनियों और लक्ष्मी प्रभृति किसीको भी स्थान नहीं मिलता; अर्थात् दिलको उसके मुक़ाबलेमें संसारके अच्छे-से-अच्छे पदार्थ—स्त्री-पुत्र और धन-दौलत प्रभृति—तुच्छातितुच्छ जँचते हैं।

मतलब यह है कि, मनुष्य अज्ञानतासे भटकता है, अलीक सुख पानेके लिये वृथा नीचोंकी खुशामद करता है। जिस सुखके लिये वह इतनी आफ़तें उठाता है, उस सुखका सच्चा सोता स्वयं उसके दिलमें मौजूद है। किसी पाश्चात्य विद्वान्ने ख़ूब कहा है—"The source of true happiness is inherent in the heart; he is a fool who seeks it elsewhere" **सच्चे सुखका सोता दिलके अन्दर मौजूद है। जो उसे अन्यत्र खोजता-फिरता है, वह मूर्ख है। निश्चय ही सुख मनमें है और मनके निरोधसे वह मिलता है। जिसका चित्त स्थिर है, उसे सदा सुख है; जिसका चित्त स्थिर नहीं, उसे सुख नहीं; अतः मनुष्यो! भटकना छोड़कर सन्तोषकी शरण गहो; निश्चय ही आपको अपने भीतर ही परम सुख-शान्ति मिलेगी।**

दोहा।

तूही रीझत क्यों नहीं, कहा रिझावत और ?।
तेरेही आनन्दसे, चिन्तामणि सब ठौर ॥३४॥

34. O my unhappy mind, why dost thou try to enter into the hearts of others by doing thy utmost to please them while thou art thyself heavy with the burden of afflictions. If thou becomest contented by giving up thy desires, wilt not thou gain all thou wantest, when all the good qualities of a pure mind are produced within thyself like a Chintamani which has the power of giving everything that a man desires?

भोगे रोगभयं कुलेच्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाः भयम् ।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतांताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥३५॥

विषयोंके भोगनेमें रोगोंका डर है, कुलमें दोष होनेका भय है, धनमें राजका भय है, चुप रहनेमें दीनताका भय है, बलमें शत्रुओंका भय है,सौन्दर्य्यमें बुढ़ापे का भय है, शास्त्रोंमें विपद्वियोंके वाद का भय है, गुणोंमें दुष्टोंका भय है, शरीरमें मौतका भय है ; संसारकी सभी चीज़ोंमें मनुष्योंको भय है। केवल "वैराग्य"में किसी प्रकारका भय नहीं है ॥३५॥

यदि मनुष्य विषय-सुखोंको भोगता है, तो उसे रोगोंका भय रहता है। यदि चन्दन आदि शीतल पदार्थोंका लेपन किया जाता है, तो बादी हो जाती है। यदि स्त्रीसे मैथुन किया जाता है, तो बल घटता है और बहुत करनेसे क्षय रोग हो जाता है। यदि उच्च कुलमें जन्म होता है, तो सदा उसके पतन या उसमें कोई दोष होनेका डर लगा रहता है, क्योंकि कुलमें किसीके भी दुराचारी होनेसे कुलका नाम बदनाम हो जाता है अथवा प्लेग वगैरःके होनेसे कुलका नाम डूब ही जाता है। इसी तरह अधिक धन होनेसे राजाका डर लगा रहता है, कि कहीं राजा सारा धन न छीन ले। चुप

रहनेमें अप्रतिष्ठा और दीनताका भय रहता है, क्योंकि चुप रहने वालेको सभी दीन-हीन समझ लेते हैं। संग्राममें शत्रुओं का भय रहता है। यदि सूरत सुन्दर होती है, तो सूरतके बिगड़ जानेका भय रहता है; बुढ़ापेमें रूप-रङ्ग नष्ट हो ही जाता है। शास्त्रोंके जानने वालेको प्रतिपक्षियोंका भय रहता है, क्योंकि प्रतिपक्षी सदा उसे नीचा दिखाना और उसका अपमान करना चाहते हैं। पुण्य या सद्गुणोंमें दुष्टोंका भय रहता है; दुष्ट लोग अच्छे-से-अच्छे कामोंमें दोष निकाल कर, उनका उल्टा अर्थ लगाने लगते हैं; वे निन्दा या अपवाद करके गुणीके गुणोंका मूल्य घटानेकी भरपूर चेष्टा किया करते हैं। शरीरको मृत्युका भय रहता है, क्योंकि कायाका नाश अवश्यम्भावी है। जो शरीरमें आया है, जिसने यह शरीर रूपी वस्त्र पहना है; उसे अपना शरीर छोड़ना ही होगा—यह चोला बदलना और नया पहनना ही होगा।

इस तरह विचार करनेसे यही सिद्ध होता है, कि मनुष्य को सांसारिक सभी पदार्थोंमें भय-ही-भय है। फिर भय किस में नहीं है? केवल "वैराग्य या त्याग अथवा संन्यास" ही ऐसा है, जिसमें किसी भी बातका भय नहीं है।

यों तो संसारमें ज़रा भी सुख नहीं—सर्वत्र भय-ही-भय है; पर दुष्ट और नीचोंका भय सबसे भारी है। दुष्टोंसे तंग होकर ही, महाकवि ग़ालिब आदमियोंकी बस्तीमें भी बसना पसन्द नहीं करते और कहते हैं:—

रहिए अब ऐसी जगह चलकर, जहाँ कोई न हो।
हमसखुन कोई न हो, और हमज़बाँ कोई न हो ॥ १ ॥
बे दरो दीवार सा, इक घर बनाना चाहिए।
कोई हमसाया न हो, और पासबाँ कोई न हो ॥ २ ॥
पड़िए गर बीमार, तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइए, तो नोहाखाँ कोई न हो ॥ ३ ॥

संसारमें ज़रा भी सुख नहीं है, सर्वत्र भय-ही-भय है। एक को एक खानेको दौड़ता है। जिसे देखो वही जला मरता है। यहाँ ईर्षा-द्वेषका बाज़ार ज़ोरोंसे गर्म रहता है, इस वास्ते ऐसी जगहमें चलकर रहना चाहिये, जहाँ कोई न हो; हमारी बात कोई न समझे और हम किसीकी न समझें। मकान भी ऐसा ही हो, जिसमें दरवाज़े और दीवार न हों; अर्थात् साफ जङ्गल हो। न हमारा कोई साथी हो, न पड़ोसी; अगर बीमार हो जायँ, तो कोई ख़बर लेनेवाला और तीमारदारी या सेवा-शुश्रूषा करनेवाला न हो। अगर सौभाग्यसे मर जायँ, तो कोई शोक करनेवाला भी न हो।

हमसखुन=हम-जैसा कलाम कहने वाला। हमज़बाँ=हमारी भाषा बोलने वाला। दर=द्वार, दरवाज़ा। दरो=दर+ओ=दरवाज़ा और। दीवार=भीत। हमसाया=पड़ौसी। पासबाँ=साथ रहने वाला। गर=अगर। तीमारदार=सेवा-टहल करनेवाला। नोहाखाँ=शोक करने वाला, रोनेवाला।

महात्मा सुन्दर दासने भी कहा है :—

सर्प डसै, सु नहीं कछु तालक ;
बीछु लगै, सु भलो करि मानौ ॥
सिंह हु खाय, तु नाहिँ कछू डर ;
जो गज मारत, तौ नहिं हानौ ॥
आगि जरौ, जल बूड़ि मरो, गिरि
जाइ गिरौ ; कछु भै मत आनौ ॥
"सुन्दर" और भले सब ही यह ;
दुर्जन-संग भलो जिन जानौ ॥

सुन्दरदासजी कहते हैं, अगर आपको साँप डसे, बिच्छू काटे और हाथी मारे तो कुछ हर्ज मत समझो। आगमें जलने, जलमें डूबने और पहाड़से गिरनेमें भी कोई हानि न समझो, ये सब भले हैं—इनसे हानि नहीं ; हानि और ख़तरा है दुष्टकी संगतिमें, इसलिये दुर्जनकी सुहबत मत करो। उसकी संगति अच्छी नहीं ; पर आजकल दुष्टोंकी बहुतायत है ; क़दम-क़दम पर दुर्जनोंके दर्शन होते हैं। इसलिये संसारसे दुःखित और उदासीन

सर्प डसे=साँप काटे। कछु तालक=कुछ चिन्ता। बीछु=बिच्छू। लगे=काटे। भलौ करि मानौ=अच्छा समझो। सिंह हु=सिंह भी, शेर भी। तु=तो। गज=हाथी। हानौ=हानि=नुक़सान। आगि=आग। जरौ=जलो। बूडि मरो=डूब मरो। गिरि=पर्वत। भै=भय, डर। आनौ=समझो। जिन=मत।

मनुष्यके लिए वनमें जाकर रहनेमें ही शान्ति है। इन पंक्तियोंके लेखकको भी, जो अनेक बार ऐसा ही चाहने लगता है, इस संसारसे दिल लगाना—इसमें रहना, अच्छा नहीं मालूम होता; पर, बक़ौल उस्ताद ज़ौक़, कुछ मजबूरी ऐसी आ पड़ती है, कि सरता नहीं। आपने फरमाया है,—

बेहतर तो है यही, कि न दुनियासे दिल लगे।
पर क्या करें, जो काम न बे-दिल्लगी चले॥

संसारसे दिल लगाना अच्छा नहीं; पर क्या करें, बिना दिल लगाये चलता भी तो नहीं।

सारांश यह है कि, यदि सच्ची सुख-शान्ति चाहते हो; तो स्त्री-पुत्र, धन-दौलत और ज़मीन-जायदादकी ममता छोड़ कर वैराग्य ले लो; यानी इन सबको छोड़कर वनमें जा बसो और एक मात्र परमात्मामें मन लगाओ। संसारको त्यागनेके सिवा, सुखकी और राह नहीं। हमने अनेक बार संसार त्यागनेका इरादा किया, पर हमारे अज्ञानी मनने हमें ऐसा करनेसे बारम्बार रोका। हम मनकी बातोंको विचारके काँटे पर तोलते रहे। अब हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि, मनकी सलाह ठीक नहीं। हमारा गन्दा मन हमें शैतानकी तरह गुमराह कर रहा है। जिस सुखकी खोजमें हमने ५१ वर्ष

बेहतर=भला। न दुनियासे दिल लगे=जगज्जालमें मन न फँसे; दुनियादारीमें न फँसे। बे-दिल्लगी=बिना दिल लगाये॥

योंही गवां दिये, उस सुखका लेश भी हमें न मिला। इस जगत्में, हमें सदा शोक-तापोंसे जलना पड़ा। हमारी सुबुद्धि हमसे कह रही है कि, शैतानके भरमानेमें मत आओ। जो ज़रूरी काम करने हैं, उन्हें जल्दी-से-जल्दी निपटा कर, सबको त्याग वनको चले जाओ और मनको शुद्ध करके परमात्मा में लगाओ। देर न करो; कहीं ऐसा न हो कि, तुम अपने काम ही निपटाते रहो और काल आ पहुँचे; और तुम्हारे मनकी मनमें रह जाय। मनकी राह पर न चलो, बल्कि मनको अपनी राह पर चलाओ। "सच्चा सुख वैराग्यमें ही है" इस महावाक्यको क्षणभर भी न भूलो।

छप्पय।

बहुत भोगको संग, तहाँ इन रोगनको डर।
धनहूँ को डर भूप, अग्नि अरु त्योहीं तस्कर।
सेवामें भय स्वामि, समरमें शत्रुनको भय।
कुलहूमें भय नारि, देहको काल करत त्तय।
अभिमान डरत अपमान सों,गुन डरपत सुन खल-शबद।
सब गिरत परत भयसों भरे,अभय एक "वैराग्यपद" ॥३५॥

35. In the enjoyment of pleasure there is always the fear of disease. Membership in a high family is accompanied by thy fear

---

भूप=राजा। तस्कर=चोर। स्वामि=मालिक। समर=लड़ाई। नारी=स्त्री, करन त्तय=नाश करता है। अभय=निर्भयता।

of the latter's downfall. Wealth is ever haunted by the fear of kings. Silence is associated with the fear of neglect and dishonour. In strength there is the fear of enemies. A handsome appearance is always in fear of being disfigured in old age. Learning and science have the fear of antagonistic discussions. Good qualities suffer from the fear of evil-minded persons, who will do their best to lower the value of a man possessed of them by slander etc. The body is beset with the fear of death. Thus everything in this world pertaining to man is associated with fear. Renunciation alone is free from such associations.

अमीषां प्राणानां तुलितबिसिनीपत्रपयसां
कृते किं नास्माभिर्विगलितविवेकैर्व्यवसितम् ।।
यदाढ्यानामग्रे द्रविणमदनिःशंकमनसां
कृतं वीतव्रीडैर्निजगुणकथापातकमपि ।। ३६

कमल-पत्र पर जलकी बूँदोंके समान चञ्चल प्राणोंके लिए; हमने बुरे और भलेका विचार न करके, क्या-क्या काम नहीं किये ! हमने धन-मदसे मतवाले लोगोंके सामने निर्लज्ज होकर अपने गुणोंके कीर्त्तन करनेका पाप तक किया ॥ ३६ ॥

अथवा—

कमलके पत्तेपर ठहरी हुई जलकी बूँदके समान क्षणभङ्गुर प्राणों के लिये ; मूर्खतावश, धनमदसे निःशंक धनी मनुष्योंके सामने, वेहया होकर, अपनी तारीफ आप करनेका घोर पाप करनेवाले हमलोगोंने कौनसा पाप नहीं किया ?

कहने वाला कहता है कि इस जीवनके लिए, जो नितान्त क्षणभंगुर है, जिसकी स्थिरता कुछ भी नहीं हैं, मैंने कोई उपाय —कोई उद्यम उठा न रक्खा। और तो और; इस क्षुद्र जीवनके लिए, अपनी तारीफ आप करनेका महापातक भी मैंने किया; और वह भी ऐसे लोगोंके सामने, जो धनके मद से मतवाले हो रहे थे और जो किसी की ओर आँख उठाकर भी न देखते थे। हाय! ये सब अकर्म करने पर भी मेरा मनोरथ सिद्ध न हुआ!

संसारमें अपने गुणोंका आप बखान करना—बड़ा भारी पाप समझा जाता है। आत्मश्लाघा या आत्मप्रशंसा वास्तवमें बहुत ही बुरी है। जिसने आत्मश्लाघा की, उसने कौनसा पाप नहीं किया? इसीसे कोई भी बुद्धिमान ऐसा नहीं करता; परन्तु ज़रूरत इस पापको भी करा लेती है। जब किसी तरह कोई काम नहीं होता, कोई और तारीफ करनेवाला नहीं मिलता; तब मनुष्य, क्षणस्थायी जीवनके लिए, इस निन्द्य-कर्मको भी करता है।

जीवन क्षणभंगुर है।

यह प्राण उसी तरह चञ्चल हैं, जिस तरह कमलके पत्ते पर पानीकी बूँद। यह जीवन बादलकी छाया, बिजलीकी चमक और पानीके बबूलेकी तरह है। जीवनकी चंचलता पर महात्मा कबीर कहते हैं:—

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुसकी जात ।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥
"कबिरा" पानी हौज़का, देखत गया बिलाय ।
ऐसे जियरा जायगा, दिन दश ढीली लाय ॥

मनुष्य पानीके बुलबुलेकी तरह है। जिस तरह पानीका बुलबुला उठता और क्षण-भरमें नष्ट हो जाता है; उसी तरह आदमी पैदा होता और क्षण-भरमें ही नष्ट हो जाता है। यह मनुष्य उसी तरह अदृश्य हो जायगा, जिस तरह सवेरेका तारा देखते-देखते ग़ायब हो जाता है।

कबीरदास कहते हैं, जिस तरह देखते-देखते हौज़का पानी, मोरीकी राहसे निकल कर, बिलाय जाता है; उसी तरह यह जीवात्मा देहसे निकल जायगा; दस-पाँच दिनकी देर समझिये।

महात्मा शङ्कराचार्य जी ने भी कहा है :—

"नलिनीदलगत जलमतितरलम् ।
तद्वज्जीवनमतिशय चपलम् ॥"

"यह जीवन कमल-पत्र पर पड़े हुए जलकी तरह चञ्चल है।"

ऐसे चञ्चल जीवनके लिये अज्ञानी मनुष्य नीच-से-नीच कर्म करनेमें संकोच नहीं करता,—यह बड़ी ही लज्जाकी बात

बुदबुदा=बबूला। मानुस=आदमी। परभात=सवेरा। जियरा=जीव।

है। अगर मनुष्यको हज़ारों-लाखों बरसकी उम्र मिलती अथवा सभी काकभुशण्ड होते ; तो न जाने मनुष्य क्या-क्या पाप कर्म न करता ? बड़े ही नीच हैं, जो इस चन्द्रोज़ा ज़िन्दगीके लिए, तरह-तरहके पापोंकी गठरी बाँधकर, अपना लोक-परलोक बिगाड़ते हैं। मनुष्यो ! आँखें खोलकर देखो और कान देकर सुनो ! मिट्टी और पत्थर अथवा लकड़ी वगैरः की बनी चीज़ोंकी कुछ उम्र है ; पर तुम्हारी उम्र कुछ भी नहीं। अतः इस क्षणस्थायी जीवनमें पाप-कर्म न करो।

कुण्डलिया।

जैसे पंकजपत्र पर, जल चंचल ढरि जात।
त्योंही चंचल प्राणहू, तजि जैहें निज गात।
तजि जैहें निज गात, बात यह नीके जानत।
तोहु छाँडि विवेक, नृपनकी सेवा ठानत।
निज गुन करत बखान, निलजता उघरी ऐसे।
भूल गयो सतज्ञान, मूढ़ अज्ञानी जैसे ॥३६॥

पंकज पत्र = कमलका पत्ता। ढरि जात = ढलक जाता है। त्योंही = उसी तरह। तजि जैहें = छोड़ जायँगे। निज गात = अपना शरीर। नीके = अच्छी तरह। विवेक = विचार। सेवा ठानत = चाकरी करता है। निज गुन करत बखान = अपने गुण आप गाता है। सतज्ञान = असल ज्ञान, सच्चा ज्ञान।
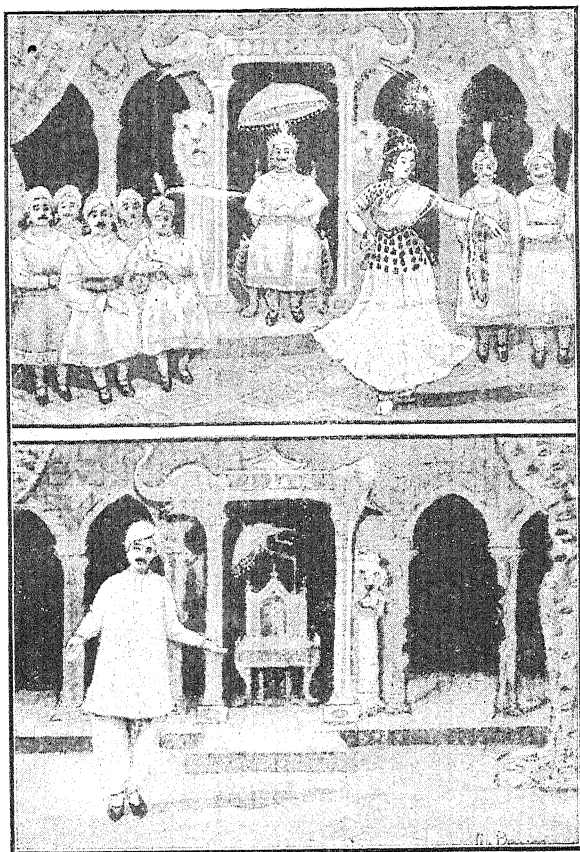
हे भाई ! कैसे कष्ट की बात है ! पहले यहाँ कैसा राजा राज करता था, उसकी राजसभा कैसी थी, उसके यहाँ कैसे-कैसे शूर सामन्त और सेना एवं चन्द्रानना स्त्रियाँ थीं, पर आज सब सूना है। सबको काल खा गया !! पृ० ११५

36, For the sake of prolonging our life-breath which is as restless as the drops of water lying on a lotus.leaf, what measures were left undone by us even discarding all discrimination between right and wrong ? So much so that we had to indulge in the sin of shameless self-praise in the presence of wealthy men whose mind is filled with extreme vanity and unscrupulousness.

भ्रातः कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्तचक्रं च
तत्पार्श्वे तस्य च साऽपि राजपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः ॥
उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः कथाः
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपदं कालाय तस्मै नमः ॥३७

ऐ भाई ! कैसे कष्ट की बात है ! पहले यहाँ कैसा राजा राज करता था, उसकी सेना कैसी थी, उसके राजपुत्रोंका समूह कैसा था, उसकी राजसभा कैसी थी, उसके यहाँ कैसी-कैसी चन्द्रानना स्त्रियाँ थीं, कैसे अच्छे-अच्छे चारण-भाट और कहानी कहनेवाले उसके यहाँ थे ! वे सब जिस कालके वश हो गये, उसी कालको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३७ ॥

कोई शख़्स किसी प्रतापी राजाकी राजनगरीको ऊजड़ देख कर शोक करता और कहता है कि, यहाँ का राजा बड़ा ज़बर्दस्त था। उसके पाँस अनगिन्ती सेना थी, उसके पास अच्छे-अच्छे शूर-सामन्त थे, उसके बड़े-बड़े शूरवीर राजपुत्र थे, उसके यहाँ चन्द्रमा को भी लजानेवाली स्त्रियाँ थीं, उसकी राजसभा इन्द्रकी सभाको भी मात करती थी, उसकी सभामें

एक-से-एक बुद्धिमान मन्त्री, चारण, भाट और विदूषक प्रभृति थे। एक दिन ये सब थे ; पर आज न वह राजा है, न राजनगरी है, न राजसभा है, न वह चतुरङ्गिणी सेना है, न वे शूरसामन्त हैं और न वे विधुवदनी मोहिनी स्त्रियाँ ही हैं! वे सब कहाँ गये ? उन सब को काल खागया ! आज उनका नाम-निशान भी संसारमें नहीं है! ओह! जो काल ऐसा बली है, जिसने उन सब को स्वप्नवत् कर दिया, मैं उस बली काल को ही नमस्कार करता हूँ। महात्मा कबीरदास कहते हैं :—

सातों शब्दज बाजते, घर घर–होते राग ।
ते मन्दिर ख़ाली परे, बैठन लागे काग ॥
परदा रहती पदमिनी, करती कुलकी कान ।
छड़ी जु पहुँची कालकी, डेरा हुआ मैदान ॥

जन मकानोंमें पहले तरह-तरहके बाजे बजते और गाने गाये जाते थे, वे आज ख़ाली पड़े हैं। अब उन पर कव्वे बैठते हैं।

जो पद्मिनी पहले परदेमें रहती थी और कुलकी कान के मारे बाहर न निकलती थी, उसीका आज काल के आने से मैदानमें डेरा हो गया है ; यानी सबके सामने मरघट में पड़ी है।

निश्चय ही संसार अनित्य और नाशमान् है। इस जगत्की

कोई भी चीज़ सदा न रहेगी। एक दिन अपनी-अपनी बारी आने से सभीका नाश होगा। इसी विषयमें महाकवि दाग़ कहते हैं—

है ज़वाल आमदा अजज़ा, आफ़रीनशके तमाम।
महर गर्दू है, चिरागे़ रहगुज़ारे बाद याँ॥

संसारके सभी पदार्थ अनित्य हैं, सभी नाशमान् हैं। जिसे सूर्य्य कहते हैं, वह भी एक ऐसा चिराग़—दीपक है, जो हवा के सामने रक्खा हुआ है और "अब बुझा-अब-बुझा" हो रहा है; तब औरोंकी तो बात ही क्या? इस संसारकी यही दशा है।

ये अनन्त जल-राशिपूर्ण महासागर और सुमेरु तथा हिमालय प्रभृति पर्वत भी एक दिन कालके कराल-गालमें समा जायँगे। देवता, सिद्ध, गन्धर्व, पृथ्वी, जल और पवन इन सबको भी काल खा जायगा। यम, कुबेर, वरुण और इन्द्रादिक महातेजस्वी देव भी एक दिन गिर पड़ेंगे। स्थिर ध्रुव भी अस्थिर हो जायगा। अमृतमय चन्द्रमा और महाप्रकाशमान् सूर्य्य ये दोनों भी नष्ट हो जायेंगे। जगत्के अधिष्ठाता ईश्वर, परमेष्ठी ब्रह्मा और महाभैरव-रूप इन्द्रका भी अभाव हो जायगा; तब संसारके साधारण प्राणियोंकी कौन गिन्ती है? एक दिन इस जगत्का ही अस्तित्व नहीं रहेगा, तब और किस की आस्था की जाय? यह जगत् ही भ्रममात्र है। इसमें अज्ञानी

को ही आस्था होती है। वही भोगों को सुख-रूप समझ कर उनकी तृष्णा करता और अपने तईं बन्धन में फँसाता है। ज्ञानी पुरुष इस संसारको मिथ्या और सार-हीन तथा नाश-मान् समझता है। वह तो केवल ब्रह्मको नित्य और अविनाशी समझ कर उसमें मग्न रहता है।

दोहा।

नृपति सैन जम्मति सचिव, सुत कलत्र परिवार।
करत सबन को स्वप्न-सम, नमो काल करतार॥३७॥

37. How painful, alas! O brother, is the fate of that great king, who was surrounded on all sides by his dependent chieftains who had such a brilliant court, such handsome women, such a host of haughty princes and such bards and story-tellers! Let us bow before the all-powerful Time through whose influence all those have now passed into oblivion.

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलुते
समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः॥
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना-
द्गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः॥३८॥

नृपति=राजा। सचिव=मंत्री। सुत=बेटा। कलत्र=स्त्री। स्वप्न-सम=सुपनेके समान। नमो=नमस्कार करता हूँ। काल-करतार=विधाता-काल।

जिनसे हमने जन्म लिया था, उन्हें इस दुनियासे गये बहुत दिन हो गये ; जिनके साथ हम बड़े हुए थे, वे भी इस दुनियाको छोड़कर चले गये। अब हमारी दशा भी रेतीले नदी-किनारेके वृक्षोंकी सी हो रही है, जो दिन-दिन जड़ छोड़ते हुए गिराऊ होते चले जाते हैं ॥३८॥

जिनसे हम पैदा हुए थे, उन्हें इस दुनियासे गये ज़माना गुज़र गया और जिन लोगोंके साथ हम जन्मे थे अथवा जो लोग हमारे समवयस्क थे, वे भी चल बसे ; जिन लोगोंके साथ हम पले, जिनके साथ हम खेले-कूदे, जिनके साथ हमने कारोबार किया, वे सब भी कालके गालमें समा गये। अब हमारा नम्बर भी आया ही समझिये—अब हम भी चलने ही वाले हैं। दिन-दिन हमारा शरीर क्षीण हुआ जाता है। हमारी दशा अब नदी-तटके बालूमें लगे हुए वृक्षों कीसी है, जिनके गिरने की संभावना हर घड़ी रहती है। हमारी ऐसी हालत है, फिर भी आश्चर्य है, कि हमारा माया-मोह नहीं छूटता! अब भी हमारा मन नहीं समझता और वह संसारी जञ्जालोंसे अलग होना नहीं चाहता! महात्मा कबीर भी यही कहते हैं। उनकी भी सुन लीजिये :—

बारी बारी आपनी, चले पियारे मित।
तेरी बारी जीवरा, नियरे आवे नित॥

माली आवत देखिकै, कलियाँ करी पुकार ।
फूली-फूली चुनि लईं, कल्ह हमारी बार ॥
साथी हमरे चलि गये, हम भी चालनहार।
कागदमें बाकी रही, तातें लागी बार ॥

बारी-बारीसे सभी प्यारे और मित्र चल बसे। अरे जीव ! अब तेरा नम्बर भी नित्य निकट आता-जाता है। मालीको आते देख कर, कलियोंने कहा—फूली-फूली तो आज चुन ली गईं, कल हमारी भी बारी है। हमारे साथी चले गये अब हम भी चलने वाले हैं। काग़जमें यानी खातेमें कुछ साँस बाक़ी रह गये हैं, इससे देर हो रही है ; यानी अपने शेष साँसों को पूरा करनेके लिए हम ठहरे हुए हैं।

संसारका यही हाल है, रोज़ ही यह तमाशा देखते हैं ; पर फिर भी हमें होश नहीं होता !

छप्पय ।

जो जन्मे हम संग, उतौ सब स्वर्ग सिधारे ।
जो खेले हम संग, काल तिनहुँ कहँ मारे ।

मिंत=मित्र। जीवरा=हे जीव ! नियरे=नज़दीक। नित=नित्य, रोज़। बार=बारी। चालनहार=चलने वाले, मरने वाले। बार=देर ॥

उतौ=वे तो। तिनहुँ कह=उनको भी। दीसत=दीखता है।

हमहूँ जरजर देह ; निकट ही दीसत मरिबो ।
जैसे सरिता-तीर-वृक्ष को, तुच्छ उखरिबो ।
अजहूँ नहिं छाँड़त मोह मन, उमग-उमग उरझो रहत ।
ऐसे अचेतके संग सों, न्याय जगत को दुख सहत ।३८॥

38. Those with whom we were born have long ere this passed away from this world. Those with whom we grew up have also shared the similar fate. Our condition now is like that of the trees growing on a sandy river-bank which are gradually crumbling away from day to day.

यत्रानेके क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र चान्ते न चैकः ॥
इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन्द्वाविवाक्षौ
कालः काल्या सह बहुकलः क्रीडति प्राणिशारैः ॥३९॥

जिस घरमें पहले अनेक लोग थे, उसमें अब एक ही रह गया है। जिस घरमें एक था, उसमें अनेक हो गये, पर अन्तमें एक भी न रहा। इससे मालूम होता है, कि काल देवता, अपनी पत्नी कालीके साथ, संसार-रूपी चौपड़में, दिन-रात-रूपी पासोंको लुढ़का-लुढ़का कर और इस जगत्के प्राणियोंकी गोटी बना-बना कर, खेल रहा है ॥३९॥

मरिबो = मरना ; मौत। सरिता = नदी। तीर = किनारा। अजहुँ = अब तक। उरझो = फसा।

जिस घरमें पहले पुत्र, पौत्र, पुत्र-वधू, पौत्र-वधू, पुत्री, दोहिते और दोहिती प्रभृति अनेक लोग थे, आज वह सूनासा हो गया है; उसमें आज एक ही आदमी नज़र आता है। जिस घरमें पहले एक आदमी था, उसका कुटुम्ब इतना बढ़ा कि सैकड़ों हो गये ; पर आज देखते हैं, उसमें एक भी नहीं है। घर का ताला लगा है, भीतर लम्बी-लम्बी घास उग आई है, दीवारें गिर रही हैं, छतें चू रही हैं और ईंटे दाँत दिखा रही हैं। अब उस घरमें चमगीदड़, उल्लू, साँप और बिच्छू प्रभृति रहते हैं। महात्मा कबीर कहते हैं—

दोहा

ऊँचा महल चिनाइया, सुबरन कली बुलाय।
ते मन्दिर ख़ाली परे, रहे मसाना जाय॥
मलमल खासा पहरते, खाते नागर पान।
टेढ़े होकर चालते, करते बहुत गुमान॥
महलन माँही पौढ़ते, परिमल अंग लगाय।
ते सुपने दीसे नहीं, देखत गये बिलाय॥

जिन्होंने ऊँचे-उचे महल चिनवाये थे और उनमें सुनहरी काम कराये थे, वे आज श्मशानमें चले गये हैं और उनके

सुबरनकली = सुनहरी कली-चूना। बुलाय = मँगा कर। ते = वे। मन्दिर = महल। मसाना = श्मशान। गुमान = घमण्ड। पौढ़ते = सोते। परिमल = खुशबू। दीसे = दीखे।

बनवाये हुए महल सूने पड़े हैं। जो मलमल और खासा पहनते थे, नागर-पान चबाते थे, अकड़-अकड़ कर टेढ़े-टेढ़े चलते थे, अभिमानके नशेमें चूर हुए जाते थे और बदनमें इत्र, फुलेल और सेण्ट प्रभृति लगाकर महलोंमें सोते थे, वे स्वप्नमें भी नहीं दीखते। देखते-देखते न जाने कहाँ ग़ायब हो गये!

छप्पय।

बहुत रहत जिहिं धाम, तहाँ एकहिको राखत।
एक रहत जिहिं ठौर, तहाँ बहुतहि अभिलाषत।
फेर एकहू नाहिं, करी तहँ राज दुराजी।
कालीके संग काल, रची चौपड़की बाजी।
दिनरात उभय पासा लिये, इहि विधिसौं क्रीड़ा करत।
सब प्राणी सोबत सार ज्यों, मिलत चलत बिछुरत मरत॥३९॥

39. In homes where there were many members before, there is only a single one left now i. e., out of innumerable members only one is survived. In families, which consisted of a single person at first but had multiplied afterwards, not a soul has been left in the end. Thus the changeable god of Time is playing at dice with his wife Kali, the goddess of destruction, using Day and Night as a pair of dice for casting and laying poor mortals at stake on each turn.

जिहिं=जिस। धाम=घर। तहाँ=उसमें। ठौर=जगह। उभय=दोनों। क्रीड़ा करत=खेलते हैं।

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं
गुणोदारान्दारानुत परिचयामः सविनयम् ॥
पिबामः शास्त्रौघानुतविविधकाव्यामृतरसा-
न्न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने ॥४०॥

हमारी समझमें नहीं आता, कि हम इस अल्प जीवन—इस छोटीसी ज़िन्दगीमें क्या-क्या करें अर्थात् हम गंगा-तट पर बस कर तप करें अथवा गुणवती स्त्रियोंकी प्रेम-सहित यथायोग्य सेवा करें अथवा वेदान्त शास्त्रका अमृत पियें या काव्यरस पान करें ॥४४॥

कहने वाला कहता है और ठीक ही कहता है—यह जीवन क्षणभरका है। इस चन्दरोज़ा ज़िन्दगीमें हम क्या-क्या करें ? काम तो अनेक हैं, पर समय थोड़ा है। गंगातट पर जाकर शिव-शिव की रट लगाना भी अच्छा है ; गुणवती सुन्दरियों के साथ मीठी-मीठी बातें बनाना, उनके सङ्ग रहना और उनके साथ रमण करना भी भला है। वेदान्त शास्त्रके मर्म को समझना और उसका अमृत-रस पीना या काव्य-रस पीना भी अच्छा है। अच्छे सब हैं और सभी करने योग्य हैं ; पर हमारी समझमें नहीं आता, कि एक क्षणभरकी ज़िन्दगीमें हम क्या-क्या करें ? मतलब यह है, कि मनुष्य-जीवन बहुत ही थोड़ा है। इसलिये मनुष्यको, जब तक दम रहे, सब तज कर

एकमात्र परमात्माका भजन करना चाहिये। कबीरदास कहते हैं—

यह तन काँचा कुम्भ है, माँहि किया रहवास।
"कबिरा" नैन निहारिया, नहीं पलककी आस॥
"कबिरा" जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल।
चेत सके तो चेतिये, मीच परी है ख्याल॥
"कबिरा" सुपने रैनके, उघरि आये नैन।
जीव परा बहु लूटमें, जागूँ तो लेन न देन॥
आजकाल कि पाँच दिन, जंगल होयगा बास।
ऊपर-ऊपर हल फिरै, ढोर चरेंगे घास॥

तुलसीदासजी कहत हैं—

"तुलसी" जगमें आइके, कर लीजे दो काम।
देवेको टुकड़ा भलो, लेवेको हरि-नाम॥
"तुलसी" राम-सनेह करु, त्यागु सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नौ, नौ के लिखत पहार॥

तन=शरीर। काँचा कुम्भ=कच्चा घड़ा। माँहि किया रहवास=भीतर जीव रहता है। नैन निहारिया=आँखोंसे देखा। मीच=मौत। सुपने रनके=रातके सुपने। उघरि आये=खुल गये। आजकाल कि पाँच दिन= आज, कल अथवा पाँच दिन बाद। ढोर=गाय भैंस प्रभृति मवेशी।

टुकड़ा=रोटीका टुकड़ा। रामसनेह करु=रामसे प्रेम कर। त्यागु सकल उपचार=सारे झंझट छोड़। घटत न अंक नौ=नौका अंक नहीं घटता—

जग ते रहु॰ छत्तीस ह्वै, राम-चरन छत्तीन।
"तुलसी" देखु विचारि हिय, है यह मतौ प्रवीन॥

यह मनुष्य-शरीर मिट्टीके कच्चो घड़ेके जसा है। इसीके अन्दर जीवात्मा रहता है। कबीरदासजी कहते हैं, आँखोंसे देखा है, एक क्षणकी भी आशा नहीं। खुलासा यह कि, जिस शरीरमें जीवात्मा रहता है, वह कच्चो घड़ेके समान क्षणभङ्गुर है। जिस तरह कच्चो घड़ेको फूटते देर नहीं; उसी तरहे इस कच्चो घड़े-जैसे शरीरको नाश होते देर नहीं। कौन जाने किस क्षण यह शरीर-रूपी कच्चा घड़ा फूट जाय और इसमेंसे जीवात्मा निकल जाय? इसकी आशा उतनी देरकी भी नहीं, जितनी देर कि पलकके झपनेमें लगती है!

कबीरदास कहते हैं, जो दिन आज है, वह कल न होगा। जीव! चेत सके तो चेत! मौत सिरपर सवार है।

जो अज्ञानी बरसोंका प्रबन्ध करते हैं, बरसों जीनेकी आशा करते हैं, वे इस बचनसे शिक्षा ग्रहण करें। कबीर-दास बरसों छोड़—दो चार दिन भी जीवन रहनेकी आशा नहीं करते। वे कहते हैं, आज हो, कल रहो या न रहो। आज तुम हँस-खेल रहे हो, आज तुम्हारा शरीर आरोग्य है; आश्चर्य नहीं, कल तुम बीमार होकर मरण-शय्यापर पड़े हो

बना रहता है। नौके लिखत पहार=नौका पहाड़ा लिखनेसे। जगते रहु छत्तीस ह्वै=जगत्‌को पीठ दो, संसारको त्याग दो। रामचरन छत्तीन=रामके चरणोंके सम्मुख ६ और ३ की तरह रहो—रामसे प्रेम करो।

अथवा मर ही जाओ। इसलिये चेत करो, होश सँभालो और आगेकी सफ़रका बन्दोबस्त करो। अगर संसारके जञ्जालमें फसे हुए, जीवनकी लम्बी आशा रक्खे हुए, शीघ्र ही, आज ही, अभी, इसी क्षणसे अगली यात्राका प्रबन्ध न करोगे ; वहाँ मिलनेके लिये—यहाँके ईश्वरीय बैंक द्वारा—रुपये-पैसे, धन-दौलत, गाड़ी-घोड़े, महल-मकान और बाग़-बग़ीचोंका बन्दोबस्त न करोगे—इस दुनियामें पराया दुःख दूर न करोगे और मालिकका नाम न जपोगे ; तो तुम्हें उस लम्बी सफरमें बड़ी-बड़ी तकलीफोंका सामना करना पड़ेगा। यहाँ बोओगे, तो वहाँ काटोगे। यहाँ अच्छा करोगे, तो वहाँ अच्छा पाओगे। यहाँ ग़रीब और मुहताजोंको दोगे, तो वहाँ आपको मिलेगा।

कबीरदास कहते हैं, यह जीवन सुपनेके समान है। रातको सुपनेमें देखा कि जीव लूटमें पड़ा है, तरह-तरहके ऐश-आराम कर रहा है, सुख-भोग भोग रहा है ; लेकिन ज्योंही आँख खुली तो क्या देखता हूँ ,कि कुछ भी नहीं है। जिस तरह सुपनेमें आदमी दिलको फरहत देनेवाले बाग़-बग़ीचोंकी सैर करता है, माशूक़ाके गलेमें हाथ डाले घूमता है, उससे सम्भोग करता है ; अथवा राजा हो जाता है, हुकूमत करता है, चन्द्रवदनियोंका नाच-गान देखता है और मन-ही-मन बड़ा खुश होता है ; पर ज्यों ही आँख खुलती है, तो न बाग़-बग़ीचे दीखते हैं और न माशूक़ा और राज-पाट। बस, ठीक यही हाल जाग्रत अवस्थाका है। जिस तरह रातके सुपनेको मिथ्या समझते

हो, उसी तरह दिनके दृश्योंको भी मिथ्या समझो। वह सुपना सोई हुई हालतमें दीखता है और यह जागते हुए। देखते हैं, आज एक आदमी राजा है, हज़ारों तरहके भोग भोग रहा है ; पर कल ही वह राहका भिखारी बन जाता है। आज किसीके घरमें सुन्दरी पतिव्रता नारी है, आज्ञाकारी पुत्र-पौत्र हैं, सुशीला पुत्रवधुएँ और कन्यायें हैं, सैकड़ों दास-दासी हैं, द्वारपर हाथी झूमता है, मोटर हर समय दरवाज़ेपर खड़ी रहती है ; चन्द रोज़ बाद देखते हैं, कि वही आदमी गुदड़ी ओढ़े हुए सड़कपर भीख माँग रहा है। पूछते हैं, क्योंजी तुम्हारा यह क्या हाल ? तुम्हारे कुटुम्बी और धन-दौलतका क्या हुआ ? जवाब देता है—भाई ! प्लेगमें सारे घरके लोग मर गये। कोई पानी देने और नाम लेनेवाला भी न रहा। धन-दौलतमेंसे कुछको चोर और शेषको डाकू डाका डालकर ले गये। जब खानेका भी ठिकाना न रहा, तब प्राणरक्षार्थ भीख माँगना आरम्भ किया है। कहिये, ऐसे जीवन और सुख-भोगोंको सुपनेकी माया न कहें तो क्या कहें ?

अभी कलकी बात है, हमारी एक आँखोंकी पुतलीके समान प्यारी पुत्री हमें छोड़कर चली गयी। वह ऐसी रूपवती थी, कि हम उसे देखकर कहा करते थे,—विधाताने खूब फुर्सतमें गढ़ी है। उसके देखनेसे हमारी शोकसन्तप्त आत्माको शान्ति मिलती थी। घोर शोकमें ग़र्क़ होनेपर भी उसे देखकर हम खिल पड़ते थे। हमारे दिनभरके रंजोग़म काफ़ूर हो जाते

थे। उसके दर्शनोंसे हमारे हृदयमें सुख होता था, इसीसे हम उसे 'दिलाराम' भी कहा करते थे। नाम उसका दिलाराम नहीं—सूर्य्यकान्ता था। जब हम घरमें बैठे हुए प्रूफ देखा करते थे, वह भोली सूरत घुटुअन चलकर हमारे पास आजाती। कभी हमारी दावात उलट देती, कभी क़लम उठा लेती और कभी प्रूफके काग़ज़ोंको मुँहमें देने लगती। जब हम आनन्दमें मग्न हो जाते, क़लम पटककर उसे उठा लेते। उसको चूमते, प्यार करते और हृदयको शीतल करते थे। आज तीन दिनसे वह नहीं है। कहीं नज़र नहीं आती। ऐसा ज्ञान पड़ता है, गोया हमने उसे सुपनेमें देखा था। सुपनेमें ही वह हमारे पास आयी थी। सुपनेमें ही अपने बचपनके खेलोंसे उसने हमें खुश किया था और सुपनेमें ही हमने उसे प्यार-दुलार किया था। पाठक! आपही विचारिये। क्या यह सब सुपना नहीं था? क्या अब जो हमारे प्यारे हमारे साथ हैं, हमारे सामने फिरते-डोलते और काम-धन्धा करते हैं, उनको भी हम सुपनेकी माया न समझें? उस डेढ़ सालकी बच्चीकी तरह ही, हम भी एक दिन सबको छोड़कर यमसदनके राही न होंगे? हमारे पीछे जो रह जायेंगे, उन्हें हम सुपनेमें मिले हुएके समान न दीखेंगे? यद्यपि हमने अभीतक घर-गृहस्थी नहीं त्यागी है। अभी हम संसारी जंजालोंमें फँसे हुए हैं, तोभी हम अपने प्यारे-से-प्यारेके मरनेपर भी आँखोंसे आँसू नहीं डालते। बहुत लोग हमारे इस हालको देखकर अचम्भा करते हैं। कोई कुछ और कोई

कुछ कहता है। पर हमारे न रोने-कूकनेका कारण यह है कि, हमने इस संसारमें ऐसे-ऐसे बहुतसे दुःख देखे हैं। हम कई प्राण-प्यारोंकी वियोगाग्निमें जले हैं। इसीसे अब हम समझ गये हैं कि, यह सब सुपना है। एक दिन न एक दिन हम भी सबको छोड़कर चल देंगे अथवा और सब जो हमारी आँखोंके सामने मौज़ूद हैं—हमारे देखते-देखते, सुपनेमें देखे हुओंकी तरह, ग़ायब हो जायँगे।

कबीरदास कहते हैं,—अरे भाई! आज अथवा कल अथवा पाँच दिन बाद तुम्हारा बसेरा जंगलमें होगा। तुम्हारे ऊपर हल चलेंगे अथवा तुम्हारे ऊपर उगी हुई घासको गाय भैंस आदि पशु चरेंगे। खुलासा यह है, कि तुम कदाचित आज ही मर जाओ; अगर आज बच गये तो कल ख़ैर नहीं। अगर साँस पूरे न हुए होंगे—चित्रगुप्तके खातेमें तुम्हारे कुछ साँस बाक़ी होंगे, तो उनके पूरे होनेपर पाँच या दस दिन बाद तुम अवश्य मरोगे। तुम इस शरीरमें सदा न रहोगे। तुम्हारे देह छोड़ते ही, लोग तुमसे घृणा करेंगे। ख़ास तुम्हारी हृदयेश्वरी ही तुम्हारी सूरत देखकर डरेगी। तुम्हारे बदनपर अगर एक चाँदीका छल्ला भी होगा, तो उसे उतार लेगी। लोग तुम्हें लेजाकर जला या गाड़ आवेंगे। जिस जगह तुम जलाये या दफनाये जाओगे—जहाँ तुम्हारे शरीरकी ख़ाक पड़ी होगी, उसी जगह किसान हल चलावेंगे। यदि तुम्हारी मिट्टीपर घास उग आयेगी, तो ढोर चौपे उसे चरेंगे। अतः होशियार हो जाओ! ग़फ़लतकी

नींद त्यागो और अपनी अवश्यम्भावी यात्राका प्रबन्ध करो, जिससे राहमें तुम्हें किसी वस्तुका अभाव और किसी तरहकी तकलीफ न हो।

इस दुनियामें काम बहुत हैं और उम्रका यह हाल है कि, पलक मारने भरका भरोसा नहीं। इस क्षण-भरकी ज़िन्दगीमें कौनसा काम करना चाहिये, जिससे आगेकी यात्रामें सुख-ही-सुख मिले?—यही सवाल ऊपर उठाया गया है। इस सवालको ईश्वर तक पहुँचे हुए, ईश्वरके सच्चे और प्रथम श्रेणीके भक्तवर गोस्वामि तुलसीदास जीने बहुत ही खूबसूरतीसे हल कर दिया है। उन्होंने मनुष्यके लिए दो ही काम चुन दिये हैं—"देवोको टुकड़ा भला और लेवेको हरनाम।" उनकी इन दो बातोंपर जो अमल करेंगे, निश्चय ही उनको सुख-ही-सुख है। उन्हें नरकोंकी भीषण यन्त्रणायें न सहनी होंगी। वे स्वर्गमें नाना प्रकारके सुख भोगेंगे और अमृतपान करेंगे, कल्पतरु उनकी इच्छाओंको पूरी करेगा। अगर वे पराया भला करके, दुखियाओंके दुःख दूर करके, बदला या मुआविज़ा पानेकी इच्छा न करेंगे; निष्काम कर्म करेंगे और कृष्णके प्रेममें ग़र्क़ हो जायँगे, उसके सिवा किसी भी संसारी पदार्थको न चाहेंगे; तो उन्हें वह चीज़ मिलेगी, जो हज़ारों-लाखों स्वर्गोंसे भी बढ़-चढ़कर होगी; फिर उन्हें कभी दुःखका नाम भी न सुनना पड़ेगा। यही बात महात्मा तुलसीदासजीने अपने दोहोंमें कही है; उन्हें ख़ाली पढ़िये ही नहीं, उनपर ग़ौर भी कीजिये। विचारनेसे

उनकी बातें आपके दुःख और क्लेश नाश करने वाली अव्यर्थ महौषधियाँ जान पड़ेंगी। अगर आप उनकी बताई हुई दवा पीयेंगे, तो आप अजर अमर हो जायँगे।

तुलसीदासजी कहते हैं:—संसार में आकर दो काम कर लो:—(१) भूखों को भोजन दो, और (२) भगवान् का नाम लो।

तुलसीदासजी कहते हैं:—कर्म्म, ज्ञान और उपासना प्रभृति उपचारोंको त्याग कर भगवान्‌की भक्ति करो; क्योंकि भक्तिसे विषयी लोगोंको भी मुक्ति मिल सकती है; किन्तु कर्म्म, ज्ञान और उपासना आदिसे नहीं। जैसे ६ का पहाड़ा लिखनेसे ६ का अङ्क नहीं मटता, वैसे ही कर्म्म ज्ञान आदि से वासना नहीं मिटती और जब तक वासना बनी रहती है तब तक मुक्ति हो नहीं सकती। वासना ही तो जन्म-मरणकी जड़ है, वासनासे ही जन्म लेना पड़ता है; वासना मिटी और मुक्ति हुई; पर विषयी लोगोंकी वासना नहीं मिटती। जिस तरह नौका पहाड़ा लिखनेसे नौ का अङ्क बना ही रहता है; उसी तरह उनके कर्म्म-ज्ञान और उपासनादि उपचार करने पर भी वासना बनी ही रहती है। नौका पहाड़ा लिखने पर नौ का अङ्क कैसे बना रहता है, नीचे देखिये:—

९	९=९
१८	१+८=९
२७	२+७=९

३६	३+६=९
४५	४+५=९
५४	५+४=९
६३	६+३=९
७२	७+२=९
८१	८+१=९
९०	९+०=९

इस दोहेका अर्थ हमने साधारणतया समझा दिया है। अगर हम और भी खुलासा समझावें, तो ३।४ पेज ख़र्च होंगे। मतलब यह, मुक्ति-लाभ करनेके लिये "भक्ति" सीधा और सरल उपाय है। नारद, वाल्मीकि और शबरी प्रभृति भक्तिके प्रभाव से ही ऊँचे चढ़े हैं—कर्म, ज्ञान और उपासनादिसे नहीं।

जगत् से ३६ की तरह और भगवान्के चरणोंमें—छः तीन या तिरसठकी तरह रहो। तुलसीदासजी कहते हैं, मनमें विचार कर देख लो, यह मता अत्युत्तम है।

६ जगत् है और ३ मनुष्य है। ३६ के अङ्कमें ३ ने ६ को पीठ दे रखी है। बस, इसी तरह तुम जगत्को पीठ दे कर रहो; यानी संसारकी ओर मत देखो, संसारमें ममता मत रखो। दूसरी ओर भगवान्के पक्षमें ६३ की तरह रहो। इसमें ६ भगवान् की शरण है और ३ मनुष्य है। जिस तरह ३ का अङ्क ६ की ओर टकटकी लगाये देख रहा है; उसी तरह मनुष्यको हरदम जगदीशकी शरणमें टकटकी लगाये हुए रहना चाहिए।

दोहा ।

तप तीरथ तरुणी-रमण, विद्या बहुत प्रसंग ।

कहा-कहा मन रुचि करै, पायौ तन क्षणभंग ॥४०॥

40. Should we sojourn by the banks of the heavenly river Ganges practising penances, or should we enjoy the company of women possessing the high qualities of beauty etc, always addressing them in a befitting manner, or should we drink in the ambrossial essence of the religious books or literary treatises? We are quite at a loss to know which course we should have recourse to in so short a life,

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य ॥
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः
संप्राप्स्यन्ते जरठहरिणाः शृंगकंडूविनोदम् ॥४१॥

अहा! वे सुखके दिन कब आवेंगे, जब हम गंगा-किनारे, हिमालयकी शिलाओं पर, पद्मासन लगाकर, विधान-अनुसार आँख मूँद कर, ब्रह्मका ध्यान करते हुए, योग-निद्रामें मग्न होंगे और बूढ़े-बूढ़े हिरन निर्भय हो, हमारे शरीरकी रगड़से, अपने शरीरकी खुजली मिटाते होंगे? ॥४१॥

तप = तपस्या। तीरथ = तीर्थ, पवित्र धाम। तरुणी-रमण = युवतियों

वे सुख के दिन कब आवेंगे, जब हम (इन योगीराज की तरह) गंगातट पर पद्मासन लगा, योगनिद्रा में मग्न होंगे और बूढ़े-बूढ़े हिरन हमारे शरीर की रगड़ से अपनी खुजली मिटाते होंगे ?

संसारी माया-जालमें सुख नहीं है। संसारमें जो सुखी दीखते हैं, वे भी वास्तवमें दुखी हैं। उनका सुख दिखावटी सुख है, सच्चा सुख नहीं। हम उन्हें गाड़ी और मोटरोंमें चढ़ते देख, बढ़िया-बढ़िया महलोंमें आनन्द करते देख, उनके यहाँ द्रव्यकी बहुलता देख, सुखी समझते हैं ; पर वास्तवमें वे सुखी नहीं हैं। असल बात यह है कि संसारमें सुख है ही नहीं। सुख केवल संसार-त्याग या "वैराग्य" में है। इसीलिये कहनेवाला कहता है, वे दिन कब आवेंगे, जब हम गङ्गा-किनारे, हिमालयकी शिलापर बैठ, पद्मासन लगाकर, ब्रह्मके ध्यान में लीन होंगे? उस ध्यानमें जब हमारी सुध-बुध जाती रहेगी, उस समय बूढ़े हिरन हमें जीता-जागता मनुष्य न समझ, कोई निर्जीव पदार्थ समझ, निःशङ्क होकर, हमारे शरीरसे अपना शरीर रगड़-रगड़कर, अपने शरीरकी खुजली मिटायेंगे। जिन पुरुषोंको यह सुख प्राप्त है, वही सच्चे सुखिया हैं—उन्हींका जीवन धन्य है!

प्रेमिकके प्रेममें तन्मय हो जानेमें ही मज़ा है। जब पूरी-तरहसे ध्यान लग जाता है, तब शरीर पर पक्षी बैठें या जानवर, खुजली मिटावें या चाहे जो करें, कोई ख़बर नहीं रहती। ऐसे ध्यानियोंको ही सिद्धि मिलती है। महाकवि दाग़ कहते हैं :—

को भोगना। रुचि करे = चाहता है। तन = शरीर। छणभंग = पलमें नाश होने वाला।

कमाल इश्क़ है ऐ दाग़, महव हो जाना।
मुझे ख़बर नहीं, नफ़ा क्या ज़रर कैसा ? ॥

प्रेममें जो लोग तन्मय हो जाते हैं, उन्हींका प्रेम—प्रेम है। बिना तन्मयताके प्रेम थोथा है। मैं तन्मय हूँ, इसलिये मुझे घाटे लाभकी फिक्र तो क्या, ख़बर ही नहीं।

कबीर कहते हैं—

प्रेम-प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चीन्हे कोय।
आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावे सोय॥
लौ लागी जब जानिये, छूटि न कबहुँ जाय।
जीवन लौ लागी रहे, मूआ माँहिं समाय॥

कबीर साहब कहते है,—प्रेम-प्रेम सब कहते हैं, पर प्रेमको कोई नहीं जानता। जिसमें आठ पहर डूबा रहे, वही प्रेम है। लौ लगी तभी समझो, जबकि लौ छूट न जाय। ज़िन्दगी-भर लौ लगी रहे और मरने पर प्यारेमें समा जाय।

चित्तका स्वभाव है, कि वह अगली-पिछली बातोंको याद करता है। इन्द्रियों का स्वभाव है कि, वे अपने-अपने विषयों की ओर झुकती हैं। कान आवाज़ सुनना चहता है। नेत्र नई वस्तु देखना चाहते हैं; पर इस तरह ईश्वर-उपासना

इश्क़=प्रेम। महव हो जाना=तन्मय हो जाना; ग़र्क़ हो जाना। नफा=लाभ। ज़रर=हानि; नुक़सान।

करनेसे कोई लाभ नहीं। वृथा अमूल्य समय नष्ट करना है। ईश्वर-उपासना करने वालेको, सबसे पहले, अपने चित्त और इन्द्रियोंको, उनके कामोंसे हटा कर, अपने अधीन कर लेना चाहिये। बिना चित्तके एक तरफ हुए और बिना इन्द्रियोंको उनके कामोंसे रोके—ध्यान लग ही नहीं सकता। ध्यान करने वाला न शरीरको हिलावे और न किसी तरफ देखे। अगर किसी तरफ भयानक शब्द हो या कोई जीव काटे, तोभी ध्यानीका ध्यान न टूटना चाहिये। आजकल अधिकांश कर्मकाण्डी गोमुखीमें हाथ चलाते जाते हैं और मनमें अनेक गढ़न्त गढ़ते जाते हैं। कोई कुछ कहता है, तो उसकी भी सुन लेते हैं। ऐसी ईश्वरोपासनासे क्या लाभ?

एक गोपीका कृष्णमें आदर्श प्रेम।

एक बार एक गोपी यशोदाके घर दीपक जलाने आई। वहाँ कृष्ण खेल रहे थे। वह कृष्णके प्रेममें ऐसी पगी कि, उसने बत्तीके बजाय अपनी उँगली दीपक पर लगा दी। यहाँ तक कि सारी उँगली जल गई, पर उसे ख़बर न हुई; किसी दूसरेने उसे चेत कराया तो चेत हुआ।

एक नमाज़ी मियाँको एक कुलटाका उपदेश।

इसी तरह, एक मियाँ जी भी जाँनमाज़ बिछा कर नमाज़

पढ़ने लगे। उधरसे एक व्यभिचारिणी स्त्री अपने यारके प्रेममें डूबी हुई उससे मिलने चली। वह प्रेममें ऐसी डूबी हुई थी कि, वह मियाँजी की जाँनमाज़ पर होकर निकल गई। मियाँजी को क्रोध आ गया; आपने उसे दो चार गालियाँ सुनाईं। स्त्रीने कहा—"लानत है आपके ईश्वर-प्रेम पर, जो आपने मुझे देख लिया! प्रेम तो मेरा जैसा होना चाहिये, जो मुझे अपने यार के प्रेममें न आप दीखे और न आपकी जाँनमाज़ ही।"

सच है, दिखाऊ प्रेमसे कोई लाभ नहीं; प्रेम हो तो ऐसा हो, कि अष्ट पहर चौंसठ घड़ी अपने प्रेमीका ही ध्यान रहे और उसमें मनुष्य ऐसा डूबा रहे कि, तनोबदन की भी सुध न रहे। वैसे प्रेमसे ही जगदीश मिलते हैं।

दोहा।

ब्रह्मध्यान धर गंगतट, बैठूँगो तज संग।
कबधौं वह दिन होयगो, हिरन खुजावत अंग? ॥४१॥

41. When are those happy days to come when I shall be sitting in the padma posture on a rock of the Himalaya mouutain, absorbed in meditation of Brahma in strict compliance with the principles of Yoga, when the oldest deer of the forest will mak themselves happy by scratching my body with the tips of their horn fearlessly.

तज संग = स्त्री पुत्र प्रभृति का साथ छोड़ कर।

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने,
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु द्युसरितः ॥
भवाभोगोद्विग्नाः शिवशिवशिवेत्यार्तवचसः
कदा स्यामानन्दोद्गमबहुलबाष्पाकुलदृशः ॥४२॥

वह समय कब आवेगा, जब हम पवित्र गंगाके ऐसे स्थान पर जो चन्द्रमाकी चाँदनीसे चमक रहा होगा सुखसे बैठे होंगे और रातके समय, जब सब तरहका शोरगुल बन्द होगा, आनन्दाश्रु-पूर्ण-नेत्रोंसे, संसारके विषय-दुःखोंसे थक कर, सर्वशक्तिमान् शिवकी रटना लगा रहे होंगे ? ॥४२॥

धन्य हैं वे लोग जिन्हें संसारी झूठे विषय-सुखोंसे नफ़रत हो गई है, जो यहाँके जञ्जालोंसे थक गये हैं, जिन्होंने मोह-जाल तोड़कर गङ्गा के पवित्र किनारे पर वास कर लिया है और निस्तब्ध चाँदनी रातमें, गद्गद् होकर, शिव-शिव रटते हैं !! और लोग जो संसार के मोहपाशमें फँसे हुए हैं, अपना जीवन वृथा खोते हैं।

दोहा।

ज्योत्स्ना सों सित थल तहाँ, मुदित आँसुयुत नैन ।
कब रटिहौं तट गंगके, शिव-शिव आरत बैन ॥४२॥

ज्योत्स्ना=चन्द्रमाकी चाँदनी। सों=से। सित=सफेद। **थल=**

42. When is the time to come when, sitting peacefully on a lonely spot by the side of the holy Ganges where the surface of the ground has been made luminous by the spreading, shining moon-light and the nights are free from all sorts of disquieting sounds, we shall shed tears of joy from eyes filled with them spontaneously, our minds tired of the pleasures of life and our speech deep in humble prayer to the Almighty Shiva,

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरि-
द्गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः ॥
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं
कियद्वा वच्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥४३॥

महादेव ही हमारा एक देव हो, जाह्नवी ही हमारी नदी हो, एक गुफा ही हमारा घर हो, दिशा ही हमारे वस्त्र हों, समय ही हमारा मित्र हो, किसीके सामने दीन न होना ही हमारा मित्र हो, अधिक क्या कहें वटवृक्ष ही हमारी अर्द्धांगिनी हो ॥ ४३ ॥

जो हज़ारों-लाखों देवताओं को छोड़कर एक परमात्मा को ही अपना देव समझता है, रात-दिन उसीके ध्यानमें मग्न रहता है ; जो गङ्गा तट पर बसता है, गङ्गामें स्नान करता है, गङ्गाजल ही पीता है ; जो कपड़ोंकी भी ज़रूरत नहीं रखता, दिशाओंको ही अपने वस्त्र समझता है ; कालको ही अपना

स्थान। तहाँ=वहाँ। मुदित=प्रसन्न। आँसुयुत=आँसुओंसे भरे हुए। नन=नेत्र। तट=किनारा। आरत—गदगद। बन=वाणी।

मित्र मानता है; किसीके सामने दीनता नहीं करता, किसी से कुछ नहीं माँगता; वटवृक्षके आश्रयमें रहकर भगवान् का भजन करता और वटवृक्षको ही अपने दुःख-सुखकी संगिनी प्राणवल्लभा समझता है, वही पुरुष धन्य है! उसका ही जगत् में आना सफल है। परमात्माकी दया या पूर्वजन्मके पुण्योंसे ही ऐसी बुद्धि होती है। ऐसी बुद्धिके प्रभावसे ही वह दुःखोंसे छूटकर नित्यानन्दमें मग्न रहता है।

दोहा।

देव ईश सुरसरि सरित, दिशा वसन गिरि गेह।
सुहृत्काल वट कामिनी, ब्रत अदैन्य सुख एह ॥४३॥

43. Let the Great God be the only god for us, the heavenly Ganges the only river, a cave the only house, the direction of the open space the only clothing, time the only friend and the vow of non-supplication the only vow. What more should he say then that a banyan tree in the forest may be our only better half?

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
महीध्राद्युत्तुंगादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ॥

देव=देवता। ईश=महादेव। सुरसरि=देवनदी=गंगा। दिशा=दशों दिशाएँ। वसन=कपड़ा। गिरि=पहाड़। गेह=घर। दिशा वसन=दिशाओंको ही कपड़े मान कर नङ्गा रहना। सुहृद=मित्र। काल=मृत्यु। बट=बड़का पेड़। कामिनी=स्त्री। अदन्य=न मांगना; हाथ न पसारना।

अधो गंगा सेयं पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥४४

देखिये, गंगा स्वर्गसे शिवजीके मस्तक पर गिरी ; उनके सिर से हिमालय पर्वत पर ; हिमालय पर्वतसे पृथ्वीपर ; और पृथ्वीसे समुद्रमें गिरी । इससे मालूम होता है, कि विवेक-हीनोंका पद-पद पर सैकड़ों प्रकारसे पतन होता है ॥४४॥

जो विचारपूर्वक काम नहीं करते, जो अक्लसे काम नहीं लेते, उनको तरह-तरहसे नीचा देखना पड़ता है। कविने यहाँ गङ्गाका दृष्टान्त दिया है और खूब दिया है।

शिक्षा—जो विवेक-हीन हैं, जो अहङ्कारी हैं, वे सदा नीचा देखते और बार-बार नीचे गिरते हैं ; अतः मनुष्यको भूलकर भी घमण्ड न करना चाहिये और खूब विचार कर काम करना चाहिये। गंगाको बड़ा घमण्ड हुआ, तब उसका गर्व खर्व करनेके लिए ब्रह्माने उसे अपने कमण्डलमें भर लिया। गंगाका मस्तक नीचा हो गया। फिर भी ; उसने घमण्ड न छोड़ा, तब शिव जीने उसे अपनी जटाओंमें रोक लिया। फिर महाराजा भगीरथने घोर तप किया, तो शिवजीने उसे छोड़ा। शिवके सिरसे वह हिमालय पर गिरी और वहाँ से बहती-बहती समन्दरमें जा गिरी। जो गर्व करते हैं, जगदीश उनके दुश्मन हो जाते हैं। जगदीश उन्हीं को मिलते हैं, जो गवसे दूर भागते और विवेकभ्रष्ट नहीं होते।

शेख़ सादी ने कहा है:—

हर्कें बेहूदा गर्दन अफ़राज़द ।
खे़श्तन रा बगर्दन अन्दाज़द ॥
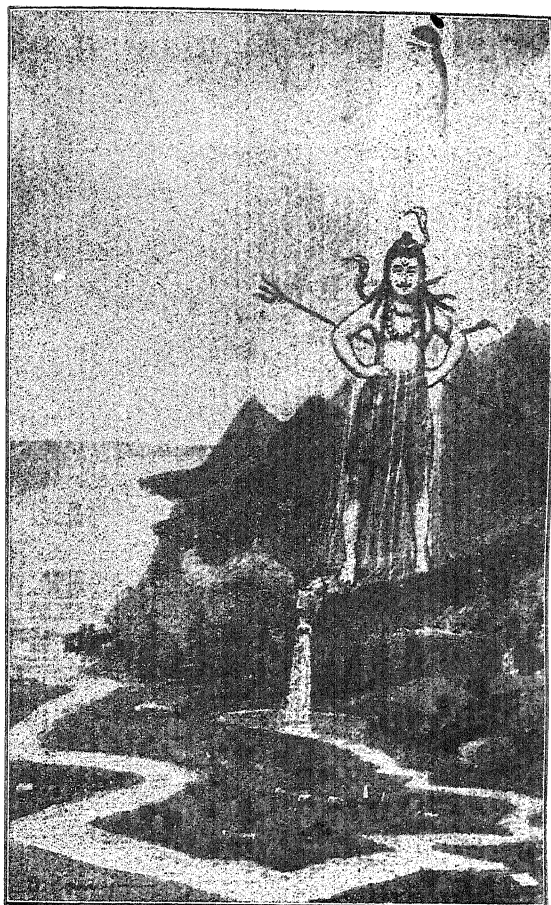
देखिये, गंगा स्वर्ग से शिवजी के मस्तक पर गिरीं, उनके सिर से हिमालय पर्वत पर, हिमालय से पृथिवी पर, पृथिवी से समुद्र में गिरीं। इससे मालूम होता है, कि विवेक-भ्रष्टों का पद-पद पर सैकड़ों प्रकार से पतन होता है।
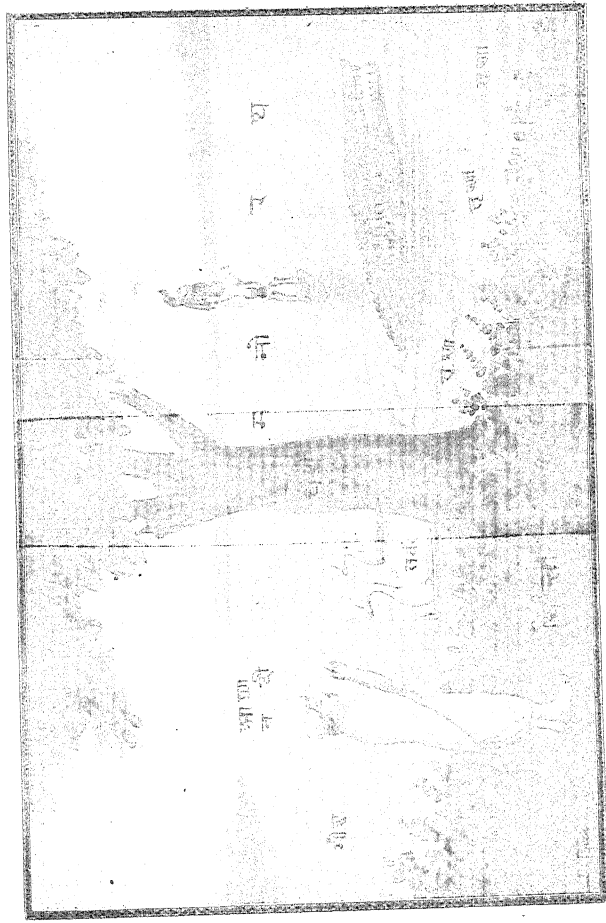
शुद्धचित्त योगीश्वर ही इस भयंकर आशानदी के पार जा सकते हैं।

जो कोई अपनी गर्दन ऊँची करता है, वह मुँहके बल गिरता है।

44. Look how the great Ganges has fallen lower and lower from her abode of stupendous elevation! from the Swarga down on to the head of the God Shiva, from thence to the summit of the mountain, from the mountain to the plain earth and from thence down to the sea. Similar is the fate of men devoid of discriminating reason who undergo a downfall in hundreds of ways.

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरंगाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ॥
मोहावर्त्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुंगचिन्तातटी
तस्याः पारगता विशुद्धमनसोनंदन्ति योगीश्वराः ॥४५

आशा एक नदी है, उसमें इच्छा रूपी जल है ; तृष्णा उस नदीकी तरंगें हैं, प्रीति उसके मगर हैं, तर्कवितर्क या दलीलें उसके पक्षी हैं, मोह उसके भँवर हैं; चिन्ता ही उसके किनारे हैं; वह आशा-नदी धैर्य्यरूपी वृक्षको गिरानेवाली है ; इस कारण उसके पार होना बड़ा कठिन है। जो शुद्धचित्त योगीश्वर उसके पार चले जाते हैं; वे बड़ा आनन्द उपभोग करते हैं ॥४५॥

नदीका नाम क्या है ? आशा-नदी। उसमें जल काहेका है ? इच्छाका। उसमें मगर कैसे हैं ? प्रीतिरूपी मगर हैं। उसमें जलचर पक्षी कैसे हैं ? नाना प्रकारके तर्कवितर्क उसके पक्षी हैं। वह किनारेके किन दरख्तोंको गिराती है ? धैर्य्यरूपी

दरख्तोंको गिराती है। उसमें भँवर कैसे हैं? मोहरूपी भवर हैं। उसके किनारे काहेके हैं? चिन्ताके। उसको कौन पार कर सकते हैं? उसको वही पार कर सकते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है, जिनके चित्तसे ये सब बलायें हट गयी हैं और जिनका चित्त केवल ब्रह्ममें लीन है।

सारांश,—यदि आनन्द चाहो; तो आशा, इच्छा, प्रीति, तर्क-वितर्क, मोह और चिन्ता प्रभृतिको एकदम छोड़कर शुद्धचित्त हो जाओ और अपने आत्मा या ब्रह्मके ध्यानमें तन्मय हो जाओ।

छप्पय।

नदीरूप यह आश, मनोरथ पूर रह्यौ जल।
तृष्णा तरल तरंग, राग है ग्राह महाबल।
नाना तर्क विहंग, संग धीरज-तरु तोरत।
भ्रमर भयानक मोह, सबद को गहि-गहि बोरत।
नित बहत रहत चित-भूमिमें, चिन्तातट अतिही विकट।
कढ़ि गये पार योगी पुरुष, उन पायौ सुख तेहि निकट॥४५॥

45 Hope is just like a river with water in the shape of desires, agitated by currents in the shape of avarice, with alligators in the

---

पूर रह्यो = भर रहा। तृष्णा = इच्छा। तरल = चंचल। तरंग = लहर। राग = प्रेम। ग्राह = मगर, घड़ियाल। महाबल = अत्यन्त बलवान। नाना = तरह तरहके। तर्क = दलीलें। विहंग = पक्षी। भ्रमर = भौंरा।

shape of attachments, with watery birds in the shape of motely designs, with the power of destroying one's perseverance in place of uprooting trees, difficult to cross owing to the presence of whirl-pools in the shape of worldy love, exceedingly deep and possessing banks in the shape of very great cares. Happy are the great oyogis, who pure in mind, have succeeded in stepping over it.

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृङ्
नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मागतो वा ॥
योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढगूढाभिमान-
क्षीवस्यान्तःकरणकरिणःसंयमालानलीलाम् ॥४६॥

ओ भाई ! मैं सारे संसारमें घूमा और तीनों भुवनोंमें मैंने खोज की; पर ऐसा मनुष्य न मैंने देखा न सुना, जो अपनी कामेच्छा पूर्ण करनेके लिये हथिनीके पीछे दौड़ते हुए मदोन्मत्त हाथीके समान मनको वशमें रख सकता हो ॥४६॥

भाई ! मैंने त्रिलोकी खोज डाली, पर मुझे एक भी आदमी ऐसा न दीखा, जो विषयरूपी हथिनीके पीछे लगे हुए मनरूपी गजको रोक सकता हो। इसका खुलासा यह है,—विषयोंमें फँसे हुए मनको क़ाबूमें रखना अथवा उसे विषयोंसे हटाना असम्भव है।

मन बड़ा ज़बर्दस्त है। इसके पङ्ख नहीं, पर पक्षीकी तरह उड़ने वाला है; कभी यह आकाशमें जाता है और कभी पाताल में जाता है। मन शरीरको जिधर घुमाता है, शरीर उधर ही

घूमता है। मन ही मनुष्यको परमात्मासे अलग रखता और मनही उसे उससे मिला देता है। मनकी चँचलता अच्छी नहीं। उसकी चंचलता ही साधनामें बाधक है। महात्मा कबीर कहते हैं—

मन-पक्षी तब लगि उड़े, विषय-वासना माँहि।
ज्ञान-बाज़की झपटमें, जब लगि आया नाँहि॥
मनके बहुतै रंग हैं, छिन-छिन मध्ये होय।
एक रंगमें जो रहे, ऐसा बिरला कोय॥
जेती लहर समुद्रकी, तेती मनकी दौर।
सहजै हीरा ऊपजे, जो मन आवे ठौर॥
मनके मते न चालिये, मनके मते अनेक।
जो मन पर असवार हैं, ते साधु कोई एक॥

उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं—

दुनियाँसे में अगर, दिले मुज़तरको तोड़ दूँ।
सारे तिलिस्म, बहम मुक़द्दर को तोड़ दूँ॥

संसारमें लगे हुए मनको यदि मैं तोड़ दूँ, तो धोके और बुराईमें डालनेवाले इस प्रपंचको ही तोड़ डालूँ। संसार-पाशमें बँधे हुए मनको तोड़ना मुशिकल है।

मन-पक्षी विषय-वासनाओंमें उस वक्त तक उड़ता है, जब तक वह ज्ञान-बाज़की झपटमें नहीं आता। मतलब यह है

कि, मन विषयोंमें उसी समय तक फँसा रहता है, जब तक कि उसे ज्ञान नहीं होता। ज्ञान होते ही मन विषयोंके फन्देसे निकल जाता है।

मनके अनेक रंग हैं, जो छिन-छिनमें बदलते रहते हैं। जो एक ही रंगमें रँगा रहता है, वह कोई विरला ही होता है।

समुद्रकी जितनी लहर हैं, मनकी उतनी ही दौड़ हैं। अगर मन एक ही ठिकाने ठहर जावे, तो सहजमें हीरा पैदा हो जावे। मतलब यह है कि, मनके एक जगह ठहरने या स्थिर हो जानेसे सिद्धि मिल जा सकती है, जगदीशके दर्शन हो सकते हैं। चञ्चल मनसे सिद्धि दूर भागती है। जगदीश-मिलनके लिए स्थिर चित्तकी दरकार है।

मनके मते पर न चलना चाहिये, क्योंकि मनके अनेक मते हैं। मन पर सवार रहनेवाले, मनको अपने वशमें रखने वाले महात्मा कोई विरले ही होते हैं। सारांश यह कि, मनकी चाल पर न चलना चाहिये, उसकी सलाहके माफ़िक़ काम न करने चाहिएँ। मनको अपने क़ाबूमें रखना चाहिये और उसे अपनी इच्छानुसार चलाना चाहिये। जो मनकी राह पर नहीं चलते, मनके अधीन नहीं होते, मनको स्थिर रखते हैं, उसे चञ्चल नहीं होने देते, उसकी लगाम अपने हाथोंमें रखते और उसे अपनी मरज़ी माफ़िक़ चलाते हैं—स्वयं उसकी मरज़ी पर नहीं चलते, वे जगत्को विजय कर सकते हैं। वे नाना प्रकारकी सिद्धियोंको प्राप्त कर सकते हैं और जगदीशसे मिल कर अक्षय सुखके अधि-

कारी हो सकते हैं। जिन्हें संसारी जञ्जालोंसे छूटना हो, जन्म-मरणके कष्ट न भोगने हों, नित्य और अविनाशी सुख भोगना हो, परमपद लाभ करना हो ; वे मनको अपने वशमें करें, उसे इधर-उधर जानेसे रोकें और उसे करतारके ध्यानमें लगावें।

उस्ताद ज़ौक़ एक जगह फिर कहते हैं—

> बड़े मूज़ीको मारा, नफ़से अम्मारे को गर मारा।
> नहंगो अज़दहाओ, शेर नर मारा तो क्या मारा।

अपने दिलको मार, अभिमानको मार ; इसमें तेरी बड़ाई है। बड़े-बड़े ख़ूँख़्वार जानवरोंके मारनेमें वीरता नहीं है। पर अभिमान-शून्य होना, है बड़ा कठिन। जिस बासनमें लहसन या प्याज़ रक्खे जाते हैं, उसमेंसे उनकी गन्ध बड़ी कठिनाईसे जाती है ; इसी तरह अभिमान भी बड़ी कठिनाई से जाता है।

इसके नाशका उपाय विवेक या ज्ञान है। जब ज्ञानका उदय हो जाता है, तब जिस तरह पका हुआ आम आप-से-आप गिर पड़ता है ; उसी तरह अभिमान भी आप-से-आप दूर हो जाता है। अभिमानके नाश होते ही चित्त शुद्ध हो जाता है। चित्त के शुद्ध होनेसे परमात्माके दर्शन होनेकी राह साफ हो जाती है।

मनुष्यो ! अभ्यास करो; अभ्याससे सब कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं। जैसे भी हो, मनको वासना-हीन बनाओ। वासना-

हीन, निर्मल चित्त वाले व्यक्ति पर उपदेश जल्दी असर करता है और उसमें ईश्वरानुराग शीघ्र ही उत्पन्न हो जाता है।

दोहा।

ऐसौ मैं संसार में, सुन्यो न देख्यो धीर।
विषया-हथिनी संग लग्यो, मनगज बाँधे बीर ॥४६॥

46, O brother, wandering all the world over and seeking throughout the three Regions, we have neither seen nor heard of a man who has been successful in curbing the wild restlessness of his mind which is like a male-elephant turned mad through cupidity and pursuing his female for the gratification of his sensual desires

ये वर्द्धन्ते धनपतिपुरः प्रार्थनादुःखभाजो
ये चाल्पत्वं दधति विषयाक्षेपपर्यस्तबुद्धेः।
तेषामन्तः स्फुरितहसितं वासराणां स्मरेयं
ध्यानच्छेदे शिखरिकुहरग्रावशय्यानिषण्णः ॥४७॥

वे दिन जो धनके लिये धनवानोंकी खुशामद करनेके दुःखसे बड़े मालूम होते थे और वे दिन जो विषयासक्तिमें छोटे लगते थे; उन दोनों प्रकारके दिनोंको हम पर्वत की एकान्त गुहामें, पत्थरकी

धीर = धीरजवान। विषय-हथिनी = विषयरूपी हथनी। मनगज = मनरूपी हाथी। संग लग्यो = पीछे पड़ा हुआ। बीर = बहादुर।

शिलापर बैठे हुए, आत्मध्यानमें मग्न होकर, अन्तःकरणमें हँसते हुए याद करेंगे ॥४१॥

जिन लोगोंको अनेक प्रकारके ऐशोइशरत और भोग-विलासके सामान मयस्सर हैं, जिनके यहाँ किसी भी संसारी भोग-विलासकी सामग्रीका अभाव नहीं है, जिनके सुन्दरी मृगनयनी कामिनी सेवा करनेको हैं, जिनके दास-दासी हैं, जिनके बाग़-बग़ीचे हैं, जिनके गाड़ी-घोड़े और मोटर हैं, जिनके पीछे अनेक तरहके खुशामदी लगे रहते हैं, जिनके हाथमें द्रव्य है अथवा जिनपर राजकृपा है—ऐसे लोगोंके दिन बड़ी जल्दी कटते हैं। उन्हें दिन-रात बीतते हुए मालूम ही नहीं होते, लम्बे-लम्बे दिन भी छोटे प्रतीत होते हैं; किन्तु जिन लोगोंको सब तरहका अभाव है, जो हर बातके लिये तङ्ग हैं, जो अपनी इच्छा पूरी करनेके लिये धनियोंसे धन माँगते हैं, उनकी खुशामद करते हैं, उनकी दुत्कार-फटकार सहते हैं, अपमानित होते हैं, उनके लिये वे ही दिन बड़े भारी मालूम होते हैं—काटे भी नहीं कटते। किन्तु जो लोग विषयोंका सामान होते हुए भी विषय-सुख नहीं भोगते, और अभाव होने पर भी इच्छा नहीं रखते, इसलिये धनियोंके देहरे नहीं ढोकते, उनकी खुशामद नहीं करते, अपने आत्माराममें ही मस्त रहते हैं,—वे सुखी हैं; उन्हें दिन बड़े और छोटे नहीं लगते।

जिसने दोनों प्रकारके दिन देखे हैं, पर शेषमें उसे ऐसे झगड़ोंसे विरक्ति हो गयी है, वह कहता है,—मैं एकान्त गुफा-

में पवित्र शिलापर बैठा हुआ, आत्माका ध्यान करूँगा और उन दिनोंकी याद करके उनपर घृणासे हसूँगा।

कुण्डलिया।

छोटे दिन लागत तिन्हें, जिनके बहुविधि भोग।
बीत जात विलसत हँसत, करत सुरत संयोग।
करत सुरत संयोग, तनकसे लागत तिनको।
जे हैं सेवक दीन, निपट दीरघ हैं विनको।
हम बैठे गिरि-शृंग, अंग याही ते मोटे।
सदा एक रस घोष, लगत हैं बड़े न छोटे॥४७॥

47. We shall now, seated in self-contemplation on a stone in some lonely cave of a mountain, remember with a smile the past days which appeared to us to have become intolerably long when we suffered from the hardship of appealing to rich men for help and which became quite short when our mind was lost in the enjoyment of worldly pleasures.

विद्या नाधिगता कलंकरहिता वित्तं च नोपार्जितं
शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न सम्पादिता।

तिन्हें = उन्हें। बहुविधि = तरह-तरहके। सुरत = भोग-विलास। तनकसे = छोटे। निपट = बहुत ही। दीरघ = बड़े। विनको = उनको। गिरिशृंग = पवतकी चोटी।

आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेऽपि नालिंगिताः
कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेरितः ॥४८॥

न तो हमने निष्कलंक विद्या पढ़ी और न धन कमाया ; न हमने शान्त चित्तसे माता-पिताकी सेवा ही की और न स्वप्नमें भी दीर्घनयनी कामिनियोंको गलेसे ही लगाया । हमने इस जगत्में आकर, कव्वेकी तरह पराये टुकड़ोंकी ओर ताक लगानेके सिवा, क्या किया ? ॥४८॥

जिस मनुष्यने औरोंकी खुशामद-बरामद या लल्लो-पत्तो करके अपना पेट भरा, टुकड़ोंके लिये सदा पराये मुँहकी ओर देखता रहा, वही शख्स शेषमें दुःखित होकर कहता है,—हाय मैंने बे-ऐब इल्म भी न पढ़ा, धन भी उपार्जन न किया, मृगनयनी कामिनियोंका आलिङ्गन भी न किया और माता-पिताकी सेवा भी न की—मैंने वृथा जन्म लिया और अपना जीवन वृथा गँवाया ।

जो संसारमें आकर न हरि-भजन करते हैं, न विद्या अध्ययन करते हैं, न धनोपार्ज्जन करके सुख भोगते हैं और न संसार के दुःखियोंके दुःख ही दूर करते हैं, उनका इस दुनियामें आना वृथा है । किसीने कहा है—

न इधरके रहे, न उधरके रहे ।
न खुदा ही मिला, न विसाले सनम ॥

और भी किसीने कहा है—

कहा कियो हम आयके, कहा करेंगे जाय ?
इतके भये न उतके, चाले मूल गँवाय ॥

मतलब यह है, कि विद्या पढ़ना, विद्या-बुद्धिसे धन-उपार्जन करना, सुख भोगना और माँ-बापकी सेवा करना अच्छा ; पर ख़ाली पेट भरनेके लिये, कव्वेकी तरह पराया मुँह ताकना अच्छा नहीं। मुँह ही ताकना है, तो उस परमात्माका ताको, जो अभावशून्य है और सबका दाता है। उससे ही आपकी इच्छा पूरी होगी। अगर आप उसीका भरोसा करेंगे, तो वह आपके सब अभाव दूर करेगा, आपके दुःखोंमें दुःखी और आपके सुखोंमें सुखी होगा। उसके बिना आपकी भूख न मिटेगी। रहीम कहते हैं और सच कहते हैं—

रामचरण-पहिचान बिन, मिटी न मनकी दौर।
जनम गँवाये बादिही, रटत पराये पौर ॥

भगवान्‌के चरण-कमलोंसे परिचय हुए बिना, उनके पदपङ्कजोंसे प्रेम हुए बिना, मनुष्यके मनकी दौड़ नहीं मिटती —मनकी चञ्चलता नहीं जाती और स्थिरता नहीं होती। मनके स्थिर हुए बिना भगवान्‌के भजनमें मन लग नहीं सकता। जो लोग गेरुआ बाना धारण करके साधु हो जाते हैं और भगवान्‌में मन नहीं लगाते—वे लोग पेटके लिए दर-दर भीख-चिल्लाकर अपना दुर्लभ मनुष्य-जन्म वृथा ही

गँवाते हैं। वे मूर्ख इस बातको नहीं समझते, कि यह मनुष्य-जन्म बड़ी कठिनसे मिला है। ऐसा मौक़ा फिर जल्दी नहीं मिलनेका। अगर यह जन्म पेटकी चिन्तामें गँवाया जायगा; तो फिर चौरासी लाख योनियोंमें जन्म लेनेके बाद कहीं मनुष्यजन्म मिलेगा। इससे तो यही अच्छा होता, कि वे संसारत्यागी बननेका ढोंग न रचकर, संसारी या गृहस्थ ही बने रहते। संसारी बने रहनेसे वे इस दुनियाके मिथ्या सुख-भोग तो भोग लेते। ऐसे ढोंगी दोनों तरफ़से जाते हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

काम क्रोध मद लोभकी, जब लगि मनमें खान
का परिडत का मूरखै, दोनों एक समान।
इत कुलकी करनी तजे, उत न भजे भगवान।
"तुलसी" अधवरके भये, ज्यों बधूरके पान॥
"तुलसी" पति दरबारमें, कमी वस्तु कछु नाहिं।
कर्महीन कलपत फिरत, चूक चाकरी माहिं॥
राम गरीबनिवाज हैं, राम देत जन जानि।
"तुलसी" मन परिहरत नहिं, घुरुबिनियाकी बानि॥

काम, क्रोध, मद और लोभ—जब तक मनमें रहते हैं, तब तक पण्डित और मूर्खमें कोई फ़र्क़ नहीं—दोनों ही समान हैं।

जो लोग केवल पुजनेके लिए घर गृहस्थीको त्यागकर साधु बन

जाते हैं, वे अगर घरमें रहें तो माता-पिताकी सेवा, आतिथ्य-सत्कार, पिण्डदान, ब्राह्मण-भोजन, सन्तानोत्पत्ति और कन्या-दान आदि गृहस्थके कर्म कर सकते हैं ; पर साधुवेष धारण करने से इन कामोंको नहीं कर सकते। दूसरी ओर, साधु होकर ईश्वर-भजन करना चाहिये, पर चूंकि वे सच्चे साधु नहीं—काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ उनसे अलग नहीं—इसलिये उनका चित्त स्थिर नहीं होता। चित्तके स्थिर न होनेसे, ईश्वरमें भी उनका मन नहीं लगता। पेट भरनेके लिए वे घर-घर मारे-मारे फिरते हैं। इस तरह वे न तो घरके रहते हैं न घाटके। तुलसीदासजी कहते हैं, उनकी गति बवण्डर या बगूलेके पत्तेकीसी होती है, जो न तो आकाशमें ही जाता है और न ज़मीन पर ही रहता है—अधपरमें उड़ता फिरता है। इस तरह जन्म गँवाना—मूर्खता नहीं तो क्या है ? जो लोग मिहनत-मज़दूरी करके कमा नहीं सकते और बैठे-बैठे मिलता नहीं, वे कुटुम्बका पालन न कर सकनेकी वजहसे साधु बन जाते हैं। फिर वे दरदर टुकड़े माँगते और टोकरें खाते हैं। ईश्वरपर भी उनका भरोसा नहीं। अगर परमात्मा पर भरोसा होता, तो वे ध्यानस्थ होकर उसीका जप करते और वह भी उनकी फिक्र करता। जो उसके भरोसे निर्जन और बयाबाँ जंगलोंमें भी जाकर बैठ जाते हैं, उनको वह वहीं पहुँचाता है, इसमें सन्देह नहीं। वह उसका नाम न जपनेवालोंको ही पहुँचाता है ; तब उसके ही भरोसे रहनेवालों और उसीकी माला जपने वालोंको वह कैसे भूल सकता है ?

वह सवेरेसे शामतक विश्वके प्राणियोंको खाना पहुँचाता है, विश्वका पालन करता है, इसीसे उसे विश्वम्भर कहते हैं। वह हाथीको मन और कीड़ीको कन पहुँचाता है, इसमें सन्देह नहीं। एक बार शाहन्शाह अकबरे आज़मको उसके विश्वम्भर होनेमें सन्देह हुआ। उन्होंने एक काँचके बक्समें एक चींटी बन्द करवा दी। चींटीके उसमें बन्द किये जानेसे पहले, उन्होंने स्वयँ अपने हाथोंसे बक्सका कोना-कोना देख लिया। फिर उसमें चींटी बन्द कराकर ताला लगा दिया और चाभी अपने पास रखली। बक्स भी दिन-रात अपने सामने ही रखा। २४ घण्टे बाद जब बक्स खोला गया, तो चींटीके मुँहमें एक चाँवलका दाना पाया गया। बादशाहका शक रफ़ा हो गया। उन्होंने भी उसे विश्वम्भर मान लिया।

तुलसीदासजी कहते हैं, स्वामीके दरबारमें किसी चीज़का अभाव नहीं है। उनके दरबारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थ मौजूद हैं। उनके भक्त जो चाहते हैं, उन्हें वही मिल जाता है। उनके भक्तोंकी इच्छा होते ही ऋद्धि सिद्धि उनके क़दमोंमें हाज़िर हो जाती हैं, पर शर्त्त यह है कि उनके भक्तोंका मन चलायमान न हो, उनका मन किसी दूसरी ओर न जाय। जो लोग ईश्वरकी चाकरीमें चूकते हैं, स्थिर चित्त होकर उसकी पूजा-उपासना नहीं करते, मनको जगह-जगह भटकाते हैं, वे कर्महीन दुःख पाते हैं, उनको मनवांछित पदार्थ नहीं मिलते। सुखदाताको भूलनेसे सुख कैसे हो सकता है?

भगवान् दीनबन्धु, दीनदयाल और ग़रीब-परवर हैं। वे दीनोंके दुःख दूर करने वाले और ग़रीबोंकी ग़रीबी या मुहताजी मिटाने वाले हैं। वे अपनोंको अपना समझ कर, इस लोक और परलोकके पूर्ण सुखैश्वर्य्य देते हैं। इस दुनियामें अर्थ, धर्म और काम देते हैं और मरने पर, उस दुनियामें, स्वर्ग या मोक्ष देते हैं। मतलब यह है, जो ईश्वरकी शरणमें चले जाते हैं, ईश्वर अपने उन शरणागतोंकी इच्छाओंको उनके मनमें इच्छा होते ही पूरी कर देता है। पर अफ़सोस तो यही है कि, मन अपनी घुरुबिनियाकी आदत नहीं छोड़ता अर्थात् मन संसारी पदार्थोंमें जाये बिना नहीं रहता। अगर मन संसारी पदार्थोंमें जाना छोड़ दे, तो दरिद्रता रहे ही क्यों? सारे अभाव दूर हो जायँ।

छप्पय।

विद्या रहित-कलंक, ताहि चितमें नहिं धारी।
धन उपजायो नाहिं, सदा-संगी सुखकारी।
मात-पिताकी सेव-सुश्रूषा, नेक न कीन्ही।
मृगनयनी नवनारि, अंक भर कबहुँ न लीन्ही।

रहित-कलंक=कलंकरहित=निर्दोष। ताहि=उसे, निर्दोष विद्याको। धारी=धारणकी। उपजायो=पैदा किया। सदा-संगी=सदा-सर्वदा साथ रहनेवाला। सेव-सुश्रूषा=सेवाटहल, ख़िदमत। नेक=ज़रा भी। मृग-नयनी=हिरनकेसे नेत्रोंवाली। नवनारि=नवोना स्त्री, सोलह सालकी

योंही व्यतीत कीन्हौ समय, ताकत डोल्यौ काक ज्यों ।

ले भज्यौ टूक पर हाथ तें, चंचल चोर चलाक ज्यों ॥४८॥

48, We did not acquire knowledge pure of all blemishes, nor did we hoard wealth. We did not even serve our parents with a patient mind, or embrace youthful women with large and restless eyes even in our dreams, What did we do in this world except passing our days like a crow expecting to be given a morsel by others ?

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणाम विधिगतीः ॥
वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणै-
स्त्रियामां नेष्यामो हरचरणचित्तैकशरणाः ॥४९

सर्व्वस्व त्यागकर (अथवा सर्व्वस्व नष्ट हो जाने पर) करुणा-पूर्ण हृदयसे, संसार और संसारके पदार्थोंको सारहीन समझकर, केवल शिव-चरणोंको अपना रक्षक समझते हुए, हम शरद्की चाँदनीमें, किसी पवित्र बनमें बैठे हुए कब रातें बितायेंगे ? ॥४९॥

वह दिन कब आवेंगे, जब हम सर्वस्व त्याग कर, संसारको

बाला। अंक भर...लीन्ही=छातीसे न लगायी। योंही=वृथाही। व्यतीत कीन्हों=बिताया। ताकत डोल्यो=देखता फिरा। काक ज्यों=कव्वेकी तरह। ले भज्यो=ले भागा। टूक=टुकड़ा, रोटीका टुकड़ा। पर हाथ ते=पराये हाथसे। चंचल...ज्यों=चंचल और चालाक चोरकी तरह।

असार समझ कर, संसारके सुखोंको अनित्य समझ कर, संसारके भोग-बिलासोंको दुःख-मूल समझकर, विषयोंको विष समझ कर, किसी पवित्र वनमें बैठे हुए शरद् ऋतुकी चाँदनी रातको शिव-शिवकी रटना लगाते हुए व्यतीत करेंगे ? अर्थात् हमारे ये दिन जो संसारी जञ्जालोंमें बीते जा रहे हैं, वृथा नष्ट हो रहे हैं। जब हम सबको त्यागकर भगवान्‌का भजन करेंगे, तभी हमारे दिन ठीक तरहसे कटेंगे। हम उन्हीं दिनोंको सार्थक हुए समझेंगे। संसारी सुखोंसे तो हम अघा गये।

तुलसीदासजी कहते हैं—

दुखदायक जाने भले, सुखदायक भज राम।
अब हमको संसारको, सब बिधि पूरन काम॥

हे मन ! अब परमात्मामें मन लगा ; संसारी सुखोंमें अब हमारी इच्छा नहीं ; इनकी पोल हमने देखली।

49. Now having renounced everything with our hearts full of deep emotions and looking back on the downfall brought about by evil actions done in the world, we will end our life passing our nights in a sacred forest where the rays of the winter moon are spreading, our hearts taking shelter only in the feet of the Great Shiva.

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या
सम इह परितोषो निर्विशेषावशेषः॥

स तु भवति दरिद्री यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः ? ॥५०

हम वृक्षोंकी छाल पहनकर सन्तुष्ट हैं ; आप लक्ष्मीसे सन्तुष्ट हो। हमारा तुम्हारा दोनोंका सन्तोष समान है, कोई भेद नहीं। वही दरिद्र है, जिसके दिलमें तृष्णा है। मनमें सन्तोष आने पर कौन धनी और कौन निर्धन है ? अर्थात् सन्तोषीके लिये धनी और निर्धन दोनों बराबर हैं ॥५०॥

जिसे सन्तोष है, वह सदा सुखी है। उसे कोई सुख नहीं, जिसकी इच्छायें बड़ी-बड़ी हैं। जिसे सन्तोष नहीं है; वह सदा दुःखी है। सन्तोष बड़ी-से-बड़ी दौलतसे भी अच्छा है। जो सुखी होना चाहे, वह तृष्णाको त्यागे और परमात्मा जो दे उसीमें सन्तोष करे। सन्तोषीके लिये कोई व्याधि नहीं है। सन्तोषीके चित्त, मन और काया सदा सुखी रहते हैं। सन्तोषी किसीकी खुशामद नहीं करता।

उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं :—

जो कुञ्जे क़नाअतमें हैं, तक़दीर पर शाकिर।

है ज़ौक़ बराबर, उन्हें कम और ज़ियादा ॥

जो सन्तोषी हैं, तक़दीर पर भरोसा रखते हैं, उन्हें कम और ज़ियादा सभी बराबर हैं। उन्हें जो मिल जाय, उसी पर सब्र है।

शेख़ सादीने "गुलिस्ता" में लिखा है :—

> ऐ क़नाअत तवन्‌गरम गरदाँ ।
> के वराये तो हेच नेमत नेस्त ॥

हे सन्तोष! मुझे धनी बना दे—क्योंकि संसारकी कोई दौलत तुझसे बढ़कर नहीं है।

मनुष्यको चाहिये, कि सूखी रोटी और चिथड़ोंसे बनी गुदड़ीमें सुखी रहे। मनुष्योंके ऐहसानोंका भार उठानेसे अपने दुःखोंका भार हलका न समझे। जो तंगनज़र हैं, जो लोभी हैं, उनको या तो सन्तोषसे सुख मिलता है अथवा मर जाने से। सन्तोषको तारीफ़में महात्मा कबीरकी भी सुनिये—

> गो-धन गज-धन बाजि-धन, और रतन-धन-खानि ।
> जब आवे सन्तोष-धन, सब धन धूरि-समान ॥

संसारमें गोधन, गजधन, बाजिधन और रत्न धन आदि अनेक तरहके धन हैं। कोई गायोंको धन मानता है, कोई हाथियोंको धन मानता है, कोई घोड़ोंको और कोई हीरे पन्ने नीलम पुखराज प्रभृतिको धन मानता है। संसारी लोग इन सबको ही धन समझते हैं, पर इन धनोंसे किसीकी भी तृष्णा नहीं बुझती, सन्तोष नहीं आता—शान्ति नहीं मिलती। जब सन्तोष रूपी धन मनुष्यके हाथ आता है; तब वह गाय, बैल, घोड़े, हाथी, मुहर-अशरफी और हीरे पन्ने प्रभृति धनोंको

मिट्टीके समान समझता और सन्तोष-धनसे सुखी हो जाता है। सारांश यह कि, गाय, घोड़े, हाथी और हीरों पन्नों प्रभृति से किसीको सुख-शान्ति नहीं मिलती। सुख-शान्ति मिलती है केवल सन्तोषसे ; अतः सन्तोष-धन सब धनोंसे बड़ा धन है। और धन देखनेमें अच्छे मालूम होते हैं,पर उनमें वास्तविक सुख नहीं—वास्तविक सुख सन्तोषमें ही है।

तुलसीदासजीकी भी सुनियेः—

जहँा तोष तहँा राम है, राम तोष नहीं भेद।
"तुलसी" देखी गहत नहिं, सहत विविध विधि खेद ॥

मनुष्य जब दुनियवी आदमियोंका आसरा-भरोसा छोड़ कर भगवान्‌की शरणमें जाता है, तब उसे सन्तोष होता है। भगवान्‌में और सन्तोषमें फ़र्क़ नहीं है। जहाँ सन्तोष है, वहाँ भगवान् हैं और जहाँ भगवान् हैं, वहाँ सन्तोष है। तुलसीदास जी कहते हैं—हमने आँखोंसे देखा है, जिन्होंने भी भगवान्‌को शरण गही और सन्तोष किया, वे निश्चय ही सुखी हुए। इसके विपरीत ; जो लोग दुनियवी मनुष्यों और धन प्रभृतिसे सुखकी आशा करते हैं, भगवानसे विमुख रहते हैं, उन पर भरोसा नहीं करते, एकमात्र उन्हींकी शरणमें नहीं जाते, वे नाना प्रकारके दुःख भोगते हैं। बचपनमें माँके मर जानेसे अथवा परतंत्र रहनेसे दुःख पाते हैं। जवानीमें, अपनी स्त्रीको परपुरुषरता देखकर जलते-कुढ़ते हैं अथवा पराई सुन्दरी स्त्रीको

देखकर और उसे न पाकर कामाग्निमें भस्म होते हैं ; अथवा पुत्र-कन्या और स्त्री प्रभृति प्यारोंके मरनेसे उनकी वियोगाग्निमें जल-जल कर दुखी होते हैं ; अथवा धनके नाश हो जानेसे कलपते हैं। बुढ़ापेमें आँख, कान आदि इन्द्रियोंके बेकाम हो जाने और शरीरमें शक्ति न रहने एवं जने-जनेसे अपमानित होनेसे घोर दुःसह दुःख सहन करते हैं। जब तरह-तरहके रोग आकर घेर लेते हैं, तब जीवन भार-स्वरूप मालूम होता है। जब ऐसे-ऐसे झंझटोंमें, तृष्णाको साथ लेकर मर जाते हैं; तब फिर चौरासी लाख योनियोंमें जन्म लेते और मरते हैं। इस तरह हज़ारों-लाखों बरस बाद—न जाने कब ?—फिर मनुष्य-जन्म मिलता है। मनुष्य-देह पाकर ही मनुष्य अपने उद्धारका उपाय कर सकता है; क्योंकि इसी जन्ममें भले बुरेके विचारकी शक्ति होती है; और योनियोंमें तो पाप-ही-पाप होते हैं ; अतः मनुष्य-जन्मको, मामूली बात समझकर, योंही दुनियवी सुख-भोगोंमें न गँवाना चाहिये। संसारी सुख-भोगोंसे न तो इस दुनियामें सुख-शान्ति मिलती है और न इसके बादकी दुनियामें। इस लोकमें सुख भोगनेवालोंको लाखों बरसों तक घोर दुःख भोगने होते हैं। हाँ, जो लोग इस मनुष्य-देहकी क़ीमत समझ कर, सब संसारी सुखोंको लात मारकर, भगवान् की शरणमें चले जाते हैं और सन्तोष-वृत्ति रखते हैं, वे इस लोक और परलोकमें सदा सुख भोग करते और अन्तमें ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं।

छप्पय ।

तुम धनसों सन्तुष्ट, हमहुँ हैं वृत्तबकल तें ।
दोऊ भये समान, नैन मुख अंग सकल तें ।
जाने जात दरिद्र, बहुत तृष्णा है जिनके ।
जिनके तृष्णा नाहिं, बहुत सम्पत है तिनके ।
तुमही विचार देखो दृगन, को निर्धन ? धनवन्त को ?
जुत पाप कौन ? निष्पापको ? को असन्त अरु सन्तको ? ॥५०॥

50 We are contented here ouly with the possession of the bark of trees, whilst thou art content with the possession of wealth. Contentment being the same, the difference between us is equalised, He is always poor whose desires are predominant in his mind while to a contented-man the rich and the poor are all alike

यदेतत्स्वच्छन्दं विहरणमकार्पण्यमशनं
सहार्यैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् ॥
मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि विमृश-
न्न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः ॥५१॥

हमहुँ हैं=हम भी हैं। वृत्तबकल तें=पेड़ोंकी छालोंसे। दोऊ भये... सकल तें=दोनों ही आँख और मुँह वग़ैरः सभी अंगोंसे बराबर हैं। तृष्णा=इच्छा। सम्पत=दौलत। दृगन=आँखों से। को=कौन। जुतपाप=पापयुक्त, पापी। निष्पाप=पाप-रहित। असन्त=दुष्ट; दुर्जन। सन्त=सज्जन। को निर्धन...सन्तको ?=कौन निर्धन और कौन

स्वाधीनतापूर्वक जीवन अतिवाहित करना, बिना माँगे खाना, विपद्में साहस रखनेवाले मित्रोंकी संगति करना, मनको वशमें करने की तरकीबें बताने वाले शास्त्रोंका पढ़ना-सुनना और चञ्चल चित्तको स्थिर करना—हम नहीं जानते, ये किस पूर्व-तपस्याके फलसे प्राप्त होते हैं ?

पराधीन मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता, उसे पैंड-पैंड पर अपमानित, लाञ्छित और दुःखित होना पड़ता है। जो स्वाधीन हैं, किसीके अधीन नहीं हैं, वे ही सच्चे सुखिया हैं। जिनको अपने पेटके लिये किसीके सामने गिड़गिड़ाना नहीं पड़ता—किसीके सामने दीन बचन कहने नहीं पड़ते, जिनके दुःसमयमें सहायता देनेवाले, बिना कहे कष्ट निवारण करने वाले मित्र हैं ; जो मनको शान्त करनेवाले और उसकी चञ्च-लता दूर करनेवाले शास्त्रोंको पढ़ते हैं—वे भाग्यवान् हैं। कह नहीं सकते, उन्होंने ये उत्तम फल पूर्वजन्मके किस कठोर तपसे पाये हैं।

दोहा ।

सत्संगति स्वच्छन्दता, बिना कृपणता भच्छ ।
जान्यो नहिं किहि तप किए, यह फल होत प्रत्यच्छ ॥५१॥

धनवान है ? कौन पापी और कौन पाप-रहित है ? कौन दुर्जन और कौन सज्जन है ?

सत्संगति=सज्जनोंकी संगति, शरीफों की सुहबत। स्वच्छन्दता=

51. I do not know which austere Tapa practised in the previous existence gives rise to the following fruits:—Living an independent life, dining without begging for food, company of friends ready to help in difficulty, listening to Shastras in such a way as will enable one to prepare for the vow of self-control, the slackening of mental restlessness and even when the mind grows restless, trying to restrain it by thoughtful consideration.

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्ष्यमक्षय्यमन्नं
विस्तीर्णं वस्त्रमाशासुदशकममलं तल्पमस्वल्पमुर्वी ॥
येषां निःसंगतांगीकरणपरिणतिः स्वात्मसन्तोषिणस्ते
धन्याःसंन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्मनिर्मूलयन्ति ॥५२॥

वे ही प्रशंसाभाजन हैं, वे ही धन्य हैं, उन्होंने ही कर्मकी जड़ काट दी है—जो अपने हाथोंके सिवा और किसी बासन की ज़रूरत नहीं समझते, जो घूम-घूमकर भिक्षाका अन्न खाते हैं, जो दशों-दिशाओं को ही अपना बिस्तृत वस्त्र समझते हैं, जो सारी पृथ्वी को ही अपनी निर्मल शय्या समझते हैं, जो अकेले रहना पसन्द करते हैं, जो दीनतासे घृणा करते हैं और जिन्होंने आत्मामें ही सन्तोष कर लिया है ॥५२॥

जिन्होंने सबसे मन हटा कर, सब तरहके विषयोंको त्याग कर, संसारी माया-जाल काट कर, अपने आत्मामें ही सन्तोष

स्वतन्त्रता, आज़ादी। अन्न=खाना, भोजन। जान्यो नहिं=नहीं जानता। किहि तप किए=कौनसा तप करनेसे। होत प्रत्यक्ष=मिलते हैं।

कर :लिया है; जो किसी भी वस्तुकी आकांक्षा नहीं रखते, यहाँ तक कि जल पीनेको भी कोई बर्तन पास नहीं रखते ; अपने हाथोंसे ही बर्तनका काम ले लेते हैं ; खानेके लिये घर में सामान नहीं रखते, कलके भोजनकी फिक्र नहीं करते, आज इस गाँवमें माँगकर पेट भर लेते हैं तो कल दूसरे गाँव में जा माँगते हैं, एक गाँवमें दो रात नहीं बिताते ; जो शरीर ढकनेके लिये कपड़ोंको भी ज़रूरत नही रखते, दशों दिशाओंको ही अपना वस्त्र समझते हैं ; जो पलँग-तोशक और गद्दे तकियोंकी आवश्यकता नहीं समझते, ज़रासी ज़मीनको ही निर्मल पलँग समझते हैं ; जब नींद आती है, अपने हाथका तकिया लगाकर सो जाते हैं ; जो किसीका सङ्ग नहीं करते, अकेले रहते हैं, वैराग्यमें ही परमानन्द समझते हैं ; जो किसीके सामने दीनता नहीं करते—अथवा दैन्यरूपी व्यसनोंसे घृणा करते और अपने स्वरूपमें ही मगन रहते हैं, वे पुरुष सचमुच ही महापुरुष हैं। ऐसे पुरुषरत्न धन्य हैं ! उन्होंने सचमुच ही कर्म-बन्धन काट दिया है। वे ही सच्चे त्यागी और संन्यासी हैं। ऐसेही महापुरुषोंके सम्बन्धमें महात्मा सुन्दरदासजीने कहा है:—

काम ही न क्रोध जाके, लोभ ही न मोह ताके।
मद ही न मत्सर, न कोऊ न विकारो है ॥
दुःख ही न सुख माने, पाप ही न पुण्य जाने।
हरष न शोक आनै, देह ही तें न्यारो है ॥

निन्दा न प्रशंसा करै, राग ही न द्वेष धरै ।
लेन ही न देन जाके, कुछ न पसारो है ॥
सुन्दर कहत, ताकी अगम अगाध गति ।
ऐसो कोउ साधु, सो तो रामजी कूँ प्यारो है ॥

जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर प्रभृति विकार नहीं हैं; जो दुःख-सुख और पाप-पुण्यको नहीं जानता; जिसे न खुशी होती है और न रञ्ज; जो अपने शरीर से अलग है; जो न किसीकी तारीफ तरता है और न किसी की बुराई करता है; जिसे न किसीसे प्रेम है और न किसी से वैर है; जिसका न किसीसे लेना है और न किसीको देना है; न और ही किसी तरहका व्यवहार है। सुन्दरदास कहते हैं, ऐसे मनुष्यकी गति अगम्य और अगाध है। उसकी गहराईका पता नहीं। ऐसा ही महापुरुष भगवान्‌को प्यारा लगता है।

छप्पय ।

भोजनकों कर पट्ट, दशों दिशि बसन बनाये ।
भखै भीखको अन्न, पलँग पृथ्वी पर छाये ।
छाँडि सबनको संग, अकेले रहत रैन दिन ।
नित आतस सों लीन, पौन सन्तोष छिनहिं छिन ।

कर=हाथ। दशोंदिशि=पूरब, पच्छिम आदि दश दिशाएँ। बसन= कपड़ा। भखै=खावे, खाता है। छाँडि सबनको संग=स्त्री पुत्र आदिको

मनको विकार, इन्द्रीनको डारै तोर मरोर जिन ।

वे धन्य २ संन्यास धन , कर्म किये निर्मूल तिन ॥५२

52. Praiseworthy are those and they alone who cut down the roots oj Karma, who do not need any other vessel but their own hands for the purposes of drinking water etc, who eat only the food procured by leading the life of a wandering mendicant, who consider the endless space to be the only fit garments for them, who have the wide earth alone for their bed and whose mind has been trained into the habit of non-attachment by practising self-contentment.

दुराराध्यः स्वामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो

वयं तु स्थूलेच्छा महति च पदे बद्धमनसः ।

जरा देहं मृत्युर्हरति सकलं जीवितमिदं

सखे नान्यच्छ्रेयो जगति विदुषोऽन्यत्र तपसः ॥५३॥

मालिकको राज़ी करना कठिन है। राजाओंके दिल घोड़ों के समान चञ्चल होते हैं। इधर हमारी इच्छाएँ बड़ी भारी हैं; उधर हम बड़े भारी पद—मोक्षके अभिलाषी हैं। बुढ़ापा शरीर को निकम्मा करता है और मृत्यु जीवन का नाश करती है। इसलिये हे मित्र ! बुद्धिमान्के लिये, इस जगत्में, तपसे बढ़कर और कल्याण-का मार्ग नहीं है ॥५३॥

छोड़कर। रैनदिन=रात-दिन। नित=नित्य। आतम=आत्मा। निर्मूल=जड़ रहित। तिन=उन्होंने।

सेवा-धर्म बड़ा कठिन है। हज़ारों प्रकारकी सेवायें करने, अनेक प्रकार की हाँ-में-हाँ मिलाने, दिनको रात और रातको दिन कहने, तरह-तरहकी खुशामदें करनेसे भी मालिक कभी सन्तुष्ट नहीं होता। राजाओंके दिल अशिक्षित घोड़ोंकी तरह चंचल होते हैं। उनके चित्त स्थिर नहीं रहते; ज़रासी देरमें वे प्रसन्न होते और ज़रासी देरमें अप्रसन्न हो जाते हैं; क्षणभरमें गाँव-के-गाँव बख़्शते और क्षण-भरमें शूली पर चढ़वाते हैं; इसलिये राजसेवामें बड़ा ख़तरा है। उसमें ज़रा भी सुख नहीं, यहाँतक कि जानकी भी ख़ैर नहीं है। एक तरफ तो हमारी इच्छाओं और हमारे मनोरथोंकी सीमा नहीं है; दूसरी ओर हम परमपदके अभिलाषी हैं; इस लिये यहाँ भी मेल नहीं खाता। बुढ़ापा हमारे शरीरको निर्बल और रूपको कुरूप करता एवं सामर्थ्य और बलका नाश करता है तथा मृत्यु सिरपर मँडराती है। ऐसी दशामें मित्रवर! कहीं सुख नहीं है। अगर सुख—सच्चा सुख चाहते हो, तो परमात्मा का भजन करो। उससे आपके इहलोक और परलोक दोनो सुधरेंगे, आप जन्म-मरणके कष्टसे छुटकारा पाकर मोक्ष-पद पायेंगे। सारांश यह है, कि सच्चा और नित्य सुख केवल वैराग्य और इश्वर-भक्तिमें है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं।

"तुलसी" मिटै न कल्पना, गये कल्पतरु-छाँह।
जब लगि द्रवै न करि कृपा, जनक-सुता को नाह॥

हित सन हित—रति राम सन, रिपु सन वैर विहाय।
उदासीन संसार सन, "तुलसी" सहज सुभाय॥

मनुष्य चाहे कल्पवृक्षके नीचे क्यों न चला जाय, जबतक सीतापतिकी कृपा न होगी तब तक उसके दुःखोंका नाश नहीं हो सकता ; इसलिये शत्रुता-मित्रता छोड़, संसारसे उदासीन हो, भगवान्‌से प्रीति करो।

खुलासा—कहते हैं, इन्द्रके बग़ीचेमें एक ऐसा वृक्ष है, जिसकी छायामें जाकर मनुष्य या देवता जो चीज़ चाहते हैं, वही उनके पास आप-से-आप आजाती है। उसी वृक्षको "कल्प-वृक्ष" कहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, जब तक जानकी-नाथ रामचन्द्रजी दया करके प्रसन्न न हों तब तक, मनुष्यकी कल्पना, कल्पवृक्षकी छायामें जानसे भी, नहीं मिट सकती।

जप, तप, तीर्थ, व्रत, शम, दम, दया, सत्य, शौच और दान वगैरः काम अगर मनमें वासना रखकर किये जाते हैं; यानी करनेवाला यदि उनका फल या पुरस्कार चाहता है, तो उसे स्वर्गादि मिलते हैं। स्वर्गमें जाने से मनुष्यका आवागमन—इस दुनियामें आना और यहाँसे फिर जाना—पैदा होना और मरना—नहीं बन्द हो सकता। क्योंकि कहा है—"पुण्ये क्षीणे मृत्युलोके" अर्थात् पुण्योंके क्षीण होते ही फिर स्वर्गसे मृत्यु लोकमें आना पड़ता है। उपरोक्त जप-तप आदिसे स्वर्ग तो मिलता है, पर मनुष्यका असल मक़सद पूरा नहीं होता ; यानी उसे परमपद या मोक्ष नहीं

मिलती। इसलिये मनुष्यको निष्काम कर्म करने चाहियें अथवा सारे कर्म भगवान्‌की प्रीतिके लिए करने चाहियें। "गीता"में भी यही बात भगवान् कृष्णने कही है। बहुत लिखनेसे क्या —भगवान्‌की भक्ति सर्वोपरि है। भगवान्‌की भक्तिसे जो काम हो सकता है, वह घोर-से-घोर तपस्याओंसे भी नहीं हो सकता। किसीने कहा है :—

पठित सकल वेदश्शास्त्रपारंगतो वा

यम नियम परो वा धर्म्मशास्त्रार्थकृद्वा।

अटित सकल तीर्थव्राजको वाहिताग्निर्नहि

हृदि यदि रामः सर्वमेतत्वृथा स्यात्॥

चाहे सारे वेद-शास्त्रोंको पढ़ लो, चाहे यम नियम आदि कर लो, चाहे धर्मशास्त्रको मनन करलो और चाहे सारे तीर्थ कर लो, अगर आपके दिलमें राम नहीं है, तो ये सब वृथा हैं।

इसीलिये तुलसीदासजी कहते हैं, कि दोस्तोंसे दोस्ती और दुश्मनोंसे दुश्मनी छोड़कर एवं संसारसे उदासीन होकर भगवान्‌से प्रीति करो। मतलब यह है, कि न किसीसे राग करो और न किसीसे द्वेष ; सबको उदासीन होकर देखो। जब आपका दिल राग-द्वेष आदिसे शुद्ध होगा—इस दुनियामें न कोई आपका प्यारा होगा और न कोई कुप्यारा ; तभी आपका दिल एक भगवान्‌में लगेगा।

महात्मा सुन्दरदासजी कहते हैं:—

(१)

काहे कूँ फिरत नर ! दीन भयो घर-घर ।
देखियत, तेरा तो आहार इक सेर है ॥
जाको देह सागर में, सुन्यो शत योजन को ।
ताहू कूँ तो देत प्रभु, यामें नहिं फेर है ॥
भूखो कोउ रहत न, जानिये जगत माहिं ।
कीरी अरु कुन्जर, सबन ही कूँ देत है ॥
"सुन्दर" कहत, विश्वास क्यूँ न राखे शठ ? ।
बेर-बेर समझाय, कह्यौ केती बेर है ॥१॥

(२)

काहे कूँ दौरत है दशहुँ दिशि ?
तू नर ! देख कियो हरिजू को ।
बैठि रहै दुरिके मुख मुँदि,
उघारत दाँत खवाइहि टूको ।
गर्भ थके प्रतिपाल करी जिन,
होइ रह्यो तबहीं जड़ मूको ।
"सुन्दर" क्यूँ बिल्लात फिरे अब ?
राख हृदे विश्वास प्रभु को ॥२॥

(१)

हे पुरुष ! तू दीन होकर क्यों घर-घर मारा-मारा फिरता है ? देख, तेरा पेट तो एक सेर आटेमें भर जाता है। सुनते

हैं, समुद्रमें जिसका शरीर चार सौ कोस लम्बा-चौड़ा है, उसको भी प्रभु भोजन पहुँचाते हैं, इसमें ज़रा भी शक नहीं। संसारमें कोई भी भूखा नहीं रहता। वह जगदीश चींटी और हाथी सबका पेट भरते हैं। अरे शठ! विश्वास क्यों नहीं रखता? सुन्दरदासजी कहते हैं, मैंने तुझे यह बात बारम्बार कितनी बार नहीं समझाई है?

(२)

अरे! तू दशों दिशाओंमें क्यों भागा फिरता है? तू भगवान्के किये हुए कामोंका ख़याल कर। देख, जब तू मुँह बन्द किये हुए छिपा बैठा था, तब भी तुझे खानेको पहुँचाया और जब तेरे दाँत आ गये तब भी तुझे तेरे मुँह खोलते ही खानेको टुकड़ दिया। जिस प्रभुने तेरी गर्भावस्थासे ही—जबकि तू जड़ और मूक था—पालना की है, वही क्या अब तेरी ख़बर न लेगा? सुन्दरदासजी कहते है, तू क्यों चीख़ता फिरता है? भगवान्का भरोसा रख; वही प्रभु अब भी तेरी पालना करेंगे।

सारांश यह, कि बुद्धिमानको दुनियाके घमण्डी लोगों की खुशामद छोड़, केवल उसकी खुशामद और नौकरी करनी चाहिये, जिसके दिलमें न घमण्ड है और न क्रूरता। जो उसकी शरणमें जाता है, उसीकी वह अवश्य प्रतिपालना करता और उसके दुःख दूर करनेको हाज़रा हुज़ूर खड़ा रहता है। मनुष्य! तेरी जिन्दगी अढ़ाई मिनटकी हैं। इस अढ़ाई मिनटकी

ज़िन्दगीको वृथा बर्बाद न कर। इसे ख़तम होते देर न लगेगी। राजाओं और अमीरोंकी सेवा-टहल और लल्लो-चप्पो में यह शीघ्र ही पूरी हो जायगी और उनसे तेरी कामना भी सिद्ध न होगी। यदि तू सबका आसरा छोड़, जगदीशकी ही चाकरी करेगा; तो निश्चय ही तेरा भला होगा—तेरे दुःखों का अवसान हो जायगा; तुझे फिर जन्म लेकर घोर कष्ट न सहने होंगे; तुझे नित्य और चिरस्थायी शान्ति मिलेगी। अरे! तू सारी चतुराई और चालाकियोंको छोड़कर, एक इस चतुराईको कर; क्योंकि यही चातुरी सच्ची चातुरी है। जो जगदीशको प्रसन्न कर लेता है, वही सच्चा चतुर है। कहा है:—

> या राका शशि-शोभना गतघना सा यामिनी यामिनी।
> या सौन्दर्य्य-गुणान्विता पतिरता सा कामिनी कामिनी॥
> या गोविन्द-रस-प्रमोद मधुरा सा माधुरी माधुरी।
> या लोकद्वय साधनी तनुभृताँ सा चातुरी चातुरी॥

मेघावरणशून्य पूर्ण-चन्द्रमासे शोभायमान जो रात्रि है, वही रात्रि है। जो सुन्दरी है, गुणवती है और पतिमें भक्ति रखनेवाली है, वही कामिनी है। कृष्णके प्रेमके आनन्दसे मनोहर मधुरता ही मधुरता है। शरीरधारियोंका दोनो लोकोंमें उपकार करनेवाली जो चतुराई है, वही चतुराई है।

दोहा ।

नृप-सेवामें तुच्छ फल, बुरी कालकी व्याधि ।

अपनो हित चाहत कियो, तौ तू तप आराधि ।।५३।।

53, Masters are not easily pleased and kings are restless in mind like untrained horses, We have great desires while we still cherish in our mind the hope of reaching the great goal of salvation. The body is susceptible to old age and life itself is liable to be destroyed by Death. O friend, there is no better thing in this world for a wise man than practising Penance.

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचञ्चला

आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलीनाम्बुवद्भंगुरम् ॥

लोला यौवनलालसा तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं

योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विदध्वं बुधाः ॥५४॥

देहधारियोंके भोग—विषय-सुख—सघन बादलोंमें चमकनेवाली बिजली की तरह चञ्चल हैं ; मनुष्यों की आयु या उम्र हवासे छिन्न-भिन्न हुए बादलोंके जलके समान क्षणस्थायी या नाशमान् है और जवानी की उमंग भी स्थिर नहीं है । इसलिये बुद्धिमानो ! धैर्य्यसे चित्तको एकाग्र करके, उसे योगसाधन में लगाओ ॥५४॥

संसार और संसारके सारे पदार्थ नाशमान् और असार हैं।

नृप-सेवा = राज-सेवा, राजाओंकी चाकरी । काल = मृत्यु = मौत । हित = भलाई । तप आराधि = तपस्या कर ।

यहाँ जो दिखाई देता है वह स्थिर न रहेगा। यह जो अथाह जलसे भरा हुआ समन्दर दिखाई देता है, किसी दिन मरुस्थल में परिणत हो जायगा ; पानीकी एक बूँद भी नहीं मिलेगी। यह बाग़ीचा, जो आज इन्द्रके बग़ीचेकी बराबरी कर रहा है, जिसमें हज़ारों तरहके फूलोंके वृक्ष लग रहे हैं, हौज़ बने हुए हैं, छोटी-छोटी नहरें कटी हुई हैं, संगमरमर और संगेमूसाके चबूतरे बने हुए हैं, बीचमें इन्द्र-भवनके जैसा महल खड़ा है, किसी दिन उजाड़ हो जायगा; इसमें स्यार, लोमड़ी और ज़रख प्रभृति पशु बसेरा लेंगे। यह जो सामने महलोंकी नगरी (City of Palaces) दीखती है, जिसमें हज़ारों दुमंज़िले, तिमंजिले, चौमंज़िले और सतमंज़िले आलीशान मकान खड़े हुए आकाश को चूम रहे हैं, जहाँ लाखों मनुष्योंके आने-जाने और काम-धन्धा करनेके कारण पीठ-से-पीठ छिलती है, किसी दिन यहाँ घोर भयानक वन हो जायगा। मनुष्योंके स्थानमें सिंह, बाघ, हाथी, गैंड़े, हिरन और स्यार प्रभृति पशु आ बसेंगे। और तो क्या—यह सूर्य, जो अपने तेज़से तीनों लोकमें प्रकाश फैलाता है, अन्धकार-रूप हो जायगा। यह अमृतसे पूर्ण सुधाकर—चन्द्रमा भी शून्य हो जायगा। इसकी शीतल चाँदनी न जान कहाँ विलीन हो जायगी? हिमालय और सुमेरु जैसे पर्वत एक दिन मिट्टीमें मिल जायँगे। यह ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी शून्य हो जाँयगे। सारा जगत् नाश हो जायगा। ये स्त्री पुत्र और नाते-रिश्तेदार न जाने कहाँ छिप जायँगे? युगोंको

सहस्र चौकड़ियोंका ब्रह्माका एक दिन होता है। उस दिन के पूरे होते ही प्रलय होती है। तब इस जगत्‌की रचना करने वाला ब्रह्मा भी नाश हो जाता है। आज तक अनगिन्ती ब्रह्मा हुए। उन्होंने जगत्‌की रचना की और अन्तमें स्वयं नष्ट हो गये। जब हमारे पैदा करनेवालेका यह हाल है, तब हमारी क्या गिन्ती ?

यह काया,—जिसे मनुष्य अपना सर्व्वस्व समझता है, जिसे मल-मल कर धोता, इत्र-फुलेलोंसे सुवासित करता, नाना प्रकारके रत्नजटित मनोहर गहने पहनता, कष्टसे बचने और सुखी होनेके लिये नरम-नरम मख़मली गद्दोंपर सोता, पैरों को तकलीफसे बचानेके लिये जोड़ी-गाड़ी या मोटरमें चढ़ता है;—एक दिन नाश हो जायगी ; पाँच तत्वोंसे बनी हुई काया पाँच तत्वोंमें ही लीन हो जायगी। जिस तरह पत्तेपर पड़ी हुई जलकी बूँद क्षणस्थायी होती है ; उसी तरह यह काया क्षणभंगुर है। दीपक और बिजलीका प्रकाश आता-जाता दीखता है, पर इस कायाका आदि-अन्त नहीं दीखता। यह काया कहाँसे आती है और कहाँ जाती है ? जिस तरह समुद्र में बुदबुदे उठते और मिट जाते हैं; उसी तरह शरीर बनते और क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं। सच तो यह है कि, यह शरीर बिजलीकी चमक और बादलकी छायाकी तरह चंचल और अस्थिर है। जिस दिन जन्म लिया, उसी दिन मौत पीछे पड़ गई ; अब वह अपना समय देखती है और समय पूर्ण होते ही प्राणीको नष्ट कर देती है।

जिस तरह जलकी तरंगें उठ-उठकर नष्ट हो जाती हैं ; उसी तरह लक्ष्मी आकर क्षणमें विलीन हो जाती है। जिस तरह बिजली चमककर ग़ायब हो जाती है ; उसी तरह लक्ष्मी दर्शन देकर ग़ायब हो जाती है। हवा और चपलाको रोकना अत्यन्त कठिन है, पर शायद कोई उन्हें रोक सके ; आकाशका चूर्ण करना अतीव कठिन है,पर शायद कोई आकाशको भी चूर्ण करनेमें समर्थ हो जाय ; समुद्रको भुजाओंसे तैरना बहुत कठिन है, पर शायद कोई तैरकर उसे भी पार कर सके ; इतने असम्भव काम शायद कोई सामर्थ्यवान् करले, पर चंचला लक्ष्मी को कोई भी स्थिर नहीं कर सकता। जिस तरह अंजलि में जल नहीं ठहरता ; उसी तरह लक्ष्मी भी किसीके पास नहीं ठहरती। जिस तरह वेश्या एक पुरुषसे राज़ी नहीं रहती, नित-नये पुरुषोंको चाहती है ; उसी तरह लक्ष्मी भी किसी एकके पास नहीं रहती, नित-नये पुरुषोंको भजती है। इसीसे लक्ष्मी और वेश्या दोनोंको ही चपला कहते हैं।

जिस तरह साँसारिक पदार्थ लक्ष्मी और विषय-भोग तथा आयु चञ्चल और क्षणस्थायी हैं; उसी तरह यौवन या जवानी भी क्षणस्थायी है। जवानी आते दीखती है, पर जाते मालूम नहीं होती। हवाकी अपेक्षा भी तेज़ चालसे दिन-रात होते हैं और उसी तेज़ीसे जवानी झट ख़तम हो जाती और बुढ़ापा आ जाता है। उस समय विस्मय सा होने लगता है। यह

शरीर तभी तक सुन्दर और मनोहर लगता है, जब तक बुढ़ापा नहीं आता। बुढ़ापा आते ही वह उछल-कूद, वह अकड़-तकड़, वह चमक-दमक, वह सुर्ख़ी, वह छातियोंका उभार, वह नयनोंका रसीलापन न जाने कहाँ ग़ायब हो जाता है। असलमें यौवनके लिये बुढ़ापा राहु है। जिस तरह चन्द्रमाको जब तक राहु नहीं ग्रसता, तभीतक प्रकाश रहता है; उसी तरह जब तक बुढ़ापा नहीं आता, तभी तक शरीरका सौन्दर्य्य और रूप-लावण्य बना रहता है। प्राणियोंको बाल्यावस्थाके बाद युवावस्था और युवावस्थाके बाद वृद्धावस्था अवश्य आती है। युवावस्था सदा नहीं रहती; अच्छी तरह गहरा विचार करने से जवानी क्षण-भरकी मालूम होती है।

संसारमें जो नाना प्रकारके अच्छे-अच्छे मनभावन पदार्थ दिखाई देते हैं, ये सभी नाशमान् हैं। ये सब वास्तवमें कुछ भी नहीं; केवल मनकी कल्पनासे इनकी सृष्टि की गई है। मूर्ख ही इनमें आस्था रखते हैं, ज्ञानी नहीं।

इस जगत्में ज्ञानीका जीवन सार्थक और अज्ञानीका निरर्थक है। अज्ञानीके जीनेसे कोई लाभ नहीं। उसके जीनेसे अर्थ-सिद्धि नहीं होती। वह वृथा सुअवसर गँवाता है। मूर्ख मोहके मारे नहीं समझता, कि ऐसा मौक़ा बड़ी मुश्किलसे मिला है। इस बार चूके तो ख़ैर नहीं। अज्ञानी अपनी अज्ञानता या मोहके कारण ही नाशमान् और दुःखोंके मूल विषयोंकी ओर दौड़ता है; पर आयु, यौवन और विषयों-

की क्षणभंगुरता पर ध्यान नहीं देता। यह मायामोह नहीं तो क्या है? "सुभाषितावलि"में लिखा है :—

चला विभूतिः क्षणभंगी यौवनं
कृतान्तदन्तान्तर्वर्त्ति जीवितम्।
तथाप्यवज्ञा परलोकसाधने
नृणामहो विस्मयकारि चेष्टितम्।

विभूति चञ्चल है, यौवन क्षणभंगुर है, जीवन कालके दाँतोंमें है; तोभी लोग परलोक-साधनकी परवा नहीं करते। मनुष्योंकी यह चेष्टा विस्मयकारक है!

फिरदौसीने "शाहनामे"में कहा है :—"मनुष्य इस नापायेदार दुनियाँसे क्यों दिल लगाते हैं; जबकि मौतका नक़्क़ारा दरवाज़े पर बज रहा है?"

मनुष्यो! होश करो, ग़फ़लतकी नींद छोड़ो। वह देखो! मौत आपका द्वार खट-खटा रही है। अब तो मिथ्या संसारका मोह त्यागो। ये जो स्त्री, पुत्र, भाई, बहिन, माता-पिता आदिक प्यारे और सम्बन्धी दिखाई देते हैं, ये उसी वक्त तक हैं, जब तक कि शरीर नाश नहीं हुआ है। शरीरके नाश होते ही ये नज़र भी न आयेंगे। यह भी समझमें न आवेगा कि, कहाँ गये और कहाँसे आये थे। यह बन्धु-बान्धवोंका मिलना, उन यात्रियों या मुसाफिरोंकी तरह है, जो भिन्न-भिन्न स्थानों से सफ़र करते हुए एक वृक्षके नीचे आकर ठहर जाते हैं और

क्षण-भर विश्राम लेकर फिर अपनी-अपनी राहपर चल देते हैं या उन मुसाफिरोंकी तरह है, जो अनेक स्थानोंसे आकर एक सराय या धर्म्मशालामें ठहरते हैं ; और फिर कोई दो दिन और कोई चार दिन रहकर, अपनी-अपनी जगहको चल देते हैं। वृक्षोंके नीचे चन्द मिनट ठहरने वालों अथवा सरायके मुसाफ़िरोंका आपसमें प्रीति करना क्या अक्लमन्दी है? जिनका क्षण-भरका साथ है, उनमें दिल फँसाना दुःख मोल लेना है। उनके अलग होते ही मनमें भयानक वेदना होगी, अतः उनके साथ कोई सरोकार न रखना चाहिये। यह संसार दो स्थानोंके बीचका स्थान है। यात्री यहाँ आकर क्षण-भर के लिए आराम करते और फिर आगे चले जाते हैं। ऐसे यात्रियोंका आपसमें मेल बढ़ाना, एक दूसरे की मुहब्बतके फन्देमें फँसना, सचमुच ही दुःखोत्पादक है। समझदार लोग मुसाफिरोंसे दिल नहीं लगाते—उनसे प्रेम नहीं करते—उन्हें अपना-पराया नहीं समझते। न उन्हें किसीसे राग है न द्वेष। वे सबको समदृष्टि या एक नज़रसे देखते हुए साहाय्य करते और उनका कष्ट निवारण करते हैं, पर उनसे प्रीति नहीं करते ; लेकिन मूर्ख लोग स्त्री-पुत्र, और माता-पिता प्रभृतिको अपना प्यारा समझते और दूसरोंकी पराया समझते हैं। इस जगतमें न कोई अपना है न पराया। यह जगत् एक वृक्ष है। इस पर हज़ारों-लाखों पक्षी भिन्न-भिन्न स्थानोंसे आकर रातको बसेरा लेते और सवेरे ही अपने-अपने स्थानोंको उड़

जाते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानोंसे आये हुए पक्षियोंको, क्या रात भर के साथके लिये, आपसमें नाता जोड़ना चाहिये? हरगिज़ नहीं, दूसरोंसे सम्बन्ध जोड़ना, किसीको अपना पुत्र और किसीको अपनी स्त्री एवं किसीको माँ या बहन समझ कर स्नेह करना तो मूर्खता है ही। स्नेह तो अपनी कायासे भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह भी क्षणभंगुर है,—सदा साथ न रहेगी।

महात्मा सुन्दर दासजी कहते हैं :—

बालूके मन्दिर माँहिं, बैठि रह्यो स्थिर होइ।
राखत है जीवनकी आश, केऊ दिन की॥
पल-पल छीजत, घटत जात घरी-घरी।
विनशत बेर कहा? खबर न छिन की॥
करत उपाय, झूठे लेनदेन खान-पान।
मूसा इत-उत फिरे, ताकि रही मिनकी॥१॥

देह-सनेह न छाँड़त है नर।
जानत है थिर है यह देहा॥
छीजत जात घटै दिन-ही-दिन।
दीसत है घटको नित छेहा॥
काल अचानक आय गहे कर।
ढाँह गिराइ करे तन खेहा॥
"सुन्दर" जानि यह निहचै धर।
एक निरंजनसूँ कर नेहा॥२॥

अरे मूर्ख ! तू इस शरीरकी मुहब्बत नहीं छोड़ता, यह तेरी बड़ी भूल है। तू इस बालूके घरको स्थिर या चिरस्थायी समझता है; पर यह दिन-पर-दिन छीजता और घटता जाता है। हमें तो इस घटका नित्य क्षय ही दीखता है। देख, किसी दिन काल अचानक आकर तेरे हाथ पकड़ लेगा और तुझे गिरा कर तेरे शरीरको ख़ाक कर देगा। सुन्दरदासजी कहते हैं,—अरे मूर्ख ! तू मेरी बातको—मेरी सलाहको ठीक समझ, इसमें मीन-मेख न लगा। यह अटल बात है। और बातोंमें चाहे फ़र्क़ पड़ जाय, पर इसमें फ़र्क़ नहीं पड़ने का। इसलिये तू अपने इस शरीरसे, अपने स्त्री-पुत्रोंसे और अपनी दौलतसे मुहब्बत छोड़कर, एक मात्र जगदीशसे प्रेम कर। उनसे स्नेह करेगा, तो सदा सुख पायेगा और इनसे मुहब्बत रक्खेगा, तो घोरातिघोर दुःख भोगेगा।

महात्मा सुन्दरदासजी कहते हैं—अरे अज्ञानी मनुष्य ! मुझे तेरी इस बातपर बड़ा ही अचम्भा आता है कि, तू इस बालूके मकानमें निःशङ्क और मस्त होकर बैठा हुआ है और कितने ही दिनोंतक जीनेकी उम्मीद रखता है। यह तेरा बालका घर हर क्षण छीजता और हर मिनट घटता जाता है। इसको नाश होते कितनी देर लगेगी ? मुझे तो एक सेकण्डका भी भरोसा नहीं। तू इस बालूके क्षणभङ्गुर घरमें बेखटके बैठा हुआ अनेक तरहके झूठे उपाय-उद्योग, [illegible]-देन और खान-पान करता है ! तू चूहेकी तरह इधर-उधर उछलता-कूदता

फिरता है ! क्या तुझे ख़बर नहीं कि, जिस तरह बिल्ली चूहेकी ताकमें बैठी रहती है; उसी तरह तेरी घातमें मौत बैठी है ?

खुलासा—ज़रा भी समझ रखने वाले समझ सकते हैं, कि प्राणियोंके शरीरोंके भीतर कोई ऐसी चीज़ है, जिसके रहने से प्राणी चलते-फिरते, काम-धन्धा करते और ज़िन्दा समझे जाते हैं। जिस वक्त वह चीज़ शरीरसे निकल जाती है, उस वक्त मनुष्य मुर्दा हो जाता है, उस समय वह न तो चल फिर सकता है, न देख-सुन या और कोई काम कर सकता है। जिस चीज़के प्रकाशसे इस शरीरमें प्रकाश रहता है, जिसके बलसे यह काम-धन्धे करता और बोलता-चालता है, उसे जीव या आत्मा कहते हैं। हमारा शरीर हमारे आत्माके रहनेका घर है। जिस तरह मकानमें मोरी, परनाले, खिड़की और जंगले होते हैं; उसी तरह आत्माके रहनेके इस शरीर रूपी घरमें भी मोरी और परनाले वगैरः हैं। आँख, कान, नाक और मुँह प्रभृति इस शरीर रूपी घरके द्वार और गुदा-लिङ्ग या योनि वगैरः मोरी-परनाले हैं। शरीरके करोड़ों छेद इस मकानके जङ्गले और खिड़कियाँ हैं। मतलब यह कि, यह शरीर आत्मा या जीवके बसनेका घर है। यह घर मिट्टी और जल प्रभृति पंच तत्वोंसे बना हुआ है। इस घरके बनाने वाला कारीगर परमात्मा है।

जिस तरह परमात्माने आत्माके रहनेके लिए पाँच तत्वोंसे यह शरीर रूपी घर बना दिया है; उसी तरह हमने भी इस अपने आत्माके शरीरकी रक्षाके लिये—मेह पानी और धूप आदिसे

बचनेके लिए—मिट्टी या ईंट पत्थर प्रभृतिके मकान बना लिये हैं। हमारे बनाये हुए ईंट पत्थरोंके मकान सौ-सौ दो-दो सौ और पाँच-पांच सौ बरसों तक रह सकते हैं। हज़ार-हज़ार बरससे ज़ियादा मुद्दतके बने हुए मकान आज तक खड़े हुए हैं। पर हमारे आत्माके रहनेका पंच तत्वोंसे बना हुआ मकान इतना मज़बूत नहीं—वह क्षणभरमें ढह जाता है। इस लिये इस आत्माके मकान—शरीर—को महात्मा सुन्दरदासजी बालूका मकान कहते हैं। क्योंकि बालूका मकान इधर बनता और उधर गिर पड़ता है। उसकी उम्र पलभर की भी नहीं।

मनुष्य अज्ञान और मोहसे अन्धा रहनेके कारण, इस बालूके मकानकी क्षणभंगुरताका कभी ख़याल भी नहीं करता। वह इस बालूके मकानमें ही सैकड़ों बरसों तक रहनेकी आशा करता है! मनुष्यकी इस ग़फलत और बेहोशीपर पूर्णज्ञानी महात्मा सुन्दरदासजीको दुःख और आश्चर्य्य होता है। महा-पुरुष सदा पराया भला चाहा करते हैं; वे दूसरोंको दुःख और क्लेशोंसे बचाना अपना कर्तव्य और फ़र्ज़ समझते हैं, इसलिये वे अज्ञानान्धकारमें डूबे हुए मनुष्योंको सावधान करनेके लिए कहते हैं—अरे मूर्ख! तू इस बालूके घरमें रहकर भी बरसों जीनेकी—इस घरमें रहनेकी—आशा करता है? अरे नादान! होश कर! जाग! तेरा यह बालूका घर पलक मारते गिर जायगा! जबसे तू इस बालूके घरमें आया है, तभीसे इसकी नींव हिलने लग गई है। एक मिनट या एक सेकण्डमें

गिरा ही चाहता है ! ऐसे क्षणभंगुर घरमें रहकर तू मकान बनवाता है ; बाग़-बग़ीचे लगवाता है ; किसी को अपनी स्त्री, किसीको अपना पुत्र और किसीको अपना बाप, भाई या मित्र समझता है ; इनके मोह-जालमें फसता है ; बेहोशीमें, लोगों पर अत्याचार और जुल्म करता एवं पराया धन हड़पता है ! मुझे तेरी इन करतूतोंको देखकर निहायत आश्चर्य्य भी होता और दुःख भी होता है ! सच तो यह है कि,मुझे तेरी नादानी पर तरस आता है। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, अब भी चेत जा !! धन-दौलत, स्त्री-पुत्र, राज-पाट और ज़मीन्दारीका मोह त्यागकर अपने बनानेवालेकी शरणमें जा। वही तेरे इस बालूके घरमें बारम्बार आने और फिर क्षणभरमें इसे छोड़ भागनेके घोर कष्ट को दूर कर सकता है। अगर तू इस जगज्जालमें फँसा रहेगा, मेरी बातपर ध्यान न देगा, तो पीछे बहुत पछतावेगा। जिस समय तेरा यह घर गिरनेपर आवेगा, तू इसे छोड़नेके लिए मजबूर होगा ; उस समय तू हज़ार चाहने और हज़ार रोने-कलपनेपर भी इसमें क्षणभर भी न रह सकेगा। जब तक तू इस बालूके घरमें है, तभीतक तेरी स्त्री और तभी तक तेरा पुत्र और धन-दौलत आदि हैं। जहाँ तैंने यह घर छोड़ा या तेरा यह घर गिरा ; फिर न तुझे स्त्री दीखेगी, न पुत्र दीखेगा और न धन-दौलत ही। यह बालूका घर तुझे, एक क्षणभरके लिये, इस ग़रज़से मिला है कि, तू इसमें जितनी देर रहे उतनी देर जगदीशकी भक्ति करके,अपने कर्मबन्धन काटले और जन्म-मरण

के झंझटोंसे बचकर, अपने मालिकमें मिल जावे; ताकि फिर तुझे कभी दुःख न भोगने पड़ें—तू सदा-सर्वदा—अनन्त काल तक नित्य और अविनाशी सुख भोगता रहे।

लक्ष्मी क्षणभंगुर है। समुद्रमें जिस तरह तरंगें उठती और विलीन हो जाती हैं; उसी तरह लक्ष्मी से विषय-भोग उपजते और नष्ट हो जाते हैं। जिस तरह चपला की चमक स्थिर नहीं रहती; उसी तरह भोग भी स्थिर नहीं रहते। विषयोंके भोगनेसे तृष्णा घटती नहीं, बल्कि बढ़ती है। तृष्णा के उदय होनेसे पुरुषके सब गुण नष्ट हो जाते हैं। दूधमें मधुरता उसी समय तक रहती है, जब तक कि उसे सर्प नहीं छूता; पुरुषमें गुण भी उसी समय तक रहते हैं, जब तक कि तृष्णाका स्पर्श नहीं होता। अतः बुद्धिमानो! अनित्य, नाशमान् एवं दुःखों की खान विष-समान विषयों से दूर रहो; क्योंकि इनमें ज़रा भी सुख नहीं। जब तक विषय-भोग रहेंगे तभी तक आप सुखी रहेंगे; पर एक-न-एक दिन उनसे आप का वियोग अवश्य होगा। उस समय आप तृष्णाकी आगमें जलोगे, बारम्बार जन्म लोगे और मरोगे; अतः इन्द्रियोंको वश में करो और एकाग्र चित्तसे परमात्मा का भजन करो; क्योंकि विषयोंके भोगनेसे नरकाग्निमें जलोगे और जन्म-मरण के घोर संकट सहोगे; पर परमात्मा के भजन या योगसाधन से नित्य सुख भोगते हुए परमानन्दमें लीन हो जाओगे।

बहुत से मनुष्य मनको तो एकाग्र नहीं करते, पर दिखौवा

माला जपते हैं,गोमुखीमें सड़ा-सड़ हाथ चलाते हैं,"गीता" और "विष्णु सहस्रनाम" प्रभृतिका पाठ करते हैं और बीच-बीचमें कारोबारकी बातें भी करते रहते हैं अथवा स्त्री-बच्चोंके झगड़े निपटाया करते हैं। ऐसे भजन करने और माला फेरने से कोई लाभ नहीं। इस तरह समय वृथा नष्ट होता है। मन के एक ठौर हुए बिना, शान्त और स्थिर हुए बिना सब वृथा है। महात्मा कबीर ने ठीक ही कहा है :—

जेती लहर समुद्रकी, तेती मनकी दौरि।
सहजै हीरा ऊपजे, जो मन आवै ठौरि॥
माला फेरत युग गया, पाया न मनका फेर।
करका मनका छाँडिके, मन का मनका फेर॥
मूँड मुड़ावत दिन गये, अजहूँ न मिलिया राम।
राम नाम कहो क्या करै, मनके औरै काम॥
तनको योगी सब करें, मनको विरला कोय।
सहजै सब विधि पाइये, जो मन योगी होय॥

जितनी समुद्रकी लहरें हैं; उतनी ही मन की दौड़ है। अगर मन ठिकाने आजाय, उसमें समुद्र की सी तरंगें न उठ, तो सहजमें हीरा पैदा हो जाय; यानी परमात्मा मिल जाय।

माला फेरते-फेरते युग बीत गया, पर मनका फेर न मिला; अतः हाथ का मनिया छोड़कर, मनका मनिया फेर। हाथ

की माला फेरनेसे कोई लाभ नहीं ; लाभ है मन की माला फेरने में। मन लगाकर एक बार भी ईश्वरको याद करनेसे बड़ा फल मिलता है ; पर चञ्चल चित्त से दिन-रात माला फेरने से भी कुछ नहीं मिलता।

मूँड-मुँडाते अनेक दिन हो गये, पर आज तक भगवान् न मिले। मिलें कैसे ? मन राममें लगे, तब तो राम मिलें। मन तो विषय-भोगोंमें लगा रहता है, फिर राम कैसे मिलें ? जिस तरह रवि और रजनी—दिन और रात—एकत्र नहीं होते, उसी तरह राम और काम एकत्र नहीं मिलते। जहाँ काम है, वहाँ राम नहीं और जहाँ राम है, वहाँ काम नहीं।

तन को सब योगी करते हैं, पर मन को कोई ही योगी करता है। अगर मन योगी हो जाय, तो सहजमें सिद्धि मिल जाय। लोग गेरुवे कपड़े पहन लेते हैं, जटा रखा लेते हैं, हाथमें कमण्डल और बग़ल में मृगछाला ले लेते है—इस तरह योगी बन जाते हैं,पर मन उनका संसारी भोगोंमें ही लगा रहता है ; इसलिये उन्हें सिद्धि नहीं मिलती—ईश्वर-दर्शन नहीं होता। अगर वे लोग कपड़े चाहें गृहस्थों के से ही पहनें, गृहस्थोंकी तरह ही खायँ-पीवें ; पर मन को एक परमात्मामें रक्खें, तो निश्चय ही उन्हें भगवान् मिल जायँ। जो मनुष्य गृहस्थाश्रममें रहता है,पर उसमें आसक्ति नहीं रखता,यानी जलमें कमलकी तरह रहता है, उसकी मुक्ति निश्चय ही हो जाती है ; पर जो संन्यासी होकर विषयोंमें आसक्ति रखता है, उसकी

मोक्ष नहीं होती। राजा जनक गृहस्थीमें रहते थे ; सब तरह के राजभोग भोगते थे ; पर भोगोंमें उनकी आसक्ति नहीं थीं, इसी से उनकी मुक्ति हो गई।

सारांश—विषय-भोग, आयु और यौवनको अनित्य और क्षणभंगुर समझकर इनमें आसक्ति न रक्खो और मनको एकाग्र करके हरक्षण परमात्माका भजन करो—तो जन्म-मरणसे छुटकारा मिल जाय और परमानन्दकी प्राप्ति हो जाय। कबीरदासजी कहते हैं:—

कहा भरोसो देहको, विनसि जाय छिन माँहि।
श्वाँस श्वाँस सुमिरन करो, और जतन कछु नाहिं ॥

इस शरीरका क्या भरोसा? यह क्षण-भरमें नष्ट हो जाय। इस दशामें, सर्वोत्तम उपाय यही है कि, हर साँस पर परमात्माका नाम लो। बिना उसके नामके कोई साँस न जाने पावे। बस, इससे बढ़कर उद्धारका और उपाय नहीं है।

कुण्डलिया।

जैसे चंचल चंचला, त्योंहीं चंचल भोग।
तैसेही यह आयु है, ज्यों घट पवन प्रयोग।

चञ्चल=अस्थिर, तरल, चपल। चञ्चला=बिजली, चपला। त्योंहीं =उसी तरह। भोग=स्त्री आदिका उपभोग। आयु=उम्र। घट=

ज्यों घट पवन प्रयोग, तरल त्योंही यौवन तन ।
विनसत लगत न वार, गहत ह्वै जात ओसकन ।
देख्यौ दुःसह दुःख, देहधारिनको ऐसे ।
साधत सन्त समाधि, व्याधि सों छूटत जैसे ॥५४॥

54. Enjoyments are short-lived like the flash of lightning in the midst of thick clouds. Life is transitory like the water vapors present in the clouds which are scattered away by the blowing of a heavy gale. Men's attempts to preserve their youth for a long time are also futile. Considering all these things, O wise men! It is only proper that you direct your attention at once to Yoga which is easy to practise provided you are possessed of the virtues of perseverance and meditation.

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्नपालीं कपाली-
मादाय न्यायगर्भद्विजहुतहुतभुग्धूमधूम्रोपकण्ठम् ॥
द्वारंद्वारं प्रवृत्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्त्तो
मानी प्राणी स धन्यो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषुदीनः ॥५५॥

वह क्षुधार्त्त किन्तु मानी पुरुष, जो अपने पेटरूपी खड्डेके भरने

घड़ा, कलशो, गगरो। पवन=हवा। तरल=अस्थिर, चञ्चल। यौवन=जवानी। तन=शरीर। विनसत=नाश होते। वार देर। गहत=पकड़ते हो। ओसकन=ओसकेकण, शबनमके क़तरे। दुःसह=जो सहा न जावे, असह्य। देहधारी=शरीरधारी, मनुष्य और पशुपक्षी आदि। सन्त=साधु, उत्तम मनुष्य। समाधि=ध्यान, योगकी क्रिया विशेष। व्याधि=रोग, दुःख, क्लेश।

के लिए हाथमें पवित्र साफ़ कपड़े से ढका हुआ ठिकरा लेकर वन वन और गाँव-गाँव घूमता है और उनके दरवाज़े पर जाता है, जिनकी चौखट् न्यायतः विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा कराये हुए हवन के धूएँसे मलिन हो रही है, अच्छा है ; किन्तु वह अच्छा नहीं, जो समान कुलवालों के यहाँ जाकर माँगता है ॥५५॥

तुलसीदासजीने भी कहा है—

घरमें भूखा पड़ रहे, दस फ़ाके हो जायँ ।

तुलसी भैया-बन्धुके, कबहुँ न माँगन जाय ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, अगर मनुष्यके पास खानेको न हो, उसे उपवास करते-करते दस दिन बीत जायँ, अन्न बिना प्राण नाश होनेकी भी संभावना हो ; तोभी उसे अपनी या अपने परिवारकी जीवन-रक्षाके लिए, कुछ मिलनेकी आशासे, भाई-बन्धुओंके पास हरगिज़ न जाना चाहिये। क्योंकि ऐसे मौक़े पर वे लोग उसका अपमान करते हैं। उस अपमानका दुःख भोजन बिना प्राण नाश होनेके दुःखसे अधिक दुःखदायी होता है। मृत्युकी यंत्रणाओंका सहना आसान है, पर उस अपमानको सहना कठिन है। और भी किसीने कहा है—

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्र सेवितम् ।

द्रुमालयः पक्वफलाम्बु भोजनम् ॥

तृणानि शय्या परिधान बल्कलम् ।
न बन्धुमध्ये धनहीन जीवनम् ॥

व्याघ्र और हाथियोंसे भरे हुए जङ्गलमें रहना भला, वृक्षोंके नीचे बसना भला, पके-पके फल खाना और जल पीना भला, घास पर सो रहना और छालोंके कपड़े पहन लेना भला; पर भाइयोंके बीचमें धनहीन होकर रहना भला नहीं।

सोरठा।

विप्रनके घर जाय, भीख माँगिबौ है भलो।
बन्धुन कों सिरनाय, भोजनहु करिबौ बुरो ॥५५॥

55. Worthy of all praise is the hungry but proud man who for the sake of filling the empty pit of his stomach wanders from village to village or from forest to forest, holding in his hand a broken earthen vessel covered with a clean piece of cloth, begging at doors the frames of which have been blackened by the smoke rising from the oblation-fires of learned Brahmans, but it is not proper to demean himself by asking people of equal birth for charity.

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः
किं वा तत्त्वविवेकपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ॥

विप्रन = ब्राह्मणों। बन्धुन = भाइयों। सिर नाय = सिर नवाकर माँगिबो = माँगना। करिबो = करना।

इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणा जनै-
र्न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥५६॥

यह चाण्डाल है या ब्राह्मण है ? यह शूद्र है या तपस्वी है ? क्या यह तत्त्वविद् योगीश्वर है ?—लोगों द्वारा ऐसी अनेक प्रकार की संशय और तर्कयुक्त बातें सुनकर भी, योगी लोग न नाराज़ होते हैं न खुश ; वे तो सावधान चित्त से अपनी राह-राह चले जाते हैं ॥५६॥

योगिजन लोगोंकी बुरी-भली बातोंका ख़याल नहीं करते ; कोई कुछ भी क्यों न कहा करे। चाहे उन्हें कोई शूद्र कहे चाहे ब्राह्मण, चाहे भङ्गी और चाहे तपस्वी ; चाहे कोई निन्दा करे, चाहे स्तुति ; वे अच्छी बातसे प्रसन्न और बुरी बातसे अप्रसन्न नहीं होते। सच्चे महात्मा हर्ष-शोक, दुःख-सुख और मान-अपमान सबको समान समझते हैं।

योगेश्वर कृष्णने "गीता"के दूसरे अध्यायमें कहा है—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

जो दुःखके समय दुःखी नहीं होता ; जो राग, भय और क्रोधसे रहित है, वह "स्थितप्रज्ञ" मुनि है।

बुद्धिमानको किसी भी बातकी परवा न करनी चाहिये। हाथी की तरह रहना चाहिये। हाथीके पीछे हज़ारों कुत्ते भूकते हैं,

तृणानि शय्या परिधान बल्कलम् ।

न बन्धुमध्ये धनहीन जीवनम् ॥

व्याघ्र और हाथियोंसे भरे हुए जङ्गलमें रहना भला, वृक्षोंके नीचे बसना भला, पके-पके फल खाना और जल पीना भला, घास पर सो रहना और छालोंके कपड़े पहन लेना भला ; पर भाइयोंके बीचमें धनहीन होकर रहना भला नहीं ।

सोरठा ।

विप्रनके घर जाय, भीख माँगिबौ है भलो ।

बन्धुन कों सिरनाय, भोजनहु करिबौ बुरो ॥५५ ॥

55. Worthy of all praise is the hungry but proud man who for the sake of filling the empty pit of his stomach wanders from village to village or from forest to forest, holding in his hand a broken earthen vessel covered with a clean piece of cloth, begging at doors the frames of which have been blackened by the smoke rising from the oblation-fires of learned Brahmans, but it is not proper to demean himself by asking people of equal birth for charity.

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः

किं वा तत्वविवेकपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ॥

विप्रन=ब्राह्मणों । बन्धुन=भाइयों । सिर नाय=सिर नवाकर माँगिबो=माँगना । करिबो=करना ।

इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणा जनै-
र्न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥५६॥

यह चाण्डाल है या ब्राह्मण है ? यह शूद्र है या तपस्वी है ? क्या यह तत्त्ववित् योगीश्वर है ?—लोगों द्वारा ऐसी अनेक प्रकार की संशय और तर्कयुक्त बातें सुनकर भी, योगी लोग न नाराज़ होते हैं न खुश ; वे तो सावधान चित्त से अपनी राह-राह चले जाते हैं ॥५६॥

योगिजन लोगोंकी बुरी-भली बातोंका ख़याल नहीं करते ; कोई कुछ भी क्यों न कहा करे। चाहे उन्हें कोई शूद्र कहे चाहे ब्राह्मण, चाहे भङ्गी और चाहे तपस्वी ; चाहे कोई निन्दा करे, चाहे स्तुति ; वे अच्छी बातसे प्रसन्न और बुरी बातसे अप्रसन्न नहीं होते। सच्चे महात्मा हर्ष-शोक, दुःख-सुख और मान-अपमान सबको समान समझते हैं।

योगेश्वर कृष्णने "गीता"के दूसरे अध्यायमें कहा है—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

जो दुःखके समय दुःखी नहीं होता ; जो राग, भय और क्रोधसे रहित है, वह "स्थितप्रज्ञ" मुनि है।

बुद्धिमानको किसी भी बातकी परवा न करनी चाहिये। हाथी की तरह रहना चाहिये। हाथीके पीछे हज़ारों कुत्ते भूकते हैं,

पर वह उनकी तरफ देखता भी नहीं। महात्मा कबीर दास कहते हैं:—

हस्ती चढ़िये ज्ञानके, सहज दुलीचा डारि।
श्वान-रूप संसार है, भूसनदे झकमारि॥

"कबिरा" काहेको डरै, सिर पर सिरजनहार?।
हस्ती चढ़ दुरिये नहीं, कूकर भूसे हज़ार॥

महाकवि रहीम कहते हैं :—

जो बड़ेनकों लघु कहौ, नहिं "रहीम" घट जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं॥

सज्जन चित्त कबहुँ न धरत, दुर्जन जनके बोल।
पाहन मारे आमको, तउ फल देत अमोल॥

आप ज्ञान-रूपी हाथी पर चढ़ कर मस्त हो जाओ; किसी की परवा मत करो; बकनेवालोंको बकने दो। यह संसार कुत्तेकी तरह है। इसे भौंकने दो। झकमार कर आप ही रह जायगा। देखते हो, जब हाथी निकलता है, सैकड़ों कुत्ते उसके पीछे-पीछे भूकते हैं; पर वह अपनी स्वाभाविक चालसे, मस्त हुआ, शानके साथ चला जाता है—कुत्तोंकी तरफ नज़र उठाकर भी नहीं देखता। वह तो चला ही जाता है और कुत्ते भी झकमारके चुप हो जाते हैं। मतलब यह है, कि

तुम अच्छी राहपर चलो, संसारकी बुरी-भली बातों पर कान मत दो। हाथीका अनुकरण करो।

कबीरदास कहते हैं, अरे मनुष्य! तू क्यों डरता है, जब कि तेरे सिर पर तेरा बनाने वाला मौजूद है? हाथी पर चढ़ कर भागना उचित नहीं, चाहे हज़ारों कुत्ते क्यों न भूँकें। मतलब यह कि तुमने जो उत्तम पन्थ अख़्त्यार किया है, लोगोंके बुरा-भला कहनेसे उसे मत त्यागो। संसारी कुत्तोंसे न डरो, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करेगा।

रहीम कवि कहते हैं, बड़ोंको छोटा कहनेसे बड़े छोटे नहीं हो जाते—वे तो बड़े ही रहते हैं। गिरिराज या गोवर्द्धन पर्वतको अपनी छोटी उँगली पर उठानेवाले—अतुल पराक्रम दिखानेवाले कृष्णको लोग गिरिधरकी जगह मुरली या बाँसकी बाँसुरी धारण करनेवाले मुरलीधर कहते हैं, लेकिन वे बुरा नहीं मानते।

सज्जन लोग दुष्टोंकी कड़वी बातों या बोली-ठोलियोंका ख़याल ही नहीं करते। लोग आमके वृक्षके पत्थर मारते हैं, तो-भी वह अनमोल फल ही देता है।

दोहा।

विप्र शूद्र योगी तपी, सुपच कहत कर ठोक।
सबकी बातें सुनत हों, मोकों हर्ष न शोक ॥५६॥

विप्र=ब्राह्मण। शूद्र=हिन्दुओंको चौथा वर्ण; ब्राह्मण, क्षत्रिय और

56, Yogis or ascetics are neither angry nor pleased with the men who, when they are going on their way, accost them with various epithets such as, "Is he a low-born fellow ?" or "Is he one of a twice-born caste ?" or "Is he a Shudra ?" or "Is he one engaged in the practice of Tapa ?" or "Is he a great Yogi, wise in the realisation of Truth ?"

सखे धन्याः केचित्त्रुटितभवबन्धव्यतिकरा
वनान्ते चिन्तान्तर्विषमविषयाशीविषगताः ॥
शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवलगगना भोगसुभगां
नयन्ते ये रात्रिं सुकृतचयचित्तैकशरणाः ॥५७॥

हे मित्र ! वे पुरुष धन्य हैं, जो शरद् के चन्द्रमा की चाँदनी से सफेद हुए आकाशमण्डल से सुन्दर और मनोहर रातको वनमें बिताते हैं, जिन्होंने संसार-बन्धन को काट दिया है, जिनके अन्तःकरण से भयानक सर्प-रूपी विषय निकल गये हैं और जो सुकर्मों को ही अपना रक्षक समझते हैं ॥५७॥

वे ही लोग सुखी हैं, वे ही धन्य हैं, जो शरद्की चाँदनीकी मनोहर रातमें वनमें बैठे हुए परमात्माका भजन करते हैं, जिन्होंने संसारके जञ्जालोंको काट दिया है, जिन्होंने आशा-

---

वैश्योंकी चाकरी करने वाली जाति। योगी=जोगी। तपी=तपस्वी। श्वपच=श्वपच=चाण्डाल। कहत=कहते हैं। कर ठोक=ताली बजाकर। मोकों=मुझे। हर्ष न शोक=खुशी होती है न रञ्ज; विप्र कहनेसे खुशी नहीं होती और शूद्र कहनेसे रञ्ज नहीं होता।

तृष्णा और राग-द्वेष प्रभृतिको त्याग दिया है, जिनके भीतरी दिलसे विषय रूपी विषैले सर्प भाग गये हैं ; यानी जिन्होंने विषयों को विषकी तरह दूर कर दिया है, जिनका चित्त केवल पुण्य और परोपकारमें ही लगा रहता है।

हमें संसारकी प्रत्येक चीज़से परोपकारकी शिक्षा मिलती है। वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते, नदियाँ आप जल नहीं पीतीं, सूरज और चाँद अपने लिये नहीं घूमते, बादल अपने लिये मेह नहीं बरसाते,—ये सब पराये लिए कष्ट सहते हैं। हातिम और विक्रमने पराये लिये नाना प्रकारके कष्ट उठाये, दधीचि और शिविने परोपकारके लिये अपने-अपने शरीर भी दे दिये, हरिश्चन्द्रने पराये लिये घोर दुःसह विपत्ति भोगी। जिनका जीवन परोपकारमें बीतता है, उन्हीं का जीवन धन्य है। शेख़ सादीने "गुलिस्ताँ"में कहा है—

चूँ इन्साँरा न बाशद फ़ज़लो ऐहसाँ।
चे फ़र्क़ज़ आदमी ता नक़्श दीवार ॥

यदि मनुष्यमें परोपकार करने की इच्छा नहीं हैं, तो उसमें और दीवार पर खिंचे हुए चित्रमें क्या फ़र्क़ है ?

जिससे प्राणी मात्रका भला हो, वही मनुष्य धन्य है। उसीकी माँका पुत्र जनना सार्थक है। "रहीम" कवि कहते हैं:—

बड़े दीनको दुख सुने, देत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हती, कहु "रहीम" पहिचानि ? ॥

धनि "रहीम" जल पंकको, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ?॥

बड़े लोग दीन और दरिद्रों, निरन्न और दुखियों एवं म्लान और भीतोंकी यानी ख़ौफ़ज़दोंकी बातें सुनते हैं, उनकी दुःख-गाथाओं पर कान देते हैं ; फिर हृदयमें तरस खाकर—दया करके उन्हें कुछ देते और उनका दुःख दूर करते हैं। वे इस बातको नहीं देखते कि, यह हमारा जान-पहचानका है या नहीं; यह हमारा अपना आदमी है या ग़ैर है। देखिये, हाथी और भगवान्‌की पहचान नहीं थी। फिर भी ज्योंही भगवान्‌को ख़बर मिली कि, गजराजका पैर मगरने पकड़ लिया है, अब गजका जीवन शेष होना चाहता है, उसने ख़ूब ज़ोर मार लिया है, उसे अपनी रक्षाकी ज़रा भी आशा नहीं, इसलिये अब वह तुझे पुकार रहा है; त्योंही जान-पहचान न होने पर भी, भगवान् जल्दीके मारे नंगे पैरों भागे और हाथीकी जान बचायी। गज और ग्राहकी बात मशहूर है।

मतलब यह है, कि जिससे दूसरोंकी भलाई हो, दूसरोंका दुःख दूर हो वही बड़ा है। वह बड़ा—बड़ा नहीं, जिससे दूसरोंका उपकार न हो। जो दीनोंपर दया करते हैं, दीनोंके दुःख दूर करते हैं, दीनोंकी पालना और रक्षा करते हैं, वे ही बड़े कहलाने योग्य हैं। भगवान्‌में ये गुण पूर्ण रूपसे हैं ; इसीसे उन्हें दीनदयालु, दीनबन्धु, दीननाथ, दीनवत्सल, दीनपालक और दीनरक्षक आदि कहते हैं। मनुष्यको भगवान्

ने अपने ही जैसा बनाया है । वे चाहते हैं, कि मनुष्य मेरा अनुकरण करे ; दीन-दुखियोंके दुःख दूर करे, संकटमें उनकी सहायता करे, मुसीबतमें उन्हें मदद दे । जो मनुष्य ऐसा करते हैं, उन्हें भी संसार दीनबन्धु आदि पदवियाँ देता और सबसे बड़े दीनबन्धु उससे प्रसन्न होकर, उसकी सारी कल्पनाओंको मिटा देते हैं।

रहीम कवि कहते हैं,—कीचड़का पानी धन्य है, जिसे छोटे-छोटे जीव—कीड़े-मकोड़े धापकर पीते हैं। समुद्र चाहे जितना बड़ा है, पर उसमें तारीफकी कोई बात नहीं, क्योंकि उसके पास जाकर किसीकी प्यास नहीं बुझती ; जो भी जाता है, उसके पाससे प्यासा ही लौटता है ।

दोहा ।

ते नर जगमें धन्य हैं, शरदशुभ्र निशि माहिं ।
तोड़े बन्धन जगतके, मनते विषयन काहि ॥५७॥

सोरठा ।

विषय-सर्पकों मारि, चित्त लगाय शुभ कर्ममें ।
पुण्यकर्म शुभधारि, त्यागे सब मन-वासना ॥५७॥

ते=वे। नर=पुरुष। धन्य=भाग्यवान्=पुण्यवान्। शरद=शरद ऋतु—क्वार और कातिक। शुभ्र=सफेद। निशि=रात। शुभ्र निशि= चाँदनी रात। माँहि=में। बन्धन=क़ैद, गाँठ, गिरह, बेड़ी। मनते=

57, O friend ! happy are those who spent their nights made beautiful by the bright autumn moon-light spreading over the expanse of the heavens, seated in a corner of a forest, their tight worldly bonds broken asunder, the poison of their snake-like passions removed from inside their minds and their hearts resting under the shelter of a multitude of good actions done in the course of their life.

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थ गहनादायासदादाशु च
श्रेयोमार्गमशेषदुःखशमनव्यापारदक्षंक्षणम् ॥
शान्तिं भावमुपैहि संत्यज निजां कल्लोललोलां मतिं
भूयो मा भज भंगुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना ॥५८॥

हे चित्त! अब विश्राम ले, इन्द्रियोंके सुख सम्पादन के लिये विषयोंकी खोज में कठोर परिश्रम न कर; आन्तरिक शान्ति की चेष्टा कर, जिससे कल्याण हो और दुःखों का नाश हो; तरंग के समान चञ्चल चालको छोड़ दे; संसारी पदार्थों में और सुख न मान; क्योंकि ये असार और नाशमान् हैं। बहुत कहना व्यर्थ है, अब तू अपने आत्मामें ही सुख मान ॥५८॥

अरे दिल! अब तू इन्द्रियोंके लिए विषय-सुखोंकी खोज में मत भरम, उनके लिए तकलीफ न उठा, शान्त हो जा; उनमें

मनसे। विषअन=विषयोंको। काढ़ि=काढ़ि, निकालकर। शुभ=मंगल, कल्याण, भला। पुण्यकर्म=पवित्र कर्म। धारि=धारण करके। बासना=इच्छा, अभिलाष; मनोरथ।

कुछ भी सुख नहीं है, वे तो विषसे भी बुरे और काले नाग से भी भयङ्कर हैं। अरे ! अब तो मेरा कहना मान और अपनी चालोंको छोड़। देख, तेरे सिर पर काल मँडरा रहा है। वह एक ही बारमें तुझे निगल जायगा। अरे भैय्या, ये इन्द्रियाँ बड़ी ख़राब हैं, इनमें दया-मया नहीं, यह शैतानकी तरह कुराह पर ले जाती हैं। तू इनसे सावधान रह और इनके भुलावे में न आ। अब शान्त हो और कष्ट सहना सीख। अपनी चंचल चाल छोड़, जगत्को असार और स्वप्नवत् समझ। इस जञ्जाल से अलग हो। बारम्बार इसी की इच्छा न कर। अपने आत्मामें ही मग्न हो। इस तरह अवश्य तेरा कल्याण होगा।

कल्याण कैसा ? जब तू ज्योतिःस्वरूप आत्माको देख लेगा, तब तू उसीमें सन्तुष्ट रहेगा, उससे कभी न डिगेगा, उसके आगे और सब लाभ तुझे हेच जँचेंगे। योगेश्वर कृष्णने ऐसी ही बात गीताके छठे अध्यायमें कही है। उस सुखको सब नहीं जान सकते, जो अनुभव करता है वही जानता है। उसे कोई कह कर बता नहीं सकता। कबीरदास कहते हैं :—

ज्यों नर नारीके स्वादको, खसी नहीं पहचान।
त्यो ज्ञानीके सुखको, अज्ञानी नहीं जान ॥

स्त्री-पुरुषके सुख को जैसे हींजड़ा नहीं जान सकता, वैसे ही ज्ञानीके सुखको अज्ञानी नहीं जान सकता।

छप्पय ।

एरे चित ! कर कृपा, त्याग तू अपनी चालहि ।
शिर पर नाचत खड़्यौ, जान तू ऐसे कालहि ।
ये इन्द्रियगण निठुर, मान मत इनको कहिबौ ।
शान्तभाव कर ग्रहण, सीख कठिनाई सहिबौ ।
निजमति तरंग-सम चपल तजि, नाशवान जग जानिये ।
जनि करहु तासु इच्छा कछु, शिव-स्वरूप उर आनिये ॥५८॥

58. O mind, do thou take rest now from thy laborious efforts in acquiring the object of sensual pleasures, have recourse to internal peace which is the only way to bliss and which removes all sorts of afflictions, give up thy current-like restlessness and never again take pleasure in worldly things which are liable to destruction. In short. do thou now be pleased with thy own self.

एरे = सम्बोधन। एरे चित्त = ए मन ! त्याग = छोड़,। चालहि = चालको, चलनगतिको। कालहि = मौतको। इन्द्रियगण = आँख, कान, नाक, जीभ और चमड़ा ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं। निष्ठुर = निर्दयी, बेरहम। कहिबो = कहना, सलाह। शान्तभाव = अचञ्चलभाव, अक्षुब्धभाव। कठिनाई = तकलीफें। सहिबो = सहना, बर्दाश्त करना। निज गति = अपनी चाल। तरंग = लहर। सम = समान। तजि = छोड़। नाशवान = नाश होने वाला। जग = जगत्। जनि करहु = मत करो। तासु = उसकी। शिव = महादेव, मङ्गल, शुभ, कल्याण। उर = हृदय, दिल। आनिये = लाइये।

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरुष्वाधुना
भूशय्या नववल्कलैरकरणैरुत्तिष्ठ यामो वनम् ॥
क्षुद्राणामविवेकमूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा
चित्तव्याध्यविवेकविह्वलगिरां नामापि न श्रूयते ॥५६॥

ऐ प्यारी बुद्धि ! अब तू पवित्र फलमूलों से अपनी गुज़र कर ; बनी-बनाई भूमि-शय्या और वृक्षों की छाल के वस्त्रों से अपना निर्वाह कर । उठ, हम तो वन को जाते हैं । वहाँ उन मूर्ख और तंग-दिल अमीरों का नाम भी नहीं सुनाई देता, जिन की ज़बान धन की बीमारी के कारण उनके वश में नहीं है ॥५६॥

जिन धनवानों की ज़बान में लगाम नहीं है, जो अपनी धनकी बीमारी के कारण मुँह से चाहे जो निकाल बैठते हैं, ऐसे मदान्ध और नीच धनी जंगलों में नहीं रहते, इसलिए बुद्धिमान को वहाँ चला जाना चाहिये। वहाँ काहे का अभाव है ? खाने को फलमूल हैं, पीने को शीतल जल है, रहने को वृक्षोंकी शीतल छाया है, पहनने को वृक्षोंकी छाल है और सोने को पृथ्वी है। वहाँ दुःख नहीं है, अशान्ति नहीं है ; किन्तु और सभी जीवनधारणोपयोगी पदार्थ हैं।

जो आशाको त्याग देंगे, वह तो धनियोंके दास होंगे ही क्यों ? पर धनियोंको भी इतराना न चाहिये। यह धन सदा उनके पास न रहेगा। इसे वे अपने साथ न ले जायँगे। सम्भव है,

यह उनके सामने ही विलाय जाय। फिर ऐसे चञ्चल धन पर अभिमान किस लिये ?

किसीने कहा है—

कितने मुफ़लिस हो गये, कितने तवंगर हो गये।
ख़ाकमें जब मिल गये, दोनों बराबर हो गये॥

धनी और निर्धन का भेद तभी तक है, जब तक कि मनुष्य ज़िन्दा है; मरने पर सभी बराबर हो जाते हैं।

गिरधर कवि कहते हैं—

कुण्डलिया।

दौलत पाय न कीजिये, सपनेमें अभिमान।
चञ्चल जल दिन चारिकौ, ठाऊँ न रहत निदान॥
ठाँउ न रहत निदान, जियत जगमें यश लीजै।
मीठे वचन सुनाय, विनय सब ही की कीजै॥
कह गिरधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निशिदिन चारि, रहत सब हीके दौलत॥

धनवान होकर सुपनेमें भी घमण्ड न करना चाहिये। जिस तरह चञ्चल जल चार दिन ठहरता है, फिर अपने स्थानसे चला जाता है; उसी तरह धन भी चार दिनका मिहमान होता है, सदा किसीके पास नहीं रहता। ऐसे चञ्चल, ऐसे अस्थिर और चन्दरोज़ा धनके नशेसे मतवाले होकर, ज़बानको बेलगाम न रखना

चाहिये, सबसे मीठा बोलना चाहिये और सभीके साथ शिष्टाचार दिखाना और नम्रताका बर्ताव करना चाहिये। जब तक देहमें प्राण रहें, जब तक ज़िन्दगी रहे, यश कमाना चाहिये; बदनामीसे बचना चाहिये। अपनी ज़ुबानसे किसी को कड़वी और बुरी लगनेवाली बात न कहनी चाहिये। ज़बान का ज़ख़्म तीरके ज़ख़्मसे भी भारी होता है। तीरका ज़ख़्म मिट जाता है, पर ज़बानका ज़ख़्म नहीं मिटता। इस जगत्‌में जो जैसा करता है, वह वैसा ही पाता है। जो जौ बोता है वह जौ काटता है; और जो गेहूँ बोता है, वह गेहूँ काटता है; जो दूसरोंका दिल दुखाता है, उसका दिल भी दुखाया जायगा; जो जैसी कहेगा, वह वैसी सुनेगा। उस्ताद ज़ौक़ने कहा है—

बद न बोले ज़ेर गर्दूं, गर कोई मेरी सुने।
है यह गुम्बद की सदा, जैसी कहे वैसी सुने॥

आस्मान के नीचे किसीको बुरी बात ज़बानसे न निकालनी चाहिये। यह तो मठके अन्दर की आवाज़ है, जैसी कहोगे उसको प्रतिध्वनि-रूपमें वैसी ही सुनोगे। और भी एक कविने कहा है—

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपौ शीतल होय॥

अभिमान त्यागकर ऐसी बात कहनी चाहिये, जिससे औरोंके दिल ठण्डे हों और अपने दिलमें भी ठण्डक हो।

तुलसीदासजी ने कहा है :—

ज्ञान गरीबी गुण धरम, नरम बचन निरमोष।
तुलसी कबहुँ न छाँड़िये, शील सत्य सन्तोष॥

नित्य-अनित्यके विचारका ज्ञान, यौवन और धनादिके घमण्डका त्याग, सतोगुण, प्रभुमें निश्छल प्रीतिका धर्म, मीठे और नर्म बचन, निराभिमानता, शील, सत्य और सन्तोष इनको कभी न छोड़ना चाहिये। अज्ञानता, घमण्ड, रजोगुण-तमोगुण, अधर्म, कड़वे बचन, मान, कुशीलता, झूठ और असन्तोष—इन को छोड़ देना चाहिये।

दोहा।

बकल वसन फल असन कर, करिहौं वन विश्राम।
जित अविवेकी नरनको, सुनियत नाहीं नाम॥५९॥

59. O thou my dear Reason, be now contented with the wholesome roots and fruits of the forest for food, with the bare earth for a bed and with the bark of trees for clothing. Rise and let us go to the forest where even the names of foolish and

---

बकल वसन=वृक्षकी छालोंके कपड़े पहनकर। फल असन कर=वृक्षोंके फल खाकर। करिहौं बनविश्राम=वनमें आराम करूंगा। जित.........नाम=जहाँ अविचारवान घमण्डी लोगोंका नाम भी सुनाई नहीं पड़ता।

narrow-minded wealthy men who have no control over their tongue on account of their diseased and ignorant minds, is not heard.

मोहं मार्जयतामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूडामणौ
चेतः स्वर्गतरंगिणीतटभुवामासंगमंगीकुरु ।
को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च तडिल्लेखासु च स्त्रीषु च
ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ॥६०॥

ऐ चित्त ! अब तू मोह छोड़ कर शिर पर अर्द्धचन्द्र धारण करने वाले भगवान् शिव से प्रीति कर और गंगा-किनारेके वृक्षोंके नीचे विश्राम ले। देख ! पानी की लहर, पानी के बबूले, बिजली की चमक, आगकी लो, स्त्री, सर्प और नदीके-प्रवाह की स्थिरता का कोई विश्वास नहीं ; क्योंकि ये सातों चञ्चल हैं ॥६०॥

संसारका मोह त्यागो।

मनुष्यो ! आप लोग मोह-निद्रामें पड़े हुए क्यों अपनी दुर्लभ मनुष्य-देह को वृथा गँवा रहे हैं? आप को यह देह इसलिये नहीं मिली है कि, आप इस झूठे संसारसे मोह कर, स्त्री-पुत्र और धन-दौलतमें भूले रहें ; बल्कि इसलिए मिली है कि, आप इस देहसे दुर्लभ मोक्ष-पदकी प्राप्ति करें। पर संसार की गति ही ऐसी है कि, वह अच्छे कामोंको त्याग कर बुरे

काम करता है। वजह यह है कि, मोहान्ध अज्ञानी पुरुषको अच्छे-बुरेका ज्ञान नहीं।

जो नारी नरक-कूपके समान गन्दगीसे भरी है, जो सब तरहसे अपवित्र और घृणायोग्य है, जिसमें प्रीतिका नामो-निशान भी नहीं है, जो केवल अपने स्वार्थसे पुरुषको प्यार करती है, पतिके निर्धन या क़र्ज़दार होते ही उससे प्रीति कम कर देती या उसे त्याग देती है, जो क्षण-भरमें परायी हो जाती है, उसी नारीको पुरुष अपनी प्राणवल्लभा कहता और उसके लिये अपनी सारी सुख-शान्तिको तिलाञ्जलि देकर मरने तकको तैयार हो जाता है। क्या यह अज्ञानता नहीं है?

कवियोंने मोहवश स्त्रीके अंगोंकी बड़ी लम्बी-चौड़ी तारीफ की हैं। उसके दोनों स्तनोंको किसीने अनारों, किसीने शन्तरों अथवा दो सोनेके कलशोंकी उपमा दी है; पर वास्तवमें वे मांसके लौंदे है। उसकी जाँघोंकी केलेके खंभोंसे उपमा दी है, पर वे महागन्दी हैं; उन पर हर समय मूत्र या सफेदा बहता रहता है। उसकी आँखोंकी उपमा हिरनीके बच्चेकी आँखोंसे दी है, पर वे सर्पसे भी भयानक हैं; क्योंकि सर्पके काटनेसे मनुष्य बेहोश होता और मरता है, पर स्त्रीके तो देखनेमात्रसे ही वह पागलसा होकर मर मिटता है। वास्तवमें स्त्री सर्पसे भी बुरी है। सर्पका काटा एक बार ही मर जाता है, पर स्त्रीका काटा बारम्बार मरता और जन्म लेता है। जिस तरह कदली वनका हाथी काग़ज़की हथनोको देख, उसकी

इच्छा करता और शिकारियोंके जालमें फँसकर, बन्धनमें बँध, नाना प्रकारके दुःख झेलता है ; उसी तरह जो पुरुष स्त्रीकी इच्छा करता है, वह बन्धनमें बँधता और नाश होता है। स्त्री संसारवृक्षका वीज है, अतः स्त्री-कामी पुरुषका इस संसारसे पीछा नहीं छूटता। वह इस दुनियामें आकर, स्त्रीके कारण, नाना प्रकारके दुःख भोगता, चिन्ताग्निमें दिनरात जलता और अन्तमें मरकर ममता और वासनाके कारण फिर जन्म लेता और दुःख भोगता है।

स्त्री कामीपुरुषको ज़रासे लालचसे अपना दास बना लेती है। कामी पुरुष स्त्रीके इशारे पर उसी तरह नाचता है, जिस तरह बन्दर मदारीके इशारे पर नाचता है। वह रात-दिन उसके खुश करनेकी कोशिशोंमें लगा रहता है, घर-बाहर सोते-जागते उसीकी चिन्ता रखता है, उसीके लिये धन-गर्व्वित धनियोंकी खुशामदें करता, उनकी टेढ़ी-सूधी सुनता और आत्मप्रतिष्ठा खोता है। इतने पर भी स्त्रीकी फ़रमायशें पूरी नहीं होतीं। आज वह गहना माँगती है, तो कल कपड़े माँगती है और परसों पुत्र या कन्याके विवाहकी बात कहती है। कभी कहती है आज आटा नहीं है, कभी कहती है आज घरमें तेल-नोन नहीं है, इसी तरह उसकी फ़रमायशोंका अन्त नहीं आता, पर बेचारे पुरुषका अन्त आ जाता है। स्त्रीकी सेवा-चाकरीसे उसे इतनी भी फुरसत नहीं मिलती कि, वह क्षण-भर भी अपने बनानेवाले स्वामीको पदवन्दना कर सके।

अनेक प्रकारसे सेवा-टहल करने पर भी यदि पुरुषसे कोई फ़रमायश पूरी नहीं होती, तो वह बाघिनकी तरह घुर्राती है। दैवात्, यदि पुरुष निर्धन हो जाता है या उसके सिर पर ऋणभार हो जाता है, तो वही सात फेरोंकी व्याही स्त्री उसका अनादर और उसकी मरण-कामना करती है; क्योंकि इस जगत्में धन ही की क़ीमत है, मनुष्यकी क़ीमत नहीं। कहते हैं, निर्धन पुरुषको वेश्या तज देती है। वेश्याका तो नाम प्रसिद्ध है ही; पर वेद-विधिसे व्याही हुई स्त्री भी अपने पतिको तज देती है। धन-हीनको माता, पिता, भाई, बहिन, भौजाई, नौकर-चाकर एवं अन्य रिश्तेदार सभी बुरी नज़रसे देखते और उसे त्याग देते हैं। संसार अर्थ—धनके वशमें है। जिसके पास धन नहीं, उसका कोई नहीं। कहा है—

माता निन्दति नाभिनन्दति पिता भ्राता न सम्भाषते
भृत्यः कुप्यति नानुगच्छति सुतः कान्ता च नालगते।
अर्थप्रार्थनशंकया न कुरुतेऽप्यालापमात्रं सुहृत्
तस्मादर्थमुपार्जयस्व च सखे! ह्यर्थस्यसर्वेवशाः॥

माता निर्धन पुत्रकी निन्दा करती है, बाप आदर नहीं करता, भाई बात नहीं करता, चाकर क्रोध करता है, पुत्र आज्ञा नहीं मानता, स्त्री आलिङ्गन नहीं करती और धन माँगनेके डरसे मित्र कोरी बात भी नहीं करता; इसलिये मित्र धन कमाओ, क्योंकि सभी धनके वशमें हैं।

"आत्मपुराण"में कहा है :—

दरिद्रं पुरुषं दृष्ट्वा नार्यः कामातुरा अपि।
स्प्रष्टुं नेच्छन्ति कुणपं यद्वत्कृमिदूषितम् ॥

स्त्रियाँ कामसे आतुर होने पर भी, दरिद्री पतिको छूना पसन्द नहीं करतीं; जिस तरह कीड़ोंसे दूषित मुर्देको कोई छूना नहीं चाहता।

स्पष्ट हो गया कि, स्त्री ऊपरसे ही सुन्दर है; भीतरसे वह महागन्दी और पाषाणवत् कठोरहृदय है; जिस समय इसमें निर्दयता आती है, उस समय यह अपने क्रीतदासकी तरह सेवा करनेवाले पति और अपने उदरसे निकले हुए पुत्रके ऊपर भी दया नहीं करती। अपने स्वार्थके लिये यह उनकी भी हत्या कर डालती और नरककी राह दिखाती है; अतः स्त्रीके मोहमें फँसना, अपने नाशका सामान करना है। जिस तरह पतंग दीपकके रूप पर मोहित होकर अपना नाश करता है; उसी तरह कामी भी स्त्रीके रूप पर मुग्ध होकर अपने लोक-परलोक गँवाता है—इस जन्ममें घोर चिन्ताग्निमें जलता और मरने पर नरकाग्निमें भस्म होता और तड़पता है।

वास्तवमें स्त्रीपुत्र आदि शत्रु हैं, पर पुरुष अज्ञानतासे इन्हें अपना मित्र समझता है। महात्मा शंकराचार्य्यने अपनी प्रश्नोत्तरमालामें लिखा है—"स्त्री पुत्र देखनेमें मित्र मालूम होते हैं, पर असलमें वे शत्रु हैं।"

एक वैश्य और उसके पुत्र ।

एक वैश्यने लाखों-करोड़ों रुपये कमाये और अपने धनमेंसे चार-चार लाख रुपये अपने पुत्रोंको देकर, उनकी अलग-अलग दूकानें करवा दीं। शेष धन उसने दीवारोंमें चुनवा दिया। चन्द रोज़के बाद वह सख़्त बीमार हो गया। उसे सन्निपात हो गया और वह आन-तान बकने लगा। लोगोंने उसका अन्त समय समझ उससे कहा—"सेठजी! बहुत धन कमाया है, इस वक्त कुछ पुण्य कीजिये, क्योंकि इस समय धर्म ही साथ जायगा; स्त्री-पुत्र धन प्रभृति साथ न जायँगे।" वैश्यका गला बन्द हो गया था, अतः वह बोल न सकता था। उसने बारम्बार दीवारोंकी तरफ हाथ किये। इशारोंसे बताया कि, इन दीवारोंमें धन गड़ा है, उसे निकालकर पुण्य कर दो। पुत्र पिताका मतलब समझकर बोले—"पिताजी कहते हैं, जो धन था, सो तो इन दीवारोंमें लगा दिया, अब और धन कहाँ है?" लोगोंने लड़कोंकी बात मान ली। वैश्य अपने पुत्रोंकी बेई-मानी देखकर बहुत रोया, पर बोल न सकता था, इसलिये छटपटा-छटपटा कर मर गया। लड़कों ने उसे श्मशान पर ले जाकर जला दिया। वैश्यके मन की मन ही में रह गई। इससे बढ़कर पुत्रों की शत्रुता क्या होगी?

जो लोग सैकड़ों प्रकार के अनर्थ और बेईमानी से पराया

धन हड़प कर अथवा और तरह से दुनिया का गला काट कर लाखों-करोड़ों अपने पुत्र-पौत्रों को छोड़ जाते हैं, वे इस कहानी से शिक्षा ग्रहण करें और पुत्रोंका झूठा मोह त्यागें। इस जगत्‌में न कोई किसीका पुत्र है न पिता। माता-पिता, भाई-बहिन और स्त्री-पुत्र सभी एक लम्बी यात्रा के यात्री हैं। यह मृत्युलोक उस यात्रा के बीचका मुक़ाम है। इस मुक़ाम पर आकर सब इकट्ठे हो गये हैं। कोई किसी से सच्ची प्रीति नहीं रखता। सभी स्वार्थ की रस्सी में एक दूसरे से बँधे हुए हैं। जब जिसके चलने का समय आजाता है, तब वही निर्मोही की तरह सबको छोड़कर चल देता है। जो लोग उस चले जाने-वाले या मरजाने वालेके लिए प्राण न्योछावर करते थे, उसके लिए मरने तक को तैयार रहते थे, उनमें से कोई उसके साथ पौली तक जाता है और कोई उसे श्मशान-भूमि तक पहुँचा कर और जला-बलाकर ख़ाक कर आता है। ऐसे नातेदारोंसे अनुराग करना—उनमें ममता रखना बड़ी ही ग़लती है। कहा है:—

"परलोक की राहमें जीव अकेला जाता है; केवल धर्म्म उसके साथ जाता है। धन, धरती, पशु और स्त्री घरमें ही रह जाते हैं। लोग श्मशान तक जाते हैं और देह चिता तक साथ रहती है।"

बहुत लोग यह समझते हैं कि, पुत्र-बिना गति नहीं होती; पुत्र-हीन पुरुष नरक में जाता है और पुत्रवान् स्वर्ग में जाता

है। जो लोग ऐसा समझते हैं ; वह बड़ी भूल करते हैं। पुत्रों से किसी की भी गति न तो हुई है और न होगी ; सब की गति अपने ही पुरुषार्थ से होती है। अगर पुत्रों से स्वर्ग या मोक्षकी प्राप्ति होती, तो कोई विरला ही नरकमें जाता। जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल भोगना होता है। ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या, भ्रूणहत्या, परस्त्रीगमन और परधन-हरण प्रभृति पापोंका फल कर्ताको भोगना ही होता है। जो ऐसा समझते हैं कि, ऐसे पाप करने पर भी पुत्र-पौत्रोंके होनेसे, हम दण्ड से बच जायँगे, वे बड़े ही मूर्ख हैं। ज्ञानी लोग तो संसार-बन्धनसे छूटनेके लिये अपने पुत्रों का भी त्याग कर देते हैं।

एक ब्राह्मण और उसका अन्धा पुत्र।

किसी नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसके पुत्र नहीं हुआ था, इसलिये उसने गंगाजीकी उपासना की। अन्त में, बूढ़ी अवस्था में, उसके एक अन्धा पुत्र हुआ। ब्राह्मण उस अन्धे पुत्र को पाकर ही बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने ख़ूब उत्सव और भोज प्रभृति किये। इसके बाद जब वह अन्धा पुत्र पाँच बरस का हुआ, ब्राह्मणने उसका यज्ञोपवीत-संस्कार कराकर, उसे विद्या पढ़ाना आरम्भ किया। चन्दरोज़ में वह अन्धा पूर्ण पण्डित हो गया।

एक दिन पिता-पुत्र बैठे थे। पुत्र ने पिता से पूछा—

"पिताजी ! मनुष्य अन्धा किस पाप से होता है ?" पिताने उत्तर दिया—"पुत्र ! जो पूर्व जन्ममें रत्नोंकी चोरी करता है, वह अन्धा होता है।" पुत्रने कहा—"पिताजी ! यह बात नहीं है। कारण के गुण कार्यमें भी आ जाते हैं। आप अन्धे हैं, इसीसे मैं भी अन्धा हुआ हूँ।" पिताने क्रोधमें भरकर कहा "नालायक, मैं अन्धा कैसे ?" पुत्रने कहा—"पिताजी ! गंगा-माता साक्षात् मुक्ति देनेवाली हैं। आपने उनकी उपासना पुत्रकी कामना से की ; इसी से मैं आपको अन्धा समझता हूँ। जो वेद-शास्त्र पढ़ कर भी पेशाब के कीड़े की इच्छा करता है, वह अन्धा नहीं तो क्या सूझता है ? पेशाब से जैसे और अनेक प्रकार के कीड़े पैदा होते हैं, वैसे ही पुत्र भी उसका एक कीड़ा ही है। आपने जिस पुत्र के लिये गंगाजी की इतनी तपस्या की, वह पुत्र तो कुत्ते-बिल्ली और सूअर प्रभृति पशुओं के अनायास ही हो जाते हैं। पुत्र-जैसे मूत्र के कीड़े से किसी को भी स्वर्ग या मोक्ष लाभ नहीं हो सकता ; पिताजी ! न कोई किसीका पुत्र है न स्त्री प्रभृति ; सब एक ही हैं, क्योंकि सबमें एक ही आत्मा है। वही आत्मा पितामें है, वही पुत्र और स्त्रीमें। जिस तरह मरुभूमिमें भ्रमसे जल दिखता है, पर वास्तवमें वहाँ जलका नाम-निशान भी नहीं ; उसी तरह भ्रमसे यह जगत् सच्चा दीखता है, पर वास्तवमें कुछ भी नहीं। यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा धन है, यह मेरा मकान है—ऐसा वासनासे दीखता है। वासना

से ही जीव संसार-बन्धनमें बँधता है; यानी वासनासे ही शरीर धारण करता है। वासनासे ही मनुष्य अज्ञानी बन रहा है। वासनाका त्याग करते ही मनुष्य, ज्ञान-लाभ करके, परमानन्द की प्राप्ति करता है। ज्ञानी सच्चिदानन्द रूप ब्रह्मको ज्ञान की आँखोंसे देखता है, पर अज्ञानी उसे नहीं देख सकता। जैसे अन्धेको सूर्य नहीं दीखता, उसी तरह अज्ञानीको ब्रह्म नहीं दीखता; इसीसे अज्ञानीको, बाहरकी आँखें होनेपर भी अन्धा कहते हैं। आप भेद-बुद्धिको त्याग कर, सबमें एक आत्माको देखो। आत्मज्ञानी होनेसे ही आपको नित्य सुख मिलेगा।"

पिता-पुत्रके अगाध पाण्डित्य और ज्ञानको देख एकदम चकित हो गया और कहने लगा—"पुत्र! मैंने चार वेद, छहों शास्त्र, उपनिषद्, स्मृति और पुराण प्रभृति पढ़कर कुछ भी ज्ञान लाभ न किया; तेरी बातोंसे मेरी आँखें खुल गईं।"

संसारको मिथ्या समझकर ही कोई ज्ञानी कहता है:—

"हे मन! तू स्त्रीके प्रेममें मत भूल; यह बिजलीकी चमक, नदीके प्रवाह और नदीकी तरङ्ग प्रभृतिकी तरह चञ्चल है। स्त्रीके प्रेमका कोई ठिकाना नहीं; आज यह तेरी है, कल पराई है। एक करवट बदलनेमें स्त्री पराई हो जाती है। इसकी झूठी प्रीतिमें कोई लाभ नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं:—

उरग तुरग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटत बार॥

सर्प, घोड़ा, स्त्री, राजा, नाच पुरुष और हथियार—इनको सदा परखते रहना चाहिये, इनसे कभी ग़ाफ़िल न रहना चाहिये, क्योंकि इन्हें पलटते देर नहीं लगती।

हे मन! यदि तुझे प्रीति ही करनी है, तो उठ, गङ्गा-किनारेके वृक्षों के नीचे चल बैठ और आशुतोष भगवान् चन्द्रशेखर—शिवजीसे प्रीति कर। उनकी प्रीति सच्ची और कल्याणकारी है।

गोस्वामीजीने और भी कहा है:—

कै ममता करु रामपद, कै ममता करु हेल।
"तुलसी" दो महँ एक अब, खेल छाँड़ि छल खेल॥
सम्मुख ह्वै रघुनाथके, देइ सकल जग पीठि।
तजै केंचुरी उरग कहँ, होत अधिक अति दीठि॥

या तो भगवान्‌के चरणोंमें ममता कर अथवा देहके सब नातोंको त्यागकर उदासीन हो जा और कर्म ज्ञानादि साधन करके मनको शुद्ध कर ले। जब तेरा मन शुद्ध हो जायगा, तब भगवान्‌के चरणोंमें आप ही स्नेह हो जायगा। इन दोनों बातोंमें से जो एक बात तुझे पसन्द हो, उसे छल छोड़कर दिलसे कर; एक खेल-खेल। सारांश यह, कि भगवान्‌में सहज स्नेह कर। अगर तेरा मन प्रभुकी भक्तिमें नहीं जमता, तो स्त्री-पुत्र आदि संसारी भोगोंसे मन हटाकर, प्रभुकी भक्तिकी चेष्टा कर।

जब भगवान्‌में तेरा मन लग जाय, तब संसारकी तरफ़से मुँह फेर ले—संसारको पीठ दे-दे, जिससे तेरे मनमें लोक-वासना न आने पावे; क्योंकि वासनासे हृदयकी दृष्टि मैली हो जाती है। साँपका भीतरी चमड़ा जब मोटा हो जाता है, तब उसे आँखोंसे साफ नहीं दीखता; लेकिन जब वह काँचली छोड़ देता है, तब उसकी आँखोंका पटल उतर जाता है; आँखोंके साफ हो जानेसे साँपको खूब साफ दीखने लगता है। जिस तरह काँचली त्यागनेसे सर्पकी दृष्टि साफ हो जाती है; उसी तरह वासना त्याग देनेसे ईश्वरके भक्तोंकी हृदय-दृष्टि साफ रहती और उन्हें भगवान्‌के दर्शन होते रहते हैं।

छप्पय।

मोह छाँड़ मन-मीत ! प्रीति सों चन्द्रचूड़ भज !
सुर-सरिताके तीर, धीर धर दृढ़ आसन सज !!
शम दम भोग-विराग, त्याग तपको—तू अनुसरि।
वृथा विषय-बकवाद, स्वाद सबही—तू परिहरि ॥
थिर नहिं तरंग, बुद्‌बुद, तडित, अगिन-शिखा, पन्नग, सरित।
त्योंही तन जोवन धन अथिर, चल दलदल कैसे चरित ॥६०॥

मन मीत=हे मन-मित्र! प्रीतिसे=प्रेमसे। चन्द्रचूड़=चन्द्रमौल, चन्द्रमौलि, चन्द्रशेखर, शिव, महादेव। भज=भजन कर। सुर-सरिता=देवताओंकी नदी, गङ्गा। आसन=योगियोंके बैठनेका प्रकार; पद्मासन

60. O my mind, do thou give up all attachment now and cherish at heart a deep love for the Great Shiva, who bears the new moon in his forehead and take up thy sojourn on the land by the side of the heavenly river Ganges. Who ever trusts the currents of the ocean, the bubbles of water, the streaks of lightning, women, the flames of burning fires, serpents and the flow of rivers, all of which are uncertain in their conduct ?

अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः
पृष्ठे लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम् ॥
यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लंपटस्त्वं नो
चेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥६१॥

हे मन ! तेरे सामने चतुर गवैये गाते हों, दाहिने-बायें दक्खन देशके उत्तम कवि सरस काव्य सुनाते हों, तेरे पीछे चँवर ढोलने वाली सुन्दरी स्त्रियोंके कंकनोंकी मधुर झनकार होती हो,—

स्वतिकासन आदि। शम=इन्द्रिय-निग्रह, इन्द्रिय वश करना। दम=बाहरी इन्द्रियोंका निग्रह ; तपस्याके क्लेश सहनेकी शक्ति। विराग=ममता-त्याग ; विरक्ति ; संसारमें आसक्ति न रखना। भोग-विराग=स्त्री आदिमें आसक्ति न रखना। त्याग=वैराग्य। अनुसरि=अनुवर्त्तन कर, पीछे चलो। वृथा विषय-बकवाद=फ़िज़ूल गपशप, व्यर्थकी बातें बनाना। स्वाद=ज़ायके। परिहरि=छोड़, त्याग। थिर=स्थिर। तरंग=लहर। बुदबुद=बुलबुला। तड़ित=बिजली। अगिन-शिखा=आगकी लो। पन्नग=सर्प। सरित=नदी। त्योंही=उसी तरह। तन=शरीर। जोबन=यौवन, जवानी। अथिर=चंचल। चल=चंचल। दलदल=भसान।

यदि ऐसे सामान तुझे मयस्सर हों, तो तू संसार-रसास्वादनमें मग्न हो ; नहीं तो सबका ध्यान छोड़, निर्विकल्प समाधिमें लीन हो ॥६१॥

61. If thou hast in thy front the singing of the musicians, on thy sides the reciting of elegant poetry by learned southerners, behind thee the tinkling sound of the anklets of maids waving chamars, then there may not be any objection to thy giving up thyself to the enjoyment of worldly pleasures. But if, O mind, thou hast not all these things, it behoves thee at once to enter into the Nirvikalpa Samadhi (meditation of God without thinking of anything else).

विरमत बुधा योषित्संगात्सुखात्क्षणभंगुरा-
त्कुरुत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम् ॥
न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तनमण्डलं
शरणमथवा श्रोणीबिम्बं रणन्मणिमेखलम् ॥६२॥

हे बुद्धिमानो ! स्त्रियोंके संगसे बचो, क्योंकि उनके संगसे जो सुख मिलता है, वह क्षणिक है। आप मैत्री, करुणा और बुद्धिरूपी बधूके साथ संगम करो। जिस समय नरकमें सज़ा मिलेगी, उस समय युवतियोंके हारोंसे शोभित स्तनद्वय और उनकी घुँघरोंदार करधनियों से सुशोभित कमरें तुम्हारी सहायता न करेंगी ॥६२॥

मनुष्यो, स्त्रियोंमें मन मत लगाओ। उनके साथ रहने, उनके साथ संगम करनेसे सुख होता है ; पर वह सुख नश्वर

और क्षणस्थायी है। वह ऐसा सुख नहीं, जो सदा रहे। परिणाममें, उससे अनेक प्रकारके दुःख होते हैं। जो सुख अनित्य है, शेषमें दुःखोंका मूल और रोगोंकी खान है, उस सुखको सुख समझना, बुद्धिमानोंका काम नहीं। अगर आपको सङ्गम ही करना है, तो आप सहानुभूति, परोपकार-वृत्ति एवं प्रज्ञारूपी वहू के साथ सङ्गम कीजिये। इनके साथ सङ्गम और प्रीति करने से आप को नित्य सुख मिलेगा; ऐसा सुख मिलेगा, जो इस लोक और परलोक में सदा स्थिर रहेगा।

जिन लोगों ने पहले दूसरों के दुःख दूर किये हैं, जिन्होंने परोपकार के लिए जानें दी हैं, जिन्होंने ज्ञान से काम लिया है, उनका भला ही हुआ है। अगर आप स्त्री-सुख में भूले रहोगे, तो जब आपको नरक की भयङ्कर यातनायें भोगनी पड़ेंगी, जब आप पर यमदूतोंके डण्डे पड़ेंगे, उस समय क्या स्त्रियोंके हारों से सुशोभित स्तन-मण्डल और कर्धनियोंसे शोभायमान् पतली कमरें आपकी रक्षा कर सकेंगी? नहीं, इनसे कोई लाभ न होगा; उस समय ये आड़े न आयेंगे। उस मौक़ेपर, परोपकार करके जो पुण्य संचय किया होगा, वही आपकी रक्षा करेगा। बुद्धिसे काम लोगे तो भला होगा; क्योंकि बुद्धि ही आपको नरकसे बचनेकी राह बतावेगी; किन्तु स्त्री तो आपको सीधी नरककी राह दिखावेगी। आश्चर्य है, कि अज्ञानी लोग अच्छे को बुरा और बुरेको अच्छा समझते हैं। वे अपने सच्चे-

मित्रोंसे प्रीति नहीं करते, किन्तु झूठे और कुराहमें ले जानेवालोंसे प्रीति करते हैं। महात्मा सुन्दरदासजीने कहा है:—

(१)

विषही की भूमि माँहि, विषके अंकुर भये।
नारी-विषवेली बढ़ी, नखशिख देखिये॥
विषही के जर मूल, विषही के डार पात।
विषहीके फूल फल, लागे जु विशेखिये॥
विषके तंतू पसार, उरझाई आँटी मार।
सब नर-वृक्ष पर, लपटेहि लेखिये॥
"सुन्दर" कहत, कोऊ सन्त-तरु बचिगये।
तिनके तौ कहूँ, लता लागि नहिं पेखिये॥

(२)

कामिनीको अंग, अति मलिन महा अशुद्ध।
रोम-रोम मलिन, मलिन सब द्वार हैं॥
हाड़ माँस मज्जा मेद, चामसूँ लपेट राखै।
ठौर-ठौर रकतके, भरेई भंडार हैं॥
मूतहू-पुरीष-आँत, एकमेक मिल रहीं।
औरहू उदर माँहि, विविध विकार हैं॥
"सुन्दर" कहत, नारी नखशिख निंद्यरूप।
ताहि जो सराहै, सो तौ बड़ोई गँवार है॥

(३)

रसिकप्रिया रसमंजरी, और शृंगारहि जान।
चतुराई करि बहुत विधि, विषय बनाई आन॥
विषय बनाई आन, लगत विषयिनकूँ प्यारी।
जागे मदन प्रचरड, सराहै नखशिख नारी॥
ज्यूँ रोगी मिष्टान्न खाइ, रोगहि बिस्तारै।
"सुन्दर" ये गति होइ, जोइ रसिकप्रिया धारै॥

विषकी ज़मीनमें विषके अङ्कुर जमे। फिर नारी रूपी विष-लता बढ़ी। उस लतामें विषकी जड़ें लगीं और विषका डालियाँ और पत्तियाँ आईं। फिर उस लतामें विषके ही फल और फूल लगे। उस विषलतामेंसे विषके तन्तु निकले। फिर उस लताने अपने विष-तन्तु फैला फैलाकर नर-वृक्षोंको इलभा लिया और खुद उनके लिपट गई। सुन्दरदासजी कहते हैं, उस विषलताके फन्देमें अधिकांश नररूपी वृक्ष फँस गये—कोई विरले ही सन्तरूपी वृक्ष उससे अछूते बच सके। उनके ही शरीरोंमें यह विष लता लगी हुई न दिखाई दी।

मतलब यह है, कि स्त्री विषकी बेल है। उसकी जड़, उसकी डालियाँ, उसकी पत्तियाँ और उसके फल-फूल सभी विषपूर्ण हैं। सारांश यह कि, स्त्रीका सर्व्वाङ्ग विषसे भरा है। स्त्रीका कोई भी अंग ऐसा नहीं जिसमें विष न हो। यह स्त्री रूपी विषवेल अज्ञानी विषयी लोगोंको अपने फन्देमें फँसाकर नाश कर देती

मित्रोंसे प्रीति नहीं करते, किन्तु झूठे और कुराहमें ले जानेवालोंसे प्रीति करते हैं। महात्मा सुन्दरदासजीने कहा है:—

(१)

विषही की भूमि माँहि, विषके अंकुर भये।
नारी-विषवेली बढ़ी, नखशिख देखिये॥
विषही के जर मूल, विषही के डार पात।
विषहीके फूल फल, लागे जु विशेखिये॥
विषके तंतू पसार, उरझाईं आँटी मार।
सब नर-वृक्ष पर, लपटेहि लेखिये॥
"सुन्दर" कहत, कोऊ सन्त-तरु बचिगये।
तिनके तौ कहूँ, लता लागि नहिं पेखिये॥

(२)

कामिनीको अंग, अति मलिन महा अशुद्ध।
रोम-रोम मलिन, मलिन सब द्वार हैं॥
हाड़ माँस मज्जा मेद, चामसूँ लपेट राखै।
ठौर-ठौर रकतके, भरेई भंडार हैं॥
मूतहू-पुरीष-आँत, एकमेक मिल रहीं।
औरहू उदर माँहि, विविध विकार हैं॥
"सुन्दर" कहत, नारी नखशिख निंद्यरूप।
ताहि जो सराहै, सो तौ बड़ोई गँवार है॥

(३)

रसिकप्रिया रसमंजरी, और शृंगारहि जान ।
चतुराई करि बहुत विधि, विषय बनाई आन ॥
विषय बनाई आन, लगत विषयिनकूँ प्यारी ।
जागे मदन प्रचण्ड, सराहै नखशिख नारी ॥
ज्यूँ रोगी मिष्टान्न खाइ, रोगहि बिस्तारै ।
"सुन्दर" ये गति होइ, जोइ रसिकप्रिया धारै ॥

विषकी ज़मीनमें विषके अङ्कुर जमे। फिर नारी रूपी विष-लता बढ़ी। उस लतामें विषकी जड़ें लगीं और विषका डालियाँ और पत्तियाँ आईं। फिर उस लतामें विषके ही फल और फूल लगे। उस विषलतामेंसे विषके तन्तु निकले। फिर उस लताने अपने विष-तन्तु फैला फैलाकर नर-वृक्षोंको इलभा लिया और खुद उनके लिपट गई। सुन्दरदासजी कहते हैं, उस विषलताके फन्देमें अधिकांश नररूपी वृक्ष फँस गये—कोई विरले ही सन्तरूपी वृक्ष उससे अछूते बच सके। उनके ही शरीरोंमें यह विष लता लगी हुई न दिखाई दी।

मतलब यह है, कि स्त्री विषकी बेल है। उसकी जड़, उसकी डालियाँ, उसकी पत्तियाँ और उसके फल-फूल सभी विषपूर्ण हैं। सारांश यह कि, स्त्रीका सर्व्वाङ्ग विषसे भरा है। स्त्रीका कोई भी अंग ऐसा नहीं जिसमें विष न हो। यह स्त्री रूपी विषवेल अज्ञानी विषयी लोगोंको अपने फन्देमें फँसाकर नाश कर देती

है ; क्योंकि विष स्वभावसे ही प्राणघाती होता है। सिर्फ़ वे लोग इस स्त्री-रूपी विष-बेलसे बचते हैं, जो ज्ञानी हैं, जो इसकी असलियतको जानते हैं, जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें कर लिया है, जिनकी इन्द्रियाँ विषयोंकी तरफ नहीं झुकतीं। और भी खुलासा यह है, कि स्त्री विष-लताके समान है, विष-लता जिस वृक्षके लिपट जाती है, उसे सुखा-सुखाकर नष्ट कर देती है। इसी तरह स्त्री जिस विषयी पुरुषके पीछे लग जाती है अथवा जो पुरुष स्त्रीके फन्देमें फँस जाता है, वह भी सब तरहसे नष्ट हो जाता है। इसके सभी अंगोंमें विष भरा है। जिस तरह विष खानेसे ज़हर चढ़ता है ; उसी तरह इसकी आँख, इसके गाल, इसकी भौं, इसकी छातियाँ और जाँघें प्रभृति किसी भी अंगके देखने और छूनेसे विष चढ़ जाता है। विषके चढ़ जानेसे पुरुष मतवाला हो जाता है ; उसके होश-हवास ख़ता हो जाते और बुद्धि मारी जाती है। बुद्धिके मारे जानेसे पुरुष बिना पतवारकी नावकी तरह नष्ट हो जाता है। इस लोकमें नाना प्रकारके रोग और दुःख भोगकर मर जाता और परलोकमें भी दुःख ही पाता है। संखिया प्रभृति विषोंका मारा हुआ इसी लोकमें दुःख पाता है, पर इस स्त्री-विषका मारा हुआ अनेक जन्मोंमें दुःख पाता है। और ज़हर खानेवाला एक ही बार मरता है ; पर स्त्री-विष सेवन करने वाला बारम्बार मरता है। अतः बुद्धिमानोंको इस स्त्री-रूपी विषलतासे सदा दूर रहना चाहिये, ताकि इसका विष शरीरमें पेवस्त न होने पावे।

(२)

स्त्रीका शरीर अत्यन्त मैला और अतीव अशुद्ध या गन्दा है। इसका प्रत्येक रोम मैला और सारे ही दरवाज़े गन्दे हैं। इसका शरीर हाड़, मांस, मज्जा, मेद और चमड़ेसे लिपटा हुआ है। इसके अन्दर जगह-जगह खूनके हौज़ भरे हुए हैं। पेशाब और पाखाने की आँतें आपसमें सट रही हैं। इन सबके अलावः, पेटमें और भी अनेक तरहके मैले भरे हुए हैं। सुन्दरदास जी कहते हैं, नारी एड़ीसे चोटी तक निन्द्य है—नखसे शिख तक निन्दा करने योग्य है। ऐसी निन्दाकी पात्री नारीकी जो सराहना करते हैं, वे तो निश्चय ही बड़े गवार और भौंदू हैं।

खुलासा यह है कि, स्त्री ऊपरसे अच्छी मालूम होती है, पर वास्तवमें गन्दगीका पिटारा है। इसकी नाकमें रहँट भरा हुआ है। इसकी आँखोंमें गीड़ें भरी हुई है। इसके मुँहमें कफ और खखार भरे हुए हैं। इसकी मूत्रेन्द्रियसे हर समय सफेद-सफेद या लाल-लाल गन्दा पदार्थ बहा करता है। पेशाबसे जाँघें भीगी रहती हैं। इसकी मल और मूत्र त्यागने की इन्द्रियोंमें दो अंगुलसे ज़ियादा दूर का फ़र्क़ नहीं है। जिन छातियोंपर विषयी मरे मिटते हैं, जिन्हें वे सुन्दर सोनेके कलशे, कामदेवके नगाड़े अथवा शन्तरे और अनार कहते हैं, वे दो मांसके लौंदे हैं। उनके ऊपर चमड़ा चढ़ा हुआ है, इसीसे उनके भीतरकी गन्दगी छिपी रहती है। ऐसी गन्दगीकी पिटारीको

तारीफोंमें जो लोग कविताएँ करते हैं, वे सचमुच ही बेअक्ल और गँवार हैं ।

(२)

अनेक तरहकी इन्द्रिय-भोग-सम्बन्धी वस्तुओंसे बनी हुई और सजी हुई स्त्री विषयी लोगोंको बहुत ही प्यारी लगती है। जब बलवान काम जागता है, तब वे इसका नखशिख वर्णन करनेमें अपनी सारी विद्वत्ता ख़र्च कर देते हैं। चोटीसे एड़ी तक एक-एक अङ्गकी दिल खोलकर तारीफें करते हैं। जिस तरह रोगी मिठाई खाकर अपने रोगको बढ़ाता है ; उसी तरह जो लोग स्त्री या प्रियाको धारण करते हैं—अपनाते हैं, अनेक तरहके रोगों और दुःखोंको जान-बूझकर आप बुलाते हैं। उनकी हर तरहसे दुर्गति होती है। तरह-तरहके रोग होते हैं, बल घटता है, आयु क्षीण होती है, हर क्षण चिन्तित रहना पड़ता है, शान्ति पास नहीं आती और ईश्वर-भजनमें मन नहीं लगता। हर समय उसीको सन्तुष्ट करनेकी फिक्र रहती है। मरते समय भी उसीमें मन अटका रहता है, जीवात्मा उसे छोड़कर जाना नहीं चाहता, उसके संग ही रहना चाहता है, पर समय आ जानेपर कोई भी इस कायामें क्षणभर भी रह नहीं सकता ; अतः देह त्यागनी ही पड़ती है ; पर चूंकि स्त्रीमें मन लगा रह जाता है, उसकी वासना मनमें रह जाती है, इसलिए वासनाके कारण फिर जन्म लेना पड़ता है। जो जन्म लेता है, उसे मरना भी पड़ता है। इस तरह स्त्री-लोलुपको बारम्बार

जन्म लेने और मरनेका घोर क्लेश सहना होता है। उसे कभी सुख नहीं मिलता ; उसकी मोक्ष नहीं होती। इसीलिये कहा है कि, जो लोग स्त्रीको रखते हैं, उनकी बड़ी बुरी गति होती है।

सोरठा।

तजि तरुणी सों नेह, बुद्धिबधू सों नेह कर।
नरक निवारत येह, वहै नरक लै जात है ॥६२॥

62. O wise men, restrain yourselves from the company of women which gives only transitory pleasure, and associate with the virtues of sympathy, benevolence and wisdom. In hell, their fat breasts adorned with necklaces or beautiful waists ornamented with tinkling waist-chains will not help you in any way.

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं
कालेशक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ॥
तृष्णास्रोतोविभंगो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा
सामान्यःसर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिःश्रेयसामेष पन्थाः ॥६३॥

किसी भी जीवकी हिंसा न करना, पराया माल न चुराना, सत्य बोलना, समय पर सामर्थ्यानुसार दान करना, परस्त्रियोंकी

तजि=छोड़ो। तरुणी=युवती, जवान औरत। सों=से। नेह=स्नेह, प्रेम। बुद्धिबधू=बुद्धिरूपी बहू। यहै=बुद्धिरूपी बहू। वह=तरुणी, युवती। नरक निवारत...लै जात है=बुद्धि-बहू नरकसे बचाती है और युवती स्त्री नरकमें ले जाती है।

चर्चामें चुप रहना, गुरुजनोंके सामने नम्र रहना, सब प्राणियोंपर दया करना और भिन्न-भिन्न शास्त्रोंमें समान विश्वास रखना,—ये सब नित्य सुख प्राप्त करनेके अचूक रास्ते हैं ॥६२॥

यदि आप मोक्षकी अचूक राह चाहते हो, यदि आप नित्य सुख-शान्ति चाहते हो, यदि आप चिरस्थायी कल्याण चाहते हो, तो आप किसी भी प्राणीका विनाश मत करो ; अपने पेट के लिये किसी की जान मत मारो। जब मौक़ा आवे, अपनी शक्ति अनुसार ग़रीबों और मुहताजोंको दान दो, उनके दुःख दूर करो ; उनके दुःखोंको अपना दुःख समझ कर उनका कष्ट निवारण करो। जहाँ पराई स्त्रियोंका ज़िक्र होता हो, वहाँ मत बैठो ; यदि बठना ही पड़े, तो तुम अपनी ज़बानसे कुछ मत कहो। माता-पिता और गुरुके सामने सदा नम्र रहो, उनकी आज्ञा-पालन करो, उनका मान-सम्मान करो ; भूल कर भो उनका अपमान मत करो। छोटे-बड़े सभी प्राणियों पर दया करो। सभी शास्त्रोंको समान समझो ; किसीमें विश्वास और किसीमें अविश्वास न करो, क्योंकि सभीका ध्येय एक ही है, सभी वहीं पहुँचते हैं। जिस तरह नदियाँ टेढ़ी-सूधी बहती हुई समुद्रमें ही जा मिलती हैं ; उसी तरह सभी शास्त्र अपनी-अपनी राहोंसे मोक्ष या परमात्मा की ही राह बताते हैं। जो ऐसा विश्वास नहीं रखते, तर्क-वितर्कके झमेलेमें पड़ते हैं, वे वृथा भटकते और अपनी मंजिल मक़सूद—परमपद तक—नहीं पहुँचते।

महात्मा तुलसीदासजी ने ये सब विषय कैसी खूबीसे संक्षेपमें ही कह दिये हैं:—

सदा भजन गुरु साधु द्विज, जीव दया सम जान ।
सुखद सुनै रत सत्यव्रत, स्वर्ग-सप्त सोपान ॥१॥
वञ्चक विधिरत नर अनय, विधि हिंसा अतिलीन ।
तुलसी जग महँ विदित वर, नरक निसैनी तीन ॥२॥

ईश्वर-भजन ; गुरु, साधु-महात्मा और ब्राह्मणोंकी सेवा करना ; जीवोंपर दया करना ; लोकमें समदृष्टि रखना—सबको एक नज़रसे देखना ; सबको सुख देना ; सुनीति पर चलना और सत्यव्रत धारण करना—ये सातों स्वर्गमें जानेकी सात सीढ़ियाँ हैं। जो इन कामोंको वासनाके साथ करते हैं—इन कामोंका पुरस्कार चाहते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और जो इन कामोंको बिना वासनाके करते हैं, वे भगवान्‌में मिल जाते हैं।

खुलासा यह है कि, जो लोग परमात्माका भजन करते हैं, गुरु, महात्मा और ब्राह्मणोंकी सेवा करते और उनसे उपदेश लेते हैं, जीवोंपर दया करते हैं, अपनी भरसक किसी भी जीव को दुःख नहीं होने देते, सबको एक नज़रसे देखते हैं, किसीसे दोस्ती और किसीसे दुश्मनी नहीं रखते ; सभीको सुख देते हैं —किसीको भी नहीं सताते ; न्याय और नीतिके मार्ग पर चलते हैं—अनीतिसे बचते और अत्याचार नहीं करते और

सदा सत्य बोलते हैं—सुपनेमें भी झूठ नहीं बोलते—वे स्वर्गमें जाते हैं, क्योंकि ये सात स्वर्गकी सीढ़ियाँ हैं ।

गोस्वामीजीने ऊपर स्वर्गमें चढ़नेकी सात सीढ़ियाँ बताई हैं, अब वह नरककी तीन नसैनी बताते हैं :—जो लोग चोरी, ज़ोरी और ठगी अथवा और तरहसे धोखा देकर पराया धन हड़पते हैं, जो लोग अनीति और अन्याय करते हैं—पराई स्त्रियोंको भोगते हैं, पराई निन्दा या बदनामी करते हैं, पराया काम बिगाड़ते हैं, जूआ खेलते हैं, वेश्यागमन या रण्डीबाज़ी करते हैं, जो लोग अपने सुखके लिए जीवोंको मारते हैं अथवा मोहके वशमें होकर जीवहत्या करते हैं ; यानी छल, अनीति और हिंसाका आश्रय लेते हैं, वे निश्चय ही नरकोंमें जाते हैं ; क्योंकि ये तीनों काम नरककी नसैनी हैं ।

63. Refraining from killing all sorts of living beings and from stealing other people's property, speaking the truth, giving alms according to one's means when an occasion for charity arrives, remaining silent in a place where men are talking about other people's wives, demolishing springs of all the desires, behaving humbly before teachers and elders, kindness to all living beings and having equal faith in the teachings of different Shastras are the infallible paths which lead to the acquirement of everlasting bliss.

मातर्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरं मत्कांक्षिणी मा स्म भू-
र्भोगेभ्यः स्पृहयालवो नहि वयं का निस्पृहाणामसि ॥

सद्यःस्यूतपलाशपत्रपुटिकापात्रे पवित्रीकृते
भिक्षासक्तुभिरेव सम्प्रति वयं वृत्तिं समीहामहे ॥६४॥

हे मा लक्ष्मी ! अब किसी औरको खोज, मेरी इच्छा न कर ; अब मुझे विषय-भोगोंकी चाहना नहीं है ; मेरे जैसे निस्पृह —इच्छा-रहितोंके सामने तू तुच्छ है। क्योंकि अब मैंने हरे ढाकके पत्तोंके दोनोंमें भिक्षाके सत्तूसे गुज़ारा करनेका संकल्प कर लिया है ॥६४॥

जो अपनी इच्छाका नाश कर देता है, जो किसी भी पदार्थकी इच्छा नहीं रखता, वह लक्ष्मी क्या—संसारके बड़े-से-बड़े सुख-भोग और धन-दौलतको तुच्छ समझता है ; वह बादशाहोंको भी माल नहीं समझता। जो जङ्गलके फलमूलों पर गुज़र कर लेता है या भिक्षाके सत्तूको ढाकके पातमें पानीसे घोलकर पी जाता है, वस्त्रकी भी ज़रूरत नहीं रखता, उसे किसकी परवा ? उसे दुःख कहाँ ? यदि मनुष्य सच्चा सुख चाहे, परमपद या परमात्माको चाहे तो "इच्छा" को त्याग दे। सब आफ़तोंकी जड़ "इच्छा" ही है।

दोहा ।

मोकों तजि भजि और कों, एरी लक्ष्मी मात ! ।
हैं पलाशके पातमें, माँग्यो सतुआ खात ॥६४॥

मोकों तजि=मुझे छोड़। भजि औरको=और किसीको पकड़। पूरी

64. O mother Lakshmi (Goddess of wealth) seek some other man and do not desire to make me thy companion. I no longer have a desire for pleasures. What art thou to such desireless persons as I? I have now made up my mind to carry on my living by eating fried grain-flour soaked with water, obtained by begging, out of a receptacle made of a green Palash-tree-leaf.

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरावयोः ।
किं जातमधुना येन यूयं यूयं वयं वयम् ॥६५॥

पहले हमारा आपका इतना गाढ़ा सम्बन्ध था कि, आप थे सो मैं था, और मैं था सो आप थे। अब क्या फ़र्क हो गया है, कि मैं—मैं ही हूँ और आप—आप ही हैं ॥६५॥

पहले आपमें और मुझमें भेद नहीं था। जो आप थे सो मैं था और मैं था सो आप थे। मैं और आप दोनों ही एक-से थे—आप और मैं दोनों ही पहले विषयासक्त थे; किन्तु अब बड़ा भेद हो गया है; यानी आप अब तक विषयासक्त ही हैं, पर मैं विषयोंसे विरक्त हो गया हूँ। आपने अब तक संसारके झूठे सुखों—विषयवासनाओंका परित्याग नहीं किया है; पर मित्र, मैं तो अब इनसे घबरा गया—थक गया; मुझे इनमें कुछ भी सार या तत्त्व न दीखा, इसलिये मैंने अब सबसे किनारा करके वैराग्य ले लिया है। आप अभी

लक्ष्मी मात=ए लक्ष्मी माँ। पलाश=ढाक। पात=पत्तों। माँग्यो=माँगा हुआ। सत्तुआ=सत्तू। खात=खाता हूँ।

हे स्त्री ! अब तू अपनी काममद पैदा करने वाली दृष्टि को रोक ले, हम पर कटाक्षबाण न चला। तेरा परिश्रम व्यर्थ जायगा। क्योंकि अब हमने विषयों को तृणावत् त्याग दिया है।

तक नरकमें ही हैं; पर मैं विवेक-बुद्धिसे काम लेकर, नरकसे निकलकर स्वर्गमें आ गया हूं। आप अभी तक दुःखके बीज ही बो रहे हैं; पर मैं अब सुखके बीज बो रहा हूँ। मित्र! तुम भी मेरी तरह उन भयङ्कर जञ्जालोंको छोड़ कर, मेरी जैसी सुखकी राह पर क्यों नहीं आ जाते? मित्रवर! इसी राहमें सुख है; उस राहमें घोर दुःख और नरकयातनायें हैं। संसारको छोड़ने और भगवत्‌से प्रीति करनेमें बड़ा आनन्द है। उस्ताद ज़ौक़ने कहा है:—

दुनियासे ज़ौक़, रिश्तये उल्फ़तको तोड़ दे।
जिस सरका है यह बाल, उसी सरमें जोड़ दे॥

दोहा।

तुम-हम हम-तुम एक हैं, सब विधि रह्यो अभेद।
अब तुम-तुम हम-हमहिं हैं, भयो कठिन यह भेद॥

65. I had such a staunch connection with you before that it seemed as if you were I and I was you. What has happened now that you have become yourself and I myself again?

बाले लीलामुकुलितममीमन्थरा दृष्टिपाताः
किं क्षिप्यंते विरम विरमं व्यर्थ एव श्रमस्ते॥
संप्रत्यन्ये वयमुपरतं बाल्यमास्था वनान्ते
क्षीणो मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयामः॥६६॥

ऐ बाला ! अब तू लीलासे अपनी आधी खुली आँखोंसे मुझ पर क्यों कटाक्ष-बाण चलाती है ? अब तू काममद पैदा करने वाली दृष्टिको रोक ले ; तेरे इस परिश्रम से तुझे कोई लाभ न होगा। अब हम पहले जैसे नहीं रहे हैं। हमारी जवानी चली गई है। अब हमने वनमें रहनेका निश्चय कर लिया है और मोह त्याग दिया है ; अब हम विषय-सुखों को तृण से भी निकम्मा समझते हैं ॥६६॥

महाकवि दाग़ कहते हैं:—

तोबा जो मैंनेकी, निकल आया ज़रासा मुँह।
वह रंग रूप ही नहीं, सुबहे बहारका ॥

बसन्तको अपने सौन्दर्य्यका बड़ा अभिमान था। जबसे मैंने शराब पीनेसे तोबा कर ली है, तबसे बसन्त-लक्ष्मीका मुँह फीका पड़ गया है। जब तक मैं शराबी था, तभी तक उसकी शोभाका क़ायल था। अब तो मुझे उसमें कुछ भी विशेषता मालूम नहीं होती।

66. O young lady, why art thou playfully peeping at us out of half-closed eyes? Stop thy love-inspiring glances as all thy labour will be fruitless. Now we are different from what we were before. Our youth has gone. We are now bent on living in the forest. Our attachments have been given up and we look at the enjoyments of the world like a worthless straw.

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल
प्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेतमनया ॥
गतो मोहोऽस्माकं स्मरकुसुमबाणव्यतिकर-
ज्वलज्ज्वाला शान्ता तदपि न वराकी विरमति ॥६७॥

यह बाला स्त्री मुझ पर बार-बार नील कमलकी शोभासे भी सुन्दर नेत्रोंके कटाक्ष क्यों मारती है ? मैं नहीं समझता, इसका क्या मतलब है ? अब तो मेरा मोह जाता रहा है—कामके पुष्प-बाणोंसे निकली हुई आगकी ज्वाला शान्त हो गई है। आश्चर्य्य है, कि अब तक भी यह मूर्खा बाला अपनी कोशिशोंसे बाज़ नहीं आती ! ॥६७॥

जिनका मोह-जाल कट जाता है, जिनकी विषयवासना बुझ जाती है, जो स्त्रियोंकी असलियत को समझ जाते हैं, जो उनको नरककी नसैनी समझ लेते हैं, उनपर स्त्रियोंके कटाक्ष-बाण असर नहीं करते। हाँ, वे अपने स्वभावानुसार अपने तीखे-तीखे बाण चलाया ही करती हैं—अपने जाल बिछाया ही करती हैं; पर तत्त्ववित् लोग उनके जालमें नहीं फँसते। उन पर उनके अचूक बाण फेल हो जाते हैं।

दोहा।

केहि कारण डारत बयन, कमलनयन यह नार।
मोह काम मेरे नहीं, तऊ न तिय-चित हार ॥६७॥

67. Why does this youug woman continuously throw at me glances out of eyes which are beautiful like a lotus-leaf ? I wonder what is her object in doing so ! My passions have now gone and the fire lit up within my heart by concussion produced by the striking of cupid's arrows of flowers has been extinguished. It is strange that the foolish damsel does not quit her efforts even now !

रम्यं हर्म्यतलं न किं बसतये श्राव्यं न गेयादिकं
किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैबाधिकं प्रीतये ॥
किं तूद्भ्रान्तपतत्पतंगपवनव्यालोलदीपांकुर-
च्छायाचंचलमाकलय्य सकलं संतो बनांतं गताः ॥६८॥

क्या सन्तोंके रहनेके लिये उत्तमोत्तम महल न थे, क्या सुनने के लिये उत्तमोत्तम गान न थे, क्या प्यारी-प्यारी स्त्रियोंके संगम का सुख न था, जो वे लोग वनोंमें रहनेको गये ? हाँ, सब कुछ था ; पर उन्होंने इस जगत्को गिरने वाले पतंगके पङ्खोंसे उत्पन्न हवासे हिलते हुए दीपक की छायाके समान चञ्चल समझकर छोड़ दिया ; अथवा उन्होंने मूर्ख पतंगकी भाँति, जो हवासे हिलते हुए दीपक की छायामें घूम-घूमकर अपने तईं जलाकर भस्म कर देता है, संसारको अपना नाश कराते देखकर संसारको छोड़ दिया ॥६८॥

यह संसार दीपक की लौ के समान है और इसमें बसने वाले जीव पतङ्गोंके समान हैं। जिस तरह मूर्ख पतङ्ग दीपक
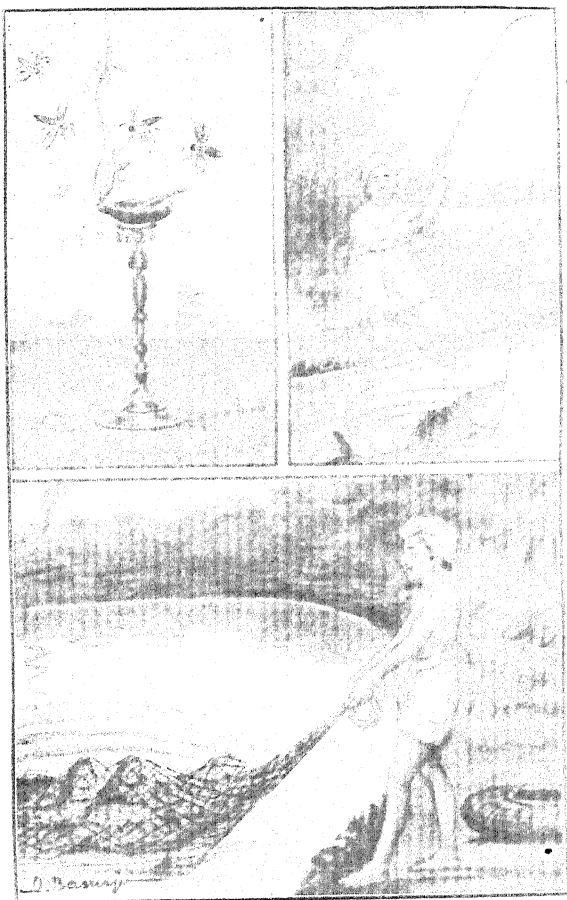
अज्ञानी मनुष्य पतंग और मछलियों की तरह संसारी माया मोह में फँस कर अपना नाश करते हैं।
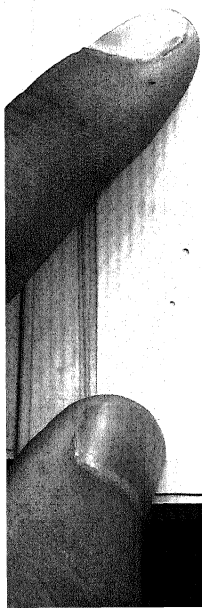
से मोह करके और उस पर गिर-गिर भस्म होते हैं ; उसी तरह मनुष्य इस संसारके असल तत्त्वको न समझकर, इसके मोहमें फँस कर, इसमें नाश होते हैं। जिस तरह पतङ्ग नहीं समझता, कि दीपकसे प्रेम करनेमें मेरे हाथ कुछ न आवेगा, बल्कि मेरी जान ही जायगी ; उसी तरह संसारी आदमी नहीं समझते, कि इन संसारी विषय-वासनाओंमें फँस कर, इनसे प्रेम करके हम अपना नाश करा बैठेंगे। जो बुद्धिमान और विचारवान् हैं, वे इस बातको समझते हैं ; अतः संसारी पदार्थोंसे मोह नहीं करते और अपने नाशसे बचते हैं। वे संसारको अनित्य और नाशकी निशानी समझ कर, इससे मन हटाकर परमात्मामें मन लगाते हैं। वे अपने तईं दुनियाँका मुसाफिर मात्र समझ कर, मौतका हरदम ख़याल रखते हैं। महात्मा कबीरने कहा है:—

तन सराय मन पाहरु, मनसा उतरी आय ।
को काहू को है नहीं, सब देखा ठोक बजाय ॥
"कबिरा" रसरी पाँव में, कहँ सोवे सुख चैन ।
श्वास-नकारा कूँच का, बाजत है दिन रैन ॥
इस औसर चेता नहीं, पशु-ज्यों पाली देह ।
राम नाम जाना नहीं, अन्त परी मुख खेह ॥

यह शरीर सराय है, मन चौकीदार है और मनसा—इच्छा इस शरीर रूपी सरायमें उतरा हुआ मुसाफिर है ; इस जगत्में

कोई किसीका नहीं हैं। अच्छी तरह ठोक बजा या जाँच पड़-ताल कर देख लिया।

हे कबीर! पैरोंमें रस्सी पड़ी हुई है। फिर भी तू सुख-चैनमें कैसे सो रहा है? देख, इस दुनियासे कूच करनेका श्वास-रूपी नगाड़ा दिन-रात बज रहा है!

अगर तू इस चौपड़के खेलमें न चेतेगा, इस जन्ममें भी होश न करेगा, पशुकी तरह शरीरको पालेगा और रामको नहीं जानेगा; तो अन्तमें तेरे मुँहमें धूल पड़ेगी।

छप्पय।

महल महारमणीक, कहा बसिबे नहिं लायक?
नाहिंन सुनवे जोग, कहा जो गावत गायक?
नवतरुणी के संग, कहा सुखहू नहिं लागत?
तो काहे को छाँड़-छाँड़, ये बन को भागत?
इन जान लियो या जगतको, जैसे दीपक पवनमें।
बुझिजात छिनकमें छवि भर्यो, होत अँधेरो भवनमें ॥६८॥

अतीव सुन्दर और रमणीक महल क्या बसने योग्य नहीं हैं? गवैये जो मनोहर गाना गाते हैं, क्या वह सुनने योग्य नहीं है? नवीना बाला स्त्रियों के साथ रमण करनेमें क्या आनन्द नहीं आता? अगर इन सबमें आनन्द और सुख है, तो फिर लोग इन सबको छोड़-छोड़ कर बनमें क्यों भागे जाते हैं? इसलिये भागे जाते हैं, कि उन्होंने इस जगत्को उस दीपकके समान समझ लिया है, जो हवामें रखा हुआ है और क्षण-भरमें बुझ जाता है।

68. Were there no comfortable mansions for the holy men to live in or musicians' songs to hear or the pleasure of the company of dearly loved women to enjoy, that these holy men went to live in the forests ? Finding all the mankind bent upon self-destruction like the foolish moth, which flies here and there in th e shade of a lamp seeking to throw itself on its flame which is continually being flattered by the wind, they went to the forests.

किं कन्दाःकन्दरेभ्यःप्रलयमुपगता निर्झरा वा गिरिभ्यः
प्रध्वस्ता वा तरुभ्यः सरसफलभृतो वल्कलिन्यश्च शाखाः ॥
वीक्ष्यन्तेयन्मुखानि प्रसभमपगतप्रश्रयाणां खलानां
दुःखोपात्ताल्पवित्तस्मयवशपवनानर्तितभ्रूलतानि ॥६८॥

क्या पहाड़ोंकी गुफाओंमें कन्दमूल और उनकी चट्टानोंमें पानी के झरने नहीं रहे, क्या छाल वाले वृक्षोंमें रसीली फलवती शाखायें नहीं रहीं, जो लोग उन अभिमानी और नीचोंके सामने दीनता करते हैं, जिनकी भौंहें मारे अभिमानके चढ़ी रहती हैं और जिन्होंने बड़े कष्टसे थोड़ासा धन जमा कर लिया है ? ॥६८॥

पहाड़ों में रहने को गुफायें, खाने को कन्दमूल, पीने को उनके झरनों का जल और वृक्षोंमें मीठे-मीठे रसीले फल मौजूद हैं ; फिर भी लोग उन धनियों की टेढ़ी भृकुटियों को क्यों देखते हैं, उनकी टेढ़ी-सूधी क्यों सहते हैं, जिनकी आंखें उस थोड़े से धनके मद से नहीं खुलतीं, जो उन्होंने बड़े-बड़े कष्टों से येनकेन प्रकारेण जमा कर लिया है ! ऐसे नीच

अभिमानियों से अपमानित होने की अपेक्षा पहाड़ों में रहना और फलमूल तथा शीतल जल पर गुज़ारा करना भला। इस से उनकी आत्मा ख़ूब सुखी होगी ; अभिमानी नीच धनियोंकी बुरी बातोंसे आत्मा जल-जल कर ख़ाक होती है।

अगर कुछ भी समझ हो, ज़रा भी आत्मप्रतिष्ठा का ख़याल हो, तो मनुष्य को अपनी "इच्छा" का नाश करना चाहिये। इच्छा-रहित मनुष्य सात विलायतों के बादशाह को भी तुच्छ समझता है। धनियों से दीनता करना और माँगना बड़ी बुरी बात है। देखिये, गोस्वामी तुलसीदासजी प्रभृति महा पुरुषों ने कहा है :—

तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो।*
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरन करो॥
माँगन मरण समान है, मत कोई माँगो भीख।
माँगन ते मरना भला, यह सतगुरुकी सीख॥

तुलसीदासजी कहते हैं—हे प्रभु ! हाथपर हाथ करो, हाथ के नीचे हाथ न करो। जिस दिन हाथके नीचे हाथ करो, उस दिन हमारी मौत हो जाय। मतलब यह है कि, जब तक हम दूसरोंको देते रहें, तबतक हम जीवित रहें ; जिस दिन हमारी माँगनेकी नौबत आ जाय, उस दिन हम मर जायँ।

---

* कर पर कर करो=पराये हाथके ऊपर हमारा हाथ रहे—हम देते रहें। देने वालेका हाथ लेने वालेके हाथके ऊपर रहता है और लेने वालेका हाथ दाताके हाथके नीचे रहता है।

माँगना मरनेके बराबर है। इसलिये कोई भी भीख न माँगो। सतगुरुकी शिक्षा है कि, माँगनेसे मर जाना भला।

अगर दीनता ही करनी हो तो परमात्मा से करो। उसके आगे दीनता करनेसे सभी इच्छायें पूरी हो सकती हैं। कहा है :—

तेरी बन्दानवाज़ी, हफ्त किशवर बख्फा देती है।
जो तू मेरा—जहाँ मेरा, अरब मेरा, अजम मेरा ॥ दाग़ ॥

तेरी सेवा करनेसे सातों वलायतों का राज मिल जाता है। जब तू अपना हो जाता है ; तब सभी अपने हो जाते हैं। कबीरने कहा है :—

थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय।
सूत लगै न बिनावनी, सहजै तनसुख होय ॥
साईं सुमिर, मत ढील कर; जा सुमरे ते लाह।
इहाँ खलक खिदमत करे, वहाँ अमरपुर जाह ॥

भगवान्‌की थोड़ीसी याद करनेसे ही बहुत सुख होता है, बशर्त्ते कि कोई याद करना जाने। इसमें न तो सूत लगता है और न बिनवाई देनी पड़ती है ; सहजमें आनन्द होता है।

हे मनुष्य! स्वामीको सुमरण करनेमें देर न कर। उसके सुमरणमें बहुत लाभ हैं। जो स्वामीको याद करता है, इस दुनियामें संसारी लोग उसकी सेवा करते हैं और जब मर कर दूसरी दुनियामें जाता है, तब स्वर्गपुरीमें बसता है।

छप्पय ।

कहा कन्दराहीन भये, पर्वत भूतल से ?
झरना निर्जल भये कहा, जे पूरित जल से ?
कहा रहे सब वृक्ष, फूल-फल-बिन मुरझाये ?
सहे खलनके बैन, अन्धता जो मद छाये ।
कर संचित धन जे स्वल्प हूँ; इत उत फेरें भ्रू विकट ।
रे मन ! तू भूल न जाहु कहूँ, इन खल पुरुषनके निकट ॥६९॥

69. Have the wild roots in the caves of mountains and the springs of water flowing out of rocks disappeared or the branches of trees bearing juicy fruits been destroyed, that people look supplicatingly towards the faces of proud and evil-minded persons, whose brows often contract with vanity owing to the little wealth, which they possess after having laboured hard for it ?

गंगातरंगकणशीकरशीतलानि
विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ॥

कन्दराहीन=बिना गुफाओंके । भूतल=पृथ्वी । निर्जल=बिना जलके । पूरित=भरे हुए । खलन=दुष्टों । बैन=बातें । कर संचित=इकट्ठा करके । जे=जो । स्वल्प हूँ=थोड़ासा भी । इत उत=इधर उधर । भ्रू=भौं । भूल न जाहु=भूल कर भी न जा । क्या पर्वतोंमें गुफायें नहीं रहीं, क्या झरनोंका जल सूख गया, क्या वृक्षोंमें फल-फूल नहीं रहे, जो तू मदान्ध दुष्टोंकी तानेज़नी सहता है ? जो थोड़ासा भी धन सञ्चय करके भौओंको टेढ़ी करते हैं, उन दुष्टोंके पास हे मन ! तू भूलकर भी मत जा ।

स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि

यत्सावमानपरपिण्डरता मनुष्याः ॥७०॥

हिमालय पर्वतकी वे चट्टानें जो गंगाजलकी लहरोंसे उठे हुए छींटोंसे शीतल हो रही हैं और जहाँ जगह-जगह विद्याधर बैठे हैं क्या अब नहीं रही हैं, जो लोग अपमानसे मिले हुए पराये टुकड़ों पर गुज़र करते हैं ? ॥७०॥

पराये टुकड़ों पर गुज़र करनेकी अपेक्षा मर जाना भला है। अगर माँगना ही हो, तो माँगने की विधि चातक से सीखनी चाहिये। वह एक से ही माँगता है, दूसरेसे हरगिज़ नहीं माँगता, चाहे मर क्यों न जाय; और माँगनेमें भी यह ख़ूबी, कि वह कभी अधीन होकर नहीं माँगता, सिर नवाकर नहीं लेता। वह छोटोंसे नहीं माँगता; एक घनश्याम (बादल) से ही माँगता है। चातकके समान याचक और वारिद (बादल) के समान दानी जगत्में कौन है ? जो ओछोंसे माँगते हैं, जने-जनेके पैर पकड़ते हैं, उनको धिक्कार है ! इसलिये मनुष्यो ! पपहिये की तरह एकमात्र घनश्याम से ही माँगो। महात्मा तुलसीदासजीने कहा है:—

"तुलसी" तीनों लोक महँ, चातक ही को माथ।
सुनियत जासु न दीनता, किये दूसरो नाथ॥
ऊँची जाति पपीहरा, नीचो पियत न नीर।
कै याचै घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर॥

ह्वै अधीन चातक नहीं, शीश नाय नहिं लेय ।
ऐसे मानी मँगनहिं, को वारिद बिन देय? ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—तीनों लोकोंमें सिर्फ एक पपहिये का ही सिर ऊँचा है, क्योंकि उसने अपने स्वामी स्वातीके सिवा और किसीसे कभी दीनता नहीं की।

पपहियेकी जाति ऊँची है; क्योंकि वह नदियों और तालाबों वग़ैरः जलाशयोंका पानी नहीं पीता। वह या तो घनश्यामसे यानी स्वाती नक्षत्रमें बादलसे ही माँगता है अथवा दुःख भोगता है।

पपहिया और मँगतोंकी तरह अधीन होकर और सिर नवाकर नहीं लेता। वह तो मानके साथ ही लेता है। ऐसे मानी मँगतेको बादलके सिवा और कौन दे सकता है?

जिनको परमात्माने देने-लायक़ बनाया है, उन्हें दिल खोल कर ग़रीब और मुहताजोंको देना चाहिये। जो देते हैं, फिर पाते हैं और जो देते हैं उन्हींका जीवन सफल है। रहीम कवि कहते हैं:—

दोहा ।

दीनहि सबको लखत है, दीन लखे नहिं कोय।
जो "रहीम" दीनहिं लखत, दीनबन्धु-सम सोय ॥
"रहिमन" वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं ।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥

तबही लग जीबो भलो, दीबो परे न धीम ।
बिन दीबो जीबो जगत, हमें न रुचे "रहीम" ॥

दीन या मुहताज सबकी तरफ देखता है, पर दीनकी तरफ कोई नहीं देखता। रहीम कहते है, जो दीनकी तरफ देखता है, वह दीनबन्धु भगवान्के समान होता है।

रहीम कहते हैं, वे मनुष्य मर गये जो कहीं माँगने जाते हैं। उनसे पहले वे मरे, जिनके मुँहसे नाहीं निकलती है। मतलब यह है, मँगता तो मरा हुआ है ही, पर जो माँगने वालेको नहीं देता, वह उससे भी पहले मरा हुआ है।

जीना तभी तक अच्छा है जब तक देना मन्दा न हो। बिना दान किये जीना, रहीम कहते हैं, हमें अच्छा नहीं लगता।

दोहा ।

गंगातट गिरिवर गुफा, उहाँ कहा नहिं ठौर ? ।
क्यों एते अपमान सों, खात पराये कौर ? ॥७०॥

70. Have the grounds in the Himalaya mountains the stones of which are washed by the cold spray arising from water of the river Ganges and which are the favourite resort of Vidyadharas been destroyed, that men like to depend upon other people's charity, even when it is disrespectfully given ?

गिरिवर गुफा=पहाड़ोंकी गुफा। उहाँ=वहाँ। कहा=क्या। ठौर= जगह। एते=इतने। खात=खाता है। पराये कौर=पराये टुकड़े। क्या गंगाकिनारेके पहाड़ोंकी गुफाओंमें जगह नहीं रही, जो इतना अपमान सह कर पराये टुकड़े तोड़ता है ?

यदा मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्निनिहतः
समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरनिकरग्राहनिलयाः ॥
धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता
शरीरेका वार्त्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ॥७१॥

जब प्रलयकालकी अग्निके मारे श्रीमान् सुमेरु पर्वत गिर पड़ता है ; मगर-मच्छोंके रहनेके स्थान समुद्र भी सूख जाते हैं ; पर्वतोंके पैरोंसे दबी हुई पृथ्वी भी नाश हो जाती है ; तब हाथीके कानकी कोरके समान चञ्चल मनुष्यकी क्या गिन्ती ? ॥७१॥

जब काल सुमेरु जैसे पर्वतोंको जला कर गिरा देता है, महासागरोंको सुखा देता है, पृथ्वीको नाश कर देता है, तब इस छोटेसे चञ्चल मनुष्यकी क्या गिन्ती ? इसके नाश होने में कौनसा आश्चर्य ?

दोहा ।

मेरु गिरत सूखत जलधि, धरनि प्रलय ह्वै जात !
गजसुतके श्रुति चपल त्यों, कहा देहकी बात ? ॥७१॥

मेरु=सुमेरु पर्वत । जलधि=समुद्र । धरनि=पृथ्वी । प्रलय=नाश । गजसुत=हाथीका बच्चा । श्रुति=कान । चपल=चंचल । मेरु...बात= सुमेरु गिर पड़ता है, समुद्र सूख जाता है और पृथ्वी नाश हो जाती है, तब हाथीके बच्चेके कानकी तरह चञ्चल देह किस गिन्तीमें है ?

71. When even the great Meru collapses, burnt away by the Mahapralaya fire,* when even the oceans which are the home of huge crocodiles and sharks are at last dried up and when the earth itself is destroyed although it is held fast by the feet of great mountains, what should we say of the human body which is as shaky as the tip of the ear of an infant elephant ?

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ॥
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥७२

हे शिव ! मैं कब अकेला, इच्छा-रहित और शान्त हूँगा ? कब हाथ ही मेरा पात्र होगा और कब दिशायें मेरे वस्त्र होंगे ? मैं कब कर्मोंकी जड़ उखाड़नेमें समर्थ हूँगा ? ॥७२॥

एकान्त वास करना, इच्छाओंको त्याग देना, शान्त रहना, हाथसे ही पानी वगैरः पीनेके बर्त्तनका काम लेना, दिशाओंको ही वस्त्र समझना ; यानी नग्न रहना और कर्मोंकी जड़ उखाड़नेमें समर्थ होना—ये ही कल्याणके मार्ग हैं। जिनमें ये गुण हैं, वे धन्य हैं और वे ही सच्चे सुखिया हैं।

दोहा ।

एकाकी इच्छा-रहित, पाणिपात्र दिगवस्त्र ।
शिव शिव ! हौं कब होउँगो, कर्मशत्रुको शस्त्र ? ॥७२॥

---

* The fire at the time of universal destruction.

एकाकी = अकेला। इच्छा रहित = विना इच्छाओंके। पाणि पात्र =

72, O Shiva, when shall I be alone, desireless, peaceful, with hands only to be used as receptacles for water etc., with space only in place of garments and fit for exterminating the roots of Karma (actions) ?

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ॥
संमानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किम्
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ॥७३॥

जीर्णा कंथा ततः किं सितममलपटं पट्टसूत्रं ततः किं
एका भार्या ततः किं हयकरिसुगणैरावृतो वा ततः किम् ॥
भक्तं भुक्तं ततः किं कदशनमथ वा वासरांते ततः किं
व्यक्त ज्योतिर्नवांतर्मथितभवभयं वैभवं वा ततः किम् ॥७४

अगर मनुष्योंको सब इच्छाओंके पूर्ण करनेवाली लक्ष्मी मिली तो क्या हुआ ? अगर शत्रुओंको पदानत किया तो क्या ? अगर धन से मित्रोंकी ख़ातिर की तो क्या ? अगर इसी देहसे इस जगत्में एक कल्प तक भी रहे तो क्या ? ॥७३॥

अगर चिथड़ोंकी बनी हुई गुदड़ी पहनी तो क्या ? अगर निर्मल सफ़ेद वस्त्र पहने या पीताम्बर पहने तो क्या ! अगर एक ही स्त्री

हाथका बतन। दिग्=दिशाएँ। वस्त्र=कपड़े। हौं=मैं। कर्म शत्रु=कर्म रूपी शत्रु का शस्त्र=काटने वाला हथियार।

रही तो क्या ? अगर अनेक हाथी-घोड़ों सहित अनेकों स्त्रियाँ रहीं तो क्या ? अगर नाना प्रकारके व्यञ्जन भोजन किये अथवा शामको मामूली खाना खाया तो क्या ? चाहे जितना विभव पाया, पर यदि संसार-बन्धनको मुक्त करनेवाली आत्मज्ञानकी ज्योति न जानी, तो कुछ भी न पाया और कुछ भी न किया ॥७४॥

मतलब यह है, सारे संसारके राज्य-वैभव अथवा त्रिभुवन के अधिपति होनेमें भी जो आनन्द नहीं है, वह आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञानमें है। आत्मज्ञान होनेसे ही मनुष्य, जीवन-मरणके कष्टसे छुटकारा पाकर, परम शान्ति-लाभ करता है।

अर्ब खर्ब लों द्रव्य है, उदय अस्त लों राज।
जो तुलसी निज मरन है, तौ आवे केहि काज ?।।

अगर अरब-खरब तक धन हो और उदयाचलसे अस्ताचल तक राज हो, तोभी अगर अपना मरण हो, तो ये सब किस कामके ? धन-दौलत और राजपाट सब जीते रहने पर काम आते हैं, मरने पर इनसे कोई लाभ नहीं।

दोहा।

इन्द्र भये धनपति भये, भये शत्रु के साल।
कल्प जिए तौऊ गये, अन्त कालके गाल ॥७४॥

इन्द्र=देवताओंका राजा। धनपति=धनेश, कुबेर। कल्प=ब्रह्मा का एक दिन, जो हमारे ४३२०००००० बरसोंके बराबर होता है। अगर

73, If wealth, which fulfils all men's desires is obtained, what then ? If the heads of enemies are trodden under foot, what then ? If respect is shown by friendly men of power, what then ? If a man lives in this world with this very body for the duration of a whole Kalpa, what then ?

74. What matters it if a man wears a worn out sheet of cloth made of differently coloured rags of bright and clean clothes or fine silken garments ? What matters it if he possesses a wife only or is surrounded by large numbers of elephants and horses ? What matters it if sumptuous feasts are enjoyed or poor food only is eaten once in the evening ? What matters it if one enjoys all sorts of eminence, if he has not seen within himself the eternal Light of self-realisation which destroys the fear of recurring births and deaths ?

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः ।
संसर्गदोषरहिता विजना बनान्ता
वैराग्यमस्ति किमतः परमार्थनीयम् ॥७५॥

अगर हममें नीचे लिखे हुए गुण हों, तब और कौनसा वैराग्य ईश्वरसे माँगें ?—सदा शिवकी भक्ति हो, दिलमें जन्म-मरणका

हम इन्द्र हो जायँ, कुबेर हो जायँ और ४३२००००००बरसों तककी उम्र भी भोग लें, तो भी क्या ? अन्तमें तो कालके गालमें समायेंगे ही यानी मरेंगे ही ।

❀ A day of Brahma, the creator being 4320000000 (solar) years of mortals.

भय हो, कुटुम्बियोंमें स्नेह न हों, मनसे काम-विचार दूर हों और संसर्ग-दोषसे रहित होकर जंगलमें रहते हों ॥७५॥

परमात्मा में प्रेम होना, मनमें जन्म-मरण का भय होना, रिश्तेदारों से प्रेम न होना, मनमें स्त्रीकी इच्छा का न उठना, एकान्तस्थानमें अकेले वन में निवास करना—ये ही तो वैराग्य के पूरे लक्षण हैं। इनसे अधिक वैराग्य के और लक्षण नहीं।

दोहा।

मन विरक्त हरिभक्ति-युत, संगी बन तृणडाभ।
याहूते कछु और है, परम अर्थको लाभ ? ॥७५॥

75. What greater renunciation should we wish for, if we have the following virtues;—Love of God, the fear of birth and death in our mind. no attachment with our relatives, no disturbance of Cupid's doing and residence in the lonely forest, free from the evils of society.

तस्मादनन्तमजरं परमं विकासि-
तद् ब्रह्म चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः ॥
यस्यानुषंगिण इमे भुवनाधिपत्य-
भोगादयः कृपणलोकमता भवन्ति ॥७६॥

मन विरक्त हो—संसारी विषय-भोगोंमें आसक्ति न हो, मनमें हरकी भक्ति हो और बनके घास-पात हमारे साथी-संगी हों—इससे उत्तम परमार्थ का लाभ और क्या होगा ?

इसवास्ते मनुष्यो ! अनन्त, अजर, अमर, अविनाशी और शान्तिपूर्ण ब्रह्मका ध्यान करो। मिथ्या जञ्जालोंमें क्या रक्खा है ? जो ब्रह्मका ज़रासा भी आनन्द पा जाते हैं, उनकी नज़रोंमें संसारी राजाओंका आनन्द तुच्छ जँचता है ॥७६॥

मतलब यह है कि लोगों को अनन्त, अजर, अमर, अविनाशी, शोक-रहित, शान्तिपूर्ण ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये। उसी के ध्यान में पूर्णानन्द है ; संसार के भोग-विलासोंमें ज़रा भी आनन्द नहीं। वह आनन्द सदा है ; यह आनन्द क्षणिक है। उसमें सदा सुख है ; इसमें सदा दुःख है। जिनको ब्रह्मानन्द का ज़रासा भी मज़ा आ जाता है, वे त्रिलोकी के अधिपति के आनन्द को भी तुच्छ समझते हैं। राज, धन-दौलत और स्त्री-पुत्र प्रभृति सब उस परमात्माके पीछे हैं ; इसलिये इनको छोड़ कर उससे ही प्रीति करने में चतुराई है।

दोहा।

ब्रह्म अखण्डानन्द पद, सुमिरत क्यों न निशंक।
जाके छिन-संसर्ग सों, लगत लोकपति रंक ? ॥७६॥

76. Therefore O men, meditate upon BRAHMA, the Endless, the Indestructible and the Blissfull. What is the

हे मनुष्य ! उस अखण्ड—पूर्ण ब्रह्म परमात्माको निःशङ्क होकर क्यों नहीं भजता, जिसके क्षण-भरके संसर्गसे बड़े-बड़े राजा-बादशाह भी तुच्छ भिखारीसे मालूम होते हैं ?

use of other false considerations? In the eyes of men whe think of this BRAHMA the enjoyments obtainable by the worldly monarchs appear only to be but very poor acquisiti ons.

पातालमाविशशि यासि नभो विलंघ्य
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस चापलेन ॥
भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीतं
तद्ब्रह्म न स्मरसि निर्वृतिमेषि येन ॥७७॥

हे चित्त! तू अपनी चञ्चलताके कारण पातालमें प्रवेश करता है, आकाशसे भी परे जाता है, दशों दिशाओंमें घूमता है; पर भूलसे भी तू उस विमल परमब्रह्मकी याद नहीं करता, जो तेरे हृदय में ही मौजूद है, जिसके याद करनेसे ही तुझे परमानन्द—मोक्ष—मिल सकती है! ॥७७॥

इस चञ्चल मन की अद्भुत लीला है। यह कभी आकाश में जाता है, कभी पाताल में जाता है और कभी दशों दिशाओं में फिरता है। इधर-उधर तो इतना भटकता है; पर, भूल कर भी, जहाँ जाना चाहिये वहाँ नहीं जाता। उसके पास ही अमृत का सरोवर है, उसे छोड़ कर सड़ी-गली नालियों में फिरता है। उसे सब जगह छोड़ कर अपने हृदय में ही बैठे हुए ब्रह्म के पास जाना चाहिये और हर समय उसकी ही चिन्तना करनी चाहिये; इस से उसके पापों का नाश हो

जायगा, आवागमन से छुटकारा मिल जायगा एवं परम शान्ति की प्राप्ति होगी। और चिन्ताओं से कोई लाभ नहीं; उन से तो जञ्जालोंमें ही फँसना होता है।

मूर्ख लोग अव्वल तो परमात्मा में दिल ही नहीं लगाते। यदि भूलसे लगाते भी हैं, तो परमात्माकी खोजमें जहाँ-तहाँ मारे-मारे फिरते हैं; पर अपने हृदयमें ही उसे नहीं खोजते! यह उनका महा अज्ञान है। उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है :—

वह पहलूमें बैठे हैं और बदगुमानी।
लिये फिरती मुझको, कहीं का कहीं है॥

वह (ईश्वर) बग़लमें ही बैठा है, पर मैं भ्रममें फँसकर उसे ढूँढ़ने के लिये कहाँ-कहाँ मारा फिरता हूँ!

महात्मा कबीर कहते हैं :—

ज्यों नयनन में पूतली, त्यों ख़ालिक घट माँहिं।
मूरख नर जाने नहीं, बाहर ढूँढ़न जाहि॥
कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढ़े बन माँहि।
ऐसे घट-घट ब्रह्म है, दुनिया जाने नाँहिं॥
समझा तो घर में रहे, परदा पलक लगाय।
तेरा साहिब तुझहि में, अन्त कहूँ मत जाय॥

महात्मा सुन्दरदास जी कहते हैं :—

कोउक जात प्रयाग बनारस ।
कोउ गया जगन्नाथहि धावै ॥
कोउ मथुरा बदरी हरिद्वार सु ।
कोउ गंगा कुरुछेत नहावै ॥
कोउक पुष्कर ह्वै पँच तीरथ ।
दौरिहि दौरि जु द्वारिका आवै ॥
सुन्दर वित्त गड्यौ घरमाँहि सु ।
बाहिर ढूँढत क्यूँकरि पावै ? ॥

जिस तरह आँखोंमें पुतली है, उसी तरह घट में (हृदय-कमलमें) पैदा करने वाला है ; पर मूर्ख इस बात को नहीं जानता और उसे बाहर खोजने जाता है।

कस्तूरी हिरन की अपनी नाभिमें है, पर मृग उसे बन में खोजता है ; उसी तरह ब्रह्म घट-घट में है, पर दुनिया इस भेद को नहीं जानती।

अगर समझता है तो घर में रह और पलकोंका पर्दा लगा कर देख, तेरा मालिक तेरे ही अन्दर है ; अन्यत्र जानेकी ज़रूरत नहीं।

कोई परमेश्वर की खोजमें प्रयाग, काशी, गया, पुरी, मथुरा, कुरुक्षेत्र और पुष्कर जाता है और कोई द्वारका जाता है। सुन्दरदासजी कहते हैं, जो धन घर में गड़ा है, वह बाहर कैसे मिलेगा ?

सारांश यह है, कि संसार अज्ञानान्धकारके कारण "छोरा बग़ल में ढंढोरा शहरमें" वाली कहावत चरितार्थ करता है। ईश्वर इसी शरीर के भीतर हृदय-कमल में मौजूद है, पर अज्ञानी लोग उसे पाने के लिए तीर्थोंमें भटकते फिरते हैं। इस तरह वह मिलता भी नहीं और वृथा हैरानी होती है। जो उसके दर्शन करना चाहें, वे नेत्र बन्द करके अपने हृदयमें ही उसे देखें।

कुण्डलिया ।

फाँद्यौ तें आकाश को, पठ्यौ तें पाताल ।
दशों दिशामें तू फिर्यो, ऐसी चञ्चल चाल ॥
ऐसी चञ्चल चाल, इतै कबहूँ नहिं आयौ ।
बुद्धि सदनकों पाय, पाय छिनहूँ न छुवायौ ॥
देख्यौ नहिं निजरूप, कूप अमृतको छाँद्यौ ।
एरे मन मतिमूढ़ ! क्यों न भव-वारिधि फँाद्यौ ? ॥७७॥

77. O mind, thou, enterest into the lower world, soarest even higher than the heavens and wanderest all through the infinite space, never through mistake dost thou think of the pure BRAHMA, who rests within thy own self and who will bring thee salvation from all sins.

रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वा बुधा जन्तवो
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत्क्रियाः ॥

व्यापारैः पुनरुक्तभुक्तविषयैरेवंविधेनामुना
संसारेण कदर्थिताः कथमहो मोहान्न लज्जामहे ॥७८॥

प्राणियोंमें बुद्धिमान यद्यपि जानते हैं कि दिन और रात ठीक पहलेकी तरह ही होते हैं; तोभी वे उन्हीं काम-धन्धोंके पीछे दौड़ते हैं, जिनके पीछे वे पहले दौड़ते थे। वे लोग उन्हीं-उन्हीं कामोंमें लगे रहते हैं, जिनसे क्षणिक और बारम्बार वही लाभ होते हैं, जिनको वे बारम्बार कह और भोग चुके हैं। आश्चर्य्यका विषय है, कि मनुष्योंको लज्जा नहीं आती ! ॥७८॥

देखते हैं, कि पहले की तरह ही दिन, रात, तिथि, वार, नक्षत्र और मास तथा वर्ष आते हैं और जाते हैं; उसी तरह हम खाते-पीते, सोते-जागते और काम-धन्धे करते हैं; कोई नई बात नहीं देखते। जिन कामों को पहले करते थे, उन्हेंही बारम्बार करते हैं। उनमें कितना सा लाभ और सुख है, इसे भी देखते-सुनते और समझते हैं। फिर भी; आश्चर्य्य है कि, हम इस मिथ्या संसारसे मोह नहीं तोड़ते !

कुण्डलिया।

वेही निशि वेही दिवस; वेही तिथि वेही बार।
वे उद्यम वेही क्रिया, वेही विषय-विकार।
वेही विषय-विकार, सुनत देखत अरु सूँघत।
वेही भोजन भोग, जागि सोवत अरु ऊँघत।

महा निलज यह जीव ; भोग में भयो विदेही ।
अजहूँ पलटत नाहिं, कढ़त गुण वे के वेही ॥७८॥

78. Even the wise among human beings, although knowing that the days and nights now present are exactly similar to those that have passed away, run busily after the same business transactions which they had engaged themselves before. It is a wonder why we are not ashamed of sticking to the same worldly enterprises, availing of petty advantages as have been already spoken and reaped the benefit by us over and over again !

महीं रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ॥
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासंगमुदितः
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥७९॥

मुनि लोग राजा महाराजाओंकी तरह सुखसे ज़मीनको ही अपनी सुखदायिनी शय्या मान कर सोते हैं। उनकी भुजा ही उनका गुदगुदा तकिया है, आकाश ही उनकी चादर है, अनुकूल हवा ही उनका पंखा है, चन्द्रमा ही उनका चिराग़ है, विरक्ति ही उनकी स्त्री है ; अर्थात् विरक्ति-रूपी स्त्रीको लेकर, वे, उपरोक्त सामानोंके साथ, राजाओंकी तरह सुखसे आराम करते हैं ॥७९॥

मुनि लोगोंके पास न राजाओंकी तरह महल हैं, न बढ़िया-बढ़िया पलँग और मख़मली गद्दे तकिये हैं, न ओढ़ने

के लिये शाल-दुशाले हैं, न बिजलीके पङ्खे हैं, न झाड़-फानूस या बिजलीकी रोशनी है और न मृगनयनी, मोहिनी कामिनी ही हैं ; तोभी वे ज़मीनको ही अपना पलँग, हाथको ही तकिया, शीतल हवाको ही पङ्खा, चन्द्रमाको ही दीपक और संसारी विषय-भोगोंसे विरक्ति को ही अपनी स्त्री मान कर सुखसे सोते हैं। राजा-महाराजा और अमीर-उमरा बढ़िया-बढ़िया पलँग, क़न्दहारी क़ालीन, मख़मली गद्दे-तकिये, बिजलीके पंखे और रोशनी तथा सुन्दरी स्त्रियोंके साथ जो मिथ्या सुख उपभोग करते हैं, उससे लाख दर्जे उत्तम और सच्चा सुख मुनि लोग ज़मीन और अपनी भुजा, अनुकूल हवा, चन्द्रमा तथा अपनी विरक्ति रूपिणी स्त्रीके साथ उपभोग करते हैं। अब बुद्धिमानोंको विचार करना चाहिये, कि उन दोनोंमें बुद्धिमान कौन है और वास्तविक सुख किसे मिलता है। अमीरोंको सुखके लिये कितने झञ्झट करने पड़ते हैं और कितनी आफ़तें उठानी पड़ती हैं ; तथापि उन्हें सच्चा सुख नहीं मिलता और मुनि लोग बिना झंझट, बिना आफ़त और बिना प्रयासके सच्चा सुख भोगते और शान्तिकी नींद सोते हैं।

छप्पय ।

पृथ्वी परम पुनीत, पलंग ताकौ मन मान्यौ ।
तकिया अपनो हाथ, गगनको तम्बू तान्यो ॥

पुनीत = पवित्र। गगन = आस्मान। चन्द-चिराग़ = चन्द्रमा-चिराग़

सोहत चन्द चिराग, बीजना करत दशोंदिशि ।
बनिता अपनी वृत्ति, संगही रहत दिवस-निशि ॥
अतुल अपार सम्पति सहित, सोहत है सुखमें मगन ।
मुनिराज महानृपराज ज्यों, पौढे़ देखे हम दृगन ॥७९॥

79, A sage sleeps in comfort and peace like a great king on the most comfortable sofa of the earth, with the soft pillow made of his own arm under his head, with the open sky above as his bed-cover, the congenial breeze serving him as a fan, the moon giving him the light of a lamp, enjoying the conjugal association of non-attachment with pleasures of life.

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महाशासने
तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने भोगे रतिं मा कृथाः ॥
भोगः कोऽपि स एक एव परमो नित्योदितो जृम्भते
यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः ॥८०॥

हे आत्मा! अगर तुझे उस ब्रह्मका ज्ञान होगया है, जिसके सामने तीन लोकका राज्य तुच्छ मालूम होता है; तो तू भोजन, वस्त्र और मानके लिए भोगोंकी चाहना मत कर; क्योंकि वह भोग सर्व्वश्रेष्ठ और नित्य है; उसके मुक़ाबलेमें त्रिलोकीके राज्य प्रभृति सुख कुछ भी नहीं हैं ॥८०॥

है। बीजना=पंखा। बनिता=स्त्री। पौढ़े देखे=सोते हुए देखे। दृगन=आँखोंसे।

जब तक मनुष्यको ब्रह्मज्ञान नहीं होता, जबतक उसे आत्मज्ञान नहीं होता, जब तक उसे उस सुखका स्वाद नहीं मिलता, तभी तक मनुष्य संसारी-विषय-भोगोंमें सुख समझता है। जब मनुष्यको उस सर्व्वोत्तम—सदा स्थिर रहनेवाले सुखका स्वाद मिल जाता है, तब वह संसारी आनन्द या दुनियवी मज़े तो क्या—त्रिभुवनके राजसुखको भी कोई चीज़ नहीं समझता। मतलब यह है कि, सच्चा और वास्तविक सुख ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञानमें है। उसके बराबर आनन्द त्रिलोकीके और किसी भी पदार्थमें नहीं है। जो संसारी पदार्थोंमें सुख मानते हैं, वे अज्ञानी और नासमझ हैं। उनमें अच्छे और बुरे, असल और नक़लके पहचाननेकी तमीज़ नहीं। वे रस्सीको साँप और मृगमरीचिकाको जल समझने वालोंकी तरह भ्रममें डूबे या बहँके हुए हैं।

सोरठा।

कहा विषयको भोग, परम भोग इक और है।
जाके होत संयोग, नीरस लागत इन्द्रपद ॥ ८० ॥

80. If you have realised the great One in whose presence the kingdom of the three worlds appears to give no pleasure, you should not cherish any longing for the acquirement of enjoyments such as those of good seats, clothes and honour. There is an Enjoyment somewhere, Great and Eternal, by tasting which all pleasures like that of the

kingdom of the three worlds become tasteless or lose fascination.

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः ॥
मुक्त्वैकं भवबन्धदुःखरचनाविध्वंसकालानलं
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥८१॥

वेद, स्मृति, पुराण और बड़े-बड़े शास्त्रोंके पढ़ने तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके कर्मकाण्ड करनेसे स्वर्गमें एक कुटियाकी जगह प्राप्त करनेके सिवा और क्या लाभ है ? ब्रह्मानन्दरूपी गढ़ीमें प्रवेश करनेकी चेष्टाके सिवा, जो संसार-बन्धनोंके काटनेमें प्रलयाग्निके समान है, और सब काम व्यापारियोंके से काम हैं ॥८१॥

वेद, स्मृति, पुराण और बड़े-बड़े शास्त्रोंके पढ़ने-सुनने और उनके अनुसार कर्म करनेसे मनुष्यको कोई बड़ा लाभ नहीं है। अगर ये कर्मकाण्ड ठीक तरहसे पार पड़ जाते हैं, तो इनसे इतना ही होता है, कि स्वर्गमें एक कुटीके लायक़ स्थान मिल जाता है, पर वह स्थान भी सदा क़ब्ज़ेमें नहीं रहता; जिस दिन पुण्यकर्मोंका ओर आ जाता है, उस दिन वह स्वर्गीय स्थान फिर छिन जाता है; इससे प्राणीको फिर दुःख होता है। मतलब यह हुआ, कि कर्मकाण्डोंसे जो सुख मिलता है, वह सुख नित्य या सदा-सर्वदा रहने वाला

नहीं ; उस सुखके अन्तमें फिर दुःख होता है—फिर स्वर्ग छोड़ कर मृत्युलोकमें जन्म लेना पड़ता है—वही जन्म-मरण के दुःख झेलने पड़ते हैं। इस लिये मनुष्योंको ब्रह्मज्ञानी होनेकी चेष्टा करनी चाहिये ; क्योंकि ब्रह्मज्ञान रूपी अग्नि प्रलयाग्निके समान है । वह अग्नि संसार-बन्धनोंको जड़ से जला देती है ; अतः फिर सदा सुख रहता है—दुःखका नाम भी सुननेको नहीं मिलता। इसलिये ज्ञानियोंने ब्रह्म-ज्ञान—आत्मज्ञानको सर्व्वोपरि सुख दिलाने वाला माना है। मतलब यह है, कि बिना ब्रह्मज्ञान या रामभक्तिके सब जप-तप आदि वृथा है। सारे वेद शास्त्रों और पुराणोंका यही निचोड़ हैं कि, ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या है तथा जीव ब्रह्मरूप है। जो इस तत्त्वको जानता है वही सच्चा पण्डित है। जो ब्रह्म या आत्माको नहीं जानता, वह अज्ञानी और मूर्ख है। उसका पढ़ना-लिखना वृथा समय नष्ट करना है।

तुलसीदासजीने कहा है:—

चतुराई चूल्हे परौ, यम गहि ज्ञानहि खाय ।
तुलसी प्रेम न रामपद, सब जरमूल नशाय ॥

महादेवजी पार्वतीजीसे कहते हैं:—

ये नराधम लोकेषु, रामभक्ति पराङ्मुखाः ॥
जपं तपं दयाशौचं, शास्त्राणां अवगाहनम् ॥
सर्वं वृथा विना येन, शृणुत्वं पार्वति प्रिये ! ॥

हे प्रिये! जो नराधम इस लोकमें रामकी भक्तिसे विमुख हैं, उनके जप, तप, दया, शौच, शास्त्रोंका पठन-पाठन— ये सब वृथा है। असल तत्व भगवान्‌की निष्काम भक्ति या ब्रह्ममें लीन होना है।

छप्पय।

श्रुति अरु स्मृति, पुरान पढ़े बिस्तार सहित जिन।
साधे सब शुभकर्म, स्वर्गको बात लह्यौ तिन॥
करत तहाँ हूँ चाल, कालको ख्याल भयंकर।
ब्रह्मा और सुरेश, सबनको जन्म मरण डर।
ये बणिकबृत्ति देखी सकल, अन्त नहीं कछु कामकी।
अद्वैत ब्रह्मको ज्ञान, यह एक ठौर आराम की॥८१॥

81, What is the use of reading the Vedas, the Smritis, the Purans and the voluminous Shastras or of practising the various Karamkanda actions which are fruitful only in procuring an abode in a cottage in Swarga? All other pursuits are mercenary save that of trying to enter the citadel of self-realisation which is like the Pralaya fire in putting an end to the misery of the bondages of this world.

श्रुति=वेद। स्मृति=धर्म शास्त्र; मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति वग़ैरः। पुरान=पुराण, पुरातन इतिहास; जिसमें प्राचीन इतिहासके मिषसे धर्मके तत्त्व निरूपण किये गये हों। भागवत, विष्णु पुराण और शिव पुराण आदि। सुरेश=इन्द्र। अद्वैत=द्वैत रहित, एक, भेद रहित, जिसके समान दूसरा नहीं। शंकराचार्यका मत अद्वैत है; उन्होंने जीव और ईश्वरको एक माना है।

आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्थायिनी यौवन श्री-
र्थाः संकल्पकल्पा घनसमयतडिद्विभ्रमा भोगपूराः ॥
कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणीतं
ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्भोधिपारं तरीतुम् ॥८२॥

आयु—उम्र—पानीकी लहरोंके समान चञ्चल है, जवानी थोड़े दिनोंकी है, धन मनके संकल्पोंसे भी कम देर ठहरनेवाला है भोग वर्षाकालमें चमकनेवाली बिजलीकी चमकसे भी अधिक चञ्चल हैं, प्यारी स्त्रीका गलेसे लगाना भी चिरस्थायी नहीं है। इस लिए मनुष्यो ! भवसागरसे पार होनेके लिए ब्रह्ममें लीन होओ ॥८२॥

आयु की चंचलता।

प्राणीकी आयुका कोई ठिकाना नहीं। यह जलकी तरङ्गोंके समान चञ्चल और पानीके बुलबुलेके समान क्षणस्थायी है। यह अभी है और अगले क्षण न रहे। जो साँस बाहर जाता है, वह वापस आवे और न आवे। इधर प्राणी जन्म लेता है और उधर मौत उसके पीछे लगती है। ऐसे क्षणभंगुर जीवनपर क्या खुशी मनायी जाय? "मोहमुद्गर" में कहा है:—

नलिनीदलगतजलमतितरलं,
तद्वज्जीवितमतिशयचपलम्।

विद्धि व्याधिव्यालग्रस्तं,
लोकं शोकहतञ्च समस्तम् ॥

पद्मपत्र पर पड़ा हुआ जल अतीव चञ्चल होता है, मनुष्य का जीवन भी उसी तरह अतीव चञ्चल है। यह सारा संसार रोग-रूपी सर्पोंसे ग्रसित हो रहा है। इसमें दुःख-ही-दुःख है।

जवानी ।
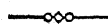
जिस तरह मनुष्यकी आयु पानीकी लहरोंके समान चञ्चल और सदा-सर्वदा रहने वाली नहीं है; उसी तरह जवानी भी चन्दरोज़ा या अल्पकालस्थायी है। सदा कोई जवान नहीं रहा। अवस्थायें बदलती ही रहती हैं। बचपन के बाद जवानी और जवानीके बाद बुढ़ापा आता है और अवश्य आता है। चार दिनकी चाँदनी, फेर अँधेरी रात वाली बात है। किसीने कहा है:—

सदा न फूलै तोरई, सदा न सावन होय।
सदा न जोवन थिर रहे, सदा न जीवे कोय ॥

सदा तोरई नहीं फूलती, सदा सावन नहीं रहता, सदा जवानी नहीं रहती और सदा कोई जीता भी नहीं रहता। और भी कहा है:—

रहती है कब, बहारे जवानी तमाम उम्र,
मानिन्द बूये गुल, इधर आई उधर गई ।

यौवन अवस्था की बहार उम्र-भर थोड़े ही रहती है। यह तो फूलकी सुगन्धकी तरह इधर आई, उधर गई।

जो आज जवानीके नशेमें मतवाले हो रहे हैं, जो मल-मल कर और साबुन लगा-लगा कर अपनी मिट्टीकी कायाको धोते और उसे चन्दन कपूर एवं इत्र-फुलेलोंसे सुगन्धित करते एवं भाँति-भाँतिके गहने पहने रहते हैं, स्त्रियाँ जो अपनी दोनों छातियोंको ऊँची उठा कर चलती हैं और पुरुष जो मूछोंपर बल और ताव देते हैं, वे होश करें और मनमें निश्चय समझलें कि, उनका यह शरीर सदा उनके साथ न रहेगा, एक दिन यहाँ-का-यहाँ ही पड़ा रह जायगा और मिट्टीमें मिल जायगा। कायाके नाश होनेके पहले ही वृद्धावस्था युवावस्थाको निगल जायगी। जो दाँत आज मोतियों की तरह चमकते हैं, वे कल हिल-हिल कर आपका दम नाक में कर देंगे और एक-एक करके आपका साथ छोड़ देंगे। उस समय आपका मुख पोपला और भद्दा हो जायगा। जिन बालों को आप रोज़ धोते और साफ रखते हैं तथा जिनकी सजावट आप तरह-तरहसे करते हैं, वे एक दिन सफेद या सनकी तरह हो जायेंगे। ये फूले हुए गाल पिचक जायंगे। आँखों में यह रसीलापन न रहेगा। इनमें पीलापन और धुन्ध छा जायगा। आज की सी अकड़-तकड़ न रहेगी, लाठीके

सहारे चलोगे और वह भी काँपने लगेगी। जो लोग आज आपको देखकर खुश होते हैं, आपका आदर करते हैं, वे ही आपका अनादर करेंगे, आपकी बात भी न पूछेंगे, यह तो आप की काया और जवानीका हाल है, अब अपने धन-दौलत की चञ्चलताकी बातें भी सुनिये।

लक्ष्मी चञ्चल है।

लक्ष्मीको चञ्चला और चपला भी कहते हैं। लक्ष्मी ठीक उस चपला की तरह है, क्षणमें चमकती और क्षण भरमें ही बादलोंमें बिलाय जाती है। अनेकोंने इस धनको मनके विचारोंकी तरह क्षणस्थायी और बेजड़ कहा है। यह धन किसीके पास सदा नहीं रहा। तीन पीढ़ीसे अधिक तो एक परिवारमें धन रहते किसी ने देखा ही नहीं। आज जो धनी है, कल वही निर्धन हो जाता है। आज जो हज़ारों को भोजन देता है, कल वही अपने भोजनके लिये औरोंके द्वारपर भटकता फिरता हैं। आज जो राजा है, कल वही रंक हो जाता है। आज जो बिना मोटर और जोड़ीके एक क़दम चल नहीं सकता, कल वही पैदल दौड़ा फिरता है। आज जिसकी आज्ञा-पालनके लिये हज़ारों दास-दासी खड़े रहते हैं, कल वही दूसरोंकी आज्ञा पालनके लिये खड़ा देखा जाता है। सारांश यह कि, धन-वैभव न तो सदा

किसीके पास रहा ही और न आगे ही रहेगा। इसीलिये धन को भी चञ्चल कहा है। नीतिमें लिखा है:—

> यौवनं जीवितं चित्तं छायालक्ष्मीश्च स्वामिता।
> चञ्चलानि षडेतानि ज्ञात्वा धर्मरतो भवेत्॥

यौवन, जीवन, मन, शरीरकी छाया, धन और स्वामिता—ये छहों चञ्चल हैं, यानी स्थिर होकर नहीं रहते।

मूर्ख हैं वे, जो इस झूठे और सदा न रहनेवाले धन पर फूलते और घमण्ड करते हैं। वे समझते हैं कि, यह हमारे पास सदा रहेगा; पर यह उनकी भारी भूल है। धनको सदा बिजलीकी चमक और बादलकी छायाकी तरह क्षणस्थायी और चंचल समझ कर अभिमान न करना चाहिये। "मोहमुद्गर" में कहा है:—

> मा कुरु धनजन यौवन गर्वं
> हरति निमेषात् कालः सर्वं,
> मायामयमिदमखिलं हित्वा,
> ब्रह्मपद प्रविशाशु विदित्वा॥

इस धन-यौवनका गर्व न कर, काल इसको पलक मारते हर लेता है। इस मायामय संसारको त्यागकर, शीघ्र ही ब्रह्मपद में प्रविष्ट हो।

स्त्रीका आलिंगन भी चिरस्थायी नहीं है ।
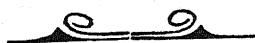
जिस तरह आयु, यौवन और धन चंचल है ; उसी तरह नारी भी चंचल है । आज जो अपनी है, उसे कल परायी होते देर नहीं लगती । आज जो रमणियोंके साथ आनन्द करते हैं, कल वे ही उनके बियोगमें तड़पते देखे जाते हैं । कहते हैं कि स्त्री करवट बदलते पराई हो जाती है । कहा है:—

शास्त्रं सुचिन्तितमथो परिचिन्तनीयम् ।
आराधितोऽपि नृपतिः परिशंकनीयः ।
अंकेस्थितापि युवतिः परिरक्षणीयः ।
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम् ?

खूब याद किये हुए शास्त्रको भी बार-बार फेरना चाहिये, खूब सेवा किये हुए राजासे भी डरना चाहिये, गोदमें पड़ी स्त्रीकी सावधानीसे रक्षा करनी चाहिये ; क्योंकि शास्त्र, राजा और युवती इनका विश्वास नहीं ।

"स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्त्तव्यः"

स्त्रियोंका विश्वास नहीं करना चाहिये, ऐसे-ऐसे वाक्य जगह-जगह मिलते हैं । महाराजा भर्तृहरि को ही लीजिये । महाराजामें क्या त्रुटि थी ? क्या उनमें बलवीर्य्य, रूप, विद्या चातुरी प्रभृति किसी भी गुणकी कमी थी ? क्या उनके यहाँ

सुख-भोगके सामानों की कमी थी ? नहीं, कुछ भी नहीं। सब कुछ था; पर पिंगला ने महाराजाको छोड़, घोड़ोंके दारोग़ासे दिल लगाया। फिर; स्त्रियोंकी प्रीतिको सदा रहने वाली कैसे कह सकते हैं ?

एक स्त्रीकी दग़ाबाज़ी।

एक साहूकारने अपने लड़केको नाराज़ होकर घरसे निकाल दिया। चलते समय उसने अपनी स्त्रीसे कहा—"तुझे मैं तेरे पीहर पहुँचाता जाऊँ, क्योंकि वनमें बड़े कष्ट हैं और अभी रोज़गारका ठिकाना नहीं। ईश्वर जानें क्या-क्या कष्ट उठाने होंगे।" "स्त्रीने कहा—"स्वामिन् मैं आपके बिना क्षणभर भी नहीं रह सकती। आपके वियोगके मुक़ाबलेमें राह-बाट और वनके कष्ट तुच्छ हैं। मैं आपके साथ चलूँगी और आपकी पदसेवा कर अपने तईं धन्य समझूँगी।" साहूकारके लड़केके बहुत समझाने पर भी जब स्त्री न मानी, तो उसने उसे अपने साथ ले लिया।

वे दोनों स्त्री-पुरुष घरसे कुछ द्रव्य लेकर चल दिये। रोज़ मंज़िलोंपर मंज़िलें तय करते हुए, एक दिन दोनों, दोपहरके समय, एक फ़क़ीरके तकिये पर पहुँचे। वहाँ वृक्षोंकी सघन छाया थी, सामने ही थोड़े फ़ासिलेपर एक कूआँ था। साहूकारका लड़का लोटा डोर ले जल लाने गया और स्त्री

वहीं बैठी रही। फ़क़ीरने देखा कि, स्त्री तो परमा सुन्दरी और नवयौवना है; अतः उससे कहा—"तू मेरे साथ रहे, तो दुनिया के मज़े देखे। जा उसे कूएँ में धकेल आ फिर अपने दोनों पासके शहरमें चल रहेंगे।" साहूकारकी स्त्री, जो पतिके लिये प्राण देती थी, जो पतिके समझाने पर भी पीहर न गई थी, क्षणभरमें पराई हो गई। फ़कीरकी बातोमें आकर वह कूएपर गई। ज्यों ही उसका पति लोटा खींचनेको झुका, उसने धक्का देकर उसे कूएमें गिरा दिया। उसे ज़रासी दया भी न आई। पीछे आकर वह फ़क़ीरके साथ होली। फ़कीर उसे नगरमें ले आया और उसके धनसे मौज करने लगा। साथ ही गाने-बजाने वाले उस्तादोंको बुलाकर, उसने गाने-बजानेकी तालीम दिलाने लगा। उसकी चढ़ती जवानी थी, रूप-लावण्य था; अतः गानेमें भी वह पक्की हो गई। सारे शहरमें उसके नाचने-गानेकी शोहरत हो गई।

उधर वह लड़का कूएमें पड़ा हुआ अपनी मुसीबत पर रोता था। कहींसे एक बनजारा आया। उसके साथ सौ दो सौ आदमी और बालध थे। वहीं पड़ाव पड़ा। लोग रोटी बनानेका उद्योग करने लगे। कोई कूएपर पानी भरने गया। उसने ज्यों ही डोल फाँसा कि, साहूकारके लड़के ने डोल पकड़ लिया। लोगोंने पूछा—"तू कौन है?" उत्तर दिया—"मैं आफ़त का मारा मनुष्य हूँ। कृपाकर मुझे निकाल लो।" लोगोंने मिल कर उसे बाहर खींच लिया। देखा तो वह पीला पड़ गया था।

बनजारेने उसकी चिकित्सा कराकर उसे गरम कपड़ोंमें सुला दिया। चन्दरोज़में वह बनजारा भी उसी नगरमें पहुँचा। साहूकारका लड़का रोज़गारकी तलाशमें घूमता रहा। ईश्वर-कृपासे एक बड़े सेठने उसे अपने यहाँ रख लिया। लड़का बड़ा ही चलता-पुरज़ा निकला, इसलिये उस सेठने उसे अपना प्रधान मुनीम बना लिया।

उन्हीं दिनों उस वेश्याकी बड़ी तारीफ सुन, राजाने अपने यहाँ उसके नाचका हुक्म दिया। महफिल सज़ाई गई, चारों ओर नगरके सेठ-साहूकार, रईस-अमीर बैठे। राजा सिंहासनपर बैठा। वेश्या नाचने लगी। उसके रूप और नाच-गान पर महफिलकी महफिल मुग्ध हो गई। इतनेमें उस वेश्याकी नज़र उस साहूकारके लड़के या अपने पतिपर पड़ गई। राजाने प्रसन्न होकर कहा, "बीबी! तुम माँगो, वही इनाम मिलेगा।" वेश्याने कहा—"महाराज! यदि आप मुझे इनाम देनेका बचन देते हैं, तो यह बचन दीजिये, कि मैं जो मांगूँ वही मिले।" जब राजा बचन-बद्ध हो गया था, तब वेश्याने कहा—राजन्! वह सामने बैठा हुआ पुरुष मेरा चोर है, उसे मरवा दीजिये।" जब राजाने उसके मारे जानेकी आज्ञा दे दी, तब साहूकारके लड़केने कहा—"इसके पास मेरी कुछ धरोहर है; इससे कहिये कि, यह हाथमें जल ले मुझे उसे संकल्प करके दे दे।" वेश्याने कहा—"मुए! तेरा मुझे क्या देना है? ख़ैर, ले; मैं जल लेकर संकल्प करके कहती हूं, कि जो कुछ

वहीं बैठी रही। फ़क़ीरने देखा कि, स्त्री तो परमा सुन्दरी और नवयौवना है; अतः उससे कहा—"तू मेरे साथ रहे, तो दुनिया के मज़े देखे। जा उसे कूएँमें धकेल आ फिर अपने दोनों पासके शहरमें चल रहेंगे।" साहूकारकी स्त्री, जो पतिके लिये प्राण देती थी, जो पतिके समझाने पर भी पीहर न गई थी, क्षणभरमें पराई हो गई। फ़क़ीरकी बातोंमें आकर वह कूएपर गई। ज्यों ही उसका पति ढोटा : खींचनेको झुका, उसने धक्का देकर उसे कूएमें गिरा दिया। उसे ज़रासी दया भी न आई। पीछे आकर वह फ़क़ीरके साथ होली। फ़क़ीर उसे नगरमें ले आया और उसके धनसे मौज करने लगा। साथ ही गाने-बजाने वाले उस्तादोंको बुलाकर, उसने गाने-बजानेकी तालीम दिलाने लगा। उसकी चढ़ती जवानी थी, रूप-लावण्य था; अतः गानेमें भी वह पक्की हो गई। सारे शहरमें उसके नाचने-गानेकी शोहरत हो गई।

उधर वह लड़का कूएमें पड़ा हुआ अपनी मुसीबत पर रोता था। कहींसे एक बनजारा आया। उसके साथ सौ दो सौ आदमी और बालध थे। वहीं पड़ाव पड़ा। लोग रोटी बनानेका उद्योग करने लगे। कोई कूएपर पानी भरने गया। उसने ज्यों ही डोल फाँसा कि, साहूकारके लड़के ने डोल पकड़ लिया। लोगोंने पूछा—"तू कौन है?" उत्तर दिया—"मैं आफ़त का मारा मनुष्य हूँ। कृपाकर मुझे निकाल लो।" लोगोंने मिल कर उसे बाहर खींच लिया। देखा तो वह पीला पड़ गया था।

बनजारेने उसकी चिकित्सा कराकर उसे गरम कपड़ोंमें सुला दिया। चन्दरोज़में वह बनजारा भी उसी नगरमें पहुँचा। साहूकारका लड़का रोज़गारकी तलाशमें घूमता रहा। ईश्वर-कृपासे एक बड़े सेठने उसे अपने यहाँ रख लिया। लड़का बड़ा ही चलता-पुरज़ा निकला, इसलिये उस सेठने उसे अपना प्रधान मुनीम बना लिया।

उन्हीं दिनों उस वेश्याकी बड़ी तारीफ सुन, राजाने अपने यहाँ उसके नाचका हुक्म दिया। महफिल सज़ाई गई, चारों ओर नगरके सेठ-साहूकार, रईस-अमीर बैठे। राजा सिंहासनपर बैठा। वेश्या नाचने लगी। उसके रूप और नाच-गान पर महफिलकी महफिल मुग्ध हो गई। इतनेमें उस वेश्याकी नज़र उस साहूकारके लड़के या अपने पतिपर पड़ गई। राजाने प्रसन्न होकर कहा, "बीबी! तुम माँगो, वही इनाम मिलेगा।" वेश्याने कहा—"महाराज! यदि आप मुझे इनाम देनेका बचन देते हैं, तो यह बचन दीजिये, कि मैं जो मांगूँ वही मिले।" जब राजा बचन-बद्ध हो गया था, तब वेश्याने कहा—राजन्! वह सामने बैठा हुआ पुरुष मेरा चोर है, उसे मरवा दीजिये।" जब राजाने उसके मारे जानेकी आज्ञा दे दी, तब साहूकारके लड़केने कहा—"इसके पास मेरी कुछ धरोहर है; इससे कहिये कि, यह हाथमें जल ले मुझे उसे संकल्प कर के दे दे।" वेश्याने कहा—"चुप! तेरा मुझे क्या देना है? ख़ैर, ले; मैं जल लेकर संकल्प करके कहती हूं, कि जो कुछ

तेरा मेरे पास हो तू ले।" वेश्याके संकल्प छोड़ते ही वह ज़मीनपर गिर पड़ी और मर गई। राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उसने उस लड़केसे इस घटनाका असली तत्व पूछा। लड़केने कहा—"राजन्! यह मेरी व्याहता स्त्री है। मैं और यह घरसे निकल आये। राहमें इसे साँपने काटा, और यह मर गई, मैं भी इसीके साथ जलनेको तैयार हुआ। इतनेमें महादेव-पार्वती उधर आ निकले। पहले तो उन्होंने कहा—"अरे पागल! स्त्रीके लिये जान देता है! तू है तो और बहुत स्त्रियाँ मिल जायेंगी। पर मैं उनकी बातपर राजी न हुआ, तब उन्होंने कहा—"तू हाथमें जल लेकर अपनी आधी आयु इसे दे, तो यह जी सकती है। फिर भी, जब कभी तू अपनी शेष बची आयु इससे माँगेगा और यह संकल्प छोड़ देगी, तब यह मर जायगी। महाराजा मुझे यह प्राणोंसे भी प्यारी थी; अतः मैंने अपनी आधी आयु इसे देदी। इसके बाद यह मुझे कूएमें धकेल फ़क़ीरके साथ चली आई और वेश्या हो गई। आज यह मुझे जानसे मरवाने पर ही तुल गई। स्त्री-जातिकी प्रीतिका ज़रा भी विश्वास नहीं।" राजा उससे बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपना प्रधान मन्त्री बना लिया।

इस कहानीसे हमने स्त्रियोंकी प्रीतिका नमूना दिखाया है। निश्चय ही सभी स्त्रियाँ ऐसी नहीं होतीं; पर इसमें शक़ नहीं कि, अधिकांश ऐसी ही होतीं हैं; अतः स्त्री की

प्रीतिका आनन्द सदा नहीं मिल सकता। मान लो, स्त्री पतिव्रता भी हो, तो सम्भव है कि, वह पहले ही मर जाय। इस तरह भी वियोग हो सकता है।

साराँश यह कि, आयु, यौवन, धन और नारी—ये सभी चंचल, अनित्य और क्षणभंगुर हैं। इसीलिये परिणाममें दुःखोंके भाण्डार हैं। अतएव बुद्धिमानोंको चाहिये, कि ब्रह्ममें चित्त लगायें, रात दिन उसीका ध्यान—उसीका चिन्तना करें। उससे वे भवसागरके पार हो जायेंगे। उन्हें बारम्बार जन्म-मरणका कष्ट न होगा—नित्य स्थायी सुख मिलेगा। स्त्री-पुत्र, धन प्रभृतिमें मन लगानेसे सदा दुःख-सागरमें गोते लगाने पड़ते हैं। मर कर फिर जन्म लेना पड़ता है और फिर मरना पड़ता है। अब बुद्धिमान ही विचार करें, कि दोनोंमें कौनसा मार्ग सुखदायी है।

छप्पय।

जलकी तरल तरंग जात, ज्यों जात आयु यह।
यौवन हूँ दिन चार, चटककी चोंप चाह चह॥
ज्यों दामिनी प्रकाश, भोग सब जानहु तैसे।
तैसे ही यह देह अथिर, थिर ह्वै है कैसे॥
सुनि एरे मेरे चित्त तू, होहि ब्रह्ममें लीन गति।
संसार अपार समुद्र तर, करि नौका निज ज्ञान रति॥८२॥

82. Life is transient like the water-currents, youth is short-lived, riches are foundationless like the flights of the human

तेरा मेरे पास हो तू ले।" वेश्याके संकल्प छोड़ते ही वह ज़मीनपर गिर पड़ी और मर गई। राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उसने उस लड़केसे इस घटनाका असली तत्व पूछा। लड़केने कहा—"राजन्! यह मेरी व्याहता स्त्री है। मैं और यह घरसे निकल आये। राहमें इसे साँपने काटा, और यह मर गई, मैं भी इसीके साथ जलनेको तैयार हुआ। इतनेमें महादेव-पार्वती उधर आ निकले। पहले तो उन्होंने कहा—"अरे पागल! स्त्रीके लिये जान देता है! तू है तो और बहुत स्त्रियाँ मिल जायेंगी। पर मैं उनकी बातपर राजी न हुआ, तब उन्होंने कहा—"तू हाथमें जल लेकर अपनी आधी आयु इसे दे, तो यह जी सकती है। फिर भी, जब कभी तू अपनी शेष बची आयु इससे माँगेगा और यह संकल्प छोड़ देगी, तब यह मर जायगी। महाराजा मुझे यह प्राणोंसे भी प्यारी थी; अतः मैंने अपनी आधी आयु इसे देदी। इसके बाद यह मुझे कूएमें धकेल फ़क़ीरके साथ चली आई और वेश्या हो गई। आज यह मुझे जानसे मरवाने पर ही तुल गई। स्त्री-जातिकी प्रीतिका ज़रा भी विश्वास नहीं।" राजा उससे बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपना प्रधान मन्त्री बना लिया।

इस कहानीसे हमने स्त्रियोंकी प्रीतिका नमूना दिखाया है। निश्चय ही सभी स्त्रियाँ ऐसी नहीं होतीं; पर इसमें शक़ नहीं कि, अधिकांश ऐसी ही होती हैं; अतः स्त्री की

प्रीतिका आनन्द सदा नहीं मिल सकता। मान लो, स्त्री पतिव्रता भी हो, तो सम्भव है कि, वह पहले ही मर जाय। इस तरह भी वियोग हो सकता है।

साराँश यह कि, आयु, यौवन, धन और नारी—ये सभी चंचल, अनित्य और क्षणभंगुर हैं। इसीलिये परिणाममें दुःखोंके भाण्डार हैं। अतएव बुद्धिमानोंको चाहिये, कि ब्रह्ममें चित्त लगायें, रात दिन उसीका ध्यान—उसीका चिन्तना करें। उससे वे भवसागरके पार हो जायेंगे। उन्हें बारम्बार जन्म-मरणका कष्ट न होगा—नित्य स्थायी सुख मिलेगा। स्त्री-पुत्र, धन प्रभृतिमें मन लगानेसे सदा दुःख-सागरमें गोते लगाने पड़ते हैं। मर कर फिर जन्म लेना पड़ता है और फिर मरना पड़ता है। अब बुद्धिमान ही विचार करें, कि दोनोंमें कौनसा मार्ग सुखदायी है।

छप्पय।

जलकी तरल तरंग जात, ज्यों जात आयु यह।
यौवन हूँ दिन चार, चटककी चोंप चाह चह॥
ज्यों दामिनी प्रकाश, भोग सब जानहु तैसे।
तैसे ही यह देह अथिर, थिर ह्वै है कैसे॥
सुनि एरे मेरे चित्त तू, होहि ब्रह्ममें लीन गति।
संसार अपार समुद्र तर, करि नौका निज ज्ञान रति॥८२॥

82. Life is transient like the water-currents, youth is short-lived, riches are foundationless like the flights of the human

mind, the objects of pleasure are transitory like the flashes of lightning in the rainy season and the embracing of beloved women also does not last for a long time. O men, it is better for you to fix your heart on Brahma in order to swim across the ocean of wordly fears.

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं किं लोभाय मनस्विनः ।
शफरीस्फुरितेनाब्धेः क्षुब्धता जातु जायते ॥८३॥

जो विचारवान् है, जो ब्रह्मज्ञानी है, उसे संसार लुभा नहीं सकता । मछलीके उछलनेसे समुद्र नही उमड़ता ॥८३॥

जिस तरह सफरी मछलीके उछल-कूद मचानेसे समुद्र अपनी गम्भीरता को नहीं छोड़ता, ज़रा भी नहीं उमगता, जैसा का तैसा बना रहता है; उसी तरह विचारवान् ब्रह्मज्ञानी संसारी-पदार्थोंपर लट्टू नहीं होता वह समुद्रकी तरह गम्भीर ही बना रहता है; अपनी गम्भीरता नहीं छोड़ता। समुद्र जिस तरह मछलीकी उछल-कूदको कुछ नहीं समझता, उसी तरह वह त्रिलोकी की सुख-सम्पत्ति को तुच्छ समझता है। मतलब यह है, कि संसारी विषय-भोग उन्हींको लुभाते हैं, जो विचारवान् नहीं हैं, जिनमें विचार-शक्ति नहीं है, जिन्हें ब्रह्मज्ञानका आनन्द नहीं मालूम है। उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं:—

दुनिया है वह सय्याद कि सब दाम में इसके ।
आ जाते हैं लेकिन कोई दाना नहीं आता ॥

दुनिया एक ऐसा जाल हैं, जिसमें प्राय: सभी फँसे हुए हैं। कोई दाना अर्थात् विचारशील पुरुष ही इस जालसे बचा हुआ है।

संसार अन्तः सार-शून्य है, इसमें कुछ नहीं है। यह ठीक आँवलेके समान है, जो ऊपरसे खूब सुन्दर और चिकना-चुपड़ा दीखता है; मगर भीतर कुछ नहीं। किसीने संसारको स्वप्नवत् और किसीने इसे कोरा ख़याल ही कहा है! महा कवि ग़ालिब कहते हैं:—

हस्तीके मत फरेबमें आजाइयो असद।
आलम तमाम हलक़ ये दामे ख़याल है॥

ग़ालिब, सृष्टिके चक्रमें मत आ जाना। यह सब प्रपंच तुम्हारे ख़यालके सिवा और कोई चीज़ नहीं है।

इसके जालमें समझदार नहीं फँसते किन्तु नासमझ लोग, जालके किनारोंपर लगी सीपियोंकी चमक-दमक देख कर जालमें आ फँसनेवाली मछलियोंकी तरह, इसके माया-मोहमें फँस कर अनेक प्रकारके कष्ट उठाते हैं; किन्तु ज्ञानी इसकी अनित्यता, इसकी असारता को देखकर इससे किनारा कर लेते है।

दोहा।

ज्यों सफरीको फिरत लख, सागर करत न छोभ।
अण्डासे ब्रह्माण्डको, त्यों सन्तनको लोभ॥८३॥

83 What value has the whole world in the eyes of a man wise in the knowledge of self that he may be tempted by it ! The great Ocean is never disturbed by the jumping of a fish !

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारजनितं
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि ॥
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषां
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म तनुते ॥८४॥

जब तक हममें कामदेव से पैदा हुआ अज्ञान-अन्धकार था, तब तक हमें सारा जगत् स्त्रीरूप ही दीखता था। अब हमने विवेक-रूपी अञ्जन आँज लिया है, इससे हमारी दृष्टि समान हो गई है। अब हमें तीनों भुवन ब्रह्मरूप दिखाई देते हैं ॥८४॥

जब हम काम-मदसे अन्धे हो रहे थे, जब हमें अच्छे-बुरेका ज्ञान नहीं था, तब हमें स्त्री-ही-स्त्री दिखाई देती थी, बिना स्त्री हमें क्षण भर भी कल नहीं थी ; किन्तु अब हममें विवेक-बुद्धि आ गई है, अब हम अच्छे-बुरेको समझने लगे हैं, इसलिये अब हमें सारा संसार एकसाँ मालूम होता है। अब हमें कहीं स्त्री नहीं दीखती, सभी तो एकसे दीखते हैं। जहाँ नज़र दौड़ाते हैं, वहीं ब्रह्म ही ब्रह्म नज़र आता है। मतलब यह, कि न कोई स्त्री है न कोई पुरुष, सभी तो एकही हैं ; केवल चोलेका भेद है। आत्मा न स्त्री है न पुरुष ; वह

सबमें समान है। मगर अज्ञानियोंको यह बात नहीं दीखती। उन्हें और का और दीखता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद्में लिखा है :—

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते॥

यह आत्मा न स्त्री है न पुरुष और न नपुंसक। यह जिस जिस शरीरको धारण करता है, उसी-उसीके साथ जुड़ जाता है।

जब मनुष्यको इस बातका ज्ञान हो जाता है कि, स्त्री और पुरुषमें कोई भेद नहीं, जो मैं हूँ वही स्त्री है—स्त्रीने और तरहका कपड़ा पहन रक्खा है और मैंने और तरहका—तब उसका मन स्त्री पर नहीं भूलता। अपने ही स्वरूपको और समझ कर उससे मैथुन करनेकी इच्छा नहीं होती। ज्ञानीको संसारमें शत्रु, मित्र, स्त्री-पुत्र, स्वामी-सेवक नहीं दीखते। वह स्त्री-पुत्र और शत्रु-मित्र सबको समान समझता है; किसीसे राग और किसीसे द्वेष नहीं रखता। उसे कुत्तेमें आदमीमें, तथा प्राणी मात्रमें ही एक विष्णु दीखता है। यह अवस्था परमपदकी अवस्था है। स्वामी शंकराचार्य्यजी कहते हैं :—

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ ।
मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ ।

भव समचित्तः सर्वत्र त्वं ।
वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम् ॥

शत्रु, मित्र और पुत्र-बान्धवोंमें: विरोध या मेलके लिये चेष्टा न कर। यदि शीघ्र ही मोक्ष-पद चाहता है तो शत्रु-मित्र और पुत्र-कलत्र प्रभृतिको एक नज़रसे देख। सबको अपना समझ, किसीको ग़ैर न समझ; समान चित्त हो जाय। जैसा ही पुरुष वैसी ही स्त्री, जैसा बेटा वैसा दुश्मन और जैसा धन वैसी मिट्टी।

एक सच्चा महात्मा।

एक साधु सदा ज्ञानोन्मत्त अवस्थामें रहता था। वह कभी किसीसे फाल्तू बातचीत नहीं करता था। एक रोज़ वह गाँवमें भिक्षा माँगने गया। एक घरसे उसे जो रोटी मिली, उसे वह आप खाने लगा और साथमें कुत्तेको भी खिलाने लगा। यह देख वहाँ अनेक लोग इकट्ठे हो गये और उनमेंसे कोई-कोई उसे पगला कहकर उसकी हँसी करने लगे। यह देख महात्माने उनसे कहा—"तुम क्यों हँसते हो?"

विष्णुः परिस्थितो विष्णुः
विष्णुः खादति विष्णवे।

कथं हससि रे विष्णो ?
सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥

विष्णुके पास विष्णु है। विष्णु विष्णुको खिलाता है। अरे विष्णु, तू क्यों हँसता है ? सारा जगत् विष्णुमय है ; यानी सारा संसार उस पूर्णात्मा विष्णुसे व्याप्त है।

सच्चे और पहुँचे हुए साधु-फ़क़ीर सारे संसारमें एक परमात्माको देखते हैं। उन्हें दूसरा कोई नज़र ही नहीं आता। अज्ञानी लोग जिनके ज्ञान-चक्षु बन्द हैं, जगत्में किसीको अपना और किसीको पराया समझते हैं। किसीने क्या अच्छा उपदेश दिया है :—

एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयताम् ।
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्व्यापितं दृश्यताम् ।
प्राक्कर्म प्रविलोप्यतां चितिबलान्नाप्युत्तरे श्लिष्यतां ।
प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम् ॥

एकान्त-निर्जन स्थानमें सुखसे बैठना चाहिये। परमब्रह्म परमात्मामें मन लगाना चाहिये। पूर्णात्मा पूर्णब्रह्मसे साक्षात् करना चाहिये और इस जगत्को उस पूर्णब्रह्मसे व्याप्त समझना चाहिये। पूर्वजन्मके कर्मोंको लोप करना चाहिये और ज्ञानके प्रभावसे अबके किये कर्मोंके फल त्याग देने चाहियें ; यानी निष्काम कर्म करने चाहियें, जिससे कर्म-बन्धनमें बंधकर फिर जन्म न लेना पड़े। इस संसारमें प्रारब्ध या पूर्व-

जन्मके कर्मोंको भोगना चाहिये और इसके बाद परमेश्वररूप से इस जगत्‌में ठहरना चाहिये ; यानी अपनेमें और परमात्मामें भेद न समझना चाहिये ।

दोहा ।

काम-अन्ध जबही भयौ, तिय देखी सब ठौर ।
अब विवेक-अंजन किये, लख्यौ अलख सिरमौर ॥८४॥

84. As long as we were in the darkness of ignorance produced by lustful passions, the whole universe seemed to us as if transformed into the shape of women. Now that we have applied to our eyes the collyrium of discrimination between right and wrong, our sight has become calm and the three Bhuvans (regions) appeart o us to be the manifestation of Brahma.

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या बनान्तस्थली
रम्यः साधुसमागमः शमसुखं काव्येषु रम्याः कथाः ।
कोपोपहितबाष्पबिन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं
सर्वंरम्यमनित्यतामुपगते चित्तेनकिञ्चित्पुनः ॥८५॥

चन्द्रमाकी किरणें, हरी-हरी घासके तख़्ते, मित्रोंका समागम श्रृंगाररसकी कवितायें, क्रोधाश्रुओंसे चञ्चल प्यारीका मुख—

काम अन्ध=कामान्ध। कामदेवके मदसे अन्धा। तिय=स्त्री। ठौर=जगह। विवेक अञ्जन=विवेक या विचारका अञ्जन। लख्यौ=देखा। अलख=अगोचर, अदेखा, जो इन्द्रियों द्वारा न जाना जा सके।

पहले ये सब हमारे मनको मोहित करते थे ; किन्तु जबसे संसार की अनित्यता हमारी समझमें आई, तबसे हमें ये सब अच्छे नहीं लगते ॥८५॥

जबतक मनुष्यको संसारकी असारता, उसकी अनित्यता, उसका थोथापन, उसकी पोल नहीं मालूम होती, तभी तक मनुष्य संसार और संसारके झगड़ोंमें फँसा रहता है, और विषय-भोगोंको अच्छा समझता है ; किन्तु संसारकी असलियत मालूम होते ही, उसे विषय-सुखोंसे घृणा हो जाती है। उस समय न उसे चन्द्रमाकी शीतल चाँदनी प्यारी लगती हैं, न मित्रमण्डली अच्छी मालूम होती है, न शृङ्गार-रसकी कवितायें अच्छी मालूम होती है और न उसका चित्त चन्द्रवदनी कामिनियोंको ही देखकर मचलता है।

छप्पय।

चन्द चाँदनी रम्य, रम्य बनभूमि पहुपयुत।
योंहीं अति रमणीक, मित्र मिलवो है अद्भुत॥
बनिताके मृदु बोल, महारमणीक विराजत।
मानिनमुख रमणीक, दृगन अँसुअन झर साजत।
ए कहे परमरमणीक सब, सब कोऊ चित्तमें चहत।
इनकों विनाश जब देखिये, तब इनमें कछुहु न रहत॥८५॥

चन्दचांदनी=चन्द्रमाकी चाँदनी। रम्य=मनोहर। वनभूमि=जङ्गल

85. The rays of the moon, the forest glades covered with green grass, the society of friends, the works of literature possessing beauties of composition, the faces of the beloved ones made resplendent by the drops of tears caused by anger, all captivated our heart at first. But since we have realised the destructibility of the world, all these things have lost their attractiveness and our mind is now absolutely vacant,

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहितः स्वायत्तचेष्टः सदा ।
दानादानविरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः ॥
रथ्याक्षीणविशीर्णजीर्णवसनैः संप्राप्तकन्थासखि-
र्निर्मानो निरहंकृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः ॥८६॥

ऐसा तपस्वी कोई विरला ही होता है, जो भीख माँगकर खाता है, जो अपने लोगोंमें रहकर भी उनमें मोह नहीं रखता, जो स्वाधीनतापूर्व्वक अपना जीवन निर्व्वाह करता है, जिसने लेने और देनेका व्यवहार छोड़ दिया है, जो राहमें पड़े हुए चिथड़ोंकी गुदड़ी ओढ़ता है, जिसे मानका ख़याल नहीं है, जिसमें अभिमान नहीं है और जो ब्रह्मज्ञानके सुखको ही सुख मानता है ॥८६॥

ज्ञानीके लक्षण सुन्दरदासजीने इस भाँति कहे हैंः—

की धरती । पुहुपयुत=फूलोंसे छायी हुई । बनिता=स्त्री । मृदु=मधुर । बोल=बातें । मानिन=मानिनी स्त्री । दृगन=आँखोंसे । असुअन झर=आँसूओंकी झड़ी ।

कर्म न विकर्म करे, भाव न अभाव धरे ।
शुभ न अशुभ परे, यातें निधरक है ॥
वस तीन शून्य जाके, पापहु न पुराय ताके ।
अधिक न न्यून वाके, स्वर्ग न नरक है ॥
सुख दुःख सम दोऊ, नीचहुँ न ऊँच कोऊ ।
ऐसी विधि रहै सोउ, मिल्यो न फरक है ॥
एकही न दोय जाने, बंध मोक्ष भ्रम मानै ।
सुन्दर कहत, ज्ञानी ज्ञानमें गरक है ॥

जो भीख माँगकर पेटकी अग्निको शान्त कर लेता है, पर किसीकी खुशामद नहीं करता, किसीके अधीन नहीं होता, स्वाधीन रहता है ; राहमें पड़े हुए चिथड़े उठाकर उनकी ही गुदड़ी बना कर ओढ़ लेता है ; मान अपमान और सुख-दुःखको समान समझता है ; न किसीसे कुछ लेता है और न किसीको कुछ देता है ; गृहस्थीमें या अपने बन्धु-बान्धवोंमें रहकर भी उनमें ममता नहीं रखता ; शुभाशुभ, पाप-पुण्य और स्वर्ग नरकको कोई चीज़ नहीं समझता ; किसी को नीच और किसीको ऊँच नहीं समझता, सभीमें एक आत्मा देखता है ; बन्धन और मोक्षको भी मनका संकल्प या भ्रम समझता है तथा ब्रह्मज्ञानमें ग़र्क रहता है और उसमें ही पूर्ण सुख समझता है,—उससे बढ़कर ज्ञानी और कौन है ? ऐसे ज्ञानीके जीवन्मुक्त होनेमें संशय नहीं । उसे जन्म-

मरणका कष्ट नहीं उठाना पड़ता। वह सदा परमानन्दमें मग्न रहता है, पर ऐसे महापुरुष कोई-कोई ही होते हैं।

सोरठा।

उञ्छवृत्ति गति मान, समदृष्टी इच्छारहित।
करत तपस्वी ध्यान, कन्था को आसन किये॥

86. Very rarely is a Tapaswi met with who procures his food by begging, who is free from all attachments in the midst of his fellow-men, who leads a life of freedom, who has given up all the transactions of giving and taking, who is content with wearing a sheet made of old, worn out and torn rags of cloth found by the roadside, who has no desire for honour, who is free from vanity and who only takes pleasure in the enjoyment of happiness produced by self-denial.

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे तेजः सुबन्धो जलं।
भ्रातर्व्योम निबद्ध एव भवतामेष प्रणामाञ्जलिः॥
युष्मत्संगवशोपजातसुकृतोद्रेकस्फुरन्निर्म्मल-
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीये परे ब्रह्मणि॥८७॥

हे माता पृथिवी! पिता वायु! मित्र तेज! बन्धु जल! भाई आकाश! अब मैं आपको अन्तिम विदाई का प्रणाम करता हूँ। आपकी संगतिसे मैंने पुण्य-कर्म्म किये और पुण्योंके फल-स्वरूप मुझे आत्मज्ञान हुआ, जिसने मेरे संसारी मोहका नाश कर दिया। अब मैं परमब्रह्ममें लीन होता हूँ॥८७॥

मनुष्य-शरीर पृथ्वी, वायु, तेज, जल और आकाश—पाँच तत्त्वोंसे बनता है। जिसे आत्मज्ञान हो गया है, जिसने ब्रह्म को पहचान लिया है, वह इन पाँचों तत्त्वोंसे विदा लेता है और प्रणाम करके कहता है, कि मैं आप पाँचोंके सङ्ग रहनेसे —यह शरीर धारण करने से—इस योग्य हुआ कि, ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सका ; अब मेरा आपका साथ न होगा, अब मैं चोलेमें न आऊँगा, अब मुझे जन्म लेना न पड़ेगा। मैं आप लोगोंका कृतज्ञ हूँ ; क्योंकि आप की सुसंगति से ही मुझे यह फल मिला है। अब मैं आपसे सदा को विदा होता हूँ। अब मैं ब्रह्मके आनन्द में मग्न हूँ। अब मुझे यहाँ आनेकी, आप लोगोंकी संगति करने की ; यानी शरीर धारण करने की ज़रूरत नहीं। मतलब यह है, कि मनुष्यका चोला ब्रह्मज्ञान के लिए मिलता है ; और चोलोंमें यह ज्ञान हो नहीं सकता। जो मनुष्य-चोलेमें आकर ब्रह्मज्ञान लाभ करते हैं और उसकी बदौलत परम पद या मोक्ष प्राप्त करते हैं,—वे ही धन्य हैं, उन्हींका मनुष्य-देह पाना सार्थक है।

छप्पय।

अरी मेदिनी-मात, तात-मारुत सुन एरे।
तेज-सखा जल-भ्रात, व्योम-बन्धु सुन मेरे।
तुमको करत प्रणाम, हाथ तुम आगे जोरत।
तुम्हरेही सत्संग, सुकृतकौ सिन्धु झकोरत।

अज्ञान जनित यह मोहहू, मिट्यौ तिहारे संगसों ।
आनन्द अखण्डानन्दको, छाय रह्यो रसरंग सों ॥८७॥

87. O mother Earth, O father Air, O friend Light, O kinsman Water, O brothter space, I did you all my last farewell greeting ! In company with you, as the composite parts of my physical body, I did the good deeds which bore the fruit of endowing me with pure self-consciousness which again destroyed all my earthly attachments. I now go to be absorbed in the Supreme Eternal.

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ॥
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महा-
न्प्रोदीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥८८॥

जब तक शरीर ठीक हालतमें है, बुढ़ापा दूर है, इन्द्रियों की शक्ति बनी हुई है, आयुके दिन बाक़ी हैं, तभी तक बुद्धिमान को अपने कल्याणकी चेष्टा अच्छी तरह से कर लेनी चाहिये। घर जलने पर कूआँ खोदने से क्या फ़ायदा ? ॥८८॥

जब तक आपका शरीर निरोग और तन्दुरुस्त रहे, बुढ़ापा न आवे, आपको इन्द्रियोंकी शक्ति ठीक बनी रहे, आपका अन्त दूर हो, उम्र बाक़ी दीखे, तभी तक आप अपनी भलाई की चेष्टा कर लीजिये ; यानी ऐसी हालतमें ही भगवान्‌का भजन कर लीजिये। जब आप रोगोंसे जर्ज्जरित हो जायँगे,

कफ-खाँसी और दम घेर लेंगे, आँखोंसे न दीखेगा, कानोंसे न सुनाई देगा, गलेमें घर-घर कफ बोलने लगेगा, मौत अपना पञ्जा जमा देगी, तब आप क्या करेंगे? अर्थात् कुछ नहीं। उस समय यदि आप कुछ करनेकी चेष्टा करेंगे भी, तो आपकी दशा उसकी सी होगी, जो घरमें आग लगने पर कूआ खोदता है।

किसीने कहा है :—

प्रथमे नार्जिता विद्या, द्वितीये नार्जितं धनं।
तृतीये नार्जितं पुण्यं, चतुर्थे किं करिष्यति ?॥

बचपनमें यदि विद्या नहीं सीखी, जवानीमें यदि धन सञ्चय नहीं किया, बुढ़ापेमें यदि पुण्य नहीं किया; तो चौथेपनमें क्या करोगे?

सबसे अच्छी बात तो बचपनमें ही परमात्मा की भक्ति करना है। ध्रुव और प्रह्लादने बचपनमें ही भक्ति करके परमात्माके दर्शन किये थे। अगर इस उम्रमें न हो सके, तो जवानीमें; और जवानीमें भी न हो सके तो बुढ़ापे में तो चूकना ही न चाहिये। स्त्री-पुत्र धन-दौलत का मोह छोड़, परमात्मामें मन लगाओ; आज-कल पर मत टालो; क्योंकि मौत हर समय घातमें है, न जाने कब तुम्हें लेजाय। जब वह आजायगी, तब तुमसे कुछ करते-धरते न बनेगा, तुम घबरा जाओगे, मुंह से परमात्माका नाम न निकलेगा और हाथोंसे दान या पराया उपकार न कर सकोगे। उस समय तुम्हारा परलोक

बनाने की चेष्टा करना, आग लग जाने पर कूआँ खोदने वाले के समान मूर्खतापूर्ण काम होगा। अतः जो करना है, मरने के समयसे पहले ही करो। किसीने परलोक-साधनके लिये क्या अच्छी सलाह दी है :—

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां
तेनेशस्यपिधीयतामपचितिः कामे मतिस्त्यज्यताम् ;
पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयताम् ॥
आत्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात् तूर्णं विनिर्गम्यताम् ॥

नित्य वेद पढ़ो और वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करो। वेद-विधिसे परमेश्वरकी पूजा करो। विषय-भोगोंको बुद्धिसे हटाओ; यानी विषयोंको त्यागो। पाप-समूहका [निवारण करो। संसारी सुख इत्र-फुलेल–चन्दनादिके लगाने, स्त्री-भोगने और नाच-गाना देखने-सुनने प्रभृतिका परिणाम विचारो; यानी इनके दोषोंकी भावना करो। परमेश्वर या आत्मामें अनुराग करो और गृहस्थीके अनेक दोषोंको समझ कर, शीघ्र ही घरको त्याग कर वनको चले जाओ।

उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं—

बेनिशाँ पहले फ़नासे हो, जो हो तुझको बक़ा।
वर्ना है किसका निशाँ, ज़ौक़ फ़नाने रक्खा ॥

मरनेसे पहले सांसारिक बन्धनोंसे अपने चित्तको हटा

ले—अमर होनेकी यही एक तरकीब है ; वर्ना मौत किसीका निशान नहीं छोड़ती ।

छप्पय ।

जौं लौं देह निरोग, और जौं लौं न जरा तन ।
अरु जौं लौं बलवान् आयु, अरु इन्द्रिनके गन ।
तौं लौं निज कल्याण करन को, यत्न विचारत ।
वह पण्डित वह धीर वीर, जो प्रथम सम्हारत ।
फिर होत कहा जर्जर भये, जप तप संयम नहिं बनत ।
भव काम उठयौ निज भवन जब, तब क्योंकर कूपहि खनत ॥८८॥

88. As long as the body is in good health and old age is still far off, as long as the faculties of senses are strong and the end of life has not come, a wise man should try his best for his spiritual weal. When the house has caught fire what is the use of attempting to dig a well.

नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता
खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः
कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये
तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ॥८९॥

हमने इस जगत्में नम्रोंको सन्तुष्ट करनेवाली और वादियोंकी मान भञ्जन करनेवाली विद्या नहीं पढ़ी, तलवारकी धार से हाथीके मस्तक का पिछला भाग काटकर अपना यश स्वर्ग तक नहीं

पहुँचाया ; चाँदनी रातमें सुन्दरीके कोमल अधर-पल्लव (निचले होठ) का रस भी नहीं पिया। हाय! हमारी जवानी सूने घरमें जलने वाले और आपही बुझ जाने वाले दीपककी तरह योंही गयी !॥८९॥

दोहा ।

विद्या पढ़ी न रिपु दले, रह्यौ न नारि समीप ।
यौवन यह योंही गयो, ज्यों सूने गृह दीप ॥८९॥

89, We did not attain in this world literary knowledge which pleases the meek and puts down the vanity of the crowds of critics, Nor did we extend our fame up to the gates af Swarga by cutting down the backs of elephants' heads with the edge of a sword. Nor did we drink in the moonlight the flowery juice of the soft lower lips of our beloved ones. Alas ! that our youth has passed away uselessly like a burning lamp in an empty house, which spends itself away without being of any use to anybody.

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं
केषांचिदेतन्मदमानकारणम् ॥
स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये
कामातुराणामतिकामकारणम् ॥९०॥

अच्छे मनुष्योंमें तो ज्ञान उनके मान-मद आदिका नाश करता है ; किन्तु दुष्टोंमें वही ज्ञान मान-मद प्रभृति औगुणोंकी वृद्धि करता है। एकान्त स्थान योगियोंके लिये तो मुक्ति दिलानेवाला

होता है ; किन्तु वही कामियों की कामज्वाला को बढ़ानेवाला होता है ॥९०॥

जिस तरह स्वाति-बूँद सीपमें पड़नेसे मोती और केलेमें कपूर हो जाती है, किन्तु सर्पमुखमें पड़नेसे विषका रूप धारण करती है ; उसी तरह एक ही चीज़ पुरुष-भेदसे अलग-अलग गुण दिखाती है। ज्ञानसे अच्छे लोगोंका अभिमान नाश हो जाता है, वे सब किसीको अपने बराबर समझते हैं, सबके साथ सहानुभूति रखते हैं, किसीका दिल नहीं दुखाते ; किन्तु उसी ज्ञानसे दुष्ट लोगोंकी दुष्टता और भी बढ़ जाती है, वे अपने सामने जगत्को तुच्छ समझते हैं ; विद्याभिमानके मारे किसीकी ओर नज़र उठाकर भी नहीं देखते, अपने सिवा सबको पशु समझते हैं। एक ही ज्ञान दो स्थानोंमें स्थान-भेदसे अपना अलग-अलग प्रभाव दिखाता है। जैसे ; एकान्त स्थान योगियोंके चित्तको ब्रह्मविचारमें लीन करता है और इससे उनको परमपद—मुक्ति—मिल जाती है ; किन्तु वही एकान्त स्थान कामियोंके दिलोंमें मस्ती पैदा करता है।

दोहा।

ज्ञान घटावै मान मद, ज्ञानहि देय बढ़ाय।
रहसि मुक्ति पावै यती, कामी रत लपटाय ॥९०॥

90 Knowledge serves the good men as a destroyer of their vanity and false pride. In some, it enhances the same evils.

A lonely place is for the spiritual salvation of those who practise self-restraint, while it increases hundredfold the lust of sensual people.

जीर्णा एव मनोरथाः स्वहृदये यातं जरां यौवनं
हन्तांगेषु गुणाश्च वंध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना ॥
किं युक्तं सहसाऽभ्युपैति बलवान्कालः कृतांतोऽक्षमी
ह्याज्ञातंस्मरशासनांघ्रियुगलं मुक्त्वाऽस्तिनान्यागतिः ॥६१॥

हमारी इच्छायें हमारे हृदयमें ही जीर्ण हो गईं, जवानी भी चली गई, हमारे अच्छे-अच्छे गुण भी क़दरदानोंके न होनेसे बेकार हो गये, सर्वशक्तिमान् सर्वनाशक काल (मृत्यु) शीघ्र-शीघ्र हमारे पास आ रहा है; इसलिये अब हमारी समझमें कामारि शिवके चरणोंके सिवा और जगह हमारी रक्षा नहीं है ॥६१॥

मनुष्य दुःखित होकर कहता है,—हमारे मनकी मनमें ही रह गई, हमारे अर्मान न निकले, और जवानी कूँच कर गई; अब उसके आनेकी भी उम्मीद नहीं, क्योंकि जवानी किसीकी भी लौटकर आती सुनी नहीं।

मनुष्यकी तृष्णा कभी नहीं बुझती, एक-पर-एक इच्छा उठा ही करती है। इच्छायें पूरी नहीं होतीं और मौत आ जाती है। महाकवि ग़ालिब भी पछता कर कहते हैं:—

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी, कि हर ख़्वाहिश पै दम निकले।
बहुत निकले मेरे अर्मान, लेकिन फिर भी कम निकले॥

महाकवि दाग़ भी घबरा कर कहते हैं :—

भरे हुए हैं हज़ारों अर्मां ।
फिर उस पै है हसरतों की हसरत ।
कहाँ निकल जाऊँ या इलाही ।
मैं दिलकी वसअत से तंग होकर ।

मेरे मनमें हज़ारों वासनायें हैं, पर वासनाओंके पूण न होनेका दुःख भी कुछ कम नहीं है। हे ईश्वर! मैं अपने मनकी विशालतासे तंग हो गया। अब मेरा जी यही चाहता है, कि इस विराट् दिलसे तंग होकर कहीं चला जाऊँ।

इसी तरह महात्मा सुन्दरदासजी भी कहते हैं—

तीनहिं लोक अहार कियो सब ।
सात समुद्र पियो पुनि पानी ॥
और जहाँ तहाँ ताकत डोलत ।
काढ़त आँख डरावत आनी ॥
दाँत दिखावत जीभ हिलावत ।
या हित मैं यह डाकिनि जानी ॥
सुन्दर खात भये कितने दिन !
हे तृष्णा ! अजहु न अघानी ॥

इस तृष्णासे सभी समझदार अन्तमें दुखी हुए हैं और उन्होंने पछता-पछता कर ऐसी ही बातें कही हैं। इस तृष्णके

A lonely place is for the spiritual salvation of those who practise self-restraint, while it increases hundredfold the lust of sensual people.

जीर्णा एव मनोरथाः स्वहृदये यातं जरां यौवनं
हन्तांगेषु गुणाश्च वंध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना ॥
किं युक्तं सहसाऽभ्युपैति बलवान्कालः कृतांतोऽक्षमी
ह्याज्ञातंस्मरशासनांघ्रियुगलं मुक्त्वाऽस्तिनान्यागतिः ॥६१॥

हमारी इच्छायें हमारे हृदयमें ही जीर्ण हो गईं, जवानी भी चली गई, हमारे अच्छे–अच्छे गुण भी क़दरदानोंके न होनेसे बेकार हो गये, सर्वशक्तिमान् सर्वनाशक काल (मृत्यु) शीघ्र-शीघ्र हमारे पास आ रहा है; इसलिये अब हमारी समझमें कामारि शिवके चरणोंके सिवा और जगह हमारी रक्षा नहीं है ॥६१॥

मनुष्य दुःखित होकर कहता है,—हमारे मनकी मनमें ही रह गई, हमारे अर्मान न निकले, और जवानी कूँच कर गई; अब उसके आनेकी भी उम्मीद नहीं, क्योंकि जवानी किसीकी भी लौटकर आती सुनी नहीं।

मनुष्यकी तृष्णा कभी नहीं बुझती, एक-पर-एक इच्छा उठा ही करती है। इच्छायें पूरी नहीं होतीं और मौत आ जाती है। महाकवि ग़ालिब भी पछता कर कहते हैं :—

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी, कि हर ख़्वाहिश पै दम निकले।
बहुत निकले मेरे अर्मान, लेकिन फिर भी कम निकले॥

महाकवि दाग़ भी घबरा कर कहते हैं :—

भरे हुए हैं हज़ारों अर्मां ।
फिर उस पै है हसरतों की हसरत ।
कहाँ निकल जाऊँ या इलाही ।
मैं दिलकी वसअत से तंग होकर ।

मेरे मनमें हज़ारों वासनायें हैं, पर वासनाओंके पूण न होनेका दुःख भी कुछ कम नहीं है। हे ईश्वर! मैं अपने मनकी विशालतासे तंग हो गया। अब मेरा जी यही चाहता है, कि इस विराट् दिलसे तंग होकर कहीं चला जाऊँ ।

इसी तरह महात्मा सुन्दरदासजी भी कहते हैं—

तीनहिं लोक अहार कियो सब ।
सात समुद्र पियो पुनि पानी ॥
और जहाँ तहाँ ताकत डोलत ।
काढ़त आँख डरावत प्रानी ॥
दाँत दिखावत जीभ हिलावत ।
या हित मैं यह डाकिनि जानी ॥
सुन्दर खात भये कितने दिन !
हे तृष्णा ! अजहु न अघानी ॥

इस तृष्णासे सभी समझदार अन्तमें दुखी हुए हैं और उन्होंने पछता-पछता कर ऐसी ही बातें कही हैं। इस तृष्णके

फेरमें मनुष्यका बुढ़ापा आ जाता है, पर तृष्णा बूढ़ी नहीं होती। बुढ़ापेमें उसका ज़ोर और भी बढ़ जाता है। यह तीनों लोकोंको खाकर और सातों सागरोंको पीकर भी नहीं धापती। इसलिये मनुष्यको आशा-तृष्णा त्यागकर, परमात्मामें लौ लगानी चाहिये। जो नहीं चेतते, उनका परिणाम बुरा होता है। जब एक दमसे बुढ़ापा छा जाता है, शरीर अशक्त हो जाता है, तब कुछ भी नहीं होता। उम्र ख़तम होने या मृत्यु आजाने पर मनुष्य पछताता हुआ सबको छोड़ चला जाता है। कहा है:—

ये मम देश विलायत हैं गज।
ये मम मन्दिर ये मम थाती॥
ये मम मात पिता पुनि बान्धव।
ये मम पूत सु ये मम नाती॥
ये मम कामिनि केलि करै नित।
ये मम सेवक हैं दिन राती॥
सुन्दर ऐसेहि छाँड़ि गयो सब।
तेल जर्‌यो सु बुझी जब बाती॥

यह मेरा देश है, ये मेरे हाथी-घोड़े महल-मकान हैं, ये मेरे माँ-बाप और बन्धुबान्धव तथा नाती-पोते हैं, यह मेरी स्त्री और ये मेरे सेवक हैं; ऐसे करता-करता ही मनुष्य सबको छोड़कर चला जाता है। जिस तरह तेलके जल जानेपर दीपक बुझ जाता है; उसी तरह उम्र पूरी होनेपर मनुष्य मर जाता है। अतः जवानीमें ही स्त्री-पुत्र प्रभृति सबका

मोह छोड़, एकान्तमें जा, परमात्माका भजन करना चाहिये ; क्योंकि बुढ़ापेमें कुछ नहीं हो सकता। शेख़ सादीने कहा है और ठीक कहा है:—

जवान गोशानशीं, शेर मर्दे राहे ख़ुदास्त।
कि पीर ख़ुद न तवानद, ज़े गोशये बरख़ास्त॥

जवानीमें जिन्होंने एकान्तमें ईश्वर भजन किया है, सच्चे भक्त वेही हैं। बूढ़ा आदमी यदि एकान्तवास पर गर्व करे तो झूठा है, क्योंकि वह तो जहाँ पड़ा है, वहाँसे सरक ही नहीं सकता।

जो लोग सारी उम्र संसारी जंजालोंमें बिता देते हैं और परमात्माका भजन नहीं करते, उनका नक़शा स्वामी सुन्दर दासजीने खूब ही अच्छा खींचा है :—

ग्रीव त्वचा कटि है लटकी।
कचहुँ पलटे अजहुँ रतिबामी॥
दन्त गये मुख के उखरे।
नखरे न गये सु खरो खर कामी॥
कम्पत देह सनेह सु दम्पति।
सम्पति जंपत है निशि जामी॥
सुन्दर अन्तहु भौन तज्यो।
न भज्यो भगवन्त सु लौनहरामी॥

मनुष्यकी गरदन हिलने लगती है, खाल लटकने लगती है, कमर झुक जाती है, बाल सफेद हो जाते हैं, तोभी स्त्रीके साथ भोग करता है। मुँहके दाँत उखड़ जाते हैं, फिर भी कामी गधेके नख़रे नहीं जाते, देह काँपती है; पर स्त्रीसे प्रीति रखता है और रात-दिन धनका जाप करता है। अन्तमें घर छोड़ता है, पर नमकहराम मालिकका भजन नहीं करता।

छप्पय।

मनके मनहीं मांहि, मनोरथ वृद्ध भये सब।
निज अंगनमें नाश भयो, वह यौवनहू अब।
विद्या है गई बाँझ, बूझवारे नहिं दीसत।
दौर्‌यौ आवत काल, कोपकर दशनन पीसत।
कबहूँ नहिं पूजे प्रीति सों, चक्रपाणि प्रभुके चरण।
भवबन्धन काटे कौन अब, अजहूँ गहुरे हरि शरण॥९१॥

91. All our desires have been stifled within us. Our youth has been changed into old age. All our good qualities have resulted in fruitlessness through the absence of those who would appreciate them. The all-powerful Death, the destroyer of everything, is fast approaching. Now we have realised that there is no shelter for us, save that of the feet of Shiva, the enemy of Cupid.

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि
क्षुधार्तः सञ्शालीन्कवलयति शाकादिवलितान्।

प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढ़तरमाश्लिष्यति वधूं
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥९२॥

जब मनुष्यका कण्ठ प्यास से सूखने लगता है, तब वह शीतल जल पीता है ; जब उसे भूख लगती है, तब वह साग और कढ़ी प्रभृतिके साथ चाँवल खाता है ; जब उसकी कामाग्नि तेज़ होती है, तब वह स्त्री को ज़ोर से गले लगाता है ; विचार कर देखनेसे मालूम होता है, कि ये सब बीमारियोंकी एक-एक दवा हैं ; परन्तु लोग इन्हें भूलसे सुखके समान मानते हैं ! ॥९२॥

प्यास रोगकी दवा शीतल जल है ; यानी शीतल जलसे तृष्णा नाश होती है। क्षुधारोगकी दवा रोटी-भात और साग-दाल प्रभृति हैं ; यानी भात-दाल प्रभृतिसे भूख-रोग नाश होता है। कामाग्नि भी एक रोग है, उसके शान्त करनेका उपाय स्त्रीको छातीसे लगाना है, यानी स्त्रीका आलिङ्गन करने या चिपटानेसे कामकी आग ठण्डी हो जाती है। (दाह-ज्वरमें षोड़शी कामिनीके शरीरमें चन्दन लगाकर चिपटानेसे बहुत लाभ होता है।) इन बातोंपर विचार करनेसे साफ़ मालूम होता है, कि शीतल जल-पान, भिन्न भिन्न प्रकारके भोजन और स्त्रियोंका आलिङ्गन प्रभृति तृषा, क्षुधा और कामाग्नि प्रभृति रोगोंकी औषधियाँ है। इनको सुख समझना भूल नहीं तो क्या है ?

छप्पय ।

प्यास लगे जब पान करत, शीतल सुमिष्ट जल ।
भूख लगे तब खात, भात-घृत दूध और फल ।
बढ़त कामकी आगि, तबहिं नववधू संग रति ।
ऐसे करत विलास, होत विपरीत दैव गति ।
सब जीव जगतके दिन भरत, खात पियत भोगहु करत ।
ये महारोग तीनों प्रबल, बिना मिटाये नहिं मिटत ॥९२॥

92. When men's throats are overpowered by thirst, they drink clear and delicious water. When they are stricken with hunger, they eat rice together with curry made of vegetables etc. When the consuming fire of lust is kindled, they embrace closely their wives. Each of these actions is a remedey for a separate malady, but people take delight in them mistaking them for pleasures !

स्नात्वा गांगैः पयोभिः शुचिकुसुमफलैरर्चयित्वा विभो
त्वां ध्येये ध्यानं नियोज्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यंकमूले ॥
आत्मारामः फलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात्स्मरारे
दुःखान्मोक्ष्येकदाहं तव चरणरतो ध्यानमार्गैकनिष्ठः ॥९३॥

हे शिव ! हे कामारि ! गंगा स्नान करके तुझ पर पवित्र फल-फूल चढ़ाता हुआ, तेरी पूजा करता हुआ, पर्वतकी गुफामें शिला पर बैठा हुआ, अपने ही आत्मामें मग्न होता हुआ, वन-फल खाता

हुआ, गुरुकी आज्ञानुसार तेरे ही चरणोंका ध्यान करता हुआ कब मैं इन संसारी दुःखोंसे छुटकारा पाऊँगा ? ॥९३॥

दोहा

नरसेवा तजि, ब्रह्म भजि, गुरुचरणन चित लाय ।
कब गंगातट ध्यान धर, पूजोंगो शिव पाय ? ॥९३॥

93. O Shiva, ememy of Cupid, when shall I be saved by Thy grace from the miseries of the world. bathing in the Ganges water, worshipping Thee with purified flowers and fruits, meditating on Thee as my idol, seated on a stone in a mountain cave, content with my own self, eating only wild fruits, obeying the commands of my religious preceptor, devoted to Thy feet aud resolved to sit in contemplation as the only path to salvation ?

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः
सारंगाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः ॥
येषां निर्झरम्बुपानमुचितं रत्येव विद्यांगना
मन्ये ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः ॥९४॥

मैं उनको परमेश्वर समझता हूँ, जो किसीके सामने मस्तक नहीं नवाते, जो पर्वतकी शिलाको ही अपनी शय्या समझते हैं, जो गुफा को ही अपना घर मानते हैं, जो वृक्षोंकी छालोंको ही अपने वस्त्र और जंगली हिरणोंको ही अपने मित्र समझते हैं, वृक्षोंके कोमल फलोंसे ही उदरकी अग्निको शान्त करते हैं, जो

कुदरती झरनों का जल पीते हैं और जो विद्याको ही अपनी प्राण-प्यारी समझते हैं ॥९४॥

जो किसी चीज़की चाह नहीं रखते, वे किसी की परवा नहीं करते, वे किसीके सामने मस्तक नहीं नवाते ; जिनकी वासनाओंका अन्त नहीं होता, वे ही जने-जनेके सामने सिर झुकाते हैं। जो संसारके दास नहीं, वे सचमुच ही देवता हैं। उस्ताद ज़ौक़ने कहा हैः—

जिस इन्साँ को सगे दुनिया न पाया।
फ़रिश्ता उसका हमपाया न पाया ॥

जो मनुष्य संसारका दास नहीं—संसारका कुत्ता नहीं—वह देवताओंसे कहीं ऊँचा है। देवता उसकी बराबरी नहीं कर सकते। जिसमें सांसारिक वासनाओंका लेश न हो, उस मनुष्य और देवताओंमें कोई भेद नहीं।

सच्चे महात्मा बन और पर्वतोंको छोड़कर दुनियामें कभी नहीं आते ; वे माँगकर नहीं खाते ; उन्हें वनमें ही जो कुछ मिल जाता है, वही खा लेते हैं।

महाकवि ग़ालिब कहते हैंः—

बे तलब दें, तो मज़ा उसमें सिवा मिलता है।
वह गदा, जिसका न हो ख़ूये सवाल अच्छा है ॥

बिना माँगे मिल जानेमें बड़ा आनन्द है। फ़क़ीर वही अच्छा जिसमें माँगनेकी आदत न हो।

और भी कहा है:—

दस्ते सवाल, सैकड़ों ऐबोंका ऐब है।
जिस दस्तसें यह ऐब नहीं, वह दस्ते गैब है ॥

कबीर साहबने भी कहा है :—

अनमाँग्या उत्तम कह्यो, मध्यम माँगि जो लेय।
कहे कबीर निकृष्ट सो, पर घर धरना देय॥
उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज बैन।
कहै कबीर ताके गहे, महा परम सुख चैन॥

महापुरुष भगवान्के भरोसे रहते हैं, इसलिये उन्हें उनकी ज़रूरतकी चीज़ें उनके स्थानपर ही मिल जाती हैं। वे संसार रूपी काजलकी कोठरीमें आकर कालिख लगाना पसन्द नहीं करते। संसारी लोगोंके साथ मिलने-जुलनेमें भलाई नहीं। संसारसे दूर रहना ही भला। क्योंकि मनुष्य जैसे आदमियों को देखता और जैसोंकी संगति करता है, वैसा ही हो जाता है। रागियोंकी संगतिसे वैरागी भी रागी या विषय-भोगी हो जाता है। जल और वृक्षोंके पत्ते खानेवाले ऋषि स्त्रियों के देखने-मात्रसे अपने तपसे हीन हो गये। इसीलिये शास्त्रोंमें लिखा है कि, सन्यासी संसारियोंसे दूर रहे। वास्त-विक महापुरुष जो सच्चे ब्रह्मज्ञानी या रासायनिक हैं; किसी के भी द्वारपर नहीं जाते। जिसे कुछ कामना होती है; वही किसीके द्वारपर जाता है। कामनाहीन पुरुष कभी किसी

के पास नहीं जाता। सच्चे महात्मा साँसारियोंसे अपनी जान छिपाते हैं।

दो महात्मा जो राजासे मिलना नहीं चाहते थे।

एक नगरके बाहर बनमें दो बड़े ही त्यागी महात्मा रहते थे। राजाने चाहा कि, मैं उनसे मिलू । राजा अपने परिवार सहित उनसे मिलने गया। महात्माओंने सोचा—यह तो बुरी बला लगी। इसे सदाको टालना चाहिये। आज यह आया है, कल नगर भर आवेगा। फिर हम तो भजन ही न कर सकेंगे। जब राजा पास पहुँचा, तो वे आपसमें लड़ने लगे। एक कहने लगा,—"तने मेरी रोटी खाली।" दूसरे ने कहा—"तूने भी तो कल मेरी खा ली थी।" यह हाल देखकर राजाको घृणा हो गई और वह लौट आया। इस तरह महात्माओंके एकान्तवासमें विघ्न न पड़ा।

संसारियों की संगति बुरी।

एक महात्मा कहींसे आकर काशीमें रह गये। दस पाँच वष बाद अनेक लोग उन्हें जान गये और उन्हें अपने-अपने घर

भोजनके लिये ले जाने लगे। महात्माने देखा कि, घरोंमें जानेसे विक्षेप होता है, इसलिये उन्होंने अपनी लंगोटीही उतारकर फैंक दी, कि नंगे रहनेसे लोग घरोंपर न ले जायँगे। पर फल उल्टा हुआ, उनकी महिमा और भी बढ़ गई। अब तो बड़े-बड़े राजा, रईस और ज़मीन्दार उनके दर्शनों को आने लगे। उनका सारा समय अमीरोंसे मिलनेमें ही बीतने लगा। इतनेमें एक और महात्मा आये और उनसे एकान्त में पूछा—"क्या हाल है?" महात्माने कहा —"बवासीरसे मरते हैं।" आगन्तुक महात्माने कहा—"लोग तो आपको सिद्ध कहते हैं।" महात्माने कहा—"कहा करें, लोग मूर्ख हैं। हमारे चित्तमें तो वासनायें भरी हैं, न जाने हमें किस योनिमें जन्म लेना होगा हमारा तो सारा वैराग्य इन धनियों की संगतिमें ही नष्ट ह गया।" सच है, निवृत्ति-मार्गवालोंको प्रवृत्ति मार्गवालोंकी संगति करना अच्छा नहीं।

छप्पय।

बसैं गुहागिरि, शुचित शिला शय्या मनमानी।
वृक्षवकलके वसन, स्वच्छ सुरसरिको पानी॥
बनमृग जिनके मित्र, वृक्षफल भोजन जिनके।
विद्या जिनकी नारि, नहीं सुरपति सम तिनके।
ते लगत ईश सम मनुज मोहि, तनुशुचि ऐसे जग भये।
जे पर सेवा के काजको, हाथ नाहिं जोरत नए॥९४॥

94. I think such persons are only affluent who do not bow their heads to any one, who make a mountain stone their bed, a cave their home, the bark of trees their clothes. the wild deer their friends and the soft fruits of wild trees their food, who drink the water coming out of natural springs and who consider knowledge only to be their beloved wife.

सत्यामेव त्रिलोकीसरिति हरशिरश्चुम्बिनीवच्छटायां
सद्वृत्तिं कल्पयन्त्यांवटविटपिभवैर्वल्कलैः सत्फलैश्च ।
कोऽयं विद्वान् विपत्तिज्वरजनितरुजातीव दुःश्वासिकानांवक्त्रं
वीक्षेत दुःस्थे यदि हि न विभृयात्स्वे कुटुम्बेऽनुकम्पाम् ॥६५॥

जबकि गंगा, जो शिवजीके मस्तकको चूमती हुई भली मालूम होती है, बड़की डालियोंकी छालों और अपने तट पर लगे हुए फलोंसे आदमीका गुज़ारा करनेको तैयार है, तब कौन विद्वान् या ज्ञानी, यदि दुःखित कुटुम्बियों पर दया न आती तो, कंगालीकी मुसीबतोंसे आह भरती हुई—दुःखसे गहरे साँस लेती हुई—स्त्री का मुख देखना चाहता ? ॥६५॥

मतलब यह है कि, पुरुषको किसी प्रकारका भी दुःख उठाने की ज़रूरत नहीं, उसे गंगा ही सब कुछ देने को तैयार है। वह गङ्गाजल पीकर और उसके किनारे पर उगे हुए वनफल खाकर और वटवृक्षकी छालों के कपड़े पहन कर गुज़ारा कर सकता है, पर स्त्री के कारण वह ऐसा कर नहीं सकता। सारांश यह कि, सब दुखोंकी मूल स्त्री है। यदि

कुटुम्ब-वृद्धिकी ज़रूरत न हो, तो स्त्री की दरकार नहीं, और यदि स्त्री न हो तो फिर दुःख ही क्या? लोगोंकी खुशामद करने, जने-जने की लल्लोपत्तो करने, दुष्टों के कटुवचन सुनने को स्त्री ही मजबूर करती है। दया के मारे पुरुषसे उसका और उसके बच्चोंका कष्ट देखा नहीं जाता।

छप्पय।

सोहत जो शिवसीस, जटा सुरसरिकी धारा।
बटतरु बल्कल फूल, जासु सदवृत्ति अपारा॥
त्याग सुखद अस गंग, कौन ऐसो नर वो है।
परिजन करुणाहीन, नारिको आनन जोहै॥
दीर्घ श्वाससों विपत्तिज्वर, जीरण भारी गहतु हैं।
सब विधि यह दुखकी खान, अति निर्दय जेहि तिय कहतु हैं॥९५॥

95. When the Ganges which looks beautiful in her action of kissing the Shiva's head, is ready to supply a livelihood by offering the bark of banyan trees and good fruits growing on her banks, what wise man would care to look at the face of a wife heaving deep sighs of distress caused by extreme poverty, were it not for kindness towards the afflicted members of his family?

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्रातितीव्रं तपः
कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं भिक्षाटनं मण्डनम्॥
आसन्नं मरणं च मंगलसमं यस्यां समुत्पद्यते
तां काशीं परिहृत्य हन्त विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते॥९६॥

आश्चर्य्यकी बात है, कि लोग काशी छोड़कर और जगह क्यों बसते हैं, जहाँ उपवनोंमें नाना प्रकारके भोजन बनाकर खाना ही कठिन तप है, जहाँ लंगोटी पहनना ही बढ़िया कपड़ा है, जहाँ भीख माँगना ही प्रतिष्ठा है और जहाँ मौत का आना ही परम मंगल समझा जाता है ? ॥९६॥

लोगोंका ख़याल है, कि जो काशी में मरता है, उसकी मोक्ष हो जाती है ; इसीसे अनेक लोग वृद्धावस्था आते ही सब को छोड़ काशीमें जा बसते हैं। वहाँ मौत से कोई नहीं डरता ; वहाँकी मृत्युको लोग परम शान्तिदायिनी समझते है *। वहाँ कोपीन लगाकर भीख माँगने वाले बुरी नज़र से नहीं देखे जाते, इसलिए लोगोंको काशी-वास करना चाहिये।

कुण्डलिया ।

काशीमें जहँ शिव बसत, बैठ तासु उद्यान ।
विविध अशन सम तप नहीं, देख्यौ उग्र महान ॥
देख्यौ उग्र महान, भीख जहँ सुन्दर भूषण ।
खण्ड एक कोपीन, वसन वहुमूल्य अदूषण ।
मरणहि मंगलकरण, मिलै जहँ हर अविनाशी ।
को ऐसो विद्वान, तजै जो ऐसी काशी ? ॥९६॥

*** आज-कल भी इस ख़यालके लोग बहुत हैं, पर पहले जितनी महिमा अब नहीं। जो आत्मज्ञानी है, वे तीर्थों में नहीं जाते ; क्योंकि स्वयं**

अरे मूर्ख ! विश्वेश की शरण में क्यों नहीं जाता, जिनके द्वार पर रोकनेवाले दरवान नहीं हैं। जहाँ निर्दय और कठोर बचनों का नाम भी नहीं है ?

96 It is a wonder why wise men like to take up their abode in any other place than Kashi; where partaking of different kinds of eatables in gardens is the most austere penance, where the wearing of a narrow strip of loin-cloth is considered as respectable dress, where unrestricted wandering beggary is thought to be honourable and where the near approach of death is looked upon as bringing everlasting bliss !

नायते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु-
र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्मप्रदम् ॥९७॥

हे मन ! जिनके द्वार पर,—"मालिक मकानसे मिलनेका समय नहीं है, वे इस समय एकान्तमें बैठे हैं, वे इस वक्त सो रहे हैं, अगर तुम्हें यहाँ खड़ा देखेंगे तो नाराज़ होंगे"—ऐसी बातें सुनाई देती हैं, उनको त्याग कर विश्वेश की शरण में जा, जिनके द्वार पर रोकनेवाला दरबान नहीं, जहाँ निर्दय और कठोर बचन कभी सुननेमें नहीं आते, जो अनन्त और नित्य सुखके देनेवाले हैं ॥९७॥

मूर्ख मनुष्य, ना-समझीके कारण, वृथा अमीरों के दरवाज़े पर जाता है और अपमानसूचक बातें सुनता है; जिनके यहाँ

परमात्मा उनके हृदय-कमल में मौजूद है। हाँ, जो अज्ञानी हैं, वे ही तीर्थवास करते और तीर्थमें शरीर त्यागना चाहते हैं।

जाता है उनसे मिलने में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करता है, दरबानोंको तरह-तरहकी बेढङ्गी बातें सुनता है। अगर वह कुछ भी अक्लसे काम ले, तो उसे उसके द्वार पर जाना चाहिये, जहाँ कोई रोकने वाला नहीं, जहाँ दिल दुखानेवाली बातोंका नाम भी नहीं, जो सारे संसारका स्वामी और नित्य सुख के देने वाला है। वह क्या उसकी इच्छा पूरी न करेगा? अवश्य पूरी करेगा। जो बिना जड़ की अमरबेलको पोषता है, उसे छोड़कर और को खोजना भूलकी बात है। रहीम कवि कहते हैं:—

अमरबेलि बिन मूलकी, प्रतिपालत है ताहि।
"रहिमन" ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिये काहि?॥

रहीम कवि कहते हैं, जो प्रभु बिना मूल की अमरबेल की प्रतिपालना करता है, ऐसे प्रभु को छोड़कर किसे खोजते फिरें?

और भी—

(१)

जा दिनतें गर्भवास तज्यो नर।
आइ आहार लियो तबही को॥
खातहि खात भये इतने दिन।
जानत नाहिं न भूख कहीं को॥

दौरत धावत पेट दिखावत ।
तू शठ कीट सदा अनही को ॥
सुन्दर क्यूँ विश्वास न राखत ? ।
सो प्रभु विश्व भरै सब ही को ॥

(२)

खेचर भूचर जे जलके चर ।
देत आहार चराचर पोषै ।
वे हरि जो सब कूँ प्रतिपालत ।
ज्यूँ जिहि भाँति तिसी विधि तोषै ॥
तू अब क्यूँ विश्वास न राखत ? ।
भूलत है कित धोखहि धोखै ॥
तोहि तहाँ पहुँचाय रहै प्रभु ।
सुन्दर बैठि रहै किन ओखै ॥

ईश्वरकी शरणमें जानेसे अभाव नहीं रहता ।

एक राजा बड़ा आलसी और विषयी था । वह राज-काज को ज़रा भी न देखता था । सारा भार वज़ीर के सिर पर था । वज़ीर यदि किसी ज़रूरी कामकी आज्ञा लेने को आता, तो राजा उसे घण्टों द्वार पर बिठाये रखता, पर अन्दर न बुलाता ;

इससे मन्त्रीको घृणा हो गई ; उसने घर आकर पुत्रोंसे कहा कि, चार घण्टोंमें जितना धन और सामान ले जा सकते हो, दूसरे राजाके राज्यमें ले जाओ। मैं अब इस संसार को त्याग कर परमात्मासे लौ लगाऊँगा। लड़के जितना धन ले जा सके लेगये। शेष धन वज़ीरने ग़रीबोंको लुटा दिया और आप किसी और राजाके राजमें झोंपड़ी बनाकर तप करने लगा।

दो तीन दिन बाद जब उस विषयी राजाके राज्यमें गड़बड़ फैली, उसे अपने प्रधान मन्त्रीकी याद आई। बुलानेको आदमी भेजे, तो मालूम हुआ, कि वह तो सन्यासी हो गया है। राजा स्वयं उसके पास गया और बोला—"हे मन्त्रिवर! तुम इतने बड़े राज्यके प्रधान मन्त्री और कर्त्ता-धर्त्ता थे, तुमने वह सब सुखैश्वर्य्य छोड़ क्यों वनमें डेरा लगाया है? तुम्हें इसमें क्या मिला?" मन्त्रीने कहा—"महाराज! ईश्वरकी शरण में आनेसे इतना तो दो-चार दिनमें ही मिल गया कि, घण्टों आपके द्वारपर आपकी प्रतीक्षामें पाँव पीटा करता था; पर आप दर्शन तक न देते थे; पर आज श्रीमान्, सपरिवार, मेरे स्थानपर, मुझे आदरणीय समझकर, इस सघन वनमें पधारे हैं। यह तो दो-तीन दिनकी कमाई है। आगेकी बात फिर पूछ सकते हैं।" इसमें शक़ नहीं, जो सबकी आशा तजकर एक परमात्माकी शरणमें जाता है, उसे कोई अभाव नहीं रहता; पर पक्के और दृढ़ विश्वासकी ज़रूरत है।

ईश्वरको जो जिसी कामनासे भजता है, उसकी वह कामना अवश्य पूरी होती है। पर जो कोई उसे निष्काम भक्तिसे भजता है, उसे स्वयं ईश्वर मिलता है, और जब वह मिल जाता है, तब कुछ भी घाटा नहीं रहता; त्रिलोकी की सम्पदा उसके चरणोंमें ज़बर्दस्ती आना चाहती हैं। अतः बुद्धिमानोंको परमात्माको छोड़ और किसीके आगे दीनता न करनी चाहिये। मनुष्यके पास है ही क्या? कोई छोटा भिखारी है और कोई बड़ा। जिसे किसी भी चीज़की चाह नहीं, वही सच्चा धनी है। ऐसा धनी करोड़ोंमें एक भी नहीं; तब मँगतेको मँगतेसे माँगना क्या उचित है?

ईश्वर ही कामना पूरी कर सकता है।

एक राजाने किसी राजाका राज्य छीन लिया। वह राजा तप करने लगा। कुछ दिन बाद उसकी प्रशंसा सुन कर राजा उस तपस्वी-राजाके पास गया और बोला—"आप अपना राज्य वापस लीजिये; इसके सिवा आप जो और माँगें सो दूँ।" तपस्वी राजाने कहा—"राजन्! आपको धन्यवाद है; पर यदि आप मृत्युरहित जीवन, नित्यधन, वृद्धावस्था-रहित जवानी, बिना दुःखका सुख और बिना रंजकी खुशी दे सकें तो दीजिये।" राजाने कहा—"इन्हें तो मैं नहीं दे सकता। ये सब तो ईश्वर

से ही मिल सकते हैं।" यह जवाब सुन तपस्वी-राजाने कहा—"इसीसे मैं अब सबको छोड़ ईश्वरकी शरणमें आया हूँ कि, मेरी इच्छा पूरी हो; क्योंकि मनुष्योंसे यह काम हो न सकेगा।"

अनेक अज्ञानी जिन्हें ईश्वर पर विश्वास नहीं, मनमें समझते हैं कि, ईश्वर हमें खाने को देने थोड़े ही आवेगा। यह उनकी ग़लती है। ईश्वर उनको भी खाना पहुँचाता है, जो उसे कभी याद भी नहीं करते। फिर; जो उसे याद करते हैं, उन्हें वह क्यों न खाना पहुँचावेगा? अवश्य पहुँचावेगा, बशर्ते कि उसमें दृढ़ विश्वास हो। अपने भक्तोंके लिये ईश्वर हरदम तैयार रहता है।

नापित-भक्तके लिये ईश्वर नापति बना।

एक नाई दुर्योधनके पैर चापा करता था। एक दिन उसके चलनेके समय दो महात्मा उसे उसके द्वारपर मिल गये। वह उन्हें ईश्वरभक्त समझ, उनकी सेवामें लग गया और राजा के यहाँ जानेकी बात भूल गया। समय पर राजाने नाईकी याद की। भगवान् नाईका रूप धरकर दुर्योधनके पास पहुँचे और उसके पैर दाबने लगे। अन्तमें अपने भक्तकी नौकरी पूरी करके, वह वहाँसे चले गये। इतनेमें नाई डरता काँपता हुआ

पहुँचा और राजासे क्षमा-प्रार्थना करने लगा। दुर्योधनने कहा—"अरे पागल हो गया है क्या! अभी-अभी तो तू मेरे पैर दाबही रहा था।" इस बातको सुनकर नाई समझ गया कि, भगवान् ने स्वयं मेरे लिये नाईका काम किया। इतनीसी भक्ति-उपासनाका यह फल! अब मैं उनको छोड़ दूसरेकी खुशामद और सेवा क्यों करूँ? ऐसा विचारकर वह घर छोड़ वनमें चला गया।

भगवान्‌का दूसरा नाम विश्वम्भर है। जो विश्व—संसार का पालन करता है, उसेही विश्वम्भर कहते हैं। भगवान् त्रिलोकी के जीवमात्रको उनका आहार पहुँचाते हैं, इसमें शक नहीं। एक सच्ची घटना है, पाठक सुनें :—

ईश्वर ही सब की पालना करता है।

एक बार महाराज शिवाजी एक बहुत बड़ा महल बनवा रहे थे। उसमें हज़ारों मज़दूर और कारीगर लग रहे थे। उन्हें देखकर शिवाजीके मनमें अहंकार हुआ कि, मैं ऐसा हूँ, जो इतने मनुष्योंको रोज़ रोटी देता हूँ। इतनेमें समर्थ स्वामी रामदास आ गये। वे महाराजके मनकी ताड़ गये। बोले—"राजन्! सामने जो पत्थर पड़ा है उसके दो टुकड़े कराइये।" राजाके हुक्मसे पत्थरके दो टुकड़े किये गये। उस शिलाके भीतर

एक मोटा-ताज़ा मेंढ़क निकला। उसे देखते ही शिवाजी विस्मयमें डूब गये। स्वामीजीने कहा—"राजन्! इस पत्थरके भीतर इस मेंढकको खाना कौन पहुँचाता था? मनुष्य कोई चीज़ नहीं, उसे स्वयं तृष्णा है, अतः वह दरिद्री है। सबकी पालना करने वाले और प्रेमके साथ पालना करने वाले वही भगवान् हैं!

नरसी मेहताकी हुण्डीका भुगतान साहूकारका रूप धरकर स्वयं भगवान्ने किया। द्रौपदी और दुर्वासाके मामलेमें भगवान् वनमें दौड़े आये और द्रौपदीकी लाज रक्खी तथा राजा अम्बरीषकी—दुर्वासासे रक्षा की। ऐसे बहुतसे दृष्टान्त हैं। मनुष्यको सदा परमात्मासे माँगना चाहिये। उसका भण्डार अक्षय है और वह परम दयालु है।

पिता पुत्र की इच्छा अवश्य पूरी करता है।

एक वैश्य निर्धनतासे तंग आकर काशी चला गया और वहाँ रोज़गार करने लगा। कुछ समय बाद उसके पास लाखों-करोड़ों का धन हो गया। वह एक मन्दिर बनवाने लगा। घरसे चलते समय वह एक छोटासा लड़का छोड़ गया था। लड़का जब १६।१७ वर्षका हो गया, उसने माँसे पिताका पता पूछा। माँने कहा—"मुझे तो पता नहीं।" यह सुनते ही पुत्र अपने पिताकी

तलाशमें चल निकला। माँको भी उसने अपने साथ ले लिया। कुछ दिनों बाद, बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाकर, वह काशी पहुँचा और पेट पालनेके लिये उसी मन्दिरमें मज़दूरी करने लगा। सेठने उसे नया मज़दूर समझ, उससे उसका निवास स्थान और पिताका नाम पूछा। उसने सब बता दिया और कहा कि माँ भी आई है। सेठने अपनी स्त्रीको पहचान, पुत्रको छाती से लगा लिया और उसे सारा धन दे दिया। इस दृष्टान्तसे यह समझना चाहिये कि, इसी तरह जो पुरुष तकलीफें उठा-कर परमेश्वरकी खोज करता है, परमेश्वर उसे अवश्य मिल जाता है और अपने पुत्रकी इच्छा पूरी करता है।

अहंकारको त्यागकर, विशुद्ध मनसे, परमात्माकी खोज करो। वह दूर नहीं, तुम्हारे भीतर ही मौजूद है। खोज करनेसे तुम्हें अवश्य मिल जायगा। किसीने बिल्कुल ठीक कहा है:—

है तजस्सुस शर्त्त याँ, मिलनेको क्या मिलता नहीं।
है ख़ुदी जब तक इन्साँमें, ख़ुदा मिलता नहीं॥

तलाश शर्त है ; तलाश करनेवालोंको क्या नहीं मिलता ? जब तक मनुष्यमें खुदी या अहंकार है, तबतक उसे ईश्वर नहीं मिलता। अहंकार से हृदय शुद्ध हुआ और ईश्वर-दर्शन हुए। यदि ईश्वर मिल गया, तो जगत्का राज्य मिल गया। अतः मनुष्यो! मनुष्योंकी खुशामद छोड़, केवल दयासिन्धु जगदीश

की शरणमें जाओ! वह बिना अपमान किये, प्रेम के साथ आपके अभावोंको सुने और दूर करेगा तथा आपको नित्य-स्थायी सुख-शान्ति बख़्शेगा।

छप्पय।

बैठ पौरिया द्वार, छड़ी कर पहरौ राखत।
सोवत स्वामि हमार, जाहु तुम ऐसे भाषत।
करि हैं क्रोध अपार, लखैं जो तुमको द्वारे।
जाहु विश्वपति द्वार, तहाँ नहिं रोकनहारे।
जहँ निर्दय कटुवादी नहीं, अवशि तहाँ चलिजाइये।
वहँ निर्भय ब्रह्मानँद सुख, ब्रह्मानँद तहँ पाइये ॥९७॥

97. O mind, leaving dependence on those at whose doors such answers are heard, as, "It is not the proper time for you to see the master of the house, as he likes to be alone now, or is asleep, and if he happens to find you standing here, he will be offended," etc, do thou take thy shelter in the mansion of the Lord of the universe at Whose doors there is no sentinel, where no unsympathetic and harsh words are heard and who is the Giver of eternal happiness.

प्रिय सखि विपद्दण्डव्रातप्रताप परम्परा-
तिपरिचपले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः ॥
मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालवद्-
भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र विधास्यति ॥९८॥

हे प्यारी सखी बुद्धि ! कुम्हार जिस तरह गीली मिट्टीके लौंदे को चाकपर चढ़ाकर डंडेसे चाकको बारम्बार घुमाता है और उससे इच्छानुसार बर्तन तैयार करता है ; उसी तरह संसारको गढ़नेवाला ब्रह्मा हमारे चित्तको चिन्ताके चाकपर चढ़ाकर, विपत्तियोंके डण्डेसे चाकको लगातार घुमाता हुआ, हमारा क्या करना चाहता है, यह हमारी समझमें नहीं आता ? ॥९८॥

मनुष्य के पीछे भगवान् ने चिन्ता बुरी लगा दी है। बात यह है, कि मनुष्यके पूर्व जन्मके कर्मोंके कारण या इस जन्म की भूलोंके कारण, उसे विपत्तियाँ भोगनी ही पड़ती हैं। विपत्तियोंसे पार होनेके लिये, मनुष्य रात-दिन चिन्तित रहता है। चिन्ता या फिक्रसे मनुष्यका रूप-रङ्ग आदि सब नष्ट होकर शीघ्र ही बुढ़ापा आ जाता है। आज-कल ४० बरसकी उम्र में हो लोग बूढ़े हो जाते हैं, इसका कारण चिन्ता ही है। अगर चिन्ता न होती, तो मनुष्यको कुछ दुःख न होता। जहाँतक हो, मनुष्यको चिन्ताको पास न आने देना चाहिये ; क्योंकि चिन्ता चितासे भी बुरी है। चिता मरे हुए को भस्म करती है, पर चिन्ता जीते हुए को ही जलाकर ख़ाक कर देती है ; अतः चिन्तासे दूर रहो। स्त्री पुत्र और धन की चिन्ता में अपनी अमूल्य दुर्लभ कायाको नाश न करो ; क्योंकि ये स्त्री पुत्र प्रभृति तुम्हारे कोई नहीं। अगर चिन्ता और विचार ही करना है, तो इस बातका करो कि, तुम कौन हो और

कहाँसे आये हो? स्वामी शङ्कराचार्य्यने "मोहमुद्गर" में कहा है :—

का तव कान्ता: ? कस्ते पुत्र: ?
संसारोऽयमतीव विचित्र: ।
कस्य त्वं वा ? कुत आयात:
तत्त्वं चिन्तय तादिदं भ्रात: ।।

कौन तेरी स्त्री है ? कौन तेरा पुत्र है ! यह संसार अतीव विचित्र है। तू कौन है ? कहाँ से आया है ? हे भाई ! इस तत्त्व की चिन्ता कर ; अर्थात् न कोई तेरी स्त्री है और न कोई तेरा पुत्र है, वृथा चिन्ता क्यों करता है ?

तू कौन है? कहाँ से आया है? क्यों आया है? तूने अपना कर्त्तव्य पालन किया है या नहीं? तेरा अन्तिम परिणाम क्या है? इत्यादि विचारों द्वारा अपने स्वरूपको पहचान जाने अथवा ईश्वरकी शरण में चले जानेसे ही चिन्ता से पीछा छूटेगा और शान्ति मिलेगी। निश्चय ही, चिन्ता और विपत्तियोंसे बचने के लिये, भगवान्‌का आश्रय लेना सर्वोपरि उपाय है। विपत्ति रूपी समुद्रमें डूबते हुए के लिए भगवान्‌का नाम ही सच्चा सहारा है। गोस्वामि तुलसीदासजीने कहा है:—

तुलसी साथी विपतिके, विद्या विनय विवेक ।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम भरोसो एक ॥

तुलसी असमयके सखा, साहस धर्म विचार ।
सुकृत शील स्वभाव ऋजु, रामशरण आधार ॥
खेलत बालक व्याल संग, पावक मेलत हाथ ।
तुलसी शिशु पितु मातु इव, राखत सिय रघुनाथ ॥
तुलसी केवल राम पद, लागे सरल सनेह ।
तौ घर घट बन बाट महँ, कतहुँ रहै किन देह ॥

सारांश यह, कि जो हमारे चित्तको चिन्ताके चाक पर चढ़ाकर विपत्तियोंके डण्डे से घुमाता है, यदि हम उसको ही शरणमें चले जाँय, उसीसे प्रेम करें, तो वह हमारे चित्तको चिन्ताके चाक पर न रक्खे ; अर्थात् हमें चिन्ताग्निमें न जलना पड़े ; सुख-शान्ति सदा हमारे सामने हाथ बाँधे खड़े रहें । यह बला उन्हींको खाती है, जो भगवान्से विमुख रहते हैं । इसलिए यदि इस चिन्ता-डायनसे बचना चाहो, तो परमात्माको भजो ।

दोहा ।

मनको चिन्ताचक्र धर, खल विधि रह्यौ घुमाय ।
रचि है कहा कुलालसम, जान्यौ कछू न जाय ? ॥९८॥

98. O friend, we do not know what the unfriendly Brahma, the creator of the world, will do to us, bent as he is on revolving our minds mercilessly fixing them on the wheel of cares, made unceasingly to turn round and round by the application of the stick of vicissitudes like a clever potter who puts a lump of wet clay on his wheel and by turning it round with a stick shapes it into any desired vessel.

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि ।
तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे ॥९९॥

यद्यपि मुझे विश्वेश्वर शिव और सर्वात्मन विष्णुमें कोई भेद नहीं दीखता ; तथापि मेरा मन उन्हींकी ओर झुकता है, जिनके मस्तकमें तरुण चन्द्रमा विराजमान है ; अर्थात् मैं शिवको ही चाहता हूँ ॥९९॥

विष्णु और शिवमें कोई भेद नहीं, एक ही परमात्माके अलग-अलग नाम हैं, वही कृष्ण हैं, वही रघुनाथ हैं, वही राम हैं और वही शिव हैं। पर फिर भी ; जिस नाम का आश्रय ले लिया उसीका भरोसा करना ठीक है। मन भटकाना अच्छा नहीं।

एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी वृन्दावन गये। वहाँ उन्हें भगवान् कृष्णके दर्शन हुए। भगवान्की बाँकी झाँकी देखकर गोस्वामी जी मुग्ध हो गये, पर उन्होंने उनको सिर न नवाया ; क्योंकि उनके इष्टदेव रामचन्द्र जी थे। उन्होंने उस समय कहा :—

"कहा कहूँ छवि आजकी, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुषवाण लेओ हाथ॥"

आपकी छवि आज बहुत ही मनोमुग्धकर है, पर मैं तो आप को तभी प्रणाम करूँगा, जब आप धनुषवाण हाथ में

लेकर रामचन्द्र बनोगे। भगवान् को तत्काल रामरूप धर, धनुषबाण हाथमें लेना पड़ा। यह काम भगवान् को भक्तकी दृढ़ता देख कर करना पड़ा।

प्रीति पपैहियेकी सच्ची और आदर्श है। वह चाहे प्यासा मर जाय, पर मेघके सिवा किसी भी जलाशयका जल नहीं पीता। "उत्तर चातकाष्टक" में लिखा है :—

पयोद हे ! वारि ददासि वा न वा।
त्वदेकचित्तः पुनरेष चातकः ॥
वरं महत्या म्रियते पिपासया
तथापि नान्यस्य करोत्युपासनाम् ॥

हे मेघ ! तू जल दे चाहे न दे, चातक तो तेरा ही आश्रय रखता है। घोर प्याससे मर भले ही जाय, पर वह दूसरेकी उपासना नहीं करता। गोस्वामि तुलसीदासजीने भी कहा है :—

चातक घन तजि दूसरे, जियत न नाई नारि।
मरत न माँगे अर्वजल, सुरसरिहु को वारि ॥
व्याधा बधो पपीहरा, परो गंगजल जाय।
चोंच मूँदि पीवे नहीं, धिक पीवन प्रण जाय ॥

चातकने मेघको छोड़ और किसीको अपनी ज़िन्दगी में सिर न नवाया। मरते समय गंगाका जल भी ग्रहण न किया। किसी शिकारी ने किसी चातकको मारा। वह गंगाजी में गिर

पड़ा, प्यास के मारे घबरा रहा था, पर गंगा जल नहीं पीता था। उसने उलटी चोंच बन्द कर ली; कि कहीं जल मुखमें न चला जाय और मेरा प्रण टूट जाय। वाह वाह! प्रीति और भक्ति हो तो ऐसी ही हो।

सारांश यह है, कि भगवान् के भी जिस नामसे प्रेम हो, उसे छोड़ कर दूसरेसे प्रेम न करना चाहिये। एक ही पतिकी स्त्री होने में भलाई है। जिसके अनेक पति होते हैं, उसका भला नहीं होता। अनेक देवी देवताओं के उपासक चातक से शिक्षा ग्रहण करें। कहा है:—

पतिव्रताको सुख घना, जाके पति है एक।
मन मैली व्यभिचारिणी, जाके खसम अनेक॥
पतिव्रता पतिको भजै, और न अन्य सुहाय।
सिंह-बचा जो लंघना, तोभी घास न खाय॥
"कबिरा" सीप समुद्र की, रटे पियास पियास।
सकल बूँदको ना गिनै, स्वाति बूँदकी आस॥
प्रीति रीति तुझ सों मेरे, बहु गुनियाला कन्त।
जो हँसि बोलूँ और सूँ, तो नील रंगाऊँ दन्त॥

पतिव्रता, जिसके एक पति होता है, सदा सुखी रहती है; किन्तु अनेक खसमवाली व्यभिचारिणी सदा दुखी रहती है। पतिव्रता सदा अपने पतिको ही चाहती है; उसे दूसरा अच्छा नहीं लगता। सिंहका बच्चा, लंघन पर लङ्घन करने पर भी,

ड़ती
(२)
।

एक

ा,
के
न्तु
त,
न्तु
ना

कि
कि

घास नहीं खाता। कबीरदास कहते हैं, समुद्रकी सीप प्यास-ही-प्यास रटा करती है; कितनी ही बूँदें क्यों न गिरें, उसे तो स्वातिकी बूँद ही प्यारी लगती है। मेरे गुणनिधान कन्त! मेरी प्रीति तुझसे है। जो मैं दूसरेसे हँसकर बोलूँ तो मेरा काला मुँह हो।

दोहा।

नाहिन शिव अरु विष्णुमें, सूझै अन्तर मोय।
तदपि चन्द्रशेखर लखत, प्रीति अधिक कछु होय॥९९॥

99. Although I see no difference between Shiva, the Lord of the universe, and Vishnu the Omnipresent, but my love flows towards the One who bears the new moon on his forehead, i. e., Shiva.

रे कंदर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटंकारितैः
रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथाजल्पसि॥
मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूड़चरणध्यानामृतं वर्त्तते॥१००॥

हे कामदेव! तू धनुष्टङ्कार सुनानेके लिये क्यों बारबार हाथ उठाता है? हे कोकिला! तू मीठी-मीठी सुहावनी आवाज़में क्यों कुहु-कुहु करती है? ऐ मूर्खा स्त्री! तू अपने मनोमोहक मधुर कटाक्ष मुझपर क्यों चलाती है? अब तुम मेरा कुछ नहीं कर

सकते ; क्योंकि अब मेरे चित्तने शिवके चरण चूमकर अमृत पी लिया है ॥१००॥

जब तब मनुष्यका मन ब्रह्मानन्दका मज़ा नही जानता, जब तक वह परमात्माके चरणोंमें ध्यान लगा कर अमृत नहीं पीता, तभी तक कामदेवका ज़ोर चलता है, तभीतक कोकिला का पञ्चम स्वर उसके दिलमें खलबली पैदा करता है, तभी तक स्त्री के कटाक्ष-वाण उस पर असर करते हैं ; कामारि शिव से प्रीति होने पर ये सब कुछ नहीं कर सकते। भगवान् शिव और कामदेवमें वैर है ; अतः शिवभक्तों पर कामदेव अपने अस्त्र नहीं चला सकता।

छप्पय।

अरे काम वेकाम, धनुष टंकारत तर्जत।
तू हू कोकिल व्यर्थ बोल, काहेको गरजत॥
तैसे ही तू नारि, बृथा ही करत कटाछै।
मोहि न उपजै मोह, छोह सब रहिगे पाछै॥
चित चन्द्रचूड़के चरणको, ध्यान अमृत बरषत हिते।
आनन्द अखण्डानन्दको, ताहि अमृत सुख क्यों हिते॥१००॥

100. O Cupid, why dost thou raise thy hand repeatedly to make the sound of thy bow-string audible ? O cuckoo, why dost thou prattle in vain uttering forth thy soft and melodious strains ? O foolish woman. let alone thy loving and sweet

coquetries, as my mind has now drunk the nectar of kissing the feet of Shiva in prayer.

कौपीनं शतखण्डजर्ज्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी
निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्ष्यमशनं शय्या श्मशाने वने ॥
मित्रामित्र समानताऽतिविमला चिन्ताऽथशून्यालये
ध्वस्ता शेषमदप्रमाद मुदितो योगी सुखं तिष्ठति ॥१०१॥

वही योगी सुखी है, जो एकदमसे फटी-पुरानी सैकड़ों चिथड़ोंसे बनी कोपीन पहनता है और वैसी ही गुदड़ी ओढ़ता है, जिसके पास चिन्ता नहीं फटकती, जो सुखसे मिला हुआ भिक्षान्न खाता है, जो श्मशान-भूमि या वनमें सो रहता है, जो मित्र और शत्रुओंको समान समझता है, जो सूनी झोंपड़ीमें ध्यान करता है और जिसके मद और प्रमाद सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हो गये हैं ॥१०१॥

फटी पुरानी कोपीन पहनने, चिथड़ोंकी गुदड़ी ओढ़ने, निश्चिन्त रहने, सुख से मिले भिक्षान्न के खाने, मरघट या जङ्गलमें सो रहने, दोस्त और दुश्मन को बराबर समझने और नितान्त सूने घरमें पवित्र ध्यान करनेसे जिसके मद और प्रमाद नाश हो गये हैं, वही योगी संसारमें सुखी है। ऐसे महापुरुषोंको किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं होती। जिसे किसी चीज़की इच्छा नहीं, उसे किसकी ग़रज़? जो मित्र और शत्रु को एक नज़र से देखते हैं, जहाँ जगह पाते हैं वहीं

पड़ रहते हैं, जो मिल जाता है वही खा लेते हैं, उन्हें न चिन्ता-राक्षसी सताती है, न उन्हें घमण्ड होता है और न उन्हें मस्ती आती है। वे तो ब्रह्म के ध्यान में मग्न रहते हैं, इसलिये दुःख उनके पास नहीं आता ; वे सदा सुखमें दिन बिताते हैं। जो लोग बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनते हैं, शाल-दुशाले ओढ़ते हैं, अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट भोजन करते हैं, मखमली गद्दे तकियों पर सोते है, किसीको दोस्त और किसीको दुश्मन समझते हैं, ब्रह्मका ध्यान नहीं करते उनको चिन्ता लगी ही रहती है। देखनेमें वे सुखी मालूम होते हैं, पर भीतर-ही-भीतर उनकी आत्मा जला करती है। चिन्ता उनको खोखला कर डालती है। क्योंकि बढ़िया-बढ़िया भोजन और वस्त्रोंके लिये उन्हें सदा उपाय करने पड़ते हैं, और उनकी रक्षाकी चिन्ता करनी पड़ती है। ऐसोंके ही मित्र और शत्रु होते हैं। जिनका वे भला करते हैं, जिन्हें कुछ सहायता देते हैं अथवा जिन्हें उनसे कुछ मिलने की आशा रहती है, वे मित्र बन जाते हैं ; पर जिनका स्वार्थ साधन नहीं होता, जो उनके ठाठ बाठ और वैभवको फूटी आँखसे नहीं देख सकते, वे उनके नाशकी चेष्टा करते और उनके दुश्मन हो जाते हैं। इसलिये उन्हें रात-दिन शत्रुओंसे बदला लेने और उन्हें पराजित करनेकी फिक्रके मारे क्षण-भर भी सुखको नींद नहीं आती। अपने वैभव और ऐश्वर्यको देखकर उन्हें स्वतः ही अभिमान हो आता है। अभिमानके नशेमें वे अनर्थ करने लगते हैं ; इससे उन्हें सदा भयभीत

रहना पड़ता है। बहुत क्या कहें; जिनको आप अमीर देखते हैं, जिनको आप स्त्री-पुत्र धन-रत्न गाड़ी-घोड़े मोटर प्रभृतिसे सुखी देखते हैं, वे वास्तवमें ज़रा भी सुखी नहीं। सुखी वही है, जिसे किसी चीज़की ज़रूरत नहीं, जिसे किसीसे वैर या प्रीति नहीं, जिसे ज़रा भी अभिमान नहीं, जिसकी इन्द्रियाँ वशमें हैं, जो कभी चिन्ताको पास नहीं आने देता और जो ब्रह्मानन्दमें ही मग्न रहता है। भला राजा महाराजा और धनी लोग इस सुखको कैसे पा सकते हैं? अगर सुखी होना चाहो, तो संसारको त्याग कर, एकदमसे निश्चिन्त होकर, परमात्माके सिवा किसी भी चीज़की चिन्ता न करो।

जो लोग संसार त्यागें, वह सच्चे मनसे त्यागें; ढोंग करनेसे कोई लाभ नहीं। आजकल ऐसे बनावटी महात्मा बहुत देखनेमें आते हैं, जो जटा-जूट बढ़ा लेते हैं, ख़ाक रमा लेते हैं, आँखें लाल कर लेते हैं, गंगामें पहरों खड़े रहते हैं, शूलोंकी शय्या पर सोते हैं, पर उनकी आशा और तृष्णा नहीं जाती। वे ज़ाहिरा कष्ट उठाते हैं, कर्मेन्द्रियोंसे उनका काम नहीं लेते; पर मन और ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें नहीं करते, वासनाओंका त्याग नहीं करते, इससे उनका जीवन वृथा जाता है। ऐसे लोगोंके सम्बन्धमें महात्मा कबीर कहते हैं:—

निरबन्धन बंधा रहे, बंध्या निरबन्ध होय।
कर्म करे करता नहीं, दास कहावे सोय॥

कृष्ण भगवान् गीताके तीसरे अध्यायके छठे श्लोकमें कहते हैं :—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचार: स उच्यते ॥

जो मनुष्य कर्मेन्द्रियोंको वशमें करके कुछ काम तो नहीं करता ; किन्तु मनमें इन्द्रियोंके विषयोंका ध्यान किया करता है, वह मनुष्य झूठा और पाखण्डी है ।

मतलब यह है, कि मनुष्यको हाथ, पाँव, मुँह, गुदा और लिङ्गको वशमें कर लेने और इनसे कोई काम न लेनेसे कोई लाभ नहीं ; इनसे तो इनका काम लेना ही चाहिये ; किन्तु आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचाको वशमें करना चाहिये । आँख कान आदि पाँचों ज्ञान-इन्द्रियोंको वशमें करना या अपने-अपने विषयोंसे रोकना ज़रूरी है । बहुतसे लोग, ज़ाहिरमें सिद्ध बननेके लिये, हाथ पाँव प्रभृति कर्मेन्द्रियोंसे काम नहीं लेते, किन्तु मनमें भाँति-भाँतिके इन्द्रिय-विषयोंकी इच्छा किया करते हैं । भगवान् कृष्ण ऐसोंको पाखण्डी कहते हैं ।

सबसे अच्छा और सिद्ध पुरुष वही है, जो ज़ाहिरा तो काम करता है, किन्तु अन्दरसे मन और ज्ञानेन्द्रियोंको विषय-वासनासे रोकता है । गीतामें कहा है :—

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियै: कर्मयोगमसक्त: स विशिष्यते ॥७॥

हे अर्जुन! जो मनसे आँख कान नाक आदि इन्द्रियों को वशमें करके और इन्द्रियोंके विषयोंमें मन न लगा कर "कर्म्म-योग" करता है,—वही श्रेष्ठ है।

रहीमने यही बात कैसी अच्छी तरह कही है :—

जो "रहीम" मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं।
जलमें छाया जो परी, काया भीजत नाहिं॥
तनको योगी सब करें, मनको बिरला कोय।
सहजे सब सिधि पाइये, जो मन योगी होय॥

मतलब यह है, कि ढोंग करनेसे कोई लाभ नहीं। जिनका दिल साफ़ है, जिनके दिलसे वासनायें निकल गई हैं, उन्हें नहाने धोने प्रभृति दिखाऊ कामों या दूकानदारीकी ज़रूरत नहीं है। रहीम कहते हैं, मन यदि हाथमें है तो मनसा कहीं क्यों न जाय, हानि नहीं; क्योंकि जलमें शरीरकी परछाँई पड़ने से शरीर नहीं भीजता। लोग शरीरको जोगी करते हैं,—तिलक छापे लगाते हैं, जटाजूट बढ़ाते हैं, नेत्रोंको सुर्ख़ करते हैं, भभूत मलते हैं,कोपीन बाँधते हैं; पर मनको कोई बिरलाही जोगी करता है। लोग ऊपरसे योगी बन जाते हैं,पर मन उनका विषय-भोगों-में लगा रहता है। शरीरसे चाहे जो काम क्यों न किये जायँ, पर मनमें विषयोंकी कामना न रहे; यानी शरीर जोगी न हो, मन जोगी हो जाय; तो सिद्धि या मोक्ष मिलनेमें सन्देह नहीं। सारांश यह कि, मनके योगी होनेसे ही ईश्वर मिलता है।

महाकवि ज़ौक़ कहते हैं :—

सरापा पाक हैं धोये जिन्होंने हाथ दुनियासे।
नहीं हाजत कि वह पानी बहायें सरसे पाऊँ तक ॥

जिन्होंने दुनियासे हाथ धो लिये हैं, वे सिरसे पाँव तक शुद्ध हो गये हैं। उन्हें सिरसे पाँव तक पानी बहाकर स्नान करनेकी ज़रूरत नहीं।

मन जब वासना-हीन हो जाता है, तब वह सूखी दियासलाईके समान हो जाता है। सूखी दियासलाई जिस तरह झट जल उठती है, पर गीली नहीं जलती ; उसी तरह वासना-हीन मन पर परमात्माका रङ्ग जल्दी चढ़ता है ; किन्तु वासना-युक्त मन पर हरगिज़ नहीं। इसलिये मनको वासना-हीन करना चाहिये। साथ ही भक्ति भी निष्काम करनी चाहिये। ईश्वरसे मुराद न माँगनी चाहिये। कामना रख कर भक्ति करनेसे कामना निश्चय ही पूर्ण होती है—ईश्वर भक्तकी इच्छा अवश्य पूरी करता है ; पर वैसी भक्तिसे परिणाममें भय है ; क्योंकि फलोंके भोगनेके लिये जन्मना और मरना पड़ता है। किन्तु जो लोग बिना किसी इच्छाके परमात्माकी भक्ति करते हैं, वे मुक्ति लाभ करते हैं—उन्हें जन्म लेना और मरना नहीं पड़ता।

जब साधकके मनमें कुछ कामना नहीं रहती, तब उसके मनसे ईर्षा-द्वेष और मित्रता-शत्रुता सब दूर हो जाती हैं। वह

सब जगत्को एक नज़रसे देखता है। वह मनुष्योंकी आशा नहीं रखता, केवल परमात्माकी शरण ले लेता है ; इसलिये उसे सहजमें मुक्ति मिल जाती है। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है :—

तब लगि हमते सब बड़े, जब लगि है कुछ चाह।
चाह-रहित कहको अधिक, पाय परमपद थाह ॥

जब तक मनमें ज़रा भी आशा रहती है, तभीतक मनुष्य किसीको बड़ा मानता है और किसीका दास बनता है ; जब आशा नहीं रहती, तब वह सबको समान समझता है और सबका आसरा छोड़ एक मात्र परमात्माका आसरा पकड़ता है ; इससे उसको, भवबन्धनसे छुटकारा मिलकर, परम पदकी प्राप्ति हो जाती है।

छप्पय।

कन्था अरु कोपीन, फटी पुनि महा पुरानी।
बिना याचना भीख, नींद मरघट मनमानी ॥
रह जग सों निश्चिन्त, फिरै जितही मन आवै।
राखे चितकूं शान्त, अनुचित नहिं भावै ॥
जो रहें लीन अस ब्रह्ममें, सोवत अरु जागत यदा।
है राज तुच्छ तिहुँ भुवनको, ऐसे पुरुषन कों सदा ॥१०१॥

101. Happy is the recluse who wears a totally worn out loin-cloth, torn into a hundred pieces as well as a covering

sheet in the same tattered condition, who is free from cares and eats food easily got by begging, who sleeps in a cremation-ground or a forest, who is indifferent to friends as well as to foes, who sits in contemplation in a lonely cottage and whose vanity and passions have been totally destroyed,

भोगा भंगुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भव-
स्तत्कस्यैव कृते परिभ्रमतरे लोका कृतं चेष्टितैः ॥
आशापाशशतोपशान्तिविशदं चेतः समाधीयतां
कामोच्छित्तिवशे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः ॥१०२॥

नाना प्रकारके विषय-भोग नाशमान और संसार-बन्धनके कारण हैं, इस बातको जान कर भी मनुष्यो! उनके चक्करमें क्यों पड़ते हो? इस चेष्टासे क्या लाभ होगा? अगर आपको हमारी बातका विश्वास हो, तो आप अनेक प्रकारके आशा-जालके टूटनेसे शुद्ध हुए चित्तको सदा कामनाशक स्वयँप्रकाश शिवजीके चरणोंमें लगाओ। (अथवा अपनी इच्छाओंके समूल नाश करनेके लिए, अपने ही आत्माके ध्यानमें मग्न हो जाओ) ॥१०२॥

आप आज जिन विषय-सुखोंको देखकर फूले नहीं समाते, वे विषय-सुख सदा आपके साथ नहीं रहेंगे। वे आज हैं, तो कल नहीं रहेंगे। वे बिजलीकी चमकके समान चञ्चल हैं; अभी बिजली चमकी और फिर नहीं। आप ऐसे नश्वर, असार, क्षणस्थायी सुखों पर मत भूलो। होश करो! आपकी काया

नाशमान् है। आप सदा इस संसारमें नहीं रहेंगे। आपकी ज़िन्दगीका कोई भरोसा नहीं। आपका जो दम आता है, उसे ही ग़नीमत समझिये। आप एक क़दम रखकर, दूसरा क़दम रखनेकी भी दृढ़ आशा न कीजिये। आपका जीवन हवाके झोंकोंसे छिन्न-भिन्न मेघोंके समान है। अभी घटा छा रही थीं; देखते-देखते हवा उन्हें कहाँ-का कहाँ उड़ा लेगई; आकाश साफ हो गया। यह सारा संसार, संसारके सुख-भोग और स्त्री-पुत्र धन-रत्नादि सभी स्वप्नकी सी माया हैं। यह दुनिया मुसाफ़िरख़ाना है। रोज़ अनेक आदमी मुसाफ़िरख़ाने, सराय या धर्मशालाओंमें आते और जाते हैं; सदा उनमें कोई नहीं रहता। वे जिस तरह एक दिन या दो तीन दिन ठहर कर चले जाते हैं; उसी तरह आपको भी, इस दुनिया-रूपी सरायमें चन्द रोज़ क़याम करके, आगे जाने होगा। ये सारे सामान यहाँ के यहीं रह जायँगे। ये सब ऐसे हो रहेंगे, पर आप न रहेंगे। इसलिये आप होशियार रहिये, भूलिये मत। आप आज जिस जवानी पर इतने इतराते और इतने शृङ्गार-बनाव करते हैं, यह भी चन्दरोज़ा है। यह चार दिनकी चाँदनी है। इसके बाद अँधेरी रात निश्चयही आवेगी; अर्थात् इसके बाद बुढ़ापा अवश्य आवेगा। उस समय आपको यह अकड़, यह उछल-कूद, यह ऐंठना, यह मूछें मरोड़ना—सब हवा हो जायगा। आप शीघ्र ही लाठी टेक कर चलने लगेंगे। आपका रूप-लावण्य नाश हो जायगा। जो लोग आपको ख़ूबसूरत समझकर आज

प्यार करते हैं, वे ही कल आपको देखकर नाक भौं सिकोड़ेंगे। फिर भला, आप ऐसी नश्वर निकम्मी काया पर क्यों इतना अभिमान करते हैं? आप अहङ्कारको त्यागिये और अपने लिये उस खिलाड़ीका एक मिट्टीका पुतला-मात्र समझिये। सबकी शुभ कामना और परोपकार कीजिये, और एकमात्र अपने बनानेवालेसे ही दिल लगाइये। इसीमें आपका कल्याण है। यह जगत् कुछ भी नहीं, कोरा भ्रम है। यह मृगमरीचिका या स्वप्न कीसी माया है। इस पर ज्ञानी नहीं भूलते। महात्मा सुन्दरदास जी कहते हैं:—

कोऊ नृप फूलन की सेज पर सूतो आइ।
जब लग जाग्यो तौ लों, अति सुख मान्यो है॥
नींद जब आई, तब वाही कूँ स्वपन भयो।
जब पर्‍यो नरकके कुण्डमें, यूँ जान्यो है॥
अति दुःख पावे, पर निकस्यो न क्यूँ ही जाहि।
जागि जब पर्‍यो, तब स्वपन बखान्यो है॥
यह झूठ वह झूठ, जाग्रत स्वपन दोऊ।
"सुन्दर" कहत, ज्ञानी सब भ्रम मान्यो है॥

छप्पय।

अति चंचल ये भोग, जगतहूँ चंचल तैसो।
तू क्यों भटकत मूढ़ जीव, संसारी जैसो॥

आशाफाँसी काट, चित्त तू निर्मल ह्वैरे ।
साधन साधि समाधि, परम निज पदको ह्वैरे ॥
करि रे प्रतीति मेरे बचन, ढुरिरे तू इह ओरको ।
छिन यहै यहै दिनहूँ भल्यो, निज राखै कछु भोरको ॥१०२॥

102. The various kinds of sensual pleasures are liable to destruction. They are the causes of worldly bondage, what for, O men, then do you wander about so busily? If you trust upon my word, then it is better for you to fix your mind, made pure by the calming down of the hundredfold network of hopes, in contemplation within your own Self for the extermination of your desires.

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायता-
मानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निःशंकमङ्केशयाः ॥
अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतट-
क्रीड़ाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परिक्षीयते ॥१०३॥

वे धन्य हैं, जो पर्वतोंकी-गुफाओंमें रहते हैं और परमब्रह्मकी ज्योतिका ध्यान करते हैं, जिनके आनन्दाश्रुओंको उनकी गोदमें बैठे हुए पक्षी निर्भयतासे पीते हैं। हमारी ज़िन्दगी तो मनोरथोंके महलकी बावड़ीके किनारेके क्रीड़ा-स्थानमें लीलायें करते हुए ही वृथा बीतती है ॥१०३॥

मतलब यह, कि वे लोग सफल-काम हैं, जो पहाड़ोंकी गुफाओंमें बैठे हुए परमात्माकी ज्योतिका ध्यान करते रहते

हैं और उस ध्यानमें इतने मग्न हो जाते हैं, कि उन्हें अपने तनोबदनकी भी सुध नहीं रहती। उनको भीतर-ही-भीतर उस ब्रह्मके ध्यानसे जो आनन्द बोध होता है, उससे उनकी आँखोंसे आनन्दके आँसू बहने लगते हैं। पक्षी उनकी गोद में निडर बैठे हुए उन आँसुओंको पीते हैं। उन्हें कुछ ख़बर नहीं, कि पक्षी गोदमें बैठे हैं या क्या कर रहे हैं। वे तो आनन्दमें बेसुध रहते हैं। यही आनन्द परमानन्द है ; इससे परे और आनन्द नहीं। जिनको यह सच्चा आनन्द मिलता है, वही सच्चे भाग्यवान हैं। एक वह हैं और एक हम अभागे हैं, जो रात-दिन मनोरथोंके महल गढ़ा करते हैं— रात-दिन मिथ्या कल्पनायें किया करते हैं। इन शेख़चिल्लीके से गढ़न्तोंसे हमें कोई लाभ नहीं—इन झूठे ख़याली पुलावोंके पकानेमें हमारा दुष्प्राप्य जीवन वृथा नष्ट होता है!

जो मनुष्य मानव-चोला पाकर परमात्माका भजन नहीं करते, परमात्माके दर्शनोंकी चेष्टा नहीं करते—उनका जीवन वृथा है। इसलिये उस्ताद ज़ौक़ने कहा है :—

दिल वह क्या, जिसको नहीं तेरी तमन्नाये विसाल।
चश्म वह क्या, जिसको तेरे दीदकी हसरत नहीं॥

वह दिल ही नहीं, जिसे तेरे पानेकी इच्छा न हो और वह आँख ही नहीं, जिसे तेरे दर्शनकी लालसा न हो।

बीती सो बीती, अब तो होश करो !

भाइयो ! बीतीसो बीती, अब तो चेत करो और प्रभुसे लौ लगाओ। आज-कल मत करो, नहीं तो पछताओगे। अन्त समय पछतानेसे कोई लाभ न होगा। जो लोग विचार ही विचार करते रहते हैं, वे धोखेमें रह जाते हैं और काल एक दिन अचानक आकर उनकी चोटी पकड़ लेता है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं :—

> गये पलट आवें नहीं, सो करु मन पहचान।
> आजु जोई सोई काल्हि है, तुलसी भर्म न मान॥
> रामनाम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय।
> लरिकाई तें पैरिबो, धोखे बूड़ि न जाय॥

नदीकी जो धार चली गई है, लौटकर नहीं आयेगी। जो दिन चले गये हैं, वापस नहीं आयेंगे। जो दिन आज है, वही कल है। कल कोई नई बात नहीं हो जायगी। अतः जो कल करना है, उसे आजही करो ; और जो आज करना है, उसे अभी करो ; क्योंकि यदि पल भरमें प्रलय हो गई—आप चल बसे, तो फिर कब करोगे ? बचपनसे ही राम नाम रटना अच्छा है। जो लोग बचपनसे ही तैरना सीख लेते हैं, धोखेसे नहीं डूबते। जो लोग यही विचार किया करते हैं, कि अमुक काम

हो जायगा, तो उसके बाद हम सब गृहस्थीके झगड़े छोड़ भगवत् भजन करेंगे, वे इस तरहके विचार किया ही करते हैं कि, इतने में उनका समय पूरा हो जाता है और काल उनका चोटा पकड़ कर उन्हें लेजाता है। उस वक्त वह बहुत पछताते और सिर धुनते हैं; लेकिन उस समय हो क्या सकता है? उस समय उनकी गति उस भौंरेकी सी होती है, जो कमलके मुखमें बन्द होकर कहता है:—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं।
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजालम्॥
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे।
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार॥

बड़े-बड़े शालके लट्ठोंको छेद डालनेकी शक्ति रखनेवाला भौंरा, प्रेमके मारे, कोमल कमलमें बन्द हो जाता है। रात हो जाती है और भौंरा कमलके भीतर बैठा हुआ विचार करता है:—"अब रातका अवसान होगा, सवेरा होगा, सूरज उदय होगा और यह कमल खिल जायगा; तब मैं निकल जाऊँगा। अब रात-भर यहीं आनन्द करूँ।" वह तो ऐसे विचार करता ही रहता है, कि जङ्गली हाथी कमलको उखाड़कर मुँहमें रख लेता है और भौंरेके मन-की-मनमें ही रह जाती है। यही दशा संसारी विषय-लोलुपों की है! वह विचार बाँधा ही करते हैं और काल उन्हें मुँहमें धर लेता है। अतः हो सके
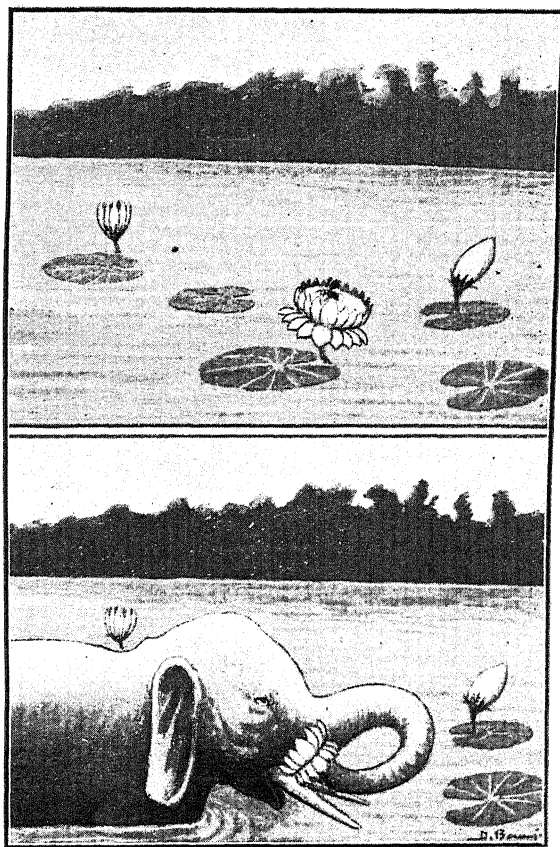
भौंरा कमल में बैठा हुआ अनेक तरह के विचार करता है, इतने में हाथी आकर भौंरा समेत कमल को खाजाता है। यही दशा हमारी है। हम रात-दिन विषय-भोगों में लगे रहते हैं और मृत्यु अचानक आकर हमें लील जाती है।

(पृष्ठ २६६)

ड़ती (२) ॥ एक । ता, व के
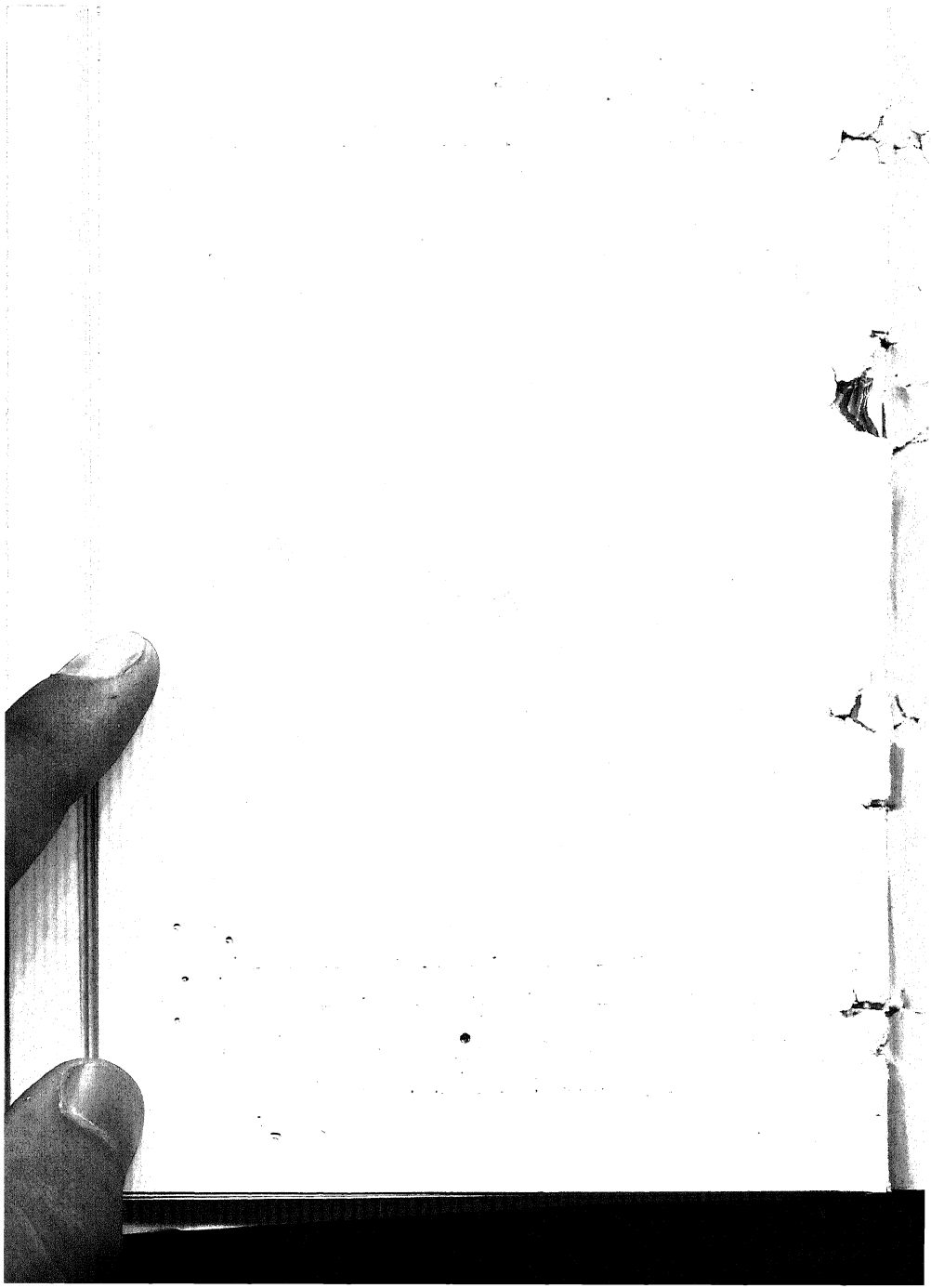
तो, बचपनमें ही ईश्वर-भजन करो। बचपनमें यदि ऐसा सौभाग्य न हो, तो जवानीमें तो न चूको। जवानी इसके लिये अच्छा समय हैं। उस अवस्थामें शक्ति रहती है। जवानीमें ईश्वर-भक्ति करनेवाला निश्चय ही मोक्ष या स्वर्ग पाता है। कहा है :—

दानं दरिद्रस्य प्रभोश्च शान्तिः
यूनां तपो ज्ञानवताञ्च मौनम् ।
इच्छा निवृत्तिश्च सुखासितानां
दया च भूतेषु दिवं नयन्ति ॥

दरिद्रताका किया दान, निग्रह अनुग्रहकी शक्ति होनेपर क्षमा, जवानीका किया तप, विद्वान् होकर चुप रहना, सुख-भोगकी सामर्थ्य होनेपर इच्छाओंको रोक लेना और प्राणियों पर दया करना—ये स्वर्गकी प्राप्ति कराते हैं।

ईश्वर-भजनमें आज-कल मत करो ।

एक धनवान सदा घर-धन्धोंमें लीन रहता था। उसकी स्त्री उससे बहुत-कुछ कहती कि, हे स्वामी ! यह शरीर विषय-भोगोंके लिये नहीं, बल्कि परमात्माकी भक्तिके लिये मिला है। इसे पारस-मणि समझकर, इससे मोक्ष-रूपी सोना बना

लीजिये। ऐसा न हो कि, आप सोना न बनावें और यह पारस-मणि पहले ही आपसे छीन ली जाय। इस शरीरका बारम्वार मिलना कठिन है। ८४ लाख योनियाँ भोगनेके बाद यह मनुष्य-चोला मिला है। इस बार यदि इससे काम न लिया जायगा, तो फिर चौरासी लाख योनियोंमें जन्म-मरण होनेपर यह मनुष्य-चोला मिलेगा; इसलिये दो चार घड़ी तो सब तरफसे मनको हटाकर परमात्माकी याद किया करो। स्त्री उससे बार बार कहती, पर वह सेठ उसकी बात टाल देता।

एक दिन सेठ बीमार हो गया। उसने सेठानीसे वैद्यके बुलानेको कहा। सेठानीने वैद्यको बुलाया। वैद्यने नाड़ी नब्ज देख, रोगका हाल पूछ, दवाका नुसख़ा लिख दिया और सेवन-विधि बताकर चला गया। सेठानीने पंसारीके यहाँ से दवा मँगा, आलेमें रख दी। दिन-भर हो गया, पर सेठको दवा न दी। सन्ध्या-समय सेठने कहा—"क्या दवा नहीं मँगाई गई?" सेठानीने कहा—"जी, दवा तो मँगाली है, पर वह रक्खी है उस ताकमें।" सेठने पूछा—"अबतक दी क्यों नहीं?" सेठानीने कहा—"जल्दी क्या है? आज नहीं तो कल, नहीं तो परसों दे दूँगी। कभी न कभी देही दूँगी।" सेठने कहा—"अगर मैं मर गया, तो दवा फिर कौन काम आवेगी?" सेठानीने कहा—"मरनेको तो आप मानते ही नहीं। मैं जब-जब भगवत्-भजन करनेको कहती हूं, तब-तब आप कह देते हैं कि, देखा

जायगा ; जल्दी थोड़े ही है। यदि आपको मरनेकी ही याद होती, तो ऐसा न कहते। आज दवाके लिये आपको मरनेकी याद आई है। जिस तरह दवाकी रोगनाशके लिये ज़रूरत है ; उसी तरह भजनपूजनकी जन्म-मरणका फन्दा काटनेके लिये ज़रूरत है। ऐसा न हो कि, पशु-योनि मिल जाय और सारा गुड़ गोबर हो जाय।" आज स्त्रीका उपदेश लग गया। सेठको वैराग्य हो गया। सेठानीने उसे दवा पिला दी और वह अच्छा भी हो गया। उसी दिनसे उसने ईश्वर-भजनमें लौ लगादी। वह और सब भूला, पर ज़िन्दगी भर मौत और ईश्वरको न भूला।

मौतको हरदम याद रक्खो।

एक बादशाहने अपने दरबार और बैठनेके स्थानोंमें क़ब्रें बनवा-रक्खी थीं। वह चाहता था कि, मैं हरदम क़ब्रों को देखकर मौत को न भूलूं। मौतकी याद रहनेसे पापोंसे बचा रहूँगा और ईश्वरको न भूलूँगा। हमारे यहाँके अनेक सच्चे सिद्ध अक्सर श्मशान भूमिमें ही अपना डेरा रखते हैं। सारांश यह, मनुष्यको अपनी मौतकी याद सदा रखनी चाहिये, ताकि संसारसे वैराग्य होकर ज्ञान हो और ज्ञानसे मोक्ष मिले। महात्मा कबीरने खूब ज़बर्दस्त चेतावनी दी है :—

"कबिरा" जो दिन आज है, सो दिन नाँही काल ।
चेत सकै तो चेतियो, मीच परी है ख्याल ॥

हे कबीर ! जो दिन आज है, वह कल नहीं होगा ; यानी आजका सा मौक़ा फिर कल न मिलेगा। चेतना है तो चेत जा ! देख, मृत्यु तेरी घातमें है। चूहेपर बिल्लीकी तरह झपट्टा मारना ही चाहती है।

गोस्वामीजीने भी खूब कहा है :—

"तुलसी" बिलंब न कीजिये, भज लीजै रघुबीर ।
तन तरकसते जात है, श्वास सार सो तीर ॥
काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पलमें परलय होयगी, बहुरि करोगे कब ?

तुलसीदासजी कहते हैं, देर न करो, भगवान्को भज लो ; क्योंकि तन-रूपी तरकससे श्वास-रूपी तीर, जो सार है, निकला जाता है। जो काम कल करना है, उसे आज ही कर डालो और जो आज करना है, उसे अभी कर डालो ; क्योंकि यदि पलमें प्रलय हो गई, तो फिर कब करोगे ?

जो मनुष्य दिन-रात घर धन्धोंमें ही लगे रहते हैं, कभी खुश होते हैं, कभी रंज करते हैं, कभी कन्याके वैधव्य-दुःखको देखकर जलते रहते हैं, तो कभी पुत्रके मरणसे औंधा मुँह किये पड़े रहते हैं अथवा कान्ता-वियोग या स्त्रीके मरणसे तड़फते हैं, अथवा धनवृद्धिके लिये दौड़ते फिरते हैं। लेकिन परमात्माका

नाम कभी नहीं लेते ; यदि लेते हैं तो हाथ को तो गोमुखीमें रखते ह, पर मनको विषयोंमें लगाये रहते हैं, लोगोंसे बातें करते रहते और सड़ासड़ माला फेरा करते हैं, ऐसोंके पास एक दिन भी चतुर पुरुषोंको न रहना चाहिये। कहा है :—

राजा धर्मविना, द्विजः शुचिविना, ज्ञानं विना योगिनः।
कान्ता सत्यविना, हयो गति विना, भूषा च ज्योतिर्विना॥
योद्धा शूरविना, तपो व्रत विना, छन्दो विना गीयते।
भ्राता स्नेह विना, नरो हरि विना, मुञ्चन्ति शीघ्रं बुधाः॥

धर्महीन राजाको, शौचहीन ब्राह्मणको, ज्ञानहीन योगीको, असत्यवादिनी स्त्री को, गतिहीन घोड़ेको, चमक-दमक रहित गहनेको, शूरताहीन योद्धाको, नियम रहित तप को, छन्द बिना कविताको, स्नेह-हीन भाईको और हरिभक्ति रहित पुरुषको बुद्धिमान लोग शीघ्र ही छोड़ देते हैं।

हरिभक्ति रहित पुरुषको चतुर लोग इसलिये त्याग देते हैं, कि उसकी संगतिमें उनका मन भी कहीं वैसा हो न हो जाय। मनुष्य जैसी सङ्गति करता है, वैसा ही हो जाता है। जो विषयी पुरुषोंकी सङ्गति करता है, वह विषयी हो जाता है ; पर जो ज्ञानी और वैरागियोंकी सङ्गति करता है, वह ज्ञानी और वैरागी हो जाता है। महापुरुषोंकी एक शुभ दृष्टिसे मनुष्य निहाल हो जाता है ; यानी भव-बन्धनसे उसका पीछा छूट जाता है। हम आगे दोनों तरहके दृष्टान्त देते हैं :—

एक राजा और महात्मा ।

किसी जङ्गलमें एक महात्मा रहते थे। वह पेड़-पत्ते और हवा खाकर ज़िन्दगी बसर करते थे। उनकी शोहरत सारे देश में फैल गई। उस देशके राजाने भी उनसे मिलना चाहा। वज़ीरने यह ख़बर महात्माको दी। महात्मा उस जङ्गलको छोड़ भागनेको तैयार हुए; लेकिन मन्त्रीके बहुत समझाने-बुझानेसे वह वहाँ रह गये और राजाको दर्शन देने पर भी राज़ी हो गये।

एक दिन राजा अपने परिवार और दरबारियोंसमेत महात्मा के दर्शनको गया। महात्माके दर्शन कर वह बहुत ही खुश हुआ और उनसे नगरमें चलकर बाग़में तप करनेकी प्रार्थना की। महात्मा बहुत ज़ोर देनेसे इस बात पर राज़ी हो गया। राजाने अपने बाग़में उसके लिये एक एकान्त कमरा खूब सजवा दिया। मख़मली गद्दे, तकिये, कौच, पलँग और कुरसियाँ रखवा दीं और चौदह-चौदह बरस की सुन्दरी मनमोहिनी कामिनियाँ महात्माजीकी सेवाको नियुक्त कर दीं।

महात्माजी खूब आनन्दसे दिन गुज़ारने और विधुवदनी कामिनियोंको भोगने लगे। चन्दरोज़में ही वह विषयोंके वशीभूत हो गये। एक दिन राजा फिर उनसे मिलने गया। उसने देखा कि, महात्माजीका रंग रूप गुलाबके फूल-जैसा

हो गया है। वह मसनदके सहारे लेटे हुए हैं और चन्द्रानना स्त्रियाँ उन पर मोरछल कर रही हैं। यह तमाशा देख राजा को बड़ा दुःख हुआ। उसने अपने मन्त्रीसे यह हाल कहा। मन्त्रीने कहा,—"महाराज! निवृत्ति मार्ग वालोंको प्रवृत्ति माग वालोंकी सङ्गति भूलकर भी न करनी चाहिये। कहा है :—

"कामिनां कामिनीनां च संगात् कामी भवेत् पुमान्।
देहान्तरे ततः क्रोधी लोभी मोही च जायते॥
"काम क्रोधादि संसर्गाद. शुद्ध्र जायते मनः।
अशुद्धे मनसि ब्रह्मज्ञानं तच्च विनश्यति॥"

कामी पुरुषों और स्त्रियोंकी सङ्गतिसे पुरुष कामी और जन्मान्तरमें क्रोधी और मोही हो जाता है।

काम क्रोध आदिके सम्बन्धसे मन भी अशुद्ध हो जाता है। अशुद्ध मनसे उपदेश किया हुआ ब्रह्मज्ञान भी नष्ट हो जाता है।

एक महात्मा और वेश्या।

एक महात्मा एक दिन वर्षामें भीगते हुए और कीचमें लिहसे हुए एक मकानके छज्जेके नीचे जा खड़े हुए। वह मकान राजाकी वेश्याका था। महात्मा सर्दीके मारे थर-

थर, थर-थर काँप रहे थे। वेश्याकी दासीने महात्माको देखा और अपनी स्वामिनीसे सारा हाल जा कहा। वेश्याने कहा—"जाओ, महात्माको लिवा लाओ।" दासी उन्हें ले आई। वेश्याने उनको स्नान कराकर नये कपड़े पहनाये और भोजन कराया। इसके बाद आप भोजन करके उनके पास गई और उन्हें पलँग पर लिटा कर उनके पैर दाबने लगी। महात्माने एक नज़र भरके वेश्याकी तरफ देखा और उसके हृदयमें अमृत की धारा बहा दी। वह सो गये और वेश्या रात-भर उनके चरण चापती रही। सवेरेके वक्त वह सो गई और महात्मा उठकर चल दिये। भोरमें उठते ही वेश्याने दासीसे पूछा कि, महात्मा कहाँ गये? उसने कहा, कि वे तो चले गये। वेश्या उसी समय नङ्गी होकर घरसे निकल गई और एक वृक्षके नीचे जाकर बैठ गई। राजाने यह समाचार सुनते ही अपने आदमी उसको लिवा लानेको भेजे। वेश्याने कहा—"राजासे कह दो, कि अब मैं आपका वह मैला उठानेवाली पहलेकी भंगन नहीं हूँ।" राजाने यह बात सुन हुक्म दे दिया कि, उसे कोई न छेड़े। अगले दिन वह कहीं चली गई। सच है, महापुरुषोंकी क्षणभरकी संगतिसे महापापी भी निहाल हो जाता है। निस्सन्देह सत्संग बड़ी चीज़ है। कहा है :—

महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्॥

महापुरुषोंकी संगतिसे किसकी उन्नति नहीं होती? कमलके पत्तेपर पड़ी जलकी बूँद मोतीकी शोभाको धारण करती है।

और भी :—

॥ दोहा ॥

जेहि जैसी संगति करी, सो तैसो फल लीन।
कदली सीप भुजंग-मुख, एक बूँद गुण तीन ॥

जो जैसी संगति करता है, वह वैसा ही फल पाता है। मेहकी एक बूँद केलेमें कपूर, सीपमें मोती और सर्प-मुखमें विष हो जाती है।

सवैया।

ज्ञान बढ़ै गुनवान की संगत,
ध्यान बढ़ै तपसी-संग कीने।
मोह बढ़ै परिवार की संगत,
लोभ बढ़ै धन में चित दीने ॥
क्रोध बढ़ै नर मूढ़ की संगत,
काम बढ़ै तिय के संग कीने।
बुद्धि विवेक विचार बढ़ै,
कवि "दीन" सुसज्जन संगत कीने ॥

सत्संगकी महिमाका पार नहीं। सत्संगसे ही दस्यु भील

वाल्मीकि ऋषि हो गये। पद्मयोनिसे पैदा हुए ब्रह्मा, केवर्त्ति से पैदा हुए व्यासजी, उर्वशीसे पैदा हुए वशिष्ठजी और हिरनी से पैदा हुए ऋषि श्रृङ्गी सत्संगसे ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए; अतः महापुरुषोंका संग करना चाहिये। "सत्संग" भवसागरसे पार करनेके लिये नौका-स्वरूप है। कहा है :—

तत्वं चिन्तय सततं चित्ते,
परिहर चिन्तां नश्वरवित्ते।
क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका
भवति भवार्णवतरणे नौका॥

हमेशा तत्त्वकी चिन्तना कर, चञ्चल धनकी चिन्ता छोड़। यह जगत् अल्पकालीन है; केवल सज्जनोंकी संगति ही भव-सागरके पार जानेके लिये नावके समान है।

इस संसार-वृक्षके जितने फल हैं, सभी प्राणीके नाश करने वाले और उसे सदा दुःखोंके गर्तमें पटक रखनेवाले हैं; केवल दो फल अमृत-समान हैं; कहा है :—

संसार-विष-वृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
काव्यामृत रसास्वाद आलापः सज्जनैः सह॥

इस संसार-रूपी विष-वृक्षके दो फल अमृतके समान हैं :— (१) काव्यरूपी अमृतका रसास्वादन करना, (२) साधु पुरुषों की सङ्गति करना।

शंकराचार्यजीने कैसा अच्छा उपदेश दिया है! इसमें संसार-सागरसे पार होनेका सारा मसाला है :—

संगः सत्सु विधीयतां, भगवतोभक्तिर्दृढा धीयतां,
शान्त्यादिः परिचीयतां, दृढतरं कर्माशु संत्यज्यताम् ।
सद्विद्यो ह्युपसर्प्यतां, प्रतिदिनं तत्पादुका सेव्यतां,
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यम् समाकर्ण्यताम् ॥

साधु पुरुषोंका संग करना चाहिए। भगवानमें दृढ़ भक्ति करनी चाहिये। क्षमा और दम प्रभृतिका अभ्यास करना चाहिये। संसार-बन्धनके कारण "कर्म—सकाम कर्मोंको" शीघ्र त्यागना चाहिये। सच्चे विद्वानोंकी सेवा करनी चाहिये और उनकी पादुकाएँ उठानी चाहिये। ब्रह्म-बोधक एकाक्षर प्रणव "ॐ" का जाप करना चाहिए और वेदके शिरोवाक्य "वेदान्त" को सुनना चाहिये।

वाह! क्या खूब कहा है! जो इस वचन पर अमल करेगा, उसे परमानन्दकी प्राप्ति क्यों न होगी? अवश्य होगी।

छप्पय ।

योगी जग विसराय, जाय गिरिगुहा बसत हैं।
करत ज्योतिको ध्यान, मगन आँसू वरषत हैं॥
खगकुल बैठत अंक, पियत निःशंक नयनजल।
धनि धनि हैं वे धीर, धर्‌यो जिन यह समाधिबल॥

हम सेवत बारी बाग सर, सरिता बापी कूपतट ।
खोवत हैं योंहीं आयुको, भये निपटही नीरघट ॥१०३

103. Worthy of all praise are those who live in the caves of mountains and contemplate upon the Supreme Light and whose tears of joy are drunk by birds sitting fearlessly in their laps, while our lives are passing fruitlessly away in pursuing frolicksome avocations in the play-gardens, situated on the banks of the tank, belonging to the spacious mansion of Desire.

* आघ्रातं मरणेन जन्म जरया विद्युच्चलं यौवनं
संतोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढांगनाविभ्रमैः ।
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै-
रस्थैर्येण विभूतिरप्यपहृता ग्रस्तं न किं केन वा ॥१०४॥

मृत्युने जन्मको ग्रस रक्खा है, बुढ़ापेने बिजलीके समान चञ्चल युवावस्थाको ग्रस रक्खा है, धनकी इच्छाने सन्तोषको ग्रस रक्खा है, स्त्रियोंके हावभावोंने मानसिक शान्तिको ग्रस रक्खा है, जलनेवालोंने गुणोंको ग्रस रक्खा है, सर्प और जंगली जानवरोंने वनको ग्रस रक्खा है, दुष्टोंने राजाओंको ग्रस रक्खा है, अस्थिरता या चञ्चलताने धनैश्वर्य्यको ग्रस रक्खा है ; तब ऐसी कौनसी अच्छी चीज़ है, जो किसी दूसरी नाशक चीज़के चंगुलमें नहीं है ? ॥१०४॥

---

* आ-समन्तात घ्रातं-ग्रस्तं ।

खुलासा यह है, कि जन्मको मृत्युका भय है, जवानीको बुढ़ापेका भय है, सन्तोषको लोभका भय है, शान्तिको स्त्रियोंके हावभाव और विलासोंका भय है, गुणोंको उनसे जलने या कुढ़नेवालोंका भय है, वनमें सर्प और हिंसक पशुओंका भय है, राजाओंमें दुष्ट दरबारियोंका भय है, धन और ऐश्वर्य्यमें क्षणभंगुरताका भय है। संसारमें ऐसी कोई अच्छी वस्तु नहीं है, जिसे किसीका भय न हो। मतलब यह है कि, संसार और संसारके सभी पदार्थ नाशमान् हैं। ऐसी कोई चीज़ नहीं है, जिसका काल नाश नहीं कर देता, अथवा जिसे किसी तरहका भय नहीं है।

संसारकी यह दशा है, तब भी तो मनुष्य चेत नहीं करता, यही तो आश्चर्य्य की बात है! अज्ञानी मनुष्य, मोहवश, अपना हानि-लाभ नहीं देखता ; संसारकी झूठी मायामें फँसा रहता है। तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है :—

करत चातुरी मोहवश, लखत न निज हित हान।
शूक मर्कट इव गहत हठ, तुलसी परम सुजान॥
दुखिया सकल प्रकार शठ, समुझि परत तोइ नाहिं।
लखत न कण्टक मीन जिमि, अशन भखत भ्रम नाहिं॥

विषयोंके संसर्गसे मनुष्यके मनमें कामना—इच्छा पैदा होती है। जब इच्छा पूरी नहीं होती, तब क्रोध होता है और

क्रोधसे मोहकी उत्पत्ति होती है। मोह होनेसे प्राणीको अपना हित या परलोककी हानि नहीं दिखती। राग द्वेष प्रभृतिके कारण उसमें ज्ञानदृष्टि नहीं रहती ; पर पढ़ने-लिखनेके कारण वह अपने तईं परम चतुर समझता है और जिस तरह हठ करके तोता बहेलियेके फन्देमें आप ही फँस जाता है और पींजरेमें क़ैद हो जाता है, तथा बन्दर छोटे मुँहकी ठिलियामें रोटीके लिये हाथ डालकर बन्दरवालेके क़ब्जेमें हो जाता है ; उसी तरह विषयी पुरुष, विषयोंके लालचमें आकर, अपने तईं संसार-बन्धनमें फँसा लेता है।

मनुष्य भूख, प्यास, रोग, शोक, दरिद्रता, प्रिय-वियोग, बुढ़ापा, जन्म-मरण, चौरासी लाख योनियोंमें दुःख-भोग तथा नरक प्रभृतिसे हर तरह दुखी है, उसे ज़रा भी सुख नहीं है, पर वह मोहके मारे ऐसा अन्धा हो रहा कि, उसे काँटेमें लगे चारेके लिये फसने वाली मछलीकी तरह कुछ भी नहीं सूझता। जिस तरह मछलीको रोटीका टुकड़ा प्यारा है ; उसी तरह मनुष्य को विषय-भोग प्यारा है। जिस तरह मछलीको काँटा है, उसी तरह मनुष्यको ममता काँटा है। मतलब यह है, अज्ञानी मनुष्य विषय-रूपी चारेके लोभसे ममताके काँटेमें फँसकर अपना नाश कराता है ; पर मज़ा यह कि वह दुःखको दुःख नहीं समझता ; तरह-तरहके भयोंसे घिरा हुआ नाना प्रकारके संकट झेलता है ; मछली, तोते और बन्दरकी तरह बन्धनमें फँसता है, पर निकलना नहीं चाहता। इन दुःखोंका उसे

ज़रा भी ख़याल नहीं आता। रोज़ लोगोंको मरते हुए देखता है, रोज़ बूढ़ोंको असह्य कष्ट उठाते देखता है; पर आप नहीं समझता कि, मेरी भी यही गति होनेवाली है! उलटा हर साल जन्मतिथिको वर्ष-गाँठका उत्सव करता है। मित्रों और रिश्तेदारोंको निमन्त्रण देता है। गाना बजाना और नाच रंग कराता है। कैसी बात है, जहाँ रंज करना चाहिये, वहाँ नादान मनुष्य खुशी मनाता है! उसे समझना चाहिये, कि हर सालगिरहको उसकी उम्रका एक साल कम होता है। महात्मा सुन्दर दासजीने क्या खूब कहा है :—

जबतें जनम लेत, तबही तें आयु घटे।
माई तो कहत, मेरो बड़ो होत जात है॥
आज और काल और दिन-दिन होत और।
दौरयो दौरयो फिरत, खेलत और खात है॥
बालपन बीत्यो, जब यौवन लाग्यो है।
यौवनहु बीते बूढ़ो डोकरो दिखात है॥
"सुन्दर" कहत, ऐसे देखत ही बूझिगयो।
तेल घटि गये; जैसे दीपक बुझात है॥

प्राणी जबसे जन्म लेता है, तभीसे उसकी उम्र घटने लगती है। माँ समझती है कि, मेरा लाल बड़ा होता जाता है। दिन-दिन उसके रङ्ग बदलते हैं। बचपनमें खाता खेलता और भागा फिरता है। बचपनके बीतते ही जवानी आ जाती

है और जवानीके बीतते ही बुढ़ापा आ जाता है और वह बूढ़ा डोकरा सा दीखने लगता है। सुन्दरदास कहते हैं कि, देखते-देखते जिस तरह तेल घट जानेसे चिराग़ बुझ जाता है; उसी तरह वह बुझ जाता है; यानी मर जाता है।

छप्पय।

ग्रस्यो जन्मको मृत्यु, जरा यौवनको ग्रास्यौ।
ग्रसिवेको सन्तोष, लोभ यह प्रगट प्रकास्यो॥
तैसेही समदृष्टि ग्रसित, बनिता बिलास वर।
मत्सर गुण ग्रसिलेत, ग्रसत बनको भुजंगवर॥
नृप ग्रसित किये इन दुर्जनन, कियौ चपलता धन ग्रसित।
कछुहू न देख्यो बिन ग्रसित जग, याही तें चित अति त्रसित॥१०४॥

104. Birth is threatened by death; youth which is transitory like lightning, by old age; contentment by greed for wealth; mental peace by the strong allurements of women; good qualities by jealous persons; forests by serpents and wild animals; kings by wicked courtiers and wealth and power by shortness of duration. What good thing exists there which does not lie in the clutches of something else capable of destroying it?

आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते
लक्ष्मीर्यत्र पतन्ति तत्र विवृतद्वारा इव व्यापदः॥
जातं जातमवश्यमाशुविवशंमृत्युः करोत्यात्मसात्तत्किं
नाम निरंकुशेन विधिना यन्निर्मितं सुस्थितम्॥१०५॥

सैकड़ों मानसिक और शारीरिक रोग स्वास्थ्यका नाश कर डालते हैं। जहाँ सम्पत्ति और प्रभुता है, वहाँ विपत्ति दरवाज़ा तोड़कर चोरकी तरह चढ़ाई करती है। जो जन्म लेता है; उसे मृत्यु शीघ्र ही ज़बर्दस्ती अपने जाबड़ोंमें फँसा लेती है; तब निरङ्कुश विधाताने सदा स्थायी रहनेवाली कौनसी चीज़ बनाई है ?॥१०५॥

मनुष्य-शरीर रोगोंका घर है। मानसिक और कायिक रोग सदा उसके भीतर डेरा डाले रहते और स्वास्थ्यका नाश करते रहते हैं। सम्पत्ति पर विपत्ति सदा ताक लगाये खड़ी रहती है और ज़रासा भी मौक़ा पाते ही दरवाज़ा तोड़ कर उसका विनाश कर देती है। जन्म लेनेवालेके सिर पर मौत सदा मँडराया करती है एवं दाँव-घात देखती रहती है और जब मौक़ा पाती है, उसे अपने पञ्जोंमें फँसा लेती है। सारांश यह कि, शरीरके साथ रोग, सम्पत्तिके साथ विपत्ति, जन्मके साथ मृत्यु, संयोगके साथ वियोग, सुखके साथ दुःख और जवानीके साथ बुढ़ापा प्रभृति एक दूसरेके नाशक विधाता ने लगा रक्खे हैं। विधाताने कोई भी चीज़ सदा स्थायी नहीं बनाई ; जो कुछ बनाया है वह चन्दरोज़ा और नाशमान् बनाया है।

संसारकी असारता देखकर ; मनुष्यको अपने तई, इस संसारमें, पाहुनेकी तरह समझना चाहिये। जिस तरह पाहुना

जहाँ कहीं जाता है और जहाँ ठहरता है, वहाँ के लोगोंसे दिल नहीं लगाता ; उसी तरह समझदारोंको इस दुनियासे दिल न लगाना चाहिये।

जिसको रहना उत घर,सो क्यों तोड़े मित्त ।
जैसे पर-घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥
इत पर-घर उत है घरा, बनिजन आये हाट ।
कर्म करीना बेचिके, उठि करि चाले बाट ॥
मेरा संगी कोई नहीं, सबै स्वारथी लोय ।
सुन परतीति न ऊपजे, जीव विश्वास न होय ॥
"कबिरा" ऐसा संसार है, जैसा सैमल-फूल ।
दिन दशके व्यौहारमें, झूठे रंग न भूल ॥

मनुष्यका अपना घर वह है जहाँसे वह आया है, यह नहीं ; अतः उसे अपने उस घरसे दिल न हटाना चाहिये। इस घरमें आकर मिहमानकी तरह रहना चाहिये और मिहमानकी तरह ही अपना दिल उठाये रखना चाहिये।

यह पराया घर है और वह अपना घर है। यहाँ हाटमें अपना व्यवसाय करने आये हैं। हाटमें सौदा बेच कर अपनी राह लगेंगे ; यानी इस दुनियामें अपने कर्मोंका फल भोगकर यहाँसे चले जायँगे।

इस दुनियांमें अपना कोई साथी नहीं है। सभी मतलबी यार हैं, और मतलबके लिये ही हमारे बन रहे हैं। सुनकर

प्रतीत नहीं होती और जीमें विश्वास नहीं आता ; पर बात सच्ची है।

कबीरदासजी कहते हैं,—यह संसार सेमलके फूलकी तरह हैं। दश दिनके व्यवहार और मेल-जोलसे झूठे रंग पर न भूलना चाहिये।

सारांश यह है कि, यह दुनिया पराया घर है और प्राणी-मात्र यहाँ मिहमान हैं; अथवा यह संसार सराय है और हमलोग मुसाफिर हैं। यदि हम पाहुने हैं तो, और यदि हम मुसाफिर हैं तो—दोनों हालतोंमें ही—हमें इस दुनियासे दिल न लगाना चाहिये। हम जहाँसे आये हैं, अथवा जहाँ हमारा घर है, हमें अपना दिल वहाँके लिये ही उठाये रहना चाहिये।

दुनिया गोरख-धन्धा है।

यह संसार बिल्कुल मिथ्या और असार है ; इसमें कुछ भी तत्त्व नहीं है। केलेके खंभे और लहसनको ज्यों-ज्यों छीलते जाइये, त्यों-त्यों उनके भीतरसे सिवा पत्तों और छिलकोंके कुछ भी नहीं निकलता। यह जगत् भी उनकी तरह ही सारहीन है। इसमें कुछ भी नहीं है। यह कोरा माया-जाल या धोखा है। इस गोरखधन्धेमें जो फँस जाते हैं, वे बुरी तरह नष्ट होते और अन्तमें पछताते हैं। इसलिये भाइयो! इस माया-जालसे

निकलनेकी चेष्टा करो। खूब ख़बर्दार रहो! इस जगत्‌के सभी सुख-भोग झूठे और प्राणीके पक्षमें अहितकर हैं। मि० आग़ा हश्रने थियेटरके गानेके तर्ज़में क्या खूब कहा है :—

इस जालमें सब उलझाये, दुनिया है गोरखधन्धा।
डाल रखा है सबने गलेमें, लोभ-मोहका फन्दा॥
ये दुनियां है बूरका लड्डू; देखके जी ललचाये।
ना खाये तौभी पछताये, खाये तो पछतायें॥
फिर भी सकल जगत है अन्धा।
इस दुनियाके सुख भी झूठे, इसका प्यार भी झूठा।।
सावधान हो! इस ठगनीने बड़ों बड़ोंको लूटा।
मूरख! मत बन इसका बन्दा॥

यह चोला परोपकार और ईश्वर-भजनके लिये मिला है।

आप जब इस दुनियामें आनेके लिये माँ के गर्भमें थे, तब आपने परमात्मासे प्रार्थना की थी, कि हे नाथ! मुझे इस नरक-कुण्डसे निकालिये; मैं दुनियामें जाकर माया-मोहमें न फँसकर, केवल आपकी ही परिस्तिश और उपासना तथा जगत्‌के दूसरे प्राणियोंका उपकार करूंगा; पर यहाँ आकर

बचपन आपने खेल-कूदमें और जवानी स्त्रीके साथ ऐश-आराम में बिता दी !! क्या आपको ऐसा ही करना चाहिये था ?

यह मनुष्य-चोला इसलिये मिला है, कि मनुष्य इस जगत्‌में दूसरे प्राणियोंकी शुभचिन्तना करे और अपने कर्म-बन्धन काट कर परमपदकी प्राप्ति करे ; पर लोग तो इसकी चमक-दमक पर ऐसे भूल जाते हैं, कि उन्हें अपनी आगेकी सफ़रका ख़याल ही नहीं रहता। ऐसा समझने लगते हैं, मानो वह सदा यहीं रहेंगे। यहाँके लिए, जहाँ उन्हें बहुत ही थोड़े दिन रहना होता है, हज़ारों तरहके सामान करते हैं ; पर आगेकी लम्बी सफ़र के लिये कुछ भी नहीं करते ! यहाँके लिये इतना आड़म्बर और वहाँके लिये कुछ नहीं। यह चतुराई तो अच्छी नहीं मालूम होती। उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है :—

क्या यह दुनियाँ, जिसमें कोशिश हो न दीं के वास्ते।
वास्ते वाँ के बी कुछ—या सब यहीं के वास्ते॥

इस दुनियामें आकर कुछ परलोकके लिये भी करना चाहिये। यह नहीं, कि उधरकी फिक्र बिल्कुल ही न की जाय।

हमें सृष्टिके प्रत्येक पदार्थ और नेचरके प्रत्येक कामसे परोपकारकी शिक्षा मिलती हैं। सूर्य परोपकारके लिये ही आकाशमें भ्रमण करता है। चन्द्रमा परोपकारके लिये ही कष्ट सहकर जगत्‌में शीतल चाँदनी छिटकाता है। सितारे

अँधेरी रातमें मुसाफिरोंको राह दिखानेके लिये ही रात-भर टिमटिमाते हैं। ध्रुव उत्तर दिशाका ज्ञान कराने और समुद्र के अगाध और अनन्त जलमें जहाज़ोंको राह दिखानेके लिये ही चमकता है। नदियाँ परोपकारके लिये ही बहती हैं। वृक्ष परोपकारके लिये ही फलते हैं। परोपकारके लिये ही, शेषजीने इस लम्बी-चौड़ी पृथिवीका भार अपने सहस्र फणों पर धारण कर रखा है। कच्छपने, परोपकारके लिये ही शेष समेत पृथ्वीका भार अपनी पीठ पर वहन कर रक्खा है। भगवान्ने परोपकारके लिये ही बारम्बार अवतार लेकर जन्म-मरणका कष्ट उठाया है। शिवि और दधीचिने परोपकारके लिये ही अपनी जानें दे दीं। किसी कविने कहा है :—

बिरछा फलै न आप को, नदी न अचवे नीर।
परोपकार के कारणे, सन्तन धरो शरीर॥

शेष शीश धारे धरा, कछु न अपनो काज।
परहित पर सारथी रथी, वाइक बने न लाज॥

किसी जङ्गलमें चूहोंकी एक क़तार चली जाती थी। उनमें एक चूहा अन्धा था। उसके मुखमें एक तिनका पकड़ाकर, दूसरे चूहेने उसे अपने मुँहमें पकड़ रक्खा था। उसके सहारे अन्धा चूहा भी चला जाता था। यह जानवरोंका हाल है। पशुओंमें भी परोपकार-बुद्धि होती है। जो मनुष्य होकर परोप-

कार शून्य है, वह पशुओंसे भी गया-बीता है। ख़ासकर मनुष्य-देह तो परोपकारके लिये ही दी गयी है ; अतः मनुष्यको परोपकार करना ही चाहिये। कहा है :—

परोपकारः कर्त्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि।
परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि॥
परोपकारशून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम्।
यावन्तः पशवस्तेषां चर्माप्युपकरिष्यति॥
आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को न जीवति मानवः।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति॥

धन और प्राणोंसे परोपकार करना चाहिए ; क्योंकि परोपकारके पुण्यके बराबर सौ यज्ञोंका भी पुण्य नहीं है।

परोपकार-शून्य मनुष्योंके जोनेको भी धिक्कार है! पशुओंका चमड़ा भी पराये काम आता है।

अपने लिये इस लोकमें कौन नहीं जीता? पराये लिये जो जीता है वही जीता है और तो मृतकवत् हैं।

सौ यज्ञोंका पुण्य भी परोपकार-जन्य पुण्यकी
बराबरी नहीं कर सकता।

एक वैश्यने अपने करोड़ों रुपये यज्ञोंमें ख़र्च कर दिये। शेषमें वह निर्धन हो गया। उसकी स्त्रीने उसे सलाह दी

कि, तुम राजाको अपने दो चार यज्ञोंका फल देकर धन ले आओ, तो शेष जीवन सुखसे कट जाय। वैश्य राज़ी हो गया। सेठानीने उसे राहमें खानेके लिए नौ रोटियाँ रख दीं। वह वनमें पहुँच कर एक वृक्षके नीचे ठहर गया। वहाँ पानी ज़ोरसे बरसनेके मारे राह न थी। उसी पेड़के खोंतरेमें एक कुतिया व्यायी थी। वह वर्षाके मारे नौ दिनसे ख़ूराककी तलाशमें कहीं जा न सकी थी; इसलिये भूखी मरणासन्न हो रही थी। वैश्यने उसे अपनी सब रोटियाँ खिलादीं और आप भूखा रह गया। वह भूखा-प्यासा राजाके पास पहुँचा और उसे अपनी राम-कहानी कह सुनाई। राजाने राज-ज्योतिषीसे पूछा—"इस सेठके कौनसे यज्ञका फल उत्तम है?" ज्योतिषीने कहा—"महाराज! इसने राहमें कुतियाको अपनी रोटियाँ खिलाकर जो उपकार किया है, उसीका फल उत्तम है; आप उसे ही ख़रीद लीजिये।" वैश्य उस परोपकारके पुण्य-फलको देने पर राजी न हुआ; तब राजाने उसे कई लक्ष मुद्रा देकर विदा किया। सारांश यह, कि संसारमें परोपकार और दयाके समान और पुण्य नहीं है। अतः मनुष्यको निःस्वार्थ भावसे परोपकार करना चाहिये। जो मनुष्य होकर परोपकार नहीं करता, उसका जन्म वृथा है।

किसीने कहा है :—

जातः कूर्मः स एकः पृथुभुवनभरायार्पितं येन पृष्ठं
श्लाघ्यं जन्म ध्रुवस्य भ्रमति नियमितं यत्र तेजस्विचक्रम् ॥

संजातव्यर्थपक्षाः परहितकरणे नोपरिष्टान्न चाधो
ब्रह्माण्डोदुम्बरान्तर्मशकवदपरे प्राणिनोजातनष्टाः ।

संसारमें उस प्रसिद्ध :कछुएका जन्म ही सफल है, जिसने इस विशाल पृथ्वीका भार उठानेके लिये अपनी पीठ दे रक्खी है ; और इसी तरह ध्रुवका जन्म प्रशंसनीय है, जिसको बीच में लेकर सप्तऋषियोंका ज्योति-मण्डल घूमता है। परोपकार करनेमें अशक्य मनुष्योंका जन्म इस ब्रह्माण्डमें गूलरके बीचमें रहने वाले उन मच्छरोंके समान वृथा है, जो पंख सहित होनेपर भी कुछ नहीं कर सकते।

अतः भाइयो ! स्त्री-पुत्र प्रभृतिके लिए अमूल्य जीवन वृथा नाश मत करो। ये आपके कोई नहीं। ये यहीं के साथी और बड़े स्वार्थी हैं ; परलोकमें आपके साथ न जायँगे ; वहाँ केवल धर्म ही आपके साथ जायगा। मौत आपके लेजानेके लिए आना ही चाहती है। इसलिये चेत करो, आँखें खोलो, अब न सोओ। साँस-साँस पर जगदीशका सुमिरन करो और निष्काम भावसे प्राणियों पर दया और परोपकार करो ; क्योंकि मरने पर ये ही आपके काम आयेंगे।

कविता या गानेकी चीज़ोंका प्रभाव मनुष्य पर बड़ी जल्दी पड़ता है ; इसीसे हम चार-पाँच चित्ताकर्षक और मोह-भञ्जन करनेवाले गाने नीचे देते हैं :—

भजन (रागबिहाग)

हे मन गुमानी ! चेत कर ; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ।
बीती यह जाती है उमर ; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥१॥
नारी नरककी खान है ; जिसपर जगत गलतान है ।
इसका मज़ा इस आन है ; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥२॥
सुत बन्धु माता और पिता ; कुनबा कबीला आशनाँ ।
सब सुखके साथी हैं तेरे ; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥३॥
दुनियां कहौ क्या माल है ; मायाका फैला जाल है ।
इसपर तू क्या ख़ुशहाल है ; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥३॥
कहना मेरा ले मान तू, हरगिज़ न कर अभिमान तू ।
एक प्रभुको साँचा जान तू ; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥५॥

भजन ।

क्या देख दिवाना हुआ रे ॥ टेक ॥
माया बनी सारकी सूली, नारी नरकका कूआ रे ॥१॥
हाड़ चाम का बना पींजरा, तामें मनुआँ सूआ रे ॥२॥
भाई बन्धु और कुटुम्ब घनेरा, तिनमें पच २ मूआ रे ॥३॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हार चला जग जूआ रे ॥४॥

भजन (राग काफी) ।

नर समझत नाहिं अनारी ॥ टेर ॥

गर्भवासमें उलटो लटक्यो, पायो दुःख अति भारी ।
जो प्रभु ! अबके मैं बाहर निकसों, तेरो भजन करूँ हरबारी ।
पलक नाहिं देउँ बिसारी ॥ १ ॥

जन्म होत माया लिपटायो, भूल गयो सुध सारी ।
भक्ति भावमें चित ना राख्यो, ऐसी कुमत बिचारी ।
जन्मकी कर दई ख्वारी ॥ २ ॥

आया था कुछ लाभ करनको, गाँठकी पूँजी हारी ।
सौदा कर ले राम नामका, आओ शरण गिरधारी ।
भरोसा जिनका है भारी ॥ ३ ॥

श्री सतगुरु तोहि नित समझावें, वे हैं सबके हितकारी ।
आप तरें औरनको तारें, कहै "हरिदास" पुकारी ।
उम्र योंहीं मुफ्त गुज़ारी ॥४॥

ग़ज़ल ।

उठ जागरे मुसाफ़िर ! किस नींद सो रहा है ? ।
जीवन अमूल्य प्यारे, क्यों मुफ्त खो रहा है ? ॥१॥
रहना न यहाँ पे होगा, दुनियाँ सराय फ़ानी ।
फँसकर बदीमें प्यारे, क्यों मस्त हो रहा है ? ॥२॥

ले ले धरमका तोषा, मत भूल ऐ दिवाने ! ।
नेकी की खेती करले, क्यों पाप बो रहा है ? ॥३॥
माता पिता वा भाई, होंगे न कोई साथी ।
क्यों मोहरूपी बोझा, नाहक़ को ढो रहा है ? ॥४॥
किश्ती तेरी पुरानी, हिक्मतसे पार करले ।
ऐ दिल ! अथाह जलमें, तू क्यों डुबो रहा है ? ॥५॥

भजन (लावनी)

पड़ लोभ मोहके जालमें, नर आयू क्यों खोता है ॥ टेक ॥
यह जग जान रैनका सुपना, जिसको कहता अपना-अपना ।
भूल गया ईश्वरका जपना, फँसा हुआ धन-मालमें ।
क्या सुखकी नींद सोता है ? ॥ १ ॥
चलै अकड़ बन छैल छबीला, अन्त समय सब हो जाय ढीला ।
काम न आये कुटुम्ब-कबीला, भूला जिनके ख़यालमें ।
कोई साथी नहिं होता है ॥ २ ॥
अब क्यों सिर धुनि-धुनि पछितावे, रुदन करै और रौल मचावे ।
कुछ नहिं तेरी पार बसावे, चूका पहिली चालमें ।
क्या खड़ा-खड़ा रोता है ? ॥ ३ ॥
समझ सोच कर क़दम उठाना, मुश्किल मनुषजन्म है पाना ।
कहै "मुरारी" जो हो दाना, भज हर को हर हाल में ।
क्यों पाप-बीज बोता है ? ॥ ४ ॥

महात्मा सुन्दरदासजी की भी सुनिये :—

बैरी घर माँहि तेरे, जानत सनेही मेरे।
दारा सुत वित्त तेरे, खोंसि-खोंसि खायँगे।
औरहु कुटुम्बी लोग, लूटें चहुँ ओरही ते।
मीठी मीठी बात कहि, तोसूँ लपटायेंगे।
संकट परेगो जब, कोई नहीं तेरो तब।
अन्तही कठिन, वाकी बेर उठि जायेंगे।
"सुन्दर" कहत, तातें झूठो ही प्रपञ्च सब।
स्वपनकी नाईं, यह देखत बिलायँगे ॥१॥

घरी-घरी घटत, छीजत जात छिन-छिन।
भीजतही गरिजात, माटीको सो ढेल है।
मुकुतिके द्वार आई, सावधान क्यूँ न होइ।
बेर-बेर चढ़त न, तियाको सो तेल है।
करि ले सुकृत, हरि भज ले अखण्ड नर।
याहीमें अन्तर पड़े, यामें ब्रह्म मेल है।
मनुष्य-जनम यह, जीत भावै हार अब।
'सुन्दर' कहत यामें जूआको सो खेल है ॥२॥

जिनको तू अपने स्नेही-मित्र और स्त्री-पुत्र, माता-पिता भाई-बहन आदि समझता है, वे तेरे घरमें तेरे ही दुश्मन हैं। वास्तवमें, वे सब तेरे शत्रु हैं; पर मोहके कारण तुझे वे मित्र

से मालूम होते हैं। स्त्री-पुत्र आदि तेरा धन तुझसे छीन-छीन कर खाँयँगे। और कुटुम्बी लोग भी तुझे चारों ओर से लूटेंगे और मीठी-मीठी बातें बनाकर तेरे लिपटेंगे। तेरे लिये वे धन-दौलत, जीव-जान और सर्व्वस्व तक स्वाहा कर देनेको डींगें मारेंगे, लेकिन जब तुझ पर संकट पड़ेगा, काल तुझ पर आक्रमण करेगा, तब तेरा कोई न होगा। अन्तकाल ही कठिन है और उस समय सब तुझे छोड़-छोड़ कर दूर हो जाँयँगे। "सुन्दरदास" कहते हैं, इसलिये यह सब प्रपञ्च झूठा है; कोई किसीका साथी नहीं है। मरने पर सब स्वप्नकी माया की तरह बिलाय जायँगे।

घड़ी-घड़ी उम्र घटती है और क्षण-क्षण काया छीजती है। जिस तरह मिट्टीका ढेला भीजते ही गल जाता है; उसी तरह यह काया गल जाती है। अरे मूढ़! मुक्तिके द्वार पर आकर, होशियार क्यों नहीं होता? मनुष्य-चोला पाकर, आवागमनसे पीछा क्यों नहीं छुड़ाता? यह चोला तुझे उसी तरह बारम्बार नहीं मिलेगा; जिस तरह त्रियाका तेल बार-बार नहीं चढ़ता। तू पुण्य करले और अखण्ड अविनाशी ब्रह्मको भजले। इसमें अन्तर पड़नेसे अन्तर पड़ता है और इसमें लग जानेसे जीव ब्रह्ममें मिल जाता है। इस मनुष्य-जन्मका मिलना जूएका सा खेल है। अब चाहे जीत या हार; बाज़ी मार ले और चाहे खो दे।

दोहा ।

रोग वियोग विपत्ति बहु, देह आयु आधीन ।
निडर बिधाता जग रच्यो, महा अथिरता लीन ॥१०५॥

105. People's health is destroyed by hundreds of mental and physical diseases. Wherever there is wealth misfortunes come in like thieves, breaking open the doors of houses. He who is born, soon falls helplessly into the jaws of death from which there is no escape. Then what is there in this world which is made by the wilful Brahama to last for ever ?

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थीयते गर्भमध्ये कान्ता-
विश्लेषदुःखव्यतिकर विषमे यौवने विप्रयोगः ॥ नारीणामप्य-
वज्ञा विलसति नियतं वृद्धभावोऽप्यसाधुः संसारे रे मनुष्या
वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित् ॥१०६॥

प्रथमावस्थामें प्राणी माताके गर्भमें पड़ा रहता है। वहाँ वह, मलमूत्र राध लोहू प्रभृति गन्दी चीज़ोंके बीचमें पड़ा हुआ, बड़े-बड़े कष्ट भोगता और हिल भी नहीं सकता। दूसरी अवस्था—जवानीमें, वह अपनी प्यारी स्त्रीकी जुदाईके दुःख सहन करता है। तीसरी अवस्था—बुढ़ापेमें, वह स्त्रियोंसे अनादृत होकर दुःख में पड़ा रहता है। हे मनुष्यो ! इस संसारमें ज़रासा भी सुख हो तो हमें बताओ ॥१०६॥

गर्भावस्था।

माताके खून और पिताके वीर्य्यसे, गर्भाशयमें, प्राणीकी देह बनती है। चार मास बाद, उस देहमें जीव आ जाता है। उस समय वह घोर अन्धकारपूर्ण क़ैदखानेमें हाथ-पाँव-बधा हुआ उल्टा लटका रहता है। मुँह पर झिल्ली होनेके कारण, न बोल सकता है और न रो सकता है। जिस स्थानमें वह नौ मास तक रहता है, वह स्थान—गर्भाशय—मल, मूत्र, राध, खून, पीव और कफ प्रभृति महागन्दे पदार्थोंसे भरा रहता है। वह जगह गन्दी होनेके सिवा, इतनी तङ्ग भी है कि, वहाँ वह अच्छी तरह फैल-पसर भी नहीं सकता। उसी मैली और तङ्ग जगहमें, जो साक्षात् नरक है, वह बड़े ही कष्टसे नौ महीने काटता है। नरक-कुण्डके कष्टोंसे दुःखी होकर, वह परमात्माको याद करता और उससे वादा करता है कि, इस बार मैं जन्म लूँगा, तो, और कुछ न करके, केवल आपकी उपासना ही करूँगा। ख़ैर, भगवान् दयाकर उसे बाहर निकालते हैं; पर बाहर आतेही वह, माया-मोहमें फँसकर, ईश्वरको भूल जाता है।

बालावस्था ।

बालावस्था भी परम दुःखकी मूल है। इस अवस्थामें प्राणी पराधीन और अतीव दीन रहता है। अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता और दुःख-सन्ताप,—ये विकार इस अवस्थामें आ जाते हैं। बालक एक पदार्थ की ओर दौड़ता, दूसरेको पकड़ता और तीसरेकी इच्छा करता है। वह बड़ी-बड़ी इच्छायें करता है, पर उसकी इच्छायें पूरी नहीं होतीं। वह सदा तृष्णाके फेरमें पड़ा रहता और क्षण-क्षणमें भयभीत होता है। उसे कभी शान्ति प्राप्त नहीं होती। जिस तरह कदलीबनका हाथी, सङ्कलोंमें बँधा हुआ, दीन हो जाता है; उसी तरह यह चैतन्य पुरुष, बालावस्था रूपी सङ्कलोंमें, महादीन हो जाता है। जिस तरह क्षण-क्षणमें द्वारकी ओर दौड़ने वाले कुत्तेका अपमान होता है; उसी तरह बालकका अनादर होता है। उसे सदा माता-पिता और बान्धवोंका भय रहता है। यहाँ तक कि, अपनेसे बड़े बालकों और पशु-पक्षियोंसे भी उसे भीत रहना पड़ता है। स्त्रीके नयन और नदीके प्रवाहसे भी बालक और मनकी चञ्चलता अधिक है। सच तो यह है कि, बालक और मनकी चञ्चलता समान है; और सबकी चञ्चलता इन दोनोंकी चञ्चलताके नीचे है। जिस तरह वेश्याका मन एक पुरुषमें नहीं ठहरता;उसीतरह बालकका मन भी एक पदार्थमें नहीं ठहरता।

इस काम या पदार्थसे मेरा अनिष्ट होगा या कल्याण,

इतना भी ज्ञान बालकको नहीं होता। जिस तरह ज्येष्ठ आषाढ़में पृथ्वी तपती रहती है ; उसी तरह सुख-दुःख और इच्छा प्रभृतिके दोषोंसे बालक जलता रहता है।

बालकमें अशक्तता और पराधीनता इतनी होती है कि, वह आप न उठ सकता है, न बैठ सकता है, न चल सकता है और न खा सकता है। कोई उठा लेता है, तो गोदमें आ जाता है ; नहीं तो अपने मल-मूत्रमें ही पड़ा-पड़ा रोया करता है। कोई दूध पिला देता है, तो पी लेता है ; नहीं तो रोता रहता है। यह शिशु अवस्था है। इस अवस्थाको पार कर वह बालकावस्थामें आता है ; तब लिखने-पढ़नेका भार उसके सिर पर आता है। उस समय बालक गुरुसे इस तरह डरता है ; जिस तरह कोई यमदूतसे डरता है। ज़रा भी दङ्गा करने या न पढ़नेसे माता-पिता और गुरु प्रभृतिकी ताड़नायें सहनी पड़ती हैं। अगर उसे कुछ रोग हो जाता है, तो वह साफ-साफ कह नहीं सकता और उसे सह भी नहीं सकता ; भीतर-ही-भीतर जलता और दुःख पाता है। यह अवस्था महामूर्खतापूर्ण है। बालक कभी कहता है कि, मुझे बर्फका टुकड़ा भून दो ; कभी कहता है कि, आकाशका चाँद उतार दो। भोला इतना होता है कि, थालीमें जल भरकर चाँद दिखाने और दूधकी जगह आटा घोल कर दे-देनेसे भी राज़ी हो जाता है। इस अवस्थामें दुःख-ही-दुःख हैं; सुख और स्वाधीनता का नाम भी नहीं। परमात्मा यह अवस्था किसीको न दे।

युवावस्था।
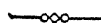
बालावस्थाके बाद युवावस्था आती है। यद्यपि यह अवस्था नीचेसे ऊपर चढ़ती है; पर यह और भी बुरी है। १५।१६ सालकी अवस्थामें शादी कर दी जाती है। इसे 'शादी ख़ाने आबादी' कहते हैं, पर यह है बर्बादी। बेचारेके पैरोंमें ऐसी बेड़ियाँ डाल दी जाती हैं, कि उसे जन्म-भर आज़ादी नहीं मिलती। लोहे और काठकी बेड़ियोंसे चाहे मनुष्यको छुटकारा मिल जाय; पर स्त्रीरूपी बेड़ियोंसे जीवन-भर छुटकारा नहीं मिलता। अब तक पढ़ने लिखनेकी चिन्ता और गुरु प्रभृतिके भयसे ही दुखी रहना पड़ता था; पर अब और फिक्र—चिन्तायें सिर पर सवार होती हैं। वही माता-पिता, जिन्होंने शादी-शादी कहकर पैरोंमें स्त्रीरूपी बेड़ियां पहना दी थीं, उठती जवानीके पट्ठेको भून-भूनकर खाते हैं। कहते हैं,—"हमने तुझे पढ़ा-लिखा दिया, तेरा शादी-व्याह कर दिया; हमारा कर्त्तव्य पूरा हुआ; अब तू कमा। अगर नहीं कमाता है, तो अपनी स्त्री को लेकर अलग हो जा।" इस समय बेचारे की जान पर बन आती है। नौकरी या रोज़गारका मिलना कोई खेल नहीं; इसलिये बेचारा भीतर-ही-भीतर जल-जलकर ख़ाक होने लगता है। अगर धनी घर में जन्म होता है, तो ये कष्ट भोगने नहीं पड़ते। उस

अवस्थामें और ही नाशके समान आ इकट्ठे होते हैं। धन, यौवन और प्रभुता इनमेंसे प्रत्येक अनर्थकी जड़ है। जहाँ ये सब इकट्ठे हो जायें, वहाँका तो कहना ही क्या? जिस तरह धन पानेकी आशासे, निर्धन लोग धनीको घेरे रहते हैं; उसी तरह, इस अवस्थामें, सब दोष आकर युवकको घेर लेते हैं। युवावस्था रूपी रात्रिको देखकर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार "आत्मज्ञान रूपी धनको" लूटते हैं; इसलिये चित्त शान्त नहीं रहता और विषयोंकी ओर दौड़ता है। विषयोंका संयोग होनेसे तृष्णा बढ़ती है। इस तृष्णा-राक्षसीके मारे प्राणी जन्म-जन्मान्तरमें दुःख भोगता है।

इस अवस्थामें विषय-भोगोंकी ओर मन ज़ियादा रहता है। स्त्री अत्यधिक प्यारी लगती है। नितनयी स्त्रियों पर मन चला करता है। अगर कोई मित्र आता है, तो नवयुवक उससे कहता है,—"अरे यार! वह नाज़नी कैसी ख़ूबसूरत है! उसने तो मेरा दिलही ले लिया। उसके दीदार बिना मुझे क्षण-भर भी चैन नहीं। वह कैसे मिले?" बस; ऐसीही बातें अच्छी लगती हैं। अगर इच्छित स्त्री नहीं मिलती, तो मनमें क्रोध होता है; क्रोधसे मोह होता है और मोहसे बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धिके नष्ट होनेसे, मनुष्य बिना पतवारकी नावकी तरह नष्ट हो जाता है। समुद्रमें अगाध जल भरा है। उसमें अनन्त तरंगें उठती हैं। इतना विशाल महासागर, ईश्वर-आज्ञाके विरूद्ध, मर्यादाको नहीं मेटता; पर

युवावस्था शास्त्र और ईश्वर दोनोंकी आज्ञाओंको मेट देती है। जिस तरह अँधेरेमें पदार्थोंका ज्ञान नहीं रहता ; उसी तरह युवावस्थामें शुभ-अशुभ या भले-बुरेका ज्ञान नहीं रहता। जवानी दीवानीमें लोक-लाज और हया-शर्म सब हवा हो जाती हैं।

लिख चुके हैं, युवा अवस्थामें स्त्री सबसे अधिक प्यारी लगती है। अगर किसी तरह स्त्रीसे वियोग हो जाता है, तो उसकी वियोगाग्निमें पुरुष इस तरह जलता है, जिस तरह दावाग्निसे वनके वृक्ष जलते हैं। युवावस्थामें बड़े-से-बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धि उसी तरह मलिन हो जाती है ; जिस तरह वर्षाकालमें निर्मल नदी मलिन हो जाती है। इस अवस्थामें "वैराग्य और सन्तोष प्रभृति" गुणोंका अभाव हो जाता है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्रजीने महामुनि वशिष्ठजीसे कहा है—"हे मुनिवर! जिस महासागरमें अनन्त और अगाध जलराशि है तथा लाखों करोड़ों बड़े-बड़े मगर, मच्छ और घड़ियाल हैं, उसका पार करना महा कठिन है ; पर मैं उसका पार करना उतना मुश्किल नहीं समझता, जितना कि मैं इस युवावस्थाका पार करना कठिन समझता हूँ। युवावस्था विषयोंकी ओर ले जाने वाली, महा अनर्थकारी और लोक-परलोक नशाने वाली है। जिस तरह आकाशमें बनका होना आश्चर्य्यकी बात है ; उसी तरह युवावस्थामें सब सुखोंके मूल "वैराग्य, विचार, सन्तोष और शान्ति" का होना आश्चर्य्य है।"

महाराजा रामचन्द्र एक और जगह कहते हैं :—"युवावस्था! मुझ पर दया करके तू न आना! मुझे तेरी ज़रूरत नहीं, क्योंकि मेरी समझमें तेरा आना दुःखोंका कारण है। जिस तरह पुत्रके मरनेका सङ्कट पिताके सुखके लिए नहीं होता; उसी तरह तेरा आना भी सुखके लिए नहीं होता।"

वृद्धावस्था।

यह अवस्था पहली दो अवस्थाओंसे भी बुरी है। बाल्यावस्था महा जड़ और अशक्त है; युवावस्था अनर्थ और पापोंको मूल है तथा वृद्धावस्थामें शरीर जर्ज्जर और बुद्धि क्षीण हो जाती है, कूब निकल आता है, दाँत गिर पड़ते हैं, बाल सफेद हो जाते हैं, बल कम हो जाता है, आँखोंसे कम सूझता या सूझता ही नहीं, कानोंसे सुनाई नहीं देता, पैरोंसे चला नहीं जाता, लकड़ी टेक-टेक कर चलना होता है, कफ और खाँसी अपना दौर-दौरा जमा लेते हैं, हर समय साँस फूलने लगता है। बहुत क्या—सारे रोग, शत्रुओंकी तरह मौक़ा पाकर, इस अवस्थामें चढ़ाई कर देते हैं। स्त्री-पुत्रादिक सभी नाते-रिश्तेदार बूढ़ेको उसी तरह त्याग देते हैं; जिस तरह पके फलको वृक्ष और निकम्मे बूढ़े बैलको बैलवाला त्याग देता है।

ज़रा अवस्था या बुढ़ापा मृत्युका पेशख़ीमा या लेनडोरी है। जिस तरह साँझ होनेसे रात निकट आती है ; उसी तरह बुढ़ापेके आनेसे मौत नज़दीक आती है। सन्ध्याके आने पर जो दिन की इच्छा करते हैं और बुढ़ापेके आने पर जो जीने की अभिलाषा रखते हैं, वे दोनों ही मूर्ख हैं। जिस तरह बिल्ली चूहेके खा जानेकी घातमें रहती है और चाहती है कि, चूहा आवे तो खा जाऊँ ; उसी तरह मौत देखती रहती है कि, बुढ़ापा आवे तो मैं इसे ग्रहण करूँ। ऐसा जान पड़ता है, मानो वृद्धावस्था कालकी सखी है। वह आकर रोगरूपी आगसे शरीरके मांसको जलाती या पकाती है और उसका स्वामी—काल आकर प्राणीको भक्षण कर जाता है। अशक्तता, अङ्गपीड़ा और खाँसी,—ये तीनों कालकी पट-रानियाँ हैं। जिस तरह बनमें बाघिन आकर पहले शब्द करती या गरजती और मृगका नाश करती है ; उसी तरह शरीर-रूपी बनमें खाँसी-रूपी बाघिन आकर बल-रूपी मृगका नाश करती है। जिस तरह चन्द्रमाके उदय होनेसे कमलिनी खिल उठती है ; उसी तरह बुढ़ापेके आनेसे मृत्यु प्रसन्न होती है। जरा बड़ी ज़बर्दस्त है। इसने बड़े-बड़े शत्रुहन्ताओंके मान मर्दन कर दिये हैं। यह शरीरको आगकी तरह जलाती है। जिस तरह वृक्षमें आग लगती है, तब धूआँ निकलता है ; उसी तरह शरीर-वृक्षमें जरा-रूपी अग्निके लगनेसे तृष्णा रूपी धूआँ निकलता है। जरा-रूपी ज़ञ्जीरमें बँधनेसे मनुष्य दीन

हो जाता है, अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, बल क्षीण हो जाता है, इन्द्रियाँ निर्बल हो जाती हैं और शरीर जर्जर हो जाता है ; पर तृष्णा उलटी बलवती हो जाती है। इस अवस्थामें घोर दुःख हैं ; सुखका तो लेश भी नहीं।

जिस समय पुरुष बूढ़ा हो जाता है, उसमें कमानेकी शक्ति नहीं रहती ; तब सभी उसे पागल समझ कर, उसकी हँसी करते और उसके पुत्र-पौत्रादिक उसे बुरी नज़रसे देखते हैं। यहाँ तक कि, ख़ास उसकी अर्द्धाङ्गी उससे घृणा करने लगती है। पुत्र उसे कोई चीज़ नहीं समझते। और लोग भी उसे वृथाकी बला समझते हैं। पुत्र और पुत्रबधुए उसे एक टूटी सी खाट पर पौलीमें डाल देते हैं और उसके थूकने को एक ठिकरा रख देते हैं। आप समय पर अच्छे-से-अच्छा खाना खाते हैं ; पर उसे, समय-बे-समय, जब याद आ जाती है, बचा-खुचा बासी-कूसी खाना एक पुरानी और फूटीसी थाली या ठीकरेमें रख कर दे आते हैं। जब उसका थूक-खखार या मल-मूत्र उठाते हैं, तब उसे सैकड़ों तरहकी न कहने योग्य बातें सुनाते हैं,—"अब मर क्यों नहीं जाते ? जवान-जवान मरे जाते हैं, पर तुमको मौत नहीं आती !" प्रभृति। यह दुर्गति बुढ़ापेमें होती है।

'अगर घर-गृहस्थीमें सौभाग्यसे कोई दुःख नहीं होता, घरवाले स्त्री-पुत्र आदि अच्छे मिल जाते हैं, घरमें परमात्माकी दयासे सुखैश्वर्य्यके सभी सामान मौजूद होते हैं ; तो दूसरोंका

भला न चीतने वाले, दूसरोंको अच्छी अवस्थामें देखकर कुढ़ने वाले ही तङ्ग करते हैं। वह अपनी ओरसे उसका सर्व्वनाश करनेमें कोई बात उठा नहीं रखते। यद्यपि ऐसी बातोंसे उन्हें कोई लाभ नहीं होता ; तोभी वे बिल्ली की सी करतूतोंसे बाज़ नहो आते ; हरदम नाकमें दम किये रहते हैं। मतलब यह कि, संसारमें दुःखोंकी ही अधिकता है। यहाँ सुख है ही नहीं। अगर है, तो बराय नाम और उससे परिणाममें कोई लाभ नहीं ; वरन हानि है। उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं :—

राहतो रंज ज़मानेमें हैं दोनों, लेकिन।
याँ अगर एक को राहत है, तो है चारको रंज॥

निस्सन्देह संसारमें सुख और दुःख दोनों ही हैं—पर बहुलता दुःख ही की है, क्योंकि चार दुःखियोंमें मुश्किलसे एक सुखी मिलता है।

उस्ताद ज़ौक़ ही एक जगह और कहते हैं :—

हलावते शरमो पासदारी, जहाँमें है ज़ौक़ रंजोख्वारी।
मज़ेसे गुज़री, अगर गुज़ारी किसीने बे नामोनंग होकर॥

संसारसे दूर रहना अच्छा ; यहाँके सम्बन्धोंकी जड़में दुःख और क्लेश भरा हुआ है। जिसने अपनी ज़िन्दगी चुप-चाप गुज़ार दी ; सच तो यह है, उसने अच्छी गुज़ार दी।

सारांश यह, कि सभी महात्माओंने संसारके दुःखोंका

अनुभव करके औरोंको चेतावनी दी है, कि इस मिथ्या जगत् की मायामें न भूलो ; इससे दिल मत लगाओ, किन्तु इसके बनानेवालेके साथ दिल लगाओ। इसके साथ दिल लगानेसे तुम्हारा बुरा और उसके साथ दिल लगानेसे भला है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है :—

सलिल युक्त शोणित समुझ, पल अरु अस्थि समेत।
बाल कुमार युवा जरा, है सु समुझ करु चेत॥
ऐसेहि गति अवसान की, तुलसी जानत हेत।
ताते यह गति जानि जिय, अविरल हरि चित चेत॥

स्त्रीकी रज और पुरुषके वीर्य्यसे तुम्हारे शरीरके खून, मांस और हड्डियां बनीं। फिर तुम गर्भाशयसे बाहर आये। फिर बालक अवस्थामें रहे ; उसके बाद युवावस्था आई ; फिर बुढ़ापा आया। फिर तुम मरे और कर्मफल भोगनेको फिर जन्म लिया। इस तरह लोक-वासनाके कारण तुम्हें बारम्बार जन्मना और मरना पड़ता है। इसमें कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ते हैं, इन बातोंको याद करते रहो और कष्टोंसे बचनेके लिये सावधान होकर परमात्मासे प्रीति करो ; तभी तुम्हारा भला होगा। तुम्हारे सारे नातेदार मतलबी हैं ; केवल एक वह सच्चा सहायक और रक्षक है। यही सब विषय नीचेके भजनोंमें कैसी खूबीसे दिखाये हैं :—

भजन (राग धनाश्री)।

हरि बिन और न कोई अपना, हरि बिन और न कोई रे।
मात पिता सुत बन्धु कुटुम सब, स्वारथके ही होई रे ॥१॥
या कायाको भोग बहुत दे, मरदन कर-कर सोई रे।
सो भी छूटत नैक न खसकी, संग न चाली धोई रे ॥२॥
घरकी नारि बहुत ही प्यारी, तनमें नाहीं दोई रे।
जीवत कहती संग चलूँगी, डरपन लागी सोई रे ॥३॥
जो कहिये यह द्रव्य आपनो, जिन उज्जल मति खोई रे।
आवत कष्ट रखत रखवारी, चलत प्राण ले जोई रे ॥४॥
इस जगमें कोई हितू न दीखे, मैं समझाऊँ तोई रे।
चरणदास-सुखदेव कहैं, ये सुन लीजो सब कोई रे ॥५॥

भजन (राग सोरठ)।

सुध राखो वा दिनकी कछु तुम, सुध राखो वा दिनकी रे।
जादिन तेरी यह देह छुटैगी, ठौर बसौगे बन की रे ॥१॥
जिनके संग बहुत सुख कीने, तेरो मुख ढँक होयँगे न्योरे रे।
जमके त्रास होयँ बहु भाँती, कौन छुटावनहारे रे ॥२॥

देहल लों तेरी नारि चलेगी, बड़ी पौल लों माई रे ।
मरघट लों सब बीर भतीजे, हंस अकेला जाई रे ॥३॥
द्रव्य पड़े और महल खड़े रहें, पूत रहैं घर माहीं रे ।
जिनके काज पचै दिन राती, सो सँग चालत नाहीं रे ॥४॥
देव पितर तेरे काम न आवें, जिनकी सेवा लावेरे ।
चरणदास-सुखदेव-कहत हैं, हरि बिन मुक्ति न पावेरे ॥५॥

परमात्माकी भक्ति करो तो ऐसी करो कि, परमात्माके सिवा अन्य किसी भी देवी-देवता या संसारी पदार्थको कुछ समझो ही नहीं; यानी उस जगदीशके सिवा सबको झूठे, निकम्मे और नाशमान् समझो। केवल उसके प्रेममें ग़र्क़ हो जाओ और उससे प्रेमके बदलेमें कुछ माँगो नहीं; तब देखो, क्या आनन्द आता है! कबीर साहब कहते हैं :—

सुमिरनसे मन लाइये, जैसे दीप पतंग ।
प्रान तजै छिन एकमें, जरत न मोरे अंग ॥

इसी बातको उस्ताद ज़ौक़ने किस तरह कहा है :—

कहा पतंगने यह, दारे शमा पर चढ़ कर ।
अजब मज़ा है, जो मर ले किसीके सर चढ़ कर ॥

ऐसी प्रीतिको ही प्रीति कहते हैं। दीपक और पतङ्ग, मछली और जल, नाद और कुरङ्ग, चातक और मेघ,—इनकी

प्रीति आदर्श प्रीति है। ऐसी प्रीतिसे ही सच्ची सिद्धि मिलती है—ऐसी प्रीतिवालोंको ही परमात्माके दर्शन होते हैं।

दोहा ।

सह्यो गर्भदुख जन्मदुख, जौवन त्रिया वियोग।
वृद्ध भये सबहिन तज्यो, जगत किधौं यह रोग ॥

106. In their earliest stage of existence creatures remain in their mothers' wombs in the midst of impurities suffering great hardships with motionless bodies. In youth comes the unbearable pain of separation from consorts, Then comes the miserable old age marked unmistakeably by the insolence of women. Thus O men, let ns know if there is any the least happiness in this world !

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः।
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते
जीवे वारितरंगचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्॥१०७॥

मनुष्यकी उम्र औसत सौ बरसकी मानी गई है। उसमें से आधी तो रातमें सोनेमें गुज़र जाती है; बाक़ीमें से एक भाग बचपनमें और एक भाग बुढ़ापेमें चला जाता है। शेषमें जो एक भाग बचता है,—वह रोग, वियोग, पराई चाकरी, शोक और हानि प्रभृति नाना प्रकारके क्लेशोंमें बीत जाता है। जल-तरङ्गवत् चञ्चल जीवनमें प्राणियोंके लिये सुख कहाँ है? ॥१०७॥

आयुका हिसाब।

खुलासा—शास्त्रोंमें मनुष्यकी आयु सौ बरसकी मानी गई है। उसमेंसे पचास बरस; यानी आधी आयु तो रातके समय सोनेमें बीत जाती है। अब रहे पचास बरस; उनके तीन भाग कीजिये। पहले १७ साल बचपनकी अज्ञानावस्था और पराधीनतामें बीत जाते हैं। दूसरे १७ साल वृद्धावस्था में चले जाते हैं और शेष १६ साल नाना प्रकारके रोग, शोक, वियोग, हानि-लाभकी चिन्ता और दूसरोंसे लड़ने-झगड़ने प्रभृतिमें बीत जाते हैं।

प्राणीको कभी सुख नहीं।

पचास सालमेंसे पहले १७ बरस बचपनमें बीतते हैं। इस अवस्थामें, पैदा होते ही, बच्चा पराधीन होता है। आप उठ-बैठ चल-फिर नहीं सकता। कोई उठा लेता है, तो उठ आता है; नहीं तो मल-मूत्रमें ही पड़ा रहता है। कोई खिला-पिला देता है, तो खा-पी लेता है; नहीं तो पड़ा-पड़ा रोया करता है। कैसी बुरी अवस्था है! इसमें ज़रा भी सुख दिखाई नहीं देता। इसके बाद ज्यों ही वह ५।६ सालका

हुआ, कि उस पर पढ़ने-लिखनेका भार आ पड़ता है। रात-दिन पढ़ने-लिखनेकी चिन्तामें बेचारा पागलसा बना रहता है।

इसके बाद जवानी आती है। जवानीमें स्त्री आ जाती है। अगर धन नहीं कमाता, तो माता-पिता कहते हैं:—"हमने तुम्हारी शादी कर दी, बना जितना पढ़ा-लिखा दिया, अब कमाओ; यदि नहीं कमाते, तो अपनी लुगाईको लेकर अलग हो जाओ। हमसे तुम्हारा दोनों का ख़र्च उठाया नहीं जाता।" अगर कोई धन्धा लग गया, तो ख़ैर; नहीं तो जब तक नौकरी-चाकरी या रोज़गार नहीं लगता, रात-दिन बेचारा भाड़में चनों की तरह भूना जाता है। अगर धन्धा भी लग जाता है, तो स्वामीके राज़ी या नाराज़ होनेकी चिन्ता लगी रहती है अथवा कारोबारके नफ़े-नुक़सानकी फ़िक्र शरीर को भीतर-ही-भीतर जलाये देती है। इसी बीचमें रोग भी होते हैं। दूसरों से मुक़दमेबाज़ी होती है। इस तरह इस अवस्थामें भी चैन नहीं मिलता।

अब रहा बुढ़ापा। यह तो दुःखों का भाण्डार ही है। इसमें अनेक रोग शत्रुओं की तरह चढ़ाई करते हैं, शरीर काम नहीं देता और घरके लोग अनादर करते हैं। इस अवस्थामें और भी मिट्टी ख़राब होती है। इस तरह स्पष्ट है, कि प्राणीको इस चञ्चल जीवनमें क्षण-भर भी सुख नहीं मिलता।

दुःखपूर्ण जीवनसे प्राणी सन्तुष्ट !

यद्यपि इस जीवनमें ज़रा भी सुख नहीं है, क्षण-भर भी शान्ति नहीं है; तो भी मनुष्यका ऐसा मोह है कि, वह मरना नहीं चाहता; मौतका नाम सुननेसे काँप उठता है। अगर इस जीवनमें सुख होता, तो न जाने क्या होता? घोर कष्ट और दुःखों में भी यदि मनुष्य मरता हैं तो कहता है—"हम कुछ न जिये, अगर और कुछ दिन जीते तो........"

किसी कविने कहा है—

हो उम्र खिज्र भी, तो कहेंगे बवक्ते मर्ग।
हम क्या रहे यहाँ, अभी आये अभी चले ॥

चाहे हज़ारों बरसकी उम्र हो जाय, मरते समय यही कहेंगे, इस संसारमें कुछ भी न रहे, अभी आये अभी जाते हैं। जीनेकी अभिलाषा बनी ही रहती है।

घृणित जीवनसे भी क्यों घृणा नहीं होती ?

मनुष्य-जीवनमें दुःख-ही-दुःख हैं; फिर भी मनुष्य इस घृणित जीवनसे सन्तुष्ट क्यों रहता है? इससे उसे घृणा क्यों नहीं होती? जिस तरह मैलेसे भङ्गीको घृणा नहीं होती; उसी तरह जिनके स्वभावमें मनुष्य-जीवनके दुःख समा गये हैं,

उन्हें इस मलिन और घृणित जीवन—दुःखपूर्ण जीवनसे घृणा नहीं होती। मैलेका कोड़ा मैलेमें ही सुखी रहता है; मैलेसे निकलनेमें उसे दुःख होता है। यही हाल उनका भी है, जिनके अन्तःकरण मलिन हैं। वे मलिन गृहस्थाश्रममें ही सुखी हैं।

मनुष्यका कर्त्तव्य क्या है?

मनुष्य-जन्म बड़ा दुर्लभ है। यह ८४ लाख योनियाँ भोगने के बाद मिलता है। अगर मनुष्य इस मानव-जीवनमें भी चूक जाता है, आवागमन—जन्म-मरण—के फन्देसे छूटनेका उपाय नहीं करता, तो पछताता और रोता है; पर यह सुअवसर उसे फिर जल्दी नहीं मिलता। इस पर एक दृष्टान्त है :—

अवसर चूके पछताना होता है।

किसी राजाके ३६० रानियाँ थीं। राजा विदेश गया था। जिस दिन वह लौटकर आया उस दिन ३६० वें नम्बरकी रानी के यहाँ उसके जानेकी बारी थी। रानीने दासियों से कह दिया कि, मैं सोती हूँ; जब राजाजी आवें, मुझे जगा देना। रातको राजा आया; किन्तु दासियों ने भयके मारे रानीको न जगाया। सवेरे राजा चला गया। रानीने उठकर पूछा—"क्या राजाजी आये थे?" दासियों ने कहा—"हाँ, आये थे।

हम लोग उनके भयके मारे आपको जगा न सकीं।" रानी बहुत रोई पछताई। उसे ३६० दिन तक फिर राह देखनी पड़ी। बस; यही हाल उनका है, जो इस मनुष्य-जन्मको वृथा गँवा देते हैं। इसमें भगवद्भक्ति या उपासना नहीं करते। मर जाने पर, ८४ लाख योनियों को भोगकर, फिर कहीं ऐसा अवसर हाथ आता है। अतः मनुष्यको, सब जञ्जाल छोड़कर, एक मात्र भगवद्भक्तिमें लगना चाहिये; एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाना चाहिये। दम निकले तो जगदीश्वर की याद करता हुआ ही निकले। इसीमें कल्याण है। साँसका भरोसा क्या? आया आया, न आया न आया। "गुरु-कौमुदी"में कहा है:—

अरे भज हरेर्नाम क्षेमधाम क्षणे क्षणे।
बहिस्सरति निःश्वासे विश्वासः कः प्रवर्त्तते॥

अरे जीव! प्रत्येक क्षण हरि का नाम भज। हरि का नाम कल्याण-धाम है। जो साँस बाहर निकल जाता है, उसका क्या भरोसा? आवे, न आवे।

महाभारतमें आयुकी क्षणभंगुरता पर एक इतिहास लिखा है:—

एक ब्राह्मण राह भूल कर किसी भयानक वनमें जा निकला। वहाँ हाथी और सर्प प्रभृति भयानक हिंसक पशु घूम रहे थे। एक पिशाचिनी हाथमें फाँसी लिये सामने आ

रही थी। उन्हें देखकर वह डरके मारे रक्षाका स्थान खोजने लगा। उसने एक अन्धा कूआ देखा, जिसमें घास छा रही थी तथा अनेक प्रकारकी बेलें लग रही थीं। वह एक बेलको पकड़ कर, औंधा सिर किये, कूएँमें लटक गया। थोड़ी देर बाद उसने नीचेकी ओर देखा, तो एक बड़ा भारी सर्प मुँह फाड़े हुए नज़र आया; ऊपरकी ओर देखा, तो एक मस्त हाथी खड़ा दीखा। उस हाथीके छः मुख थे। उसका आधा शरीर सफ़ेद और आधा काला था। जिस बेलको वह ब्राह्मण पकड़े हुए था, उसको वह हाथी खा रहा था और सफ़ेद तथा काले दो चूहे उस बेलकी जड़को काट रहे थे।

इसका मतलब यों है :—वह ब्राह्मण जीव है। सघन वन यह संसार है। काम क्रोध आदि भयानक जीव इस जीवके नष्ट करनेको घूम रहे हैं। स्त्री-रूपी पिशाचिनी, भोग-रूपी पाश लेकर, इस जीवके फँसानेके लिये फिरती है। कूएँमें जो बेल लटक रही है, वही आयु है। उसीको पकड़कर यह जीव लटक रहा है। कूएँ में जो कालसर्प है, वह इस जीव का काल है, वह अपनी घात देख रहा है; उधर रात-दिन रूपी चूहे इस आयु रूपी बेलकी जड़ काट रहे हैं। वह हाथी वर्ष है। उसके छः मुख छः ऋतुएँ हैं। शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष उस हाथीके वर्ण या रंग हैं। मनुष्य इस तरह मौतके मुँहमें है। हर क्षण मौत उसे निगलती जा रही है; पर आश्चर्य्य है कि, इस आफ़तमें भी—मृत्यु-मुखमें पड़ा हुआ भी—वह

अपनेको सुखी समझता है और इस नितान्त भयपूर्ण जीवनसे सन्तुष्ट है !

बीत गई सो बीत गई, आगेकी सुधि लो !

बहुतसे लोग कहा करते हैं, कि हमने सारी उम्र परपीड़न या पापकर्मोंमें खोई; भगवान्‌को कभी भूलसे भी याद न किया ; अब हम क्या कर सकते हैं ? यह कहना भारी भूल है। जो समय बीत गया, वह तो लौट कर आवेगा नहीं ; पर जो समय हाथमें है, उसे तो सुकर्म और ईश्वरकी यादमें लगाना चाहिये। यदि बाक़ी उम्र भी व्यर्थके झञ्झटोंमें गँवाई जायगी, तो अन्तकालमें भारी पछतावा होगा। किसी कविने ठीक ही कहा है—

पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र,
धरा धन धाम है बन्धन जीको।
बारहिँ बार विषैफल खात,
अघात न जात सुधारस फीको।
आन औसान तजो अभिमान,
कही सुन, नाम भजो सिय-पीको।
पाय परमपद हाथ सों जात,
गई सो गई, अब राख रही को।

एक नटकी उपदेशप्रद कहानी ।

एक राजा बड़ा ही कञ्जूस था। उसने प्रचुर धन सञ्चय किया था; पर उससे न तो वह अपने पुत्रको सुख भोगने देता था और न ख़र्चके डरसे अपनी कन्याकी शादी ही करता था। एक दिन एक नट-नटी उसके दरबारमें आये और राजासे तमाशा देखनेकी प्रार्थना की। राजाने कहा—"अच्छा, अमुक दिन देखा जायगा।" नटनी बार-बार याद दिलाती रही और राजा बारबार-टालता रहा। अन्तमें नटनी ने वज़ीरसे कहा—"अगर राजा साहब तमाशा न देखें, तो हम चले जायें; हमें ख़र्चा खाते बहुत दिन हो गये।" यह सुन वज़ीरने राजासे कहा—"महाराज! आप तमाशा देख लीजिये। हम लोग चन्दा करके नटको कुछ दे देंगे। अगर आप तमाशा न देखेंगे, तो बड़ी बदनामी होगी।" राजा इस बात पर राज़ी हो गया। तमाशा हुआ। तमाशा करते-करते जब दो घड़ी रात रह गई और राजाने कुछ भी इनाम न दिया, तब नटनीने नटसे कहा:—

रात घड़ी भर रह गई, थाके पिञ्जर आय।
कह नटनी सुन मालदेव, मधुरा ताल बजाय॥

नटनीकी बात सुनकर नटने कहा:—

बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।
कहे नाट सुन नायिका, तालमें भंग न पाय ॥

एक तपस्वी भी वहाँ तमाशा देख रहा था। उसने ये सवाल-जवाब सुनते ही नटको अपना कम्बल दे दिया, राजाके लड़केने उसे अपनी हीरोंकी जड़ाऊ कड़ोंकी जोड़ी दे दी और राजकन्याने अपने गलेका हीरोंका हार दे दिया।

राजा यह सब देखकर चकित हो गया। उसने सबसे पहले तपस्वीसे पूछा—"तुम्हारे पास यही एक कम्बल था। तुमने क्या समझ कर उसे कम्बल दे दिया?" तपस्वीने कहा—"आपके ऐश्वर्य्यको देखकर मेरे मनमें भोगोंकी वासना उठ खड़ी हुई थी; पर नटके दोहेसे मेरा विचार बदल गया। मैंने उससे यह उपदेश ग्रहण किया कि, बहुत सी आयु तो तप में बीत गई; अब जो थोड़ीसी रह गई है, उसे भोगोंकी वासनामें क्यों ख़राब करूँ? मुझे नटसे उपदेश मिला, इससे मैंने अपना एकमात्र कम्बल—अपना सर्वस्व उसे दे दिया।"

इसके बाद राजाने राजपुत्रसे पूछा—"तुमने क्या समझकर अपनी बेशक़ीमत कड़ोंकी जोड़ी उसे दे दी?" राजपुत्रने कहा—"मैं बड़ा दुखी रहता हूँ, क्योंकि मुझे आप कुछ भी ख़र्च करने नहीं देते। दुखी होकर मैंने यह विचार कर रखा था कि, किसी दिन राजाको विष देकर मरवा दूँगा; पर इस नटके दोहेसे मुझे यह उपदेश हुआ है कि, राजाकी बहुत सी

आयु तो बीत गई, अब वह बूढ़ा हो गया है ; दो-चार बरसकी बात और है ; इस अर्से में वह आपही मर जायगा, अतः पितृहत्या क्यों की जाय ? इसी उपदेशके बदलेमें मैंने नटको कड़ोंकी जोड़ी दे दी ।”

फिर राजाने राजकन्यासे पूछा—“तुमने अपना क़ीमती हार नटको क्यों दिया ?” कन्याने कहा—मेरी जवानी आ गई है ; आप ख़र्चके भयसे मेरी शादी नहीं करते । कामदेव बड़ा बलवान है । कामकी प्रबलताके मारे, मेरा विचार वज़ीरके लड़केके साथ निकल भागनेका था ; पर नटके दोहेसे मुझे यह उपदेश मिला कि, राजाकी बहुतसी आयु तो चली गई, अब जो शेष रह गई है, वह भी बीतने ही वाली है । थोड़े दिनोंके लिये, पिताके नाममें क्यों बट्टा लगाऊँ ? यह अनमोल उपदेश मुझे नटके दोहेसे मिला, इसी से मैंने अपना बहुमूल्य हार उसे दे दिया । हे पिता ! नटके दोहेने आपकी जान और इज़्ज़त बचाई है ; अतः आपको भी उसे कुछ इनाम देना चाहिये ।” राजाने सब बातें सोच-समझ कर नटको इनाम दे विदा किया और वज़ीरके लड़केके साथ कन्याको शादी कर दी । राजपुत्रको गद्दी देकर आप वैरागी हो गया और अपनी शेष रही आयु आत्मविचारमें लगा दी । इसी तरह सभी संसारियोंको, अपनी शेष आयु सुकर्म और ब्रह्मविचारमें लगा, जन्म-मरणसे पीछा छुड़ा, नित्य सुख-शान्ति लाभ करनी चाहिये ।

बाल-बच्चोंका क्या किया जाय।

प्रथम तो स्त्री-पुत्र प्रभृति आपके कोई नहीं ; एक सराय के मुसाफिरके समान हैं। यहाँ आकर नाता जुड़ गया है। अपने-अपने टाइम पर सब अपनी-अपनी राह लगेंगे। इसके सिवा, ये आपसे सच्ची मुहब्बत भी नहीं करते। आपसे इनका काम निकलता है, पाप-पुण्यकी गठरी आप बाँधते हैं और सुख ये भोगते हैं ; इसीसे कोई आपको "बाबूजी", कोई "चाचाजी" और कोई "नानाजी" कहता है। अगर आप इनकी ज़रूरतों या फरमायशोंको पूरी न करें, तो ये आपका नाम भी न लें। ऐसे स्वार्थी लोगोंको मिथ्या प्रीतिके फेरमें पड़कर, आप अपने अमूल्य और दुष्प्राप्य जीवनको क्यों नष्ट करते हैं ? जब आप इस देहको छोड़कर परलोकमें जायँगे, तब क्या ये आपके साथ जायँगे ? हरगिज़ नहीं। कोई पौली तक और कोई श्मशान तक आपकी लाशके साथ जायँगे। वहाँ पहुँच, आपको जला-बला ख़ाक कर सब भूल जायँगे।

आप भी मुसाफिर हैं और आपके स्त्री-पुत्र भी मुसाफिर हैं। आपकी अगली सफर बड़ी लम्बी है। यह तो बीचका एक मुक़ाम है। कर्म-भोग भोगनेको आप यहाँ ठहर गये और कर्मवश ही इन सबसे आपका मेल हो गया। ये अपनी सफर का प्रबन्ध करें चाहे न करें, पर आप तो अवश्य करें। इनके झूठे मोहमें आप न भूलें। अगर आप बाल-बच्चोंकी रोटी

और कपड़ोंकी फिक्रमें लगे रहेंगे, तो यह फिक्र तो अन्त तक लगी ही रहेगी और आपको ले जानेवाली गाड़ी या मौत आ जाएगी। उस समय बड़ी कठिनाई होगी। जो लोग उम्र-भर गृहस्थीके झंझटोंमें लगे रहे, अन्तमें उनका बुरा ही हुआ। ये घर-झगड़े ही तो ईश्वर-दर्शन या स्वर्ग अथवा मोक्षकी प्राप्ति में बाधक हैं। महात्मा शेख़ सादीने कहा है :—

ऐ गिरफ़्तारे पाये बन्दे अयाल।
दिगर आज़ादगी मबन्द ख़याल॥
ग़मे फ़रज़न्दो नानो जामओ क़ूत।
बाज़द आरद ज़े सेर दर मलकूत॥

ऐ औलाद की मुहब्बतमें गिरफ़्तार रहनेवाले, तू किसी तरह भी बन्धन-मुक्त नहीं हो सकता। सन्तान, रोटी, कपड़ा तथा जीविका की फिक्र तुझे स्वर्गकी चिन्तासे रोकती है। इसलिये "सब तज और हर भज।"

क्या घरमें रह कर ईश्वर-उपासना नहीं की जा सकती ?

घर-गृहस्थीमें रहकर ईश्वर की भक्ति और उपासना की जा सकती है; पर घरमें रह कर भक्ति करना है टेढ़ी खीर। जैसी संगति होती है, वैसा ही मनुष्य हो जाता है। ज्ञानियों

की संगतिमें ज्ञानकी और स्त्रियोंकी सुहबतमें कामकी उत्पत्ति होती है। घरमें रह कर वैराग्य की उत्पत्ति होना कठिन है। किसी कविने कहा है :—

जाइयो तहाँ ही जहाँ संग न कुसंग होय,
कायरके संग शूर भागे पर भागे है ॥
फूलन की वासना सुहाग भरे वासन पै,
कामिनीके संग काम जागे पर जागे है ॥
घर बसे घर पै बसो, घर वैराग कहाँ,
काम क्रोध लोभ मोह, पागे पर पागे है ।
काजरकी कोठरीमें, लाखहु सयानो जाय,
काजरकी एक रेख, लागे पर लागे है ॥

संसारियोंकी सङ्गतिमें मनुष्य संसारी हो जाता है ; विषय-भोगोंकी ओर ही उसका मन चलायमान होता है तथा स्त्री-पुत्र आदिकोंमें उसका राग बनाही रहता है ; पर जो वेदान्त-ग्रन्थोंको विचारते और महापुरुषोंकी सङ्गति करते हैं, उनका अन्तःकरण शुद्ध होते रहने की वजह से, उन्हें, गृहस्थाश्रममें ही, वैराग्य उत्पन्न होने लगता है। गृहस्थीमें एक न एक दुःख बना ही रहता है। उस दुःखके कारण, मनुष्यके मनमें वैराग्य भी पैदा होता रहता है। विषयोंमें दुःख समझना ही वैराग्यका और सुख समझना ही रागका हेतु है। महामूढ़ोंको भी कुछ न कुछ वैराग्य बना ही रहता है। जिस समय कोई कष्ट आता

है, स्त्री-पुत्र आदि मर जाते हैं, धन नाश हो जाता है, तब मूढ़ भी अपने तईं और संसारको धिक्कारता है ; लेकिन ज्योंही वह कष्ट दूर हो जाता है, उसका वैराग्य भी काफूर हो जाता है। पर, वास्तवमें, वैराग्यका कारण—है गृहस्थाश्रम ही ; क्योंकि बिना गृहस्थाश्रम तो किसी की उत्पत्ति होती ही नहीं। रामचन्द्र और वशिष्ठ प्रभृतिको गृहस्थाश्रममें ही वैराग्य हुआ था। और भी बड़े-बड़े संन्यासियोंको गृहस्थाश्रममें ही वैराग्य हुआ था। वैराग्य उत्पन्न होते ही, उन्होंने घर-गृहस्थी त्याग, वन की राह ली थी।

यह बात भी नहीं है कि, गृहस्थाश्रममें ज्ञान होता ही न हो। जनकादिक महात्मा गृहस्थाश्रममें ही ज्ञानी हुए थे। ज्ञानका कारण "वैराग्य" है। जो गृहस्थ होकर, सदैव, वैराग्य और विचारमें मग्न रहता है, उसके ज्ञानी होनेमें सन्देह नहीं ; पर जो संन्यासी होकर भी भोगोंमें राग रखता है, उसके अज्ञानी होनेमें संशय नहीं। "वैराग्य" ही आत्मज्ञानका साधन है । मनुष्य—ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यास—किसी आश्रममें क्यों न हो, बिना वैराग्यके ज्ञान नहीं और ज्ञान बिना मोक्ष नहीं। जो पुरुष गृहस्थाश्रममें रह कर भी उसमें आसक्त नहीं होता, जलमें कमलकी तरह रहता है, उसको मुक्तिमें ज़रा भी सन्देह नहीं। एक दृष्टान्त इस मौक़े का हमें याद आया है, उससे पाठकोंको अवश्य लाभ होगा :—

राजा जनक और शुकदेव जी।

एक बार व्यास जीने शुकदेव जीसे कहा कि, तुम राजा जनकके पास जाकर उपदेश लो। शुकदेव जी जनकके द्वार पर गये। भीतर ख़बर कराई, तो राजाने कहला भेजा कि, द्वार पर ठहरो। शुकदेव जी तीन दिन तक द्वार पर खड़े रहे, पर उन्हें क्रोध न आया। राजाने उनके क्रोधकी परीक्षा करनेके लिये ही, उन्हें, तीन दिन तक, द्वार पर खड़ा रक्खा और चौथे दिन अपने पास बुलाया। वहाँ जाकर शुकदेव जी क्या देखते हैं कि, राजा जनक सोनेके जड़ाऊ सिंहासन पर बैठे हैं, सुन्दरी नवयौवना स्त्रियाँ उनके चरण दाब रही हैं और कुछ मोरछल और पङ्खे कर रही हैं। जगह-जगह विषय-भोग या ऐश-आरामके सामान धरे हैं। सामने ही सुन्दरी नर्त्तकियाँ नाच कर रही हैं। यह हाल देखकर, शुकदेव जीके मनमें राजाकी ओरसे घृणा हुई। उन्होंने मनमें कहा—"नाम बड़े और दर्शन छोटे" वाली बात है। यह तो भोगोंमें आसक्त हैं; पिताजीने इन्हें परम ज्ञानी क्यों कहा? राजा जनक शुकदेव जीके मनकी बात ताड़ गये। दैवात; उसी समय मिथिला पुरीमें ज़ोरसे आग लग गई। बाहरसे दूत दौड़े आये और कहने लगे—"महाराज! पुरीमें आग लग गई है और राजद्वार तक आ पहुँची है।" शुकदेव जी मनमें सोचने लगे कि, मेरा

दण्ड-कमण्डल बाहर रक्खा है, कहीं वह न जल जाय। उस समय राजाने कहा—

"अनन्तवत्तु मे वित्तं यन्मे नास्ति हि किञ्चन
मिथिलायां प्रदग्धायां न मे दह्यति किञ्चन।"

मेरा आत्मरूप-धन अनन्त है। उसका अन्त कदापि नहीं हो सकता। इस मिथिलाके जलनेसे तो मेरा कुछ भी नहीं जल सकता।

राजा जनकके इस वाक्यसे पदार्थोंमें उनको आसक्ति नहीं—अनासक्ति ही साबित होती है। अगर कोई मनुष्य, गृहस्थीमें रह कर, स्त्री-पुत्र-धन प्रभृतिमें अनासक्त रहे, उनमें ममता न रक्खे, चाहे व्यवहार सब तरहके करे, वह सच्चा ज्ञानी है, उसको मोक्ष अवश्य होगी।

ममता ही दुःखोंका कारण है। जिसकी किसी भी पदार्थ में ममता नहीं, उसे दुःख क्यों होने लगा? उसकी ओरसे वह पदार्थ मिले तो अच्छा, न मिले तो अच्छा; बचा रहे तो भला और नष्ट हो जाय तो भला। जिसको जिस चीज़में ममता होती है, उसे उस चीज़के नाश होने या उसके न मिलनेसे अवश्य दुःख होता है। कहा है।

यस्मिन वस्तूनि ममता मम नायस्तत्र तत्रेव।
यत्वेवाहमुदासे मुदा स्वभाव सन्तुष्टः॥

जिस-जिस चीज़में मनुष्यकी ममता है, वही-वही दुःखी है और जिस जिससे उसे उदासीनता है, वही सन्तुष्टता है। मत-लब यह कि, "ममता" ही दुःखोंका मूल है। घर-गृहस्थीमें रहो और गृहस्थीके सारे कार्य-व्यवहार करो; पर किसी भी पदार्थ में ममता मत रक्खो। तुम्हारी ओरसे कोई मर जाय तो शोक नहीं, धन-दौलत नष्ट हो जाय तो रंज नहीं, आ जाय तो खुशी नहीं; इस तरह उदासीन-भाव रक्खो। अगर इस तरह गृहस्थी में रहो, तो तुमसे बढ़कर ज्ञानी कौन है? तुम्हें अवश्य मोक्षपद मिलेगा।

निर्मोही पुरुष।

एक मनुष्यके एक ही लड़का था! लड़का जवान हो गया था। उसकी शादी भी हो गई थी। एक दिन पिताने किसी उद्देश्यसे शामको एक सभा बुलानेका निमन्त्रण दिया। दैवयोगसे, दोपहरको उसका पुत्र अचानक मर गया। उसने उसकी लाशको बैठकमें लिटा कर, ऊपरसे कपड़ा उढ़ा दिया और आप द्वार पर बैठकर शान्त-भावसे हुक्का पीने लगा। इतनेमें सभाका समय हो गया; मित्र लोग आने लगे। उनमें से एक मित्र उसी बैठकमें किसी ज़रूरी कामसे गया। वहाँ एक लाश पड़ी देख, उसने बाहर आकर पूछा,—"यह क्या!"

उसने कहा—"भाई! लड़का मर गया है। पहले सभाका काम कर लें, तब सब मिल कर इसे श्मशान-घाट पर ले चलेंगे।" मित्र लोग उस निर्मोही पिताकी बात सुनकर चकित हो गये। उन्होंने कहा—"तुम तो अजब आदमी हो! तुम्हें अपने इकलौते जवान पुत्रका भी रञ्ज नहीं! उसने कहा—"भाई! मेरा इसका क्या नाता? हम सब सरायके मुसाफिर हैं। पूर्वजन्मके कर्मवश, एक दूसरेसे मिल गये हैं। अपना-अपना समय होनेसे, अपनी-अपनी राह चले जा रहे हैं; इसमें रञ्ज या शोककी बात ही क्या है?" ऐसे ही मनुष्य, गृहस्थीमें रहकर भी, जन्म-मरणके फन्देसे छूटकर, मोक्ष लाभ करते और जीवन्मुक्त कहलाते हैं।

काम करो, पर मनको ईश्वरमें रक्खो।

अगर भगवान् कृष्णके कथनानुसार संसारके काम-धन्धे किये जाय, तोभी हर्ज नहीं; पर मनको संसारी पदार्थों या विषय-भोगोंसे हटाकर एकमात्र भगवान्में लगाना चाहिये। दुनियवी काम करते रहने और मनको भगवान्में लगाये रहने से सिद्धि मिल सकती है। महाकवि रहीम कहते हैं:—

दोहा।

जो "रहीम" मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहि।
जलमें जो छाया परी, काया भीजत नाहिं॥

सारा दारमदार मन पर है। व्यभिचारिणी स्त्री घरके धन्धे किया करती है, पर मनको हर क्षण अपने यारमें रखती है। गाय जहाँ-तहाँ घास चरती-फिरती है, पर मनको अपने बच्चेमें रखती है। स्त्रियाँ जब धान कूटती हैं, तब एक हाथसे मूसल चलाती हैं और दूसरेसे ओखलीके धानको ठीक करती जाती हैं। इसी बीचमें यदि उनका बच्चा आ जाता है, तो उसे दूध भी पिलाती रहती हैं; किन्तु उनका ध्यान बराबर मूसलमें ही रहता है। अगर ज़रा भी ध्यान टूटे, तो हाथके पलस्तर उड़ जायँ। इसी तरह मनुष्य, यदि संसारके काम-धन्धे करता हुआ भी, ईश्वरमें मन लगाकर उसकी भक्ति करता रहे, तो कोई हर्ज नहीं; उसे भगवत्-दर्शन अवश्य होंगे। यद्यपि इस तरह संसारमें रहकर सिद्धि लाभ करना—है बड़े शूरवीरोंका काम; तोभी इस तरह अनेक लोग, गृहस्थीमें रहते हुए भी, मोक्ष-पद पा गये हैं।

ईश्वर-प्राप्तिकी सहज राह कौनसी है ?

गृहस्थीमें रहने की अपेक्षा, गृहस्थी त्यागकर, वनके एकान्त भागमें रहकर, भगवत्में मन लगाना अवश्य आसान है। गृहस्थीमें रहनेसे मन विषय-भोगोंकी ओर दौड़ता ही है। स्त्रीको देखनेसे काम जागता ही है; पर न देखनेसे मन नहीं चलता। पराशर ऋषिने मत्स्यगन्धा देखी, तो उनका मन चलायमान हुआ। विश्वामित्रने मेनका देखी तो उनका मन

बिगड़ा। शिवने मोहिनी देखी, तो उनका मन चञ्चल हुआ। इसीलिये पहलेके अनेक महापुरुष अपने-अपने घर त्यागकर बनमें चले गये और वहाँ उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई। पर वनमें जाकर भी, जो मनको विषयों में लगाये रहते हैं, ममताको नहीं त्यागते; कामनाको नहीं छोड़ते, वे गृहस्थोंसे भी बुरे हैं। वे धोबीके कुत्तेकी तरह घरके न घाटके।

त्यागमें ही सुख है।

जो धन-दौलत, राजपाट, स्त्री-पुत्र प्रभृतिको त्याग कर वनमें रहते हैं; किसी भी चीज़ की इच्छा नहीं रखते, यहाँ तक कि, खानेके लिये पाव-भर आटेकी भी ज़रूरत नहीं रखते; जहाँ जगह पाते हैं वहीं पड़ रहते हैं; जो मिल जाता है, उसीसे पेट भर लेते हैं,—वे सचमुच ही सुखी हैं। शङ्कराचार्य्य महाराजने "मोहमुद्गर" में कहा है—

सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः,
शय्याभूतलमजिनंवासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः,
कस्य सुखं न करोति विरागः॥

जो देवमन्दिर या पेड़के नीचे पड़े रहते हैं, ज़मीन ही जिनकी चारपाई है, मृगछाला ही जिनका वस्त्र है, सारे विषय-

भोगके सामान जिन्होंने त्याग दिये हैं; यानी वासना-रहित हो गये हैं,—ऐसे किन मनुष्योंको सुख नहीं है? अर्थात् ऐसे त्यागी सदा सुखी हैं।

देहके नहीं मनके वैराग्यसे लाभ है।

अनेक लोग गेरुए कपड़े पहन लेते हैं, लम्बी-लम्बी मालायें गलेमें डाल लेते हैं, तिलक-छापे या राख लगा लेते हैं; पर उनका मन सदा भोगोंमें लगा रहता है। वे शरीरको वैरागियोंका सा बना लेते हैं; पर मन उनका भोगियोंका सा रहता हैं; इसलिये उनका जन्म वृथा जाता है। आजकल साधू-संन्यासी बनना एक प्रकारका रोज़गार हो गया है। जिनसे किसी तरहकी मिहनत-मज़दूरी नहीं होती, वे साधु-वेष बनाकर लोगोंको ठगते और घर मनीआर्डर भेजते हैं। बहुतसे ढोंगी नगरोंमें आकर बड़े आदमियोंके यहाँ डेरे लगा देते हैं, चेले-चेलियोंसे भेंट लेते हैं, नवयौवना सुन्दरियोंको पास बैठाकर उपदेश देते हैं, अपने क़दमोंमें रुपये और अशर्फियोंके ढेर लगवाते हैं। भला ऐसोंका मन परमात्मामें लग सकता है? जब विश्वामित्र और पराशर जैसे, हवा और पानी पर गुज़ारा करनेवाले, मुनियोंका मन स्त्रियोंको देखते ही चञ्चल हो गया; तब रबड़ी-मलाई और मावा-मोहनभोग उड़ाने

वालोंका मन कैसे स्त्रियोंपर न चलेगा? ऐसा कौन है, जिसका मन स्त्रियोंने खण्डित नहीं किया? कहा है—

कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो ?
विषयिणः कस्यापदो नागताः ?
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः ?
को नाम राज्ञां प्रियः ?
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः ?
कोऽर्थी गतो गौरवं ?
को वा दुर्जन-वागुरा-निपतितः
क्षेमेण यातः पुमान् ?

किसको धन पाकर गर्व नहीं हुआ? किस विषयी पर आफ़त नहीं आई? पृथ्वी पर किसका मन नारीने आकृष्ट नहीं किया? कौन राजाओंका प्यारा हुआ? कौन कालकी नज़रसे बचा? किस मँगतेका गौरव हुआ? कौन सज्जन दुष्टोंके जालमें फँसकर कुशलसे रहा?

संन्यासियोंको स्त्री-दर्शन भी मना है।

धर्मशास्त्रमें लिखा है:—

सम्भाषयेत् स्त्रियं नैव, पूर्वदृष्टां च न स्मरेत्।
कथां च वर्जयेत्तासां, नो पश्येल्लिखितामपि॥

यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत्तु मैथुनम् ।
षष्ठिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥

यतिको स्त्रीसे बात न करनी चाहिये, पहलेकी देखी हुई स्त्रीकी याद न करनी चाहिये तथा स्त्रियोंकी चर्चा भी न करनी चाहिये और स्त्रीका चित्र भी न देखना चाहिये।

जो संन्यासी होकर स्त्रीके साथ मैथुन करता है, वह ६० हज़ार वर्ष तक विष्ठाका कीड़ा होता है।

और विषयोंसे मनको रोकना उतना कठिन नहीं, जितना कि स्त्रीसे रोकना कठिन है; इसीसे स्त्रीका चित्र तक देखनेकी मनाही की है। जो ढोंगी साधु-सन्यासी दुनियादारोंके घर आते और स्त्रियोंमें बैठे रहते हैं, उनको उपदेश ग्रहण करना चाहिये।

ढोंगी साधुओंके लिये अमूल्य उपदेश।

बनावटी या ढोंगी साधुओंके सम्बन्धमें महात्मा तुलसीदासजीने कहा है :—

तनको योगी सब करें, मनको बिरला कोय।
सहजे सब सिधि पाइये, जो मन योगी होय ॥१॥
जाके उर बर वासना, भई भास कछु आन।
तुलसी ताहि बिडम्बना, केहि बिधि कथहि प्रमान ॥२॥

काह भयो बन बन फिरे, जो बनि आयो नाहिं ।
बनते बनते बनि गयो, तुलसी घर ही माहिं ॥३॥
रामचरण परचे नहीं, बिन साधन पद-नेह ।
मूँड़ मुड़ायो बादिही, भाँड़ भये तजि गेह ॥४॥
कीर सरस बाणी पढ़त, चाखत चाहन खाँड़ ।
मन राखत वैराग महँ, घरमें राखत राँड़ ॥५॥
जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम ।
तुलसी दोनों नहिं मिलें, रवि रजनी इक ठाम ॥६॥
तब लगि योगी जगत्-गुरु, जब लगि रहै निरास ।
जब आशा मनमें जगी, जग गुरू योगी दास ॥७॥

(१)

शरीरको योगी बहुत लोग करते हैं ; पर मनको कोई विरला ही योगी करता है ; अगर मन योगी हो जाता है ; तो सहजमें सिद्धि या मोक्ष मिल जाती है। दूसरे शब्दोंमें यों समझिये कि, लोग भेष तो संन्यासी-महात्माओंकासा कर लेते हैं ; पर मन उनका विषय-भोगोंमें लगा रहता है ; इसलिये उनको कुछ भी लाभ नहीं होता,—सिद्धि नहीं मिलती। अगर वे लोग शरीरको चाहे गृहस्थोंकासा रक्खें, उत्तमसे उत्तम खाने खायँ, बढ़ियासे बढ़िया कपड़े पहनें ; पर मनमें स्त्री-पुत्र, धन-दौलत, गाड़ी-घोड़े, नाच-रङ्ग आदिकी वासना और ममता न रक्खें ; तो उन्हें निश्चय ही सिद्धि मिल

सकती है। मतलब यह कि, मनके योगी होनेसे सिद्धि मिलती है ; कपड़े रँगने, माथा मुँड़ाने और डण्ड-कमण्डल प्रभृति रखनेसे सिद्धि नहीं मिलती।

(२)

जिसके विशुद्ध हरि-भक्तिपूर्ण हृदयमें काम, लोभ और मोह प्रभृतिकी वासना पैदा हो जाती है, वह अपनी वासना पूरी करनेके लिये, नाना प्रकारके नीच कर्म करता है ; फिर उसकी जो फ़ज़ीती और बदनामी होती है, उसका यथार्थ रूपमें वर्णन करना कठिन है। मतलब यह है कि, जिसके हृदय में केवल एक भगवान्‌की वासना होती है, उसका हृदय श्रेष्ठ और विशुद्ध समझा जाता है। यदि उसके हृदयमें इसके सिवा— भगवान्‌के अतिरिक्त और वासना उत्पन्न हो उठती है, उसका दिल धन-दौलत, स्त्री और राजपाट प्रभृतिपर चलायमान हो जाता है ; तो उसकी संसारमें बड़ी बदनामी होती है। सारांश यह कि, यदि कोई संन्यासी, यति या हरिभक्त विषयोंको त्याग कर फिर विषयोंके जालमें फँसता है, रांड रखता है, इत्र फुलेल लगाता है, मलमल-खासा पहनता है और गद्दे तकियोंपर आराम करता है ; तो उसकी वर्णनातीत अपकीर्त्ति होती है।

(३)

अगर कोई शख़्स घर छोड़ कर और संन्यासी का भेष बना कर बन-बन फिरता है ; पर उसका मन भगवान्‌में नहीं लगता, तो उसके घर छोड़ने और तकलीफ उठानेसे कोई लाभ नहीं।

वह वैरागी तो बन जाता है, भेष तो संन्यासियों का सा धर लेता है ; पर उसका मन विषयोंमें लगा रहता है ; इसलिये वह धोबीके कुत्तेकी तरह घर और घाट कहीं का नहीं रहता ; लेकिन कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो घरमें ही रहते हैं ; पर सत्संग करते और हरि-यश सुनते हैं। वे सत्सङ्ग के प्रभाव और गुरुकी दयासे, विषयोंसे मनको हटाकर, ईश्वरके गुणागान करने लगते हैं। फिर ; धीरे-धीरे उनकी भक्ति ईश्वरमें बढ़ जाती है और वे सच्चे भक्त हो जाते हैं। अनेक लोग घरमें ही रहकर इस तरह सिद्धि लाभ कर चुके हैं। साराँश यह, विषयोंसे मन खींच लेनेवाला, ममता और वासना न रखने वाला गृहस्थ भला ; पर विषयोंमें मन रखनेवाला, ममता और वासनाको न त्यागने वाला त्यागी संन्यासी भला नहीं।

(४)

जिनका भगवान्के चरण-कमलोंमें सच्चा प्रेम नहीं है, जिनका हरिभक्तिके साधन—सन्तोंके चरणोंमें नेह नहीं है, जो महात्माओंकी सङ्गति और पदवन्दना नहीं करते, वे वृथा ही घर छोड़, सिर मुँड़ा, भेष बदल कर भाँड़ हो गये हैं।

भाँड़ जिस तरह लोगोंको रिझाने और रुपया कमानेके लिये अनेक प्रकारके स्वाङ्ग धरते हैं ; उसी तरह आज-कल बहुतसे लोग रुपया कमाने और अपने तईं पुजवानेको संन्यासियोंका सा भेष बनाते हैं। वे न तो भगवान्को जानते हैं और न उसके जाननेके लिये महात्माओंकी सङ्गति और उनकी

सेवा ही करते हैं। उन्हें सिर मुँड़ाने, गेरुए कपड़े पहनने और घर त्यागने से कोई लाभ नहीं।

(५)

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो घर-गृहस्थीमें रहते हैं और शरीरसे अपने कुलके व्यवहार करते हैं; पर मनको सब ओरसे खींचकर, ममताको त्याग कर, उसे परमात्मामें लगाते हैं। प्रह्लाद और अम्बरीष प्रभृति ऐसे ही भक्त हो गये हैं। कुछ ऐसे लोग होते हैं, जो तन और मन दोनोंसे ही ईश्वरकी भक्ति और उपासना करते हैं। नारद और शुकदेवकी गणना ऐसों में ही है। इन्होंने घर त्यागकर हरिभक्ति की। कुछ ऐसे लोग होते हैं कि, जो लोगोंको रिझाने और हलवा-पूरी तथा खीर-खाँड़ उड़ानेके लिए, वेदान्त और पुराणोंको सीख लेते हैं और तोतेकी तरह मीठी-मीठी बातें बनाते हैं। सीधे-सादे भौंदू लोग उनकी बातों पर रीझ कर, उन्हें रबड़ी-मलाई और मोहन-भोग खिलाते हैं। इन मालों के खानेसे जब कामदेव ज़ोर करता है; तब काम शान्तिके लिये, ये लोग इधर-उधरसे व्यभिचारिणी दुष्टाओंको उड़ा लाकर घरमें रख लेते हैं। मनमें समझते हैं, हम वैराग्यवान् हैं और इस अभिमानमें चूर भी रहते हैं। स्वयं जगत्से पुजना चाहते हैं; पर आप घरमें रक्खी हुई राँड़को पूजते हैं। ऐसोंका मानव-जन्म वृथा नष्ट होता है।

(६)

जो कामी या स्त्री-लोलुप होते हैं, उनका मन भगवान्में

नहीं लग सकता ; पर जो सच्चे ईश्वर-भक्त होते हैं, वे विषय-भोग और स्त्रियोंका नाम तक नहीं लेते। विषयी पुरुषोंसे हरि-भक्ति नहीं हो सकती और हरि-भक्तों से स्त्री नहीं भोगी जा सकती। जिस तरह सूरज और रात अथवा दिन और रात एकत्र नहीं हो सकते ; उसी तरह राम और काम दोनों एकत्र नहीं हो सकते। मतलब यह है, जिन्हें ईश्वरके दर्शन करने हों, जिन्हें परमपद या सिद्धि प्राप्त करनी हो, वे स्त्रियोंके दर्शन, उनकी चर्चा और उनके चित्रों तक से बचें ; क्योंकि ईश्वर-प्राप्तिमें स्त्री एक खाईके समान है।

(७)

जब योगीके मनमें आशा नहीं रहती, उसे किसीसे कुछ चाहना नहीं रहती, तब योगी जगत्‌का गुरु होता है ; लेकिन जब योगीके मनमें आशा-तृष्णाका उदय होता है, जब योगी किसीसे कुछ चाहता है, तब योगी चेला हो जाता है और जगत् उसका गुरु हो जाता है ; यानी जगत् उसकी निन्दा करता और उसे नसीहत देता है। मतलब यह, सच्चे योगियों को किसी भी पदार्थकी चाहना नहीं होती ; अतः वे जगत्‌को तिनके के समान तुच्छ समझते हैं ; पर वासना या इच्छा रखनेवाले जगत् की खुशामद करते और इस तरह संसारी आदमियोंसे छोटे बनते हैं।

कोरा सन्यासी-भेष धारना, नरकके सामान करना है ।

आजकल अनेक वेद-विरुद्ध काम करनेवाले, मनगढ़न्त मत चलानेवाले, झूठ बोलनेवाले, बगुला और बिलाव की सी वृत्ति रखनेवाले फिरते हैं। गृहस्थोंको चाहिये कि, उनका बातोंसे भी सत्कार न करें। ठगोंका सत्कार होनेसे ही ठग-साधु बढ़ रहे हैं। उनमेंसे कोई मूर्त्ति बनाकर पूजता और पुज-वाता है। कोई अपनेको कबीरपन्थी, कोई नानकपन्थो, कोई रामानुजी और कोई दादूपन्थी कहता है। इन पन्थोंसे कोई लाभ नहीं। जब तक 'आत्मज्ञान' नहीं होता, तब तक सिद्धि या मोक्ष नहीं मिलती; अतः मनको, सब तरफसे हटाकर, आत्मचिन्तनमें लगाना चाहिये। ढोंग करनेसे मनुष्य-जन्म वृथा जाता है। काम तो सब यतियों के से किये जाते हैं, कष्ट भी उन्हींकी तरह उठाये जाते हैं; पर परिणाममें मिलता कुछ भी नहीं। बिना आत्मज्ञान या ब्रह्मविचार के कल्याण नहीं होता। गृहस्थोंको भी चाहिए कि, ऐसे ठगोंका आदर-सम्मान न करें। ऐसे बनावटी साधु-संन्यासी आप नरकमें जाते और अपने शिष्योंको भी नरकमें घसीट ले जाते हैं।

किसीने ठीक यही बात कबितामें बड़ी खूबीसे कही है :—

आतमभेद बिन फ़िरें भटकते,
सब धोखेकी टाटीमें।

कोई धातुमें ईश्वर मानत,
कोई पत्थर कोइ माटीमें।
वृक्ष कोइ जलमें कोई,
कोइ जङ्गल कोइ घाटीमें।
कोइ तुलसी रुद्राक्ष कोई,
कोई मुद्रा कोई लाठीमें।
भगत कबीर कोई कह नानक,
कोई शंकर परिपाटीमें।
कोई नीमार्क रामानुज है,
कोई वल्लभ परिपाटीमें।
कोई दादू कोई ग़रीब दासी,
कोई गेरू रंगकी हाटीमें।
कहै "आज़ाद" भेष जो धारे,
चले नरक की भाटीमें॥

संन्यासी एक जगह न रहे।

संन्यासीका मन किसीकी प्रीतिमें न फँस जाय अथवा किसीसे उसकी मुहब्बत न हो जाय; इसलिये धर्मशास्त्रमें संन्यासियोंको एक दिनसे ज़ियादा एक गाँवमें रहना तक मना लिखा है। कहा है :—

आबे दरिया बहे तो बेहतर,
इन्साँ रवा रहे तो बेहतर।
पानी न बहे तो उसमें दुर्गन्ध आये।
ख़ञ्जर न चले तो मोर्चा खाये॥

गिरिधर कवि कहते हैं :—

कुण्डलिया।

(१)

बहता पानी निर्मला, पड़ा गन्ध सो होय।
त्यों साधू रमता भला, दाग़ न लागे कोय॥
दाग़ न लागे कोय, जगतसे रहे अलहदा।
राग-द्वेष युग प्रेत, न चितको करें बिच्छेदा॥
कह "गिरिधर" कविराय, शीत उष्णादिक सहता।
होय न कहुँ आसक्त, यथा गंगा-जल बहता॥

(२)

रहनो सदा इकन्तको, पुनि भजनो भगवन्त।
कथन श्रवण अद्वैतको, यही मतो है सन्त॥
यही मतो है सन्त, तत्वको चितवन करनो।
प्रत्यक् ब्रह्म अभिन्न, सदा उर अन्तर धरनो॥
कह "गिरिधर" कविराय, बचन दुर्जनको सहनो।
तजके जन-समुदाय, देश निर्जनमें रहनो॥

संन्यासियोंके कर्त्तव्य कर्म ।
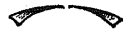
(यति पञ्चकसे)

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो,
भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः ।
विशोकमन्तः करणे रमन्तः,
कौपीनवंतः खलु भाग्यवन्तः ॥

(२)

मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः,
पाणिद्वयं भोक्तुममन्त्रयन्तः ।
कन्थामिव श्रीमपि कुत्सयंतः,
कौपीनवंतः खलु भाग्यवंतः ॥

(३)

देहादिभावं परिवर्त्तयन्तः,
आत्मानमात्मन्यवलोकयन्तः ।
नान्तं न मध्यं न वहिःस्मरन्तः;
कौपीनवंतः खलु भाग्यवंतः ॥

(४)

स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः,
सुशान्त सर्वेन्द्रियतुष्टिमन्तः ।

अहर्निशं ब्रह्मसुखे रमन्तः,
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥

(५)

पञ्चाक्षरं पावनमुच्चरन्तः,
पतिं पशूनां हृदि भावयन्तः ।
भिक्षाशिनो दिक्षु परिभ्रमन्तः,
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥

भावार्थ ।

(१)

वेदान्त वाक्य या उपनिषदोंमें अथवा ब्रह्मविद्यामें मन लगाये रहनेवाला, केवल भिक्षाके अन्नसे सन्तुष्ट रहने वाला, मनको शोक-ताप-शून्य करके सन्तुष्ट रहनेवाला और कोपीन पहनने वाला योगी भाग्यवान् है।

(२)

केवल वृक्षके मूलमें आश्रय लेनेवाला, दोनों हाथोंको भोजनके लिये न लगानेवाला, आत्मश्लाघा की तरह लक्ष्मी की निन्दा करनेवाला अर्थात् अपनी तारीफ और धनसे दूर रहने वाला, एवं कोपीन धारण करनेवाला योगी सुखी है।

(३)

सुखासक्ति—वासनाको त्यागनेवाला, अपने स्वरूपमें

औरोंको देखनेवाला, अन्त, मध्य और पुत्रकलत्रादिको न याद करनेवाला एवं कोपीन बाँधनेवाला यति भाग्यवान् है।

(४)

अपने आत्माके ही आनन्दमें मग्न रहनेवाला, आँख कान नाक जीभ प्रभृति इन्द्रियोंके विषय-सुखोंके त्यागनेसे सन्तुष्ट और आत्मसाक्षात्कारसे खुश रहनेवाला एवं दिन-रात ब्रह्मके दर्शनोंसे पैदा हुए आनन्दमें रहनेवाला तथा कोपीन पहनने वाला योगी सुखी है।

(५)

"शिवाय नमः" इस पाँच अक्षरके, आत्माको शुद्ध करने वाले, मंत्रका उच्चारण करनेवाला, हृदयमें पशुपति शङ्करकी भावना करता हुआ, भिक्षान्न पर गुज़ारा करके, दिशाओंमें घूमनेवाला और कोपीन धारण करनेवाला योगी भाग्यवान् है।

यतिपञ्चकका फल।

वास्तविक महापुरुष होनेकी इच्छा रखनेवालोंको उपरोक्त "यतिपञ्चक" कण्ठाग्र कर लेना और इस पर अमल करना चाहिये; तब उन्हें निश्चय ही शान्ति और सिद्धि मिलेगी।

छप्पय।

शतहि वर्षकी आयु, रातमें बीतत आधे।
ताके आधे आध, वृद्ध बालकपन साधे॥

रहे यहै दिन, आधि व्याधि गृहकाज समोये ।
नाना विधि बकवाद करत, सबहिनको खोये ॥
जलकी तरंग बुदबुद सदृश, देह खेह ह्वै जात है ।
सुख कहो कहाँ इन नरनकौ, जासों फूलत गात है ॥१०७॥

107. The average longevity of a man is estimated at hundred years. Half of it passes away in nights. Of the remainder one portion is spent in childhood and another in old age. What finally remains is led with hardship caused by disease and separation in other people's service etc. Where is the happiness for living beings in a life which is as restless as the currents of water ?

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं
यन्मुंचंत्युपभोगकांचनधनान्येकांततो निःस्पृहाः ॥
न प्राप्तानि पुरा न संप्रति न च प्राप्तौ दृढ़प्रत्ययो
वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्त वयम् ॥१०८॥

उन बुद्धिमान, निर्मल ज्ञानवाले, ब्रह्मज्ञानियोंका कठिन व्रत देखकर हमें बड़ा विस्मय होता है, जो विषय-भोग, धन-दौलत, सोना-चाँदी और स्त्री-पुत्र प्रभृति को एकदम से त्याग देते हैं और फिर उनकी इच्छा नहीं रखते ॥१०८॥

सत् और असत्का विचार करनेवाले, देह और आत्माको अलग-अलग समझनेवाले, इस संसारको स्वप्नवत माननेवाले,

इस जगत्की झूठी चमक-दमक पर मोहित न होनेवाले पुरुष "ज्ञानी" कहलाते हैं। जिनके सामनेसे मायाका पर्दा हट जाता है, जिन्हें देहके नाशमान् और आत्माके नित्य और अविनाशी होनेका ज्ञान हो जाता है, उन्हें परमात्मा दीखने लगता है। उन्हें परमात्मा के ध्यानमें जो आनन्द आता है, उसकी बराबरी त्रिभुवनके सारे सुखैश्वर्य्य भी नहीं कर सकते। ऐसे ज्ञानी इस जगत्से नाता क्यों जोड़ने लगे? जब तक उन्हें ज्ञान नहीं होता ; मायाका पर्दा उनकी आँखोंके सामनेसे नहीं हटता, शरीर और आत्माका भेद मालूम नहीं होता, तभी तक वे इस संसारी जालमें फँसे रहते हैं ; जहाँ उन्हें ज्ञान हुआ, और उन्होंने संसारीकी असलियत समझी, तहाँ फौरन ही इसे छोड़ा। एकवार छोड़कर, फिर इसकी इच्छा वे इसलिये नहीं करते, कि वे समझ-बूझ कर इसे छोड़ते हैं ; ज़बर्दस्ती या किसीके बहकाने से अथवा दूकान्दारी के लिए तो वे इसे छोड़ते ही नहीं, जो उनकी लालसा इसमें बनी रहे।

जो लोग रुपया पैदा करने या पुजनेके लिए घर-गृहस्थी को छोड़ते हैं, उनका मन संसारके विषय-भोगोंमें लगा रहता है। वे न तो इधरके ही रहते हैं और न उधरके ही। वे "धोबी का कुत्ता घरका न घाटका" अथवा "खुदाही मिला न विसाले सनम" या "दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम" वाली कहावतोंको चरितार्थ करते हैं। ऐसे कच्चे त्यागियोंके सम्बन्ध में गोस्वामि तुलसीदास जी कहते हैं :—

इत कुल की करनी तजे, उत न भजे भगवान।
तुलसी अधवर के भये, ज्यों बघूर को पान॥

अर्थात् इधर तो वे अपना घरबार और स्त्री-पुत्र तथा अपने कुलके कामोंको छोड़ बैठते हैं और उधर भगवान्को भी नहीं भजते। वे हवाके बवण्डर या भभूलेमें चक्कर खानेवाले पत्तेकी तरह अधवरमें ही चक्कर खाते रहते हैं।

अगर वे अपने घरमें ही रहते, तो अपने कुल-वर्णके अनुसार कर्म करते और महात्माओंकी संगति तथा उनको सेवा-टहल से संसारकी असारता, अपने नातेदारोंको स्वार्थपरता एवं ईश्वरकी महिमाका ज्ञान लाभ करके, ईश्वरकी भक्ति करते हुए, प्रह्लाद, जनक और अम्बरीष प्रभृतिकी तरह, घरमें रहकर ही, सिद्धि लाभ करते। नादान लोग, बिना पूर्ण वैराग्य और ज्ञानके, घरगृहस्थीको छोड़कर वनमें चले तो जाते हैं; पर उनकी वासना—ममता अपने घर वालों अथवा पराई स्त्रियों या धन-दौलतमें बनी ही रहती है; इसलिये वे संसारियोंकी निन्दाके भयसे लुक-छिपकर विषयोंको भोगते और परमात्मामें मन नहीं लगाते। इस तरह उनके लोक-परलोक दोनों बिगड़ते हैं—वे न तो संसारी सुख ही भोग सकते हैं और न स्वर्ग या मोक्ष ही लाभ कर सकते हैं। सारांश यह, मनुष्यको संसारसे पूरी विरक्ति होनेपर संन्यास लेना चाहिये और एकबार त्यागी बन कर फिर अत्यागी न बनना चाहिये। त्यागी होकर विषयों

में लालसा रखने वाले महा नीच हैं। उनकी दोनों जहानमें घोर दुर्गति होती है।

प्रत्येक मनुष्यको समझना चाहिये कि, यह संसार वास्तव में ही माया-जाल है। यहाँ कोई किसीका नहीं है। सब अपना-अपना मतलब गाँठते हैं। मतलब नहीं, तो कोई किसीका नहीं। तुलसीदासजी कहते हैं :—

तुलसी स्वारथके सगे, बिन स्वारथ कोई नाहिं।
सरस वृक्ष पंछी बसें, निरस भये उड़ जाहिं ॥

सभी स्वार्थके सगे हैं; बिना स्वार्थ कोई किसीका नहीं है। जबतक वृक्षमें फल रहते हैं, तभी तक पंछी उस पर रहते हैं; जहाँ वृक्ष फलहीन हुआ, कि वे उसे छोड़कर और जगह उड़ जाते हैं। यही हाल संसारका है। सब खड़े दमका मेला है। सभी जीते जीके साथी हैं; मरतेही सारी मुहब्बत उड़ जाती है। जो स्त्री अर्द्धाङ्गी कहलाती है, जो पुरुषको अपना प्राणप्यारा कहती है, उसे गलेसे लगाती है और उसके लिये जान तक देनेको तैयार रहती है, दम निकलते ही उससे डरने या भय खाने लगती है। अगर वह रोती भी है, तो अपने सुखोंके लिए रोती है; उसके लिए नहीं रोती। और कुटुम्बी —माता-पिता बहिन भाई इत्यादि भी दम निकलते ही कहने लगते हैं,—"जल्दी उठाओ, अब घरमें रखना ठीक नहीं।"

इस मौक़ेकी एक कहानी हमें याद आई है। उसे हम पाठकोंके उपकारार्थ नीचे लिखते हैं :—

सब जीते जीके साथी हैं।

एक सेठका लड़का किसी महात्माके पास जाया करता था। सेठको भय हुआ कि, कहीं पुत्र वैराग्य न ले ले; इसलिये उसने पुत्र-बधूसे कहला दिया कि, वह पुत्रको हर तरहसे अपने वशमें कर ले; जिससे महात्माकी संगति छूट जाय। लड़के की स्त्री उस दिनसे उसकी सेवा-टहल औरभी ज़ियादा करने लगी; हाथोंमें उसका मन रखने लगी। लड़का जब घरसे बाहर जाता, तभी वह कहती—"आपका वियोग मुझसे सहा नहीं जाता। क्षण-भरमें ही मेरे प्राण अकुलाने लगते हैं; अतः आप मुझे छोड़ कर कहीं न जाया करें। लड़केने महात्माके पास जाना कम ज़रूर कर दिया; पर कभी-कभी वह चला ही जाता था। एक दिन वह बहुत दिन बीचमें देकर पहुँचा। महात्माने कहा—"भाई, आज-कल तुम आते क्यों नहीं?" उसने कहा—"मेरी स्त्री मुझे बहुत ही प्यार करती है। उसे मेरे बिना क्षण-भर भी कल नहीं पड़ती; इसीसे आना नहीं होता।" महात्माने कहा—"भाई! ये सब झूठी बातें हैं। संसारमें कोई किसीको नहीं चाहता। अगर तुमको विश्वास न हो, तो परीक्षा कर लो।"

सेठके पुत्रने परीक्षा करना ही उचित समझा। महात्माने उसे प्राणायाम या साँस चढ़ानेकी क्रिया सिखा दी। जब वह प्राणायामकी क्रियामें पक्का हो गया, तब महात्माने कहा—

"आज तू घर जाकर कहना कि, मेरे पेटमें बड़ा दर्द है। इसके बाद साँस चढ़ाकर पड़ जाना ; पर पहले यह कह देना कि, यदि मेरी मृत्यु हो जाय, तो अमुक महात्माको बुलाये बिना मुझे मत जलाना।" लड़का घर पहुँचा और पेटके दर्दके मारे चिल्लाने लगा। कुछ देर बाद ज़मीन पर गिर पड़ा और माता-पितासे कहने लगा—"यदि मैं मर जाऊँ, तो बिना अमुक महात्माको बुलाये और दिखाये मुझे मत जलाना।" इसके बाद उसने साँस चढ़ा लिया। घरवालोंने उसे देखा तो बोले —"अब इसमें दम नहीं, काठी-कफन् लाओ और श्मशानकी तैयारी करो।" इतनेमें उसकी माँ बोली,—"पुत्रने अमुक महात्माको बुलानेको कहा था, इसलिये पहले उन्हें बुलवालो।" सेठने महात्माके पास आदमी भेजा। वह तत्काल चले आये। उन्हें देखते ही सेठ बोला—"मैं मर जाऊँ तो हानि नहीं ; पर मेरा पुत्र जी उठे, यही मेरी इच्छा है।" यही बात सेठानी और लड़केकी स्त्रीने भी कही। महात्माने कहा—"मैं एक पुड़िया देता हूँ। तुममें से जो कोई इसे खा लेगा, वह मर जायगा और लड़का जी उठेगा।" इस बातके सुनते ही, सब लगे बग़लें झाँकने और बहाना करने। तब महात्माने कहा— "खैर, तुम सब नहीं खाते, तो मैं ही खा लेता हूँ।" यह कह, महात्माने पुड़िया खा ली और क्रिया द्वारा लड़केका साँस उतार, उसे होशमें कर दिया। लड़केने सारा हाल सुना। सुनते ही उसे संसारी मुहब्बतका सच्चा हाल मालूम हो गया

और उसने घर छोड़ वैराग्य ले लिया। देखिये! कुटुम्बियोंकी प्रीतिका चित्र महात्मा सुन्दरदासजी कैसी उमदगीके साथ खींचते हैं :—

(१)

मात पिता युवती सुत बान्धव।
लागत है सब कूँ अति प्यारो ॥
लोक कुटुम्ब खरो हित राखत।
होइ नहीं हमतें कहुँ न्यारो ॥
देह-सनेह तहाँ लग जानहु।
बोलत है मुख शब्द उचारो ॥
"सुन्दर" चेतन-शक्ति गई जब।
बेगि कहें घर बार निकारो ॥

(२)

रूप भलो तबही लग दीसत।
जौं लग बोलत-चालत आगे ॥
पीवत खात सुनै और देखत।
सोइ रहे उठिके पुनि जागै ॥
मात पिता भइया मिलि बैठत।
प्यार करे युवती गल लागे ॥
"सुन्दर" चेतन-शक्ति गई जब।
देखत ताहि सबै डरि भागे ॥

मा, बाप, स्त्री, पुत्र और नातेदार सबको पुरुष बहुतही प्यारा लगता है। सब लोग उससे खूब मुहब्बत करते और चाहते हैं कि, यह हमसे अलग न हो। लेकिन यह देहकी मुहब्बत उसी समय तक है, जबतक कि प्राणी अच्छी तरह बोलता चालता है। "सुन्दरदासजी" कहते हैं,—जहाँ शरीरमेंसे चेतन-शक्ति—आत्मा निकल कर गई, कि वेही सब कहने लगते हैं—"इसे जल्दी घरसे बाहर निकालो।" जबतक प्राणी बोलता, चालता, खाता, पीता, सुनता और देखता है एवं सोकर फिर जाग उठता है; तभी तक मा-बाप और भाई पास बैठते हैं और युवती गलेसे लगकर प्यार करती है। "सुन्दर-दासजी" कहते हैं,—ज्योही चेतन-शक्ति शरीरसे निकल कर बाहर गई कि, लोग उसे देखते ही डर कर भागने लगते हैं।

जिस संसारकी ऐसी गति है, जो निरा माया-जाल या गोरखधन्धा है, जिसमें कुछ भी सार-तत्त्व नहीं है, जिसमें स्वार्थपरता या खुदग़रज़ी कूट-कूट कर भरी है, उसपर मूर्ख ही लट्टू होते हैं। जो दाना और समझदार हैं, वे उसके जालमें नहीं फँसते अगर फँस भी जाते हैं, तो सबको छोड़-छाड़कर अलग हो जाते है। जितने विद्वान और महात्मा हुए हैं, सभी ने कहा है—"इस संसारके साथ दिल मत लगाओ; इसके बनाने वालेके साथ दिल लगाओ। इसीमें आपकी भलाई और आपका कल्याण है। उसकी शरणमें जाने वालेके पास दुःख और क्लेश नहीं फटकते। वह अपने शरणार्थीोंकी सदा रक्षा

करता है। कौरव-सभामें उसीने द्रौपदी की लाज रक्खी थी। जो उसे याद करता है, उसकी ख़बर वह अवश्य लेता है।" कहा है :—

जो तुमको सुमिरत जगदीशा, ताहि आपनो जानत ईशा।
अभिमानी से हो तुम दूरा, सतवादीके जीवनमूरा।
सुखी मीन जहँ नीर अगाधा, जिमि हरशरण न एकौ बाधा॥

॥ दोहा ॥

बड़े विवेकी तजत हैं, सम्पत्ति सुत पितु मात।
कन्था और कोपीन हूँ, हमसे तजो न जात ॥१०८॥

108. How wonderful is the action of those wise in the knowledge of Brahma and pure of reason, who renounce altogether, without any further desire to regain them the pleasures of life, gold and all other objects of wealth! We neither possessed such things before, nor do we possess them now, nor is there any certainty of getting them hereafter, still we are unable to give up even the desire for obtaining them.

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्॥
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्॥१०९॥

वृद्धावस्था भयङ्कर बाघिनीकी तरह सामने खड़ी है। रोग शत्रुओंकी तरह आक्रमण कर रहे हैं, आयु फूटे हुए घड़ेके पानी

की तरह निकली चली जा रही है। आश्चर्य्यकी बात है, फिर भी लोग वही काम करते हैं, जिससे उनका अनिष्ट हो ! ॥१०६॥

बुढ़ापा मौत का पेशख़ीमा है।

बुढ़ापा मौतका पेशख़ीमा या बक़ौल "सिसरो" ज़िन्दगीके ड्रामा या नाटकका आख़िरी सीन है। इसीसे चतुर पुरुष बुढ़ापे को देखते ही समझ लेते हैं कि, मौत अब आने ही वाली है—हमारे जीवन-नाटकका अन्तिम पर्दा गिरने ही वाला है—हमारी ज़िन्दगीका अभिनय अब ख़तम होने ही वाला है। इसीसे अगर उन्होंने जवानी और बचपनके दिन वृथाके जञ्जालों में भी खोये हैं ; तो बुढ़ापेमें वे चेत जाते हैं और सब तजकर हर भजने लगते हैं ; पर ऐसे समझदारोंकी संख्या बहुत थोड़ी है। ज़ियादा तादाद उन अज्ञानियोंकी है, जो बुढ़ापेको सामने देखकर भी, दम और खाँसीके आक्रमण होनेपर भी, घर-वालोंसे तिरस्कृत होनेपर भी, संसारकी ममता नहीं छोड़ते। अनेक बूढ़े ठीक चला-चलीके समय शादी-विवाह करते हैं ; अनेक बेटे पोतोंकी पालनामें लगे रहते हैं और अनेक धन बढ़ानेकी चिन्तामें ही मशगूल रहते हैं। इन सब कामोंसे मनुष्योंका अनिष्ट साधन होता है। न तो उन्हें इस जन्ममें ही क्षण-भरको शान्ति मिलती है और न मरने पर अगले जन्ममें ही। ममता और कामनाके कारण उनका संसार-बन्धन दृढ़ होता जाता है और वे बारबार मरते और जन्म लेते हैं तथा

इस घोर दुःखको सुख समझते हैं। भगवान् जाने उन्हें इन घोर दुःखोंको देखकर भी कैसे सन्तोष होता है? भगवान् शङ्कराचार्य्य कहते हैं :—

यावज्जननं तावन्मरणं, तावज्जननी जठरे शयनम्।
इति संसारे स्फुटतर दोषः, कथमिह मानव! तव सन्तोषः?॥

जब तक जन्म ग्रहण करना है, तब तक मरना और माता के पेटमें सोना है। संसारमें यह दोष स्पष्ट है। हे मनुष्य! फिर भी तुझे इस जगत्से कैसे सन्तोष है?

रोज़ आँखोंसे देखते हैं, कि इस संसारमें ज़रा भी सुख नहीं है। माताके पेटमें प्राणी नौ महीने तक घोर नरक-कुण्ड में पड़ा-पड़ा सड़ता है। वहाँ परमात्मासे बारम्बार विनय करता है, कि मुझे इस नरकसे बाहर कीजिये। मैं बाहर जाते ही, केवल आपका भजन करूँगा; पर बाहर आते ही, वह सब भूल जाता है। उसे अपने वादेका ध्यान भी नहीं रहता। बाल्यावस्था वह खेल-कूद या पढ़ने-लिखनेमें गँवा देता है; तरुणावस्थामें वह तरुणीके फन्देमें फँसा रहता है और बुढ़ापेमें नाती-पोतों और दोहितोंका सुख देखना चाहता है। इसी तरह उसकी सारी उम्र बीत जाती है और जिस कामके लिये वह यहाँ आया था, वह काम अधूरा या बिना हुआ रह जाता है और समय पूरा होने पर, काल चोटी पकड़ कर ले जाता है। इसके बाद; वह फिर जन्म लेता और मरता है। इस तरह उसे ८४ लक्ष योनियोंमें जन्म लेना

पड़ता है ; तब कहीं फिर ऐसा अवसर उसे मिलता है ; यानी जन्म-मरणकी फाँसी काटनेवाली मनुष्य-देह मिलती है। अतः ज्ञानीको चाहिये कि, अपने मनको अपने अधीन करे और एकाग्र चित्तसे परमात्माकी उपासनामें लवलीन हो जाय। इस दुर्लभ मनुष्य-देहको वृथा न गँवावे।

महात्मा चरणदासने यही सब मोह-मदिराका नशा उतारनेवाली और ग़फ़लतको दूर करनेवाली बातें नीचेके भजनमें बड़ी ही ख़ूबीसे अदा की हैं :—

भजन (राग जंगला)।

पीले रे प्याला हो जा मतवाला, प्याला प्रेम हरीरसका रे ॥टेक॥
पाप-पुण्य दोउ भुगतन आये, कौन तेरा और तू किसका रे ?।
जो दम जीवे प्रभुके गुण गाले, धन यौवन सुपना निशका रे ॥१॥
बाल अवस्था खेल गँवाई, तरुण भया नारी-बश का रे।
वृद्ध भया कफ़ बायने घेरा, खाट परा नहिं जाय मसका रे ॥२॥
नाभ-कमल-बिच है कस्तूरी, कैसे भरम मिटे पशुका रे।
मन सतगुरु यों भरमत डोले, जैसे मिरग फिरै बन का रे ॥३॥
लख चौरासीसे उबरा चाहे, छोड़ कामिनी का चसका रे।
प्रेम लगन "चरणदास" कहत हैं, नखसिख स्वास भरा विषका रे ॥४॥

बुढ़ापेमें तो मोक्ष-रूपी सोना बना लो।

मनुष्यकी आयु फूटे घड़ेके जलकी तरह नित्य निकली चली जा रही है। प्राणी हर क्षण कालके गालमें है। जबतक

वह कालके गलेके नीचे नहीं उतारता, तभी तक ख़ैर है। पर मज़ा यह कि, मनुष्य आप कालके गालमें है; तोभी विषयों-का पीछा नहीं छोड़ता। इसकी दशा उस मैंडकके समान है, जो साँपके मुँहमें फँसा हुआ मच्छरोंको मारनेकी चेष्टा करता था। मनुष्य नित्य देखता है कि, करोड़पति अरबपति और राजा महाराजा अपनी धन-दौलतको यहीं छोड़-छोड़ कर चले जा रहे हैं; पर फिर भी उसे होश नहीं होता! भला इस बेहोशी और ग़फ़लतका भी कोई ठिकाना है! बचपन और जवानीमें ही परमात्मासे प्रीति करनी चाहिये। अगर उन अवस्थाओंमें भूल हो गई हो; तो बुढ़ापेमें तो अवश्य ही सम्हल जाना चाहिये। यह काया पारसमणि है। यह इसलिये मिली है कि, इससे मोक्ष रूपी सोना बना लिया जाय। जो लोग देर करते हैं, अवधि बीतने पर, यह पारसमणि उनसे छीन ली जाती है और वे मोक्ष-रूपी सोना नहीं बना पाते; यानी मोक्ष-लाभके उपाय करनेके पहले ही काल उन्हें ले जाता है।

पारस पत्थरकी बटिया।

एक महापुरुषके पास पारस-पत्थरकी बटिया थी। उन्होंने एक दरिद्र गृहस्थपर दयाकर, उसे वह बटिया दे दी और कह दिया कि, हम तीर्थ करने जाते हैं; १८ महीने बाद लौटेंगे; तब तक तुम इस बटियासे इच्छानुसार सोना बनाकर, अपना

दारिद्र-दुःख दूर कर लेना। महात्मा चले गये। गृहस्थने बाज़ारमें जाकर लोहेका भाव पूछा। भाव मँहगा था, इसलिये सोचा कि, जब लोहा सस्ता होगा, लाकर झट सोना बना लूँगा। इस तरह १८ महीनोंमें जब दो चार दिन रह गये, तब वह लोहा गाड़ियों पर लदाकर लाया। विचार किया—"अब क्या देर है, झट सोना बना लेंगे।" उसे तो ख़याल रहा नहीं और १८ वें मासका आख़िरी दिन आ गया। महात्मा भी आ गये। उन्होंने आते ही अपनी पारसमणि माँगी। गृहस्थने कहा—"मैं आज शामको ही आपकी बटिया दे दूँगा।" महात्माने कहा—"अब समय हो गया; एक क्षण भी बटिया तुम्हारे पास रह नहीं सकती।" महात्माने बटिया ले ली। गृहस्थ रोता और हाथ मलता रह गया। यह दृष्टान्त है। दृष्टान्त यह है कि, समय पूरा हो जाने पर, काल इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करता कि, किसीका काम हुआ है या नहीं; वह तो प्राणीको लेकर चलता बनता है; अतः समय रहते मोक्षका उपाय करना चाहिये। आग लगने पर कूआ खोदनेसे कोई लाभ नहीं। बुढ़ापा या मौतका पेशख़ीमा आया देखकर भी होश न करना भारी नादानी है।

मनुष्यो! विषयोंको छोड़ो और परलोक बनाने की फ़िक्र करो; क्योंकि काल तुम्हारे सिरों पर उसी तरह मँडरा रहा है; जिस तरह बाज़ चिड़ियाकी घातमें मँडराया करता है। महात्मा सुन्दरदासजीने खब कहा है:—

(१)

तू अति ग़ाफिल होइ रह्यो शठ,
कुञ्जर ज्यूँ कछु शंक न आनै।
माय नहीं तनमें अपनो बल,
मत्त भयो विषया-सुख ठानै।
खोंसत खात सबै दिन बीतत,
नीत अनीत कछु नहिं जानै।
"सुन्दर" केहरि काल महारिपु,
दन्त उखारि कुम्भस्थल भानै* ॥

अरे शठ! तू बहुत ही ग़ाफ़िल और असावधान हो रहा है। हाथीकी तरह मनमें भय नहीं करता। तेरे शरीरमें तेरा बल नहीं समाता। मतवाला होकर विषय-भोगोंका आनन्द लूट रहा है। छीनते और खाते तेरे दिन बीते जा रहे हैं। तू न्याय-अन्याय कुछ नहीं समझता। "सुन्दरदास" कहते हैं, घोर शत्रु कालरूपी सिंह तेरे दांतोंको उखाड़ कर तेरा कुम्भस्थल फाड़ डालेगा।

---

* इस कवितामें मनुष्य को हाथी और मौत को सिंह माना है। सिंह जिस तरह हाथीके दाँत उखाड़ कर, उसके कुम्भस्थलको चीर डालता है; उसी तरह काल-सिंह मनुष्यको मार डालता है। (हाथी को पेशानी के ऊपरी भागमें, सामने ही, जो दो गोले होते हैं। उन्हें "कुम्भस्थल" कहते हैं।

(२)

सन्त सदा उपदेश बतावत ।
केश सबै सिर श्वेत भये हैं ॥
तू ममता अजहुँ नहिं छाँड़त ।
मौतहु आई सन्देश दये हैं ॥
आजु कि काल चलै उठि मूरख ।
तेरे हि देखत केते गये हैं ॥
"सुन्दर" क्यूँ नहिं राम सँभारत ? ।
या जगमें कहु कौन रहे हैं ? ॥

सन्त लोग सदा उपदेश देते हैं। तेरे सिरके बाल सफेद हो गये हैं; मौतने अपना सन्देशा भेज दिया है। अरे मूर्ख! आज या कल तू उठ जायगा। पर अफसोस! इतनी खबर पाने पर भी, तू होश नहीं करता और अब तक भी ममता नहीं छोड़ता! अरे शठ! तेरी आँखों-देखते-देखते कितने ही चले गये हैं; क्या तू यहाँ ही रहा आवेगा? इस जगत्‌में कौन रहा है? अब भी तू भगवान्‌को याद क्यों नहीं करता?

(३)

करत-करत धन्ध, कछु न जाने अन्ध ।
आवत निकट दिन, आगले चपाकदे ॥
जैसे बाज़ तीतर कुँ, दावत है अचानक ।
जैसे बक मछरी कुँ, लीलत लपाकदे ॥

जैसे मक्षिकाकी घात, मकरी करत आय ।
जैसे साँप मूसक कुँ, ग्रसत गपाक दे ॥
चेत रे अचेत नर, "सुन्दर" सँभार राम ।
ऐसे तोहिँ काल आय, लेइगो टपाक दे ॥

अरे अन्धे ! धन्धोंमें लगकर तुझे होश नहीं, तेरे अन्तिम दिन शीघ्र-शीघ्र नज़दीक आ रहे हैं । जिस तरह बाज़ अचानक आकर तीतरको दबा लेता है, जिस तरह बगुला मछलीको चटसे निगल जाता है, जिस तरह मकड़ी मक्खीकी घातमें लगी रहती है, जिस तरह साँप चूहेको गपसे गपक लेता है ; उसी तरह काल तुझ पर झपट्टा मारना ही चाहता है । अरे ग़ाफिल मनुष्य ! होशकर और भगवान्‌को याद कर ।

(४)

मेरो देह, मेरो गेह, मेरो परिवार सब ।
मेरो धन-माल, मैं तो बहु विधि भारो हूँ ॥
मेरे सब सेवक, हुकम कोउ मेटे नाहिं ।
मेरी युवतीको मैं तो अधिक पियारो हूँ ॥
मेरो वंश ऊँचो, मेरे बाप-दादा ऐसे भये ।
करत बड़ाई, मैं तों जगत-उजारो हूँ ॥
"सुन्दर" कहत, मेरो-मेरो करि जानै शठ ।
ऐसे नाहिं जाने, मैं तो काल ही को चारो हूँ ॥

यह मेरी देह है, यह मेरा घर है, यह सब मेरा कुटुम्ब है,

यह मेरा धन-माल है, मैं हर तरहसे बड़ा आदमी हूँ। मेरे सब नौकर हैं, जो मेरी आज्ञाको उल्लङ्घन नहीं करते। मैं अपनी युवतीका बहुत ही प्यारा हूँ; मेरा कुल और वंश ऊँचा है; मेरे बाप-दादा ऐसे नामी हुए; मैं जगत्का उजियारा हूँ; इस तरह मनुष्य अपनी बड़ाई करता और शेख़ी बघारता है। "सुन्दरदास" कहते हैं, शठ मेरा ही मेरा करता है; पर यह नहीं जानता कि, मैं स्वयं ही मौतका चारा हूँ।

(५)

माया जोरि जोरि, नर राखत जतन करि।
कहत है एक दिन, मेरे काम आइ है॥
तोहि तौ मरत, कछु बेर नहिं लागे शठ।
देखत-हि-देखत, बबूलासो बिलाइ है॥
धन तों धर्यो ही रहे, चलत न कौड़ी गहै।
रीते हाथनसे जैसो आयो, तैसो ही जाइ है॥
करिले सुकृत, यह बेरिया न आवै फेरि।
"सुन्दर" कहत, नर पुनि पछिताइ है॥

मनुष्य धन जोड़-जोड़ कर रखता है और कहता है कि, यह एक दिन मेरे काम आवेगा। अरे मूर्ख! तुझे तो मरते देर न लगेगी; देखते-देखते, पानीके बबूलेकी तरह, बिलाय जायगा। तेरा धन यहाँका यहीं रक्खा रह जायगा; चलते

समय कौड़ी भी तू साथ न ले जायगा; जिस तरह रीते हाथों आया था, उसी तरह ख़ाली हाथों चला जायगा। अरे मूर्ख! परोपकार या धर्म-पुण्य कर ले, यह मौक़ा फिर न मिलेगा। "सुन्दरदास" जी कहते हैं, अगर हमारी चेतावनी पर ध्यान न देगा, तो अन्त समय पछतावेगा।

किसी कविने मोह-निद्रामें सोनेवाले ग़ाफ़िलको जगाने और उसे अपने कर्तव्य पर आरूढ़ करनेके लिये कैसा अच्छा भजन कहा है :—

भजन।

मूरख छाँड़ वृथा अभिमान ॥टेक॥
औसर बीत चल्यो है तेरो, तू दो दिनको महमान ॥
भूप अनेक भये पृथ्वी पर, रूप तेज बलवान्।
कौन बच्यो या काल बलीसे, मिट गये नामनिशान॥१॥
धवल धाम धन गज रथ सेना, नारी चन्द्र-समान।
अन्त समय सबही को तजके, जाय बसै समसान ॥२॥
तज सतसंग भ्रमत विषयनमें, जा विधि मर्कट-स्वान।
क्षण-भर बैठ न सुमिरन कीनो, जासों होत कल्याण॥३॥
रे मन मूढ़! अन्त मत भटके, मेरो कह्यौ अब मान।
"नारायण" ब्रजराज कुँवरसे, बेगि करो पहचान ॥४॥

दोहा ।

कुपित सिंहनी ज्यों जरा, कुपित शत्रु ज्यों रोग ।

फूटे घट जल त्यों वयस, तऊ अहितयुत लोग ॥१०९॥

109. Old age stands in front like a ferocious-looking she-wolf. Diseases attack the physical body like so many enemies. Life is leaking away like water from a broken vessel. Still it is strange that men go on doing what will bring them harm in the end !

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ॥

तदपि तत्त्तणभंगि करोति चेदहह कष्टमपंडितताविधेः ॥११०

ब्रह्माकी यह अज्ञानता खटकती है, कि वह मनुष्यको गुणोंकी खान, पृथ्वीका भूषण और प्राणियोंमें रत्नरूप बनाता है ; किन्तु उसे त्तणभङ्गुर कर देता है ॥११०॥

मनुष्य समस्त जीवधारियोंमें श्रेष्ठ, अशरफुल मख़लूक़ात, गुणोंका सागर और सृष्टिकी शोभा है। यह सब होने पर भी, उसकी उम्र कुछ नहीं ; वह पानीके बुलबुलेकी तरह क्षणभरमें ही नाश हो जाता है ! ब्रह्मा गुणोंकी खान—पृथिवीके शोभारूप पुरूषको बनाता है, यह तो अच्छी बात है ; किन्तु उसे क्षणभरमें ही नाश कर देता है, यह दुःखकी बात है ! यह विधाताकी मूर्खता है। यदि वह पुरुषको सदा रहनेवाला—अमर और अजर बनाता, तो अच्छा होता। इसमें उसकी

बुद्धिमत्ता दीखती। क्योंकि अपने बाग़में आप ही वृक्ष लगा कर, आप ही जल सींच और बढ़ाकर, अपने ही हाथोंसे अपने लगाये हुए वृक्षको कोई नहीं काटता। जो ऐसा करता है; वह मूर्ख ही समझा जाता है।

विधाता की औरभी ग़लतियाँ।

इस सृष्टिकी रचनामें, विधाताने अपनी अनुपम कारीगरी और चातुरीके जो काम किये हैं; उन्हें देखकर मनुष्यकी अक़्ल दंग रह जाती है। तरह-तरहके फल-फूल और वृक्ष-लता-पत्रादि; नाना प्रकारके जल, थल और आकाशमें विचरने वाले प्राणी; अनगिन्ती तारे और सूरज-चन्द्रमा तथा नील गगन प्रभृतिको देखकर रचयिता की रचनाचातुरीकी हज़ार दिलसे तारीफ करनी पड़ती है। निस्सन्देह, विधाता की क्षमता और बुद्धिमत्ता, चातुरी और कारीगरीका पार पाना असम्भव है; तथापि यह कहना पड़ता है कि, उस चतुर कारीगरने भूलें भी बहुत की हैं। जिस तरह उसने मनुष्यको, सृष्टिका सर्दार (Lord of creation) बनाकर, क्षणभंगुर करनेकी भूलकी है; उसी तरह उसने सोनेमें सुगन्ध और ईखमें फूल न लगाने तथा चन्द्रमाको कलङ्की बनानेकी भूलें की हैं। किसीने कहा है :—

शशिनि खलु कलंकः, कण्टकं पद्मनाले,
युवतिकुचनिपातः, पक्वता केशजाले।
जलधिजलमपेयं, पण्डिते निर्धनत्वं,
वयसि धनविवेको, निर्विवेको विधाता॥

चन्द्रमामें कलङ्क, कमलकी डण्डीमें काँटे, युवतियोंकी छातियोंका गिर जाना, बालोंका सफेद हो जाना, समुद्रके जलका पीने योग्य न होना, विद्वानोंका धनहीन रहना और बुढ़ापेमें धनागमकी चिन्ता रहना,—ये सब विधाताकी मूर्खता का परिचय देते हैं।

कहाँ तक कहें, विधाताने ऐसी-ऐसी अनेक भूलें की हैं। हमने उसकी भूलोंके चन्द नमूने यहाँ दिखा दिये हैं। ये सब भूलें मनमें काँटेकी तरह खटकती हैं; पर इन सबमें भी, मनुष्य जैसे प्राणीका, क्षणभरमें ही, बबूले की तरह विलाय जाना सब से अधिक खटकता है।

110. How painful is the lack of wisdom of Brahma, who creates man as a mine of all the good qualities, a gem among all creatures and the ornament of the universe, yet makes him perishable in a moment !

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-
र्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते॥
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते हा
कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते॥१११॥

मनुष्यकी वृद्धावस्था बडी खेदजनक है। इस अवस्थामें शरीर सुकड़ जाता हैं, चाल मन्दी पड़ जाती है, दन्त-पंक्ति टूटकर गिर जाती है, दृष्टि नाश हो जाती है, बहरापन बंढ़ जाता है, मुँह से लार टपकती है, बन्धुबर्ग बातोंसे भी सम्मान नहीं करते, स्त्री भी सेवा नहीं करती और पुत्र भी शत्रु हो जाते हैं ॥१११॥

बुढ़ापे का चित्र।

मनुष्यका बुढ़ापा सचमुच ही दुःखोंकी खान है। जिस तरह शत्रु घात लगाये रहते हैं और मौक़ा पाते ही हमला करते हैं, वैसे ही रोग जवानीमें तो दबे-छिपे पड़े रहते हैं, पर बुढ़ापेकी अवाई देखते ही प्राणीपर चढ़ बैठते हैं। बुढ़ापेमें शरीर निकम्मा हो जाता है, खाल झूलने लगती है, इन्द्रियाँ बेकाम हो जाती हैं, आँखोंसे दिखाई नहीं देता, कानोंसे सुनाई नहीं देता, पैरोंसे चला नहीं जाता और दम चढ़ा करता है। हर समय खों-खों लगी रहती है; दाँत अलग ही कष्ट देते और हिल-हिल कर प्राण लेते हैं। कोई कड़ी चीज़ खाई नहीं जाती। ज़रा भी कड़ी चीज़ दाँतों-तले आनेसे दम निकलने लगता है। जिस समय दन्त-पीड़ाके मारे माथा और कनपटी भन्नाने लगते हैं, तब मनुष्य मृत्युको याद करने लगता है। दाँतों पर उस्ताद ज़ौक़ने ख़ूब कहा है :—

मनुष्य की वृद्धावस्था बड़ी खेदजनक है। शरीर काम नहीं देता, स्त्री सेवा नहीं करती—देखते ही आँखें निकालती है। पुत्र भी शत्रु हो जाते हैं।

जिन दाँतोंसे हँसते थे हमेशा, खिल-खिल ।
अब दर्दसे हैं वही रुलाते, हिल-हिल ॥
पीरीमें कहाँ, अब वह जवानीके मज़े ।
ए ज़ौक़, बुढ़ापेसे है दाँता-किल-किल ॥

जिन दाँतोंसे जवानीमें खिल-खिला खिल-खिलाकर हँसा करते थे, अब बुढ़ापेमें वही हिल-हिल कर हमें रुलाते हैं। ऐ ज़ौक़! बुढ़ापे में अब वह जवानीके मज़े कहाँ हैं? अब तो इस बुढ़ापे से दाँता-किल-किल है!

महाकवि नज़ीर अकबराबादी "बुढ़ापे"का क्या ही अच्छा चित्र खींचते हैं :—

बुढ़ापा ।

क्या क़हर है यारो, जिसे आ जाय बुढ़ापा ।
और ऐश जवानीके तईं, खाय बुढ़ापा ॥
इशरतको मिला ख़ाकमें, ग़म लाय बुढ़ापा ।
हर कामको हर बातको, तरसाय बुढ़ापा ॥
सब चीज़को होता है, बुरा हाय बुढ़ापा ।
आशिक़को तो अल्लाह, न दिखलाय बुढ़ापा ॥१॥

आगे तो परीज़ाद ये, रखते थे हमें घेर ।
आते थे चले आप, जो लगती थी ज़रा देर ॥

सो आके बुढ़ापेने किया, हाय ये अन्धेर ।
जो दौड़के मिलते थे, वो अब लेते हैं मुँह फेर ॥
सब चीज़को होता है, बुरा हाय बुढ़ापा ।
आशिक़को तो अल्लाह, न दिखलाए बुढ़ापा ॥२॥

क्या यारो, उलट हाय गया हमसे ज़माना ।
जो शोख़ कि थे, अपनी निगाहोंके निशाना ॥
छेड़े है कोई डालके, दादाका बहाना ।
हँस कर कोई कहता है, कहाँ जाते हो नाना ॥
सब चीज़को होता है, बुरा हाय बुढ़ापा ।
आशिक़को तो अल्लाह, न दिखलाए बुढ़ापा ॥३॥

पूछैं जिसे कहता है, वो क्या पूँछे है बुड्ढे ।
आवें तो ये गुल-शोर ; कहाँ आवे है बुड्ढे ॥
बैठे तो ये है धूम, कहाँ बैठे है बुड्ढे ।
देखें जिसे वह कहता है, क्या देखे है बुड्ढे ॥
सब चीज़को होता है, बुरा हाय बुढ़ापा ।
आशिक़को तो अल्लाह, न दिखलाए बुढ़ापा ॥४॥

वह जोश नहीं, जिसके कोई ख़ौफ़से दहले ।
वह ज़ोम नहीं, जिससे कोई बातको सहले ॥
जब फस हुए हाथ, थके पाँव भी पहिले ।
फिर जिसके जो कुछ शौक़में आवे, सोई कहले ॥
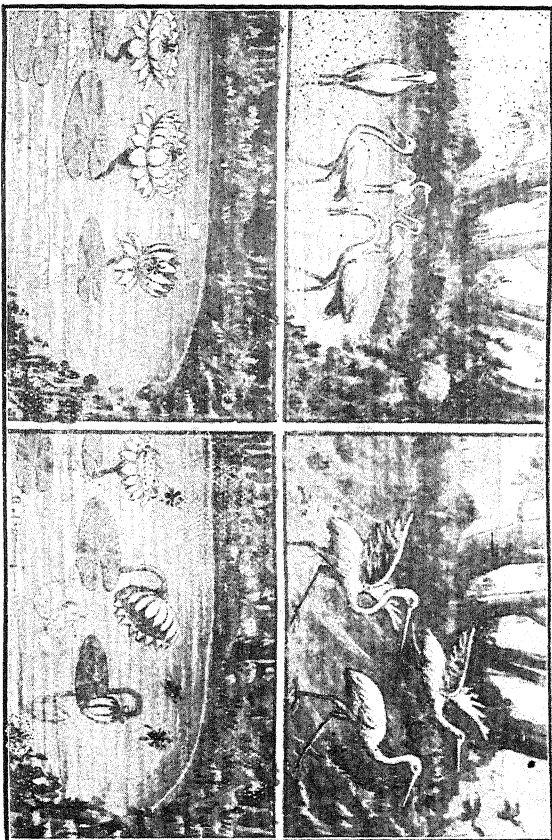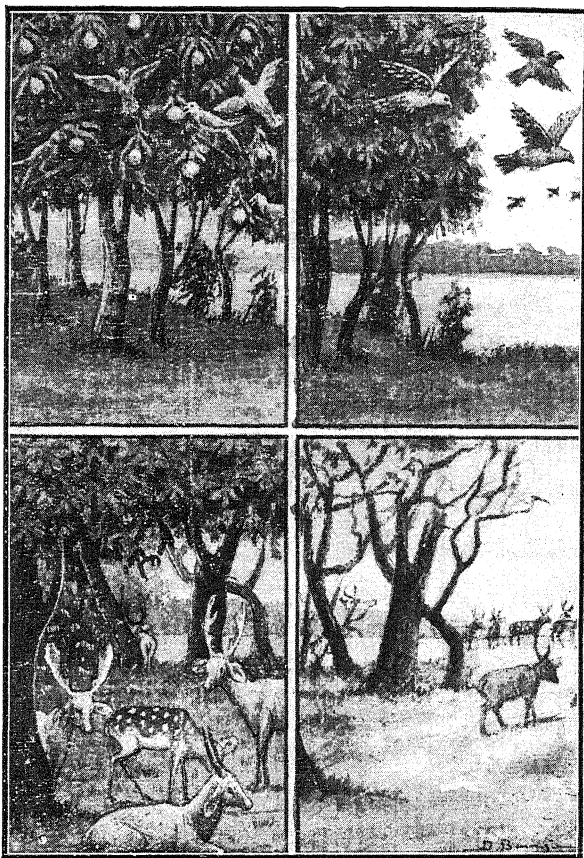
सभी स्वार्थ के सगे हैं। स्वार्थ बिना कोई किसी का नहीं। देखिये, फलहीन वृक्षको पक्षी और जले हुए जंगल को हिरन त्याग रहे हैं। पृ० ४०० (शेष पुश्तपर देखिये।)

सब चीज़को होता है, बुरा हाय बुढ़ापा।
आशिक़को तो अल्लाह, न दिखलाय बुढ़ापा ॥५॥

करते थे जवानीमें, तो सब आपसे आ चाह।
और हुस्न दिखाते थे, वह सब आनके दिलख़्वाह॥
यह क़हर बुढ़ापेने किया, आह नज़ीर आह!
अब कोई नहीं पूँछता, अल्लाह ही अल्लाह॥
सब चीज़को होता है, बुरा हाय बुढ़ापा।
आशिक़को तो अल्लाह, न दिखलाए बुढ़ापा॥

बुढ़ापे में निर्धनता मरण है।

यदि मनुष्य जवानीमें प्रचुर धन कमाकर रख देता है, तब तो बुढ़ापा सुखसे पार हो जाता है; घरवाले हलवा और मोहन-भोग खिलाते, गरमागरम दूध पिलाते अथवा कोई और सुखसे खाये जाने-योग्य पदार्थ बना देते हैं; यदि पास पैसा नहीं होता, तो सभी घरवाले हर तरहसे अनादर करते और सूखे टुकड़े सामने रखते हैं; इच्छा हो बूढ़ा खाय, इच्छा हो न खाय। अगर बूढ़ेके पास धन होता है, तो स्त्री, पुत्र, पौत्र और पुत्री तथा पुत्र-बधुएँ हर समय बूढ़ेकी हाज़िरीमें खड़े रहते हैं; मुँहसे बात नहीं निकलती और काम हो जाता है। अगर बूढ़ेके पास धन नहीं होता, तो सब उसे त्याग देते हैं;

क्योंकि यह संसार मतलबका है ; बिना स्वार्थ, बिना मतलब और बिना पैसे कोई बात नहीं करता। मतलबसे ही लोग एक दूसरेके नातेदार और सम्बन्धी बने हुए हैं, वास्तवमें, कोई किसीका नहीं है।

कहा है :—

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः, शुष्कसरः सारसाः।
पुष्पं पर्य्युषितं त्यज्यन्ति मधुपा, दग्धं वनान्तं मृगाः॥
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिकाः भृष्टश्रियं मन्त्रिणः।
सर्व्वः कार्यवशाद् जनोऽभिरमते, कस्यास्तिको वल्लभः ?॥

फलहीन वृक्षको पक्षी त्याग देते हैं, सूखे तालाबको सारस छोड़ देते हैं, मधुहीन फूलोंको भौंरे त्याग देते हैं, जले हुए वनको हिरन छोड़ देते हैं, धनहीन पुरुषको वेश्या त्याग देती है और श्रीहीन राजाको मन्त्री त्याग देते हैं। सब मतलबसे एक दूसरेको चाहते हैं ; नहीं तो कौन किसका प्यारा है ?

"मोहमुद्गर" में लिखा है :—

यावद् वित्तोपार्जनशक्तः, तावत् निज परिवारो रक्तः।
तदनु च जरया जर्जर देहे, वार्त्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे॥

जब तक धन कमाने की सामर्थ्य रहती है, तब तक कुटुम्ब के लोग राज़ी रहते हैं ; इसके बाद, बुढ़ापे से शरीर जर्जर होते ही, कोई बात तक नहीं पूछता।

संसारकी यही धारा है। जिस पुत्रके लिये बचपनमें कहीं से धन लाते और उसे अच्छा पिलाते-खिलाते और पहनाते थे, हर तरह लाड़-प्यार करते थे ; पास पैसा न होनेपर भी, पढ़ाने-लिखाने में अपनी शक्ति से अधिक ख़र्च करते थे ; आप तंगी भोगते थे, पर पुत्रको तंगदस्त न होने देते थे ; आप फटे कपड़े पहने फिरते थे ; पर उसे अच्छेसे-अच्छा-पहनाते थे ; अब वही पुत्र मुँहसे नहीं बोलता, मौक़ा पड़नेसे वह या उसके पुत्र गालियाँ देते और कभी-कभी बूढ़ेको मार तक बैठते हैं ; पुत्र-बधुयें दिन-भर तनतनाया करती और कहती हैं,—"ससुरजी मरें तो संकट कटे ; दिन-भर पड़े-पड़े खाते और थूक-थूक कर घर ख़राब करते हैं ; हमसे तो रोज़की रोज़ मैला साफ नहीं होता।" बेटोंकी बहुएँ तो बहुएँ, ख़ास अपनी अर्द्धाङ्गी देखते ही आँखें चढ़ा लेती और खाँउँ-खाँउँ करती रहती है ; बूढ़े पतिको आलिङ्गन करना, उसकी सेवा करना तो दूरकी बात है, उसे पास बैठाना भी बुरा समझती है। बीमारीमें सेवा-शुश्रुषा करती-करती कहने लगती है—"अब तो तुम मर जाओ तो अच्छा हो। मुझसे यह सब अब नहीं होता।" कहाँ तक गिनाव, बुढ़ापेमें ऐसे-ऐसे अनगिन्तो दुःख आ घेरते हैं ; पर आश्चर्य तो यह है कि, इतने पर भी, अज्ञानियोंका मोह नहीं छूटता। हमें एक मोहान्ध बूढ़ेकी कहानी याद आई है, उससे पाठकों को बहुत कुछ ज्ञान होगा—उनकी आँखें खुल जायगीः—

एक बूढ़े सेठ की दुर्दशा ।

किसी नगरमें एक बूढ़ा सेठ रहता था। उसने जवानीमें बहुतसा धन सञ्चय किया था। बुढ़ापेमें, पुत्रोंने उससे सारा धन अपने हाथोंमें ले लिया। बूढ़ेको पौलीमें, एक टूटी सी चारपाई पर, एक फटी-पुरानी गुदड़ी बिछाकर पटक दिया। एक लाठी उसके हाथमें दे दी और कह दिया कि, घरमें चोर-चकोर या कुत्ता-बिल्ली न आने पावें। सब घरके भोजन कर लेने पर, बचा-खुचा-खाना एक फूटीसी थालीमें रखकर बहुएँ बूढ़ेको दे जातीं। कुछ दिन इसतरह गुज़रे। पुत्र-बधुओंको यह भी अच्छा न लगा। उन्होंने कहा—"ससुरजीके कारण निकलने-बैठनेमें बार-बार घूँघट करना होता है, इससे बड़ा कष्ट होता है। अच्छा हो यदि ये ऊपरके चौबारेमें रख दिये जायँ और एक घण्टी इन्हें दे दी जाय। जब इन्हें किसी चीज़की ज़रूरत होगी, यह घण्टी बजा देंगे।" कलियुगमें जोरूका हुक्म खुदाके हुक्मके बराबर समझा जाता है। बेटोंने अपनी घरवालियोंकी बात मंज़ूर कर ली और कह-सुन कर बूढ़ेको ऊपर पहुंचा दिया और एक घण्टी उसे दे दी। बूढ़ेको जब खाना या पानी वग़ैरः की ज़रूरत होती, घण्टी बजा देता। कुछ दिनों बाद, एक दिन, बूढ़ेका नाती ऊपर चला गया। बूढ़ा उसे खिलाता रहा। शेषमें, वह खेलता-खेलता घण्टी ले आया। अब तो मुश्किल हो गई; बूढ़ा खाने-पीने बिना मर गया। २४ घण्टे बीतने

पर किसीको उसकी याद आई। देखा, तो बूढ़ेराम कूच कर गये थे। पुत्रोंने उसे श्मशान पर लेजाकर जला दिया। बुढ़ापेमें ऐसी ही दुर्गति होती है।

बुढ़ापेमें ममता और भी बढ़ जाती है।

एक बूढ़ा अपने मकानकी पौलीमें पड़ा रहता था। कोई उसकी बात न पूछता था। बेचारा ज्यों त्यों करके दिन काटता था। एक दिन उसका पोता उसे मारने और गाली देने लगा। बूढ़ा भी उसे गाली देने लगा। इतनेमें नारदजी उधरसे आ निकले। उन्होंने बूढ़ेसे सारा हाल पूछा। उसकी दुर्दशाका हाल सुनकर, नारद जीने उससे कहा—"तुम्हारा जीवन वृथा है। तुम या तो बनमें जाकर तप करो या हमारे साथ स्वर्गको चलो।" सुनते ही बूढ़ा लाल हो गया और बोला—"महाराज! अपनी राह लीजिये। मेरे नाती-बेटे मुझे मारें चाहें गाली दें, आप क़ाज़ी या मुल्ला? मैं इन्हींमें खुश हूँ।" नारदजी संसारकी मोह-ममता देखकर दङ्ग रह गये। बात यह है कि, अज्ञानी लोगों की तृष्णा और ममता बुढ़ापेमें औरभी बढ़ जाती है। वे हज़ारों तरहके कष्ट सहते और अपमानित होते हैं; पर गृहस्थाश्रमको नहीं त्यागते। इसी मिथ्या और स्वार्थपर संसारकी हाय-हायमें एक दिन मर जाते और ममताके कारण

बार-बार जन्म लेते और मरते हैं। इस तरह उनके जन्म-मरणका चक्र घूमा ही करता है।

मोह त्यागने में ही भलाई है।

मोह-ममता ही संसार-बन्धनका कारण है। ज्ञानी समझते हैं कि, यहाँ कोई किसीका नहीं है। सभी सराय के मुसाफिर हैं। राह चलते-चलते एक जगह एकत्र हो गये हैं। अपना-अपना समय होने पर, अपनी-अपनी राह लगते हैं। न कोई किसीकी स्त्री है और न कोई किसीका पति है; न कोई किसीका पुत्र है और न पिता; न कोई किसीका भतीजा है और न चाचा प्रभृति। स्वार्थकी ज़ञ्जीरमें सब बँधे हुए हैं। फिर इन स्वार्थियोंका साथ भी सदा-सर्व्वदाको नहीं। आज साथ हैं, तो कल अलग हो जायँगे। जन्मके साथ मृत्यु निश्चित है और संयोगके साथ वियोग अटल है। जब पुरुषका स्त्रीसे वियोग होता है, तब उसको बड़ा कष्ट और शोक होता है। इसी तरह पुत्रके मरने पर भी महा शोक होता है। पर जो ज्ञानी हैं, तत्त्ववेत्ता हैं, वे इस जगत्के नातोंकी असलियतको जानते हैं; अतः, या तो वे गृहस्थीको तज देते हैं या कुटुम्बियोंमें रहते हुए भी उनमें मोह-ममता नहीं रखते। जो परिवारमें रहते हुए भी, परिवारमें मोह-ममता नहीं रखते, वे जीवन्मुक्त हैं। धन्य हैं ऐसे नररत्न!

एक निर्मोही राजाकी कहानी सुनने और ध्यान देने योग्य है—

निर्मोही राजा।

किसी नगरमें एक ज्ञानी राजा था। उसे सब निर्मोही कहते थे। एक दिन उसका राजकुमार बनमें शिकार खेलने गया। उसे प्यास ज़ोरसे लगी। पानीकी खोजमें, वह एक मुनिके आश्रममें जा पहुँचा। मुनिने उसे जल पिलाया और पूछा—"आप किसके पुत्र हैं?" लड़केने कहा—"मैं निर्मोही राजाका पुत्र हूँ।" महात्माने कहा—"राजकुमार! एक ही मनुष्य निर्मोही भी हो और साथ ही राजा भी हो, यह नितान्त असम्भव है। जो राजा होगा, वह निर्मोही न होगा और जो निर्मोही होगा, वह राजा न होगा।" राजकुमार ने कहा—"यदि आपको विश्वास नहीं आता; तो आप जाकर परीक्षा कर लीजिये।" मुनिने कहा—"अच्छा, हम नगरमें जाते हैं। जबतक हम न लौटें, तबतक आप यहीं ठहरे।" यह कहकर मुनि महाराज नगर को चले गये और राजभवनके द्वार पर जा पहुँचे। द्वार पर उन्हें एक दासी खड़ी मिली।

मुनिने दासी से कहा:—

॥ दोहा ॥

तू सुन चेरी श्यामकी, बात सुनावौं तोहि।
कुंवर विनास्यौ सिंहने, आसन परयौ मोहिं॥

दासीने जवाब दिया :—

॥ दोहा ॥

ना मैं चेरी श्यामकी, नहि कोई मेरो श्याम ।
प्रारब्धवश मेल यह, सुनो ऋषी अभिराम ॥

इसके बाद ऋषि आगे चले, तो उन्हें राजकुमार की स्त्री मिली । उससे उन्होंने कहा:—

॥ दोहा ॥

तू सुन चातुर सुन्दरी, अबला यौवनवान ।
देवीवाहन दलमल्यौ, तुम्हरो श्रीभगवान् ॥

स्त्री ने जवाब दिया ।

॥ दोहा ॥

तपिया पूरब जनम की, क्या जानत हैं लोक ।
मिले कर्मवश आन हम, अब विधि कीन वियोग ॥

इसके बाद ऋषिने राजकुमारकी मातासे मिलना चाहा । वे रानीके पास जा पहुँचे और उससे मिलकर उन्होंने कहा :—

॥ दोहा ॥

रानी तुमको विपति अति, सुत खायो मृगराज ।
हमने भोजन ना कियो, तिसी मृतकके काज ॥

रानीने जवाब दिया :—

॥ दोहा ॥

एक वृक्ष डालें घनी, पंछी बैठे आय।
यह पाटी पीरी भई, उड़ उड़ चहुँ दिशि जायँ ॥

इसके बाद ऋषि राज-दरबारमें गये और राजासे मिले। कुशल-प्रश्न होनेके बाद, ऋषिने कहा :—

॥ दोहा ॥

राजा मुखतें राम कहु, पल-पल जात घड़ी।
सुत खायो मृगराजने, मेरे पास खड़ी ॥

राजा ने जवाब दिया।

॥ दोहा ॥

तपिया तप क्यों छाँडियो, इहाँ पलक नहिं सोग।
वासा जगत सरायका, सभी मुसाफिर लोग ॥

राजाका जवाब सुनते ही ऋषि को विश्वास हो गया कि, राजा ही नहीं, राजा और राजाका सारा कुटुम्ब निर्मोही है।

मनुष्यको प्रथम तो गृहस्थाश्रम में रहना ही नहीं चाहिये और यदि रहे भी, तो निर्मोही राजाकी तरह मोह त्याग कर रहे। ममता त्याग कर गृहस्थी में रहनेसे, मनुष्य भवबन्धन में नहीं बँधता और संसार के दुःख-क्लेश उसे सन्तप्त नहीं कर सकते। ऐसे ज्ञानीको जीवन्मुक्त कहते हैं।

पर हम देखते हैं कि, बुढ़ापे में मनुष्य की आशा-तृष्णा और भी बढ़ जाती हैं। बूढ़ा रात-दिन अपने बेटे-पोतों और दोहितोंकी चिन्ता में ही मग्न रहता है। आप मरनेके किनारे बैठा रहता है; तोभी पुत्र-पौत्रों के लिये धन की चिन्ता किया करता है। उसे कम-से-कम इस चला-चली की अवस्था में तो परमात्मा का भजन करना चाहिये; पर बूढ़ेसे यह नहीं होता। शङ्कराचार्य कृत "मोहमुद्गर" में लिखा है :—

बालस्तावत् क्रीड़ासक्तः, तरुणस्तावत् तरुणीरक्तः।
वृद्धस्तावत् चिन्तामग्नः, परमे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः॥

बचपन में मनुष्य खेल-कूद में लगा रहता है, जवानी में युवती स्त्री में आसक्त रहता है और बुढ़ापे में चिन्ता फिक्रों में डूबा रहता है; लेकिन परम ब्रह्म की चिन्तना में कोई नहीं लगा रहता।

शोक चिन्ता करना वृथा है।

यह संसार मिथ्या और नाशमान् है। यहाँ कोई किसीका नहीं। फिर वृथा शोच-फिक्रमें अपनी दुर्लभ मनुष्य-देहको नाश करना और जिस काम के लिये जगत् में आये हैं, उस काम की ओर ध्यान न देना, सचमुच ही भारी नादानी है। पुत्र मर गया तो क्या? स्त्री मर गयी तो क्या? धन चला गया तो क्या? जिस तरह पुत्र-स्त्री या मित्र-यार प्रभृति चले गये, मर

गये ; उसी तरह हम भी एक दिन मर जायँगे ; फिर शोच किस का ? यदि वे चले जाते और हम सदा बने रहते ; तोभी शोच कर सकते थे ; पर जब सभी को जाना है, तब कौन किसका शोच करे ? कहा है—

> अष्टकुलाचलसप्तसमुद्राः ब्रह्म-पुरन्दर-दिनकर-रुद्राः ।
> न त्वं, नाहं, नायं लोकः, तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥

हिमालय और विन्ध्याचल प्रभृति आठ पर्वत, सातों समुन्दर, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य्य और रुद्र सभी अनित्य और नाशमान् हैं। न तू, न मैं और न यह लोक स्थायी है ; तो फिर शोक किस लिये किया जाता है ?

मृत्युसे डरने और घबराने की ज़रूरत नहीं ।

जबतक मनुष्यको शरीर और शरीरी अथवा देह और आत्माके अलग-अलग होनेका ज्ञान नहीं होता, जबतक वह इस बातको नहीं समझता कि, आत्मा अमर, अविनाशी, नित्य और शाश्वत है ; वह कभी नहीं मरता, उसे जल डुबा नहीं सकता, आग जला नहीं सकती, हवा सोख नहीं सकती, तलवार बन्दूक़ प्रभृति मार नहीं सकतीं, तभी तक वह डरता और घबराता है। यह शरीर नाश होता है, आत्मा नहीं ; मरना, एक कपड़ा उतारकर दूसरा पहनना है ; शरीर आत्माके

ठहरनेकी धर्मशाला मात्र है; अगर यह धर्मशाला टूट जायगी, तो आत्मा दूसरीमें जा रहेगा,—ऐसा ज्ञान होते ही, मनुष्यके मनमें भय और भावना नहीं रहती। दुःख-सुखका सम्बन्ध शरीरसे है, आत्मासे नहीं; आत्माको दुःख-सुख नहीं व्यापते, क्योंकि वह निराकार है,—ऐसा ज्ञान होते ही, दुःख आप-से-आप भाग जाते हैं—हाँ, मौतकी याद हरदम रखनी चाहिये, क्योंकि मौतको याद रखनेसे पाप नहीं होते और परमात्माकी शरणमें शान्ति लाभ करना ही अच्छा मालूम होता है; पर मौतसे डरना कभी न चाहिये। जो शरीर और आत्मा में भेद नहीं समझते, वे ही मौतके नाम से काँप उठते हैं; किन्तु जो शरीर और आत्माको जुदा-जुदा समझते हैं, जीवनमें कभी पाप नहीं करते, सदा पराया भला करते और परमात्मा को हर क्षण याद करते हैं, वे हँसते-हँसते चोला छोड़ देते हैं। भीष्मपितामह कई दिनों तक शरशय्या पर लेटे रहे, उन्हें ज़रा भी कष्ट न मालूम हुआ। अन्तिम दिन, उन्होंने, जगदीश को याद करते-करते, यह नश्वर चोला हँसते-हँसते त्याग दिया।

भीष्म पितामह आत्मतत्त्व को पूर्णतया जानने वाले थे। वे जानते थे कि, मैं पहले भी था, अब वर्त्तमानमें भी हूँ और आगे भविष्यमें भी इसी तरह रहूँगा। शत्रु मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकते। हाँ, वे मेरी इस देहका नाश कर सकते हैं; पर देहके नाश होनेसे मेरी क्या हानि? इस देहके नाश होने पर, दूसरी देह इससे ताज़ा और नई मुझे मिलेगी। मेरा आत्मा

नित्य और अविनाशी है, उसे नाश करने वाला जगत्में कोई भी नहीं। गीता में कहा है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥ २३॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥ १७॥

मुझको काटे, कहाँ है वह तलवार।
दाग़ दे मुझको, कहाँ है वह नार॥
गरम मुझको करे, कहाँ है वह पानी।
हवामें कब ताब, सुखाने की॥
मौतको मौत, न आयेगी।
क़सद मेरा, जो करके आयेगी॥

मौत का शोक दूर करने का नुसख़ा।

महात्मा बुद्ध के ज़माने में, किसी स्त्री का इकलौता पुत्र मर गया। पुत्र-शोक सब शोकोंसे भारी होता है; इसलिये वह स्त्री शोकाभिभूत होकर, महात्मा बुद्धके पास गयी और उनसे लड़के के जिला देने की प्रार्थना की। महात्माने कहा—"जिस घरमें कोई न मरा हो, उस घरसे थोड़ेसे राईके

दाने ले आओ। अगर तुम वसे दाने ले आईं, तो हम तुम्हारे पुत्र को ज़िन्दा कर देंगे।" वह स्त्री घर-घर पूछती फिरी; पर उसे एक घर भी ऐसा न मिला, जिसमें मौत न हुई थी। अतः वह बेरंग वापस आई और महात्मा से सारा हाल निवेदन कर दिया। सुनते ही महात्मा ने कहा—"मौत प्राणिमात्र के पीछे लगी हुई है; जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा। यह संसार नाशमान् है। आगे पीछे सब को इस जगत् से चल देना है। कोई सदा-सर्वदाके लिये यहाँ नहीं आया। इसलिये इसमें शोक की कोई बात नहीं। मूख ही मरे हुए का शोच किया करते हैं, ज्ञानी नहीं। ज्ञानी जानते हैं कि, आत्मा अजर, अमर, अविनाशी और नित्य है; इसीसे वे शोच नहीं करते; किन्तु मूर्ख देहको आत्मा समझते हैं; इसीसे शोक करते हैं।" महात्माका यह उपदेश सुनते ही, स्त्रीका शोक दूर हो गया और उसे परम शान्ति लाभ हुई।

भगवान् की शरण में ही सुख है।

इस जगत्में मनुष्यको किसी अवस्था में भी सुख नहीं है। फिर बुढ़ापा तो हर तरह दुःखोंकी खानही है। अतः मनुष्यको जवानी में ही, आगे आनेवाले बुढ़ापेका ख़याल करके, विषयों से मनको हटा लेना और परिवार वालोंमें नामको भी मोह न रखना चाहिये। समझदारको कम-से-कम जवानीके उतारमें तो

घर जञ्जाल त्याग, वनमें जा, परमात्माकी भक्ति और उपासना करनी चाहिये। मन बारम्बार दबाने और समझानेसे शान्त हो जाता है और धीरे-धीरे रही-सही ममता भी छूट जाती है। अभ्यासके कारण, अन्तकालमें भगवतमें ही मन रहनेसे, मनुष्य की मुक्ति भी हो जाती है; यानी आवागमनसे पीछा छूट जाता है। परब्रह्मकी शरणमें चले जानेसे जो आनन्द आता है, उसे लिखकर बता नहीं सकते।

खुलासा—बुढ़ापे का चित्र देखकर, मौतको सिर पर मँडराती समझ कर, कुटुम्बियों का नाता झूठा समझ कर विषय-वासनाओंको त्यागकर, पुत्र-कलत्र और धन-दौलतकी ममता छोड़कर, वैराग्यमें मन लगाओ। अच्छा हो, यदि शरीरमें शक्ति-सामर्थ्य होते हुए घरसे निकलकर वनमें जा बसो और सबसे नाता तोड़, एकमात्र परमात्मासे नाता जोड़ लो। उसका नाता ही सच्चा नाता है; और सब नाते झूठे हैं। उसकी शरणमें चले जानेसे शोक-ताप सता नहीं सकते। भगवान्‌को भूलने से ही मनुष्य दुःख भोगता और संसारी शत्रुओं से तंग रहता है; किन्तु जो भगवान् के चरण-कमलों में चला जाता है, उसका कोई अनिष्ट कर नहीं सकता, और शोक-ताप तो उससे हज़ार कोस दूर भागते हैं। याद रक्खो, परमात्माकी शरणमें चले जाने वालेसे काल और यमराज तक भय खाते हैं और ऋद्धि सिद्धि तो उसके सामने हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। भगवान्‌ने कहा है:—

जो समीप आवै शरणाई ।
राखौं ताहि प्राणकी नाई ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं :—

कोटि विघ्न संकट बिकट, कोटि शत्रु जो साथ ।
तुलसी बल नहीं कर सकें, जो सुदृष्टि रघुनाथ ॥
राखनहारा साइयाँ, मारि न सकिहै कोय ।
बाल न बँका कर सकै, जो जग बैरी होय ॥

बुढ़ापेमें तो जगदीशको याद करो ।

बुढ़ापा आ जाने पर भी, जो परलोक बनानेकी सुध नहीं करते, स्त्री-पुत्रोंकी ममतामें पड़कर, घर-गृहस्थीके जञ्जाल में फँसकर, उम्र पूरी कर देते हैं, उनकी भयङ्कर हानि और निन्दा होती है। कहा है :—

मूर्खो द्विजातिः स्थविरो गृहस्थः ।
कामी दरिद्रो, धनवान् तपस्वी ॥
वेश्या कुरूपा, नृपतिः कदर्य्यः ।
लोके षडेतानि विडम्बितानि ॥

मूर्ख ब्राह्मण, बूढ़ा गृहस्थ, दरिद्री कामी, धनवान तपस्वी, कुरूपा वेश्या और स्वेच्छाचारी राजा—ये ६ अपना फ़ज़ीता और लोक-निन्दा करानेवाले हैं।

जो बुढ़ापे तक भी, गर्भावस्थाका किया इक़रार पूरा नहीं

करते, उनको विद्वान् और तत्त्ववेत्ता लोग पुरुष नहीं 'नपुंसक' कहते हैं। उनको बारम्बार जन्म लेना और मरना होता है। अतः बुढ़ापेमें तो मनुष्यको सब तज कर हर भजना और अपना परलोक सुधारना चाहिये।

देखिये, नीचेके चन्द भजनोंमें कैसे मद-मोह नाश करने वाले, ग़ाफ़िलोंकी ग़फ़लत छुड़ानेवाले और सोतोंको जगाने वाले उपदेश भरे पड़े हैं :—

भजन (राग रेखता)।

जो तू प्रभु-नामसे अपने, मुहब्बत दिल बढ़ावेगा।
कहा मेरा मान ले प्यारे, फिर आवेगा न जावेगा ॥१॥

जन्म और मरण दुःख-दोज़ख़, तुझे हरगिज़ न छावेगा।
वही प्रभु-नाम तुझको, सब अज़ाबोंसे बचावेगा ॥२॥

रहेगा यादमें हरदम, क़दम ख़ादिम कहावेगा।
यहाँ वहाँ—दो जहानोंमें, तुझे शाबाश दिलावेगा ॥३॥

समझ मक़बूल जब तुझको, सभी कोई सर नवावेगा।
डरेगा काल भी तुझसे, न जम ज़ालिम सतावेगा ॥४॥

बचैगा ग़ज़ब ग़ालिबसे, नहीं ग़म गैब खावेगा।
मिटेगा ख़ौफ़का ख़तरा, खुशामद खुद करावेगा ॥५॥

हुकम जो मुर्शिद "बिवादास" का, दर अमल लावेगा।
मिलेगा मोहन प्यारेसे, शुवा मिट सुख समावेगा ॥६॥

भजन (ग़ज़ल) ।

ऐ दिल ! क्यों हिर्स करता है, तुझे संसार क्या करना ।
सदा जंगलमें रहना है, तुझे घर-बार क्या करना ॥१॥

रहा मालो-मकाँ किसका ? जो रहवेगा तेरा बाक़ी ।
यहाँ दो दिनका जीना है, तुझे शृंगार क्या करना ॥२॥

हज़ारों नामवर गुज़रे, नहीं जिनका निशाँ बाक़ी ।
ये सब दो दिनकी दुनियाँ हैं, तुझे ज़र तार क्या करना ॥३॥

उठा ले हाथ तू सबसे, खुदासे दिल लगा अपना ।
तुझे ये लाल याक़ूतोंके, गजरे हार क्या करना ॥४॥

वतन जागीरको लेकर, करेगा क्या बता तो दिल ! ।
लहदको याद कर अपनी, तुझे गुलज़ार क्या करना ॥५॥

ये सब दो दिनके साथी हैं, तेरे माँ बाप और भाई ।
जो मुश्किलमें नहीं साथी, उन्हें फिर प्यार क्या करना ॥६॥

कुजा रुस्तम कुजा हातिम, कुजा लुकमाँ कुजा दारा ।
हमा दर ख़ाक शुद पिनहाँ, तुझे इज़हार क्या करना ॥७॥

महल किसका? मकाँ किसका? किधर और जगह है तेरी ?।
तू खुद हुशियार है ऐ दिल ! तुझे हुशियार क्या करना ?॥८॥

दिल अपना इश्क़में माबूदके, रंग ले बहुत पक्का ।
तुझे ये रंग रेज़ीये, गुले अनार क्या करना ?॥९॥

छप्पय ।

भयो संकुचित गात, दन्तहु उखरि परे महि ।
आँखिन दीखत नाहिं, बदन ते लार परत बहि ॥
भई चाल बेचाल, हाल बेहाल भयो अति ।
बचन न मानत बन्धु, नारिहू तजी प्रीति-गति ॥
यह कष्ट महा दिये वृद्धपन, कछु मुख सों नहिं कहि सकत ।
निज पुत्र अनादर कर कहत, यह बूढ़ो योंही बकत ॥१११॥

111. How pitiable is the old age of a man, when his limbs begin to contract, his gait becomes feeble, the rows of teeth are broken off, the eye-sight is gone, deafness is on the increase, the mouth begins to give water, the relatives do not show respect even by word, the wife ceases to serve and even the sons become unfriendly.

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः ॥
जराजीर्णैरंगैर्नट इव वलीमंडिततनुर्नरः
संसारान्ते विशति यमधानीजवनिकाम् ॥११२॥

मनुष्य नाटकके ऐक्टरके समान है ; जो क्षणभरमें बालक, क्षण-भरमें युवा और कामी रसिया बन जाता है तथा क्षणमें दरिद्र और क्षणमें धनैश्वर्य्य-पूर्ण हो जाता है। फिर; अन्तमें बुढ़ापेसे जीर्ण और सुकड़ी हुई खालका रूप दिखाकर, यमराजके नगरकी ओटमें, छिप जाता है ॥११२॥

महाराज भर्तृहरि जीने मनुष्यका नाटकके स्टेज-ऐकृरसे ख़ूबही अच्छा मिलान किया है। सचमुच ही मनुष्य नाटकके ऐकृरका साही काम करता है।

थियेटरमें जिस तरह एक ही ऐकृर कभी बालक, कभी जवान, कभी बूढ़ा, कभी धनी, कभी निर्धन, कभी राजा, कभी फ़क़ीर, कभी साधु, कभी असाधु तथा कभी रोगी और निरोगी, त्यागी और अत्यागी, भोगी और योगी, गृहस्थ और संन्यासी बन कर, तरह-तरहके तमाशे दिखाता और शेषमें नाटकके पर्देके पीछे छिप जाता है; उसी तरह मनुष्य बालक और जवान, धनी और निर्धन प्रभृतिके स्वाँग भर और दिखा-कर, अन्तमें जीवन-नाटकका आख़िरी सीन—बुढ़ापेका रूप—दिखा कर, यमपुरी-रूपी पर्देकी ओटमें जाकर छिप जाता है; यानी इस दुनियासे कूच कर जाता है।

छप्पय।

छिनमें बालक होत, होत छिनहीमें यौवन।
छिन हीमें धनवन्त, होत छिन हीमें निर्धन॥
होत छिनकमें वृद्ध, देह जर्जरता पावत।
नट ज्यों पलटंत अंग, स्वांग नित नये दिखावत॥
यँहि जीव नाच नाना रचत, निचल्यो रहत न एकदम।
करके कनात संसारकी, कौतुक निरखत रहत यम॥११२॥

112. A man is like a stage-actor. He is a child for a short space of time and then becomes young enjoying lustful pur-

जिस तरह गुलाबजल, गंगाजल, शराब और मूत्रके घड़े में एक ही सूर्य का अक्स पड़ता है; उसी तरह मनुष्य और पशु-पक्षी सब में एक ही ब्रह्म का प्रकाश है।
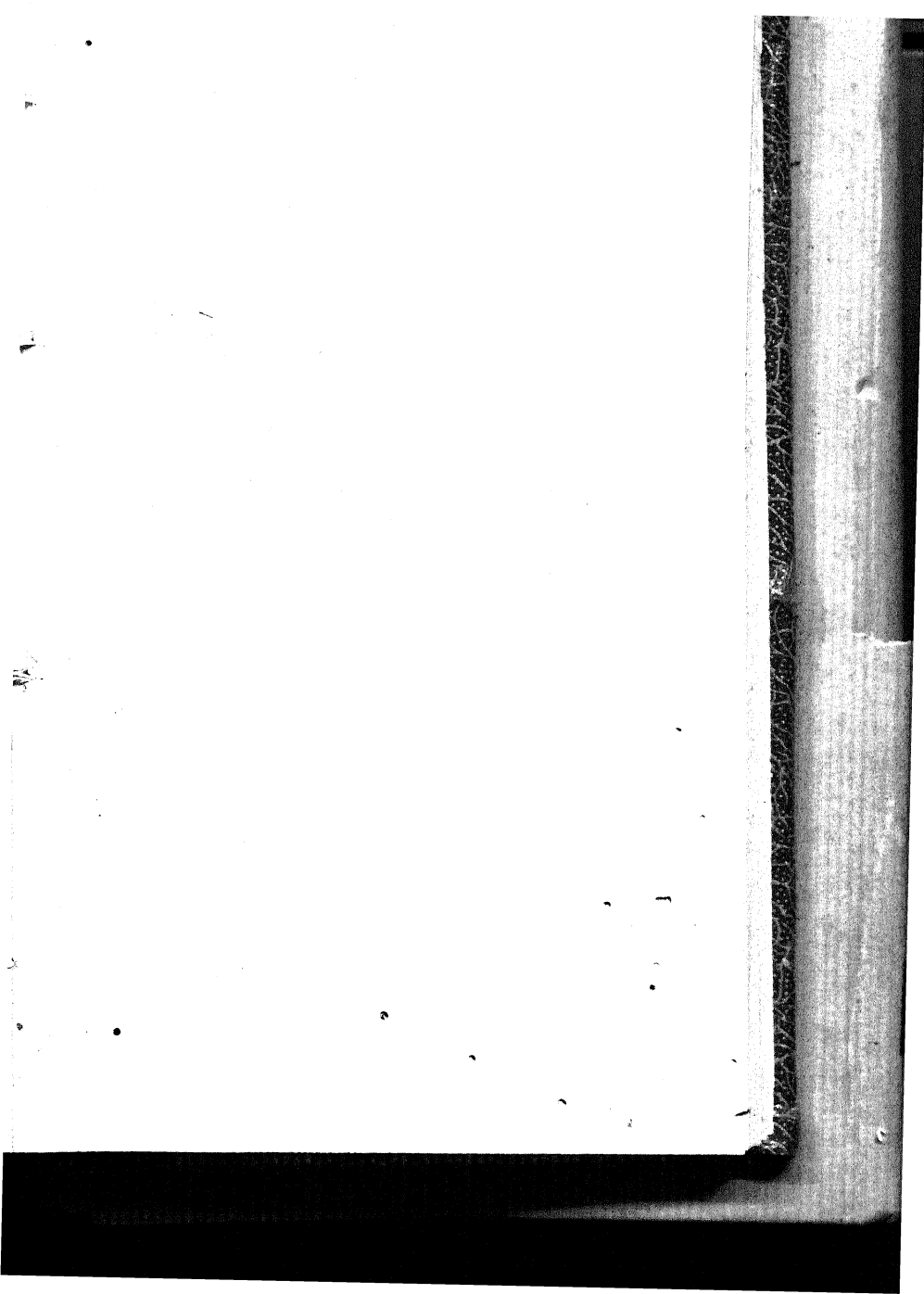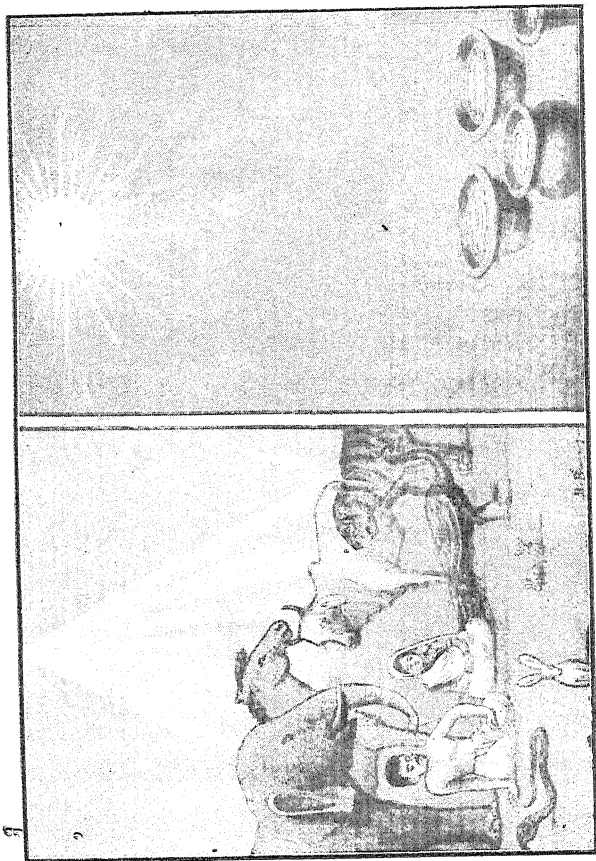
suits. In one moment he is poor and in another the possessor of great wealth and power. Ultimately with limbs worn out with old age and a body covered all over with wrinkles he makes his exit entering the metropolis of the god of Death.

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयनेवा दृषदि वा ॥
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः
क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥११२॥

हे परमात्मा ! मेरे शेष दिन, किसी पवित्र वनमें, "शिव शिव" रटते हुए बीतें; सर्प और पुष्प-हार, बलवान शत्रु और मित्र, कोमल पुष्प-शय्या और पत्थरकी शिला, मणि और पत्थर, तिनका और सुन्दरी कामिनियोंके समूहमें मेरी समदृष्टि हो जाय, मेरी यही इच्छा है ॥११३॥

खुलासा—कोई विरक्त पुरुष परमात्मासे प्रार्थना करता है, कि मेरी मति ऐसी कर दे कि, मुझे सर्प और हार, शत्रु और मित्र, पुष्प-शय्या और शिला, रत्न और पत्थर, तिनका और सुन्दरी स्त्री सब एकसे दीखने लगें; इनमें मुझे कुछ भेद न मालूम हो; मैं समदर्शी हो जाऊँ और मेरा शेष जीवन किसी पवित्र वनमें "शिव शिव शिव" जपते बीते।

जब सभी शरीरोंमें एकही व्यापक ब्रह्म दीखने लगे; शत्रु-मित्रमें भेद न मालूम हो; हर्ष-शोक और दुःख-सुख सबमें

चित्त एकसा रहे; तब योगसिद्धि हुई समझनी चाहिये। कबीर दास कहते हैं:—

समदृष्टि सतगुरु करौ, मेरा भरम निकार।
जहाँ देखों तहाँ एक ही, साहबका दीदार॥
समदृष्टि तब जानिये, शीतल समता होय।
सब जीवनकी आत्मा, लखै एकसी सोय॥
समदृष्टि सतगुरु किया, भरम किया सब दूर।
दूजा कोई दीखे नहीं, राम रहा भरपूर॥

यही अवस्था सर्व्वोत्तम अवस्था है। इसीमें परमानन्द है। इस अवस्थामें शोक और दुःख का नाम भी नहीं है; पर यह अवस्था उन्हींको प्राप्त होती है, जिन पर जगदीशकी कृपा होती है या जिनके पूर्व जन्मके सञ्चित पुण्यों का उदय होता है।

समदर्शी होने के उपाय।

समदर्शिता ही परमानन्द की सीढ़ी है।

चित्त की समता ही योग है। जब समान दृष्टि हो गई, तब योगसिद्धिमें बाक़ी ही क्या रहा? जब मनुष्य को इस बात का ज्ञान हो जाता है, कि समस्त जगत् और जगत्के प्राणियों में एक ही चेतन आत्मा है; छोटे-बड़े, नीच-ऊँच सभी शरीरों में एक ही ब्रह्मका प्रकाश है; तब उसकी नज़र में सभी समान

हो जाते हैं। जब वह राजा-महाराजा, अमीर और ग़रीब, मनुष्य और पशु-पक्षी, हाथी और चींटी, सर्प और मगर—सब में एक ही चेतन आत्माको व्यापक देखता है ; तब उसके दिल में किसी से राग और किसी से विराग, किसी से विरोध और किसी से प्रणय-भाव रह नहीं जाता ; उस समय उसे न कोई शत्रु दीखता है और न कोई मित्र। इस अवस्थामें पहुँचने पर, वह न किसीको अपना समझता है, न पराया। इस समय ही उसे स्त्री और पुरुष, दोस्त और दुश्मन, सर्प और पुष्प-हार, सोना और मिट्टी प्रभृति में कोई फ़र्क़ नहीं मालूम होता। इस अवस्थामें, उसके अन्तःकरण से दुःखों का घटाटोप दूर होकर, परमानन्द की प्राप्ति होती है। उस समय जो आनन्द होता है, उसको क़लम से लिखकर बताना कठिन ही नहीं ; असम्भव है।

समस्त जगत् में एक ही आत्मा व्यापक है ?

बेशक, सारे जगत् में एक ही चेतन आत्मा है। जिस तरह गुलाब-जल से भरे घड़े में, गङ्गाजल से भरे घड़ेमें, मूत्र से भरे घड़े में और शराब से भरे घड़ेमें एक ही सूर्य्य का प्रतिबिम्ब—अक्स पड़ता है, सबमें एकही सूर्य दीखता है; उसी तरह मनुष्य, पशु-पक्षी और मगर-मच्छ प्रभृति जगत्के सभी प्राणियों में एक ही चेतन ब्रह्म का प्रतिबिम्ब या प्रकाश है। अलग-अलग

प्रकार के शरीरों या उपाधियोंके कारण, सबमें एक ही आत्मा होने पर भी, अलग-अलग आत्मा दीखते हैं। लेकिन भिन्न-भिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न आत्माओं का होना, अज्ञानियों को ही मालूम होता है; जो सच्चे तत्त्ववेता और पूर्ण ज्ञानी हैं अथवा जो आत्मतत्त्व की तह तक पहुंच गये हैं, उन्हें सभी शरीरों में एक ही आत्मा दीखता है। वे समझते हैं कि, जो आत्मा हम में है, वही समस्त जगत् और जगत् के प्राणियों में है। बकरी के शरीर में जो आत्मा है, वह बकरी; हाथीके शरीर में जो आत्मा है, वह हाथी; और मनुष्यके शरीर में जो आत्मा है, वह मनुष्य कहलाता है। जिन-जिन शरीरों में आत्मा प्रवेश कर गया है, उन्हीं-उन्हीं शरीरों के नाम से वह पुकारा जाता है; शरीरों या उपाधियों का भेद है; आत्मा में कोई भेद नहीं। नदी, तालाब, झील, बावड़ी, झरना, सोता और कूआँ—इन सब में एक ही जल है, पर नाम अलग-अलग हैं। दीपक, मशाल, चिराग़ और अग्नि सबमें एक ही अग्नि है, पर नाम अलग-अलग हैं। एक लोहेके डण्डे पर कपड़ा लपेट कर जो अग्नि जलाई जाती है, उसे मशाल कहते हैं और एक मिट्टी के दीवलेमें जो अग्नि जलती है, उसे दीपक कहते हैं। पृथ्वी एक ही है, पर उसके नाम अलग-अलग हैं। किसी को नगर, किसी को गाँव, किसी को ढानी और किसी को घर कहते हैं; पर है तो सब धरती ही। ताना और बाना एक ही सूतके दो नाम हैं; पर है दोनों में ही सूत। वन एकही है; उसमें अनेक

वृक्ष हैं और उनके नाम तथा जातियाँ अलग-अलग हैं। बीज से वृक्ष होता है और वृक्ष से बीज होता है; अतः बीज वृक्ष है और वृक्ष बीज है। दोनों एक ही हैं, पर नाम अलग-अलग हैं। बापसे बेटा पैदा होता है; अतः बाप में और बेटे में एक ही आत्मा है, अतएव बाप बेटा है और बेटा बाप है। बहुत कहना-समझाना वृथा है। निश्चय ही सबमें एकही चेतन आत्मा है, पर भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीरों के कारण नाम अलग-अलग हैं। भ्रम के कारण मनुष्य को असल बात समझ नहीं पड़ती। मृगमरीचिका में जल नहीं है; पर भ्रमवश मनुष्य को जल दीख पड़ता है और वह कपड़े उतार कर तैरने को तैयार हो जाता है। रस्सी-रस्सी है, साँप नहीं; पर अँधेरे में वही रस्सी साँप सी दीखती है और मनुष्य डर कर उछलता और भागता है। इसी तरह जब तक मनुष्यके हृदय में अज्ञान रूपी अन्धकार रहता है, उसे और का और दीखता है। देह और आत्मा अलग-अलग हैं। देह नाशमान् और आत्मा अविनाशी हैं; पर अज्ञानी को, जिसके दिल में अँधेरा है, देह और आत्मा एक मालूम होते हैं तथा शरीर और आत्मा दोनों ही नाशमान् जान पड़ते हैं। इसी तरह सब जगत् में एक ब्रह्म व्यापक है—शरीर-शरीरमें एक ही चेतन आत्मा है; पर अज्ञानी सब प्राणियोंमें एक ही आत्मा नहीं मानता है। अज्ञान-अन्धकारके मारे, वह इस बातको नहीं समझता, कि मुझमें, ऊधोमें, माधवमें, रामामें, मेरी स्त्रीमें मेरे पुत्रमें,

माधवके पुत्रमें, घोड़ेमें, हाथीमें, सर्पमें और सिंहमें एक ही आत्मा है; यानी जो आत्मा मुझमें है वही समस्त जगत्में है। बिहारीलाल कविने कहा है :—

मोहन मूरति श्यामकी, अति अद्भुत गति जोइ।
बसत सुचित अन्तर तऊ, प्रतिबिम्बित जग होइ॥

श्यामकी मोहिनी मूरतकी गति अति अद्भुत है। वह सुन्दर हृदयमें रहती है, तोभी उसका प्रतिबिम्ब—अक्स—सारे जगत्में पड़ता है।

महाकवि नज़ीर कहते हैं :—

ये एकताई ये यकरंगी, तिस ऊपर यह क़यामत है।
न कम होना न बढ़ना और हज़ारों घटमें बँट जाना॥

ईश्वर एक है और एक रंग है—निर्विकार और अक्षय है; उसमें रूपान्तर नहीं होता और वह घटता-बढ़ता भी नहीं; लेकिन अचम्भेकी बात है कि, वह घट-घटमें इस तरह प्रकट होता है, जिस तरह एक सूर्य्यका प्रतिबिम्ब सैकड़ों जलाशयों में दिखाई देता है।

क्या जीवात्मा और परमात्मामें भी कुछ भेद नहीं है?

निस्सन्देह; जीवात्मा और परमात्मामें कोई भेद नहीं है। दोनोंमें एकही आत्मा है। जीवकी उपाधि अन्तःकरण है और

परमेश्वरकी उपाधि माया है। जीवकी उपाधि छोटी है और परमात्माकी बड़ी है; इसीसे ईश्वरमें जो सर्वज्ञता प्रभृति धर्म्म हैं; जीवमें वे नहीं। गङ्गाकी बड़ी धारामें नाव और जहाज़ चलते हैं, हज़ारों मगर-मच्छ और करोड़ों मछलियाँ तैरती हैं तथा किनारे पर लोग स्नान करते हैं। पर वही गङ्गाजल अगर एक गिलासमें भर लिया जाय, तो उसमें न तो नाव और जहाज़ होंगे, न मगर-मच्छ और मछलियाँ होंगी और न किनारेपर लोग स्नान करते होंगे। दर-असल, गङ्गाकी बड़ी धारामें जो जल है, वही जल गिलास में है। वह गङ्गाका बड़ा प्रवाह है और गिलासमें थोड़ासा जल है। जिस तरह दोनों जलोंके एक होनेमें सन्देह नहीं; उसी तरह जीवात्मा और परमात्माके एक होनेमें सन्देह नहीं। सारांश यह कि, जीवात्मा, परमात्मा और समस्त जगत्‌में एक ही ब्रह्म है। जो इस बातकी तह तक पहुँच जायगा, वह किससे वैर करेगा और किससे प्रीति? जब तक मनुष्य इस बातको अच्छी तरह नहीं समझ लेता और यही बात उसके दिल पर नक्श हुई नहीं रहती कि, जो आत्मा मेरे शरीर में है वही जगत्‌के और प्राणियोंके शरीरोंमें है, तभी तक वह किसी को अपना और किसी को पराया, किसी को अपनी स्त्री और किसी को अपना पुत्र, किसी को शत्रु और किसी को मित्र, किसी को सर्प और किसी को फूलोंका हार समझता है; किसी से खुश होता है और किसी से नाराज़, किसी से

विरोध करता और किसी से प्रणय। पहले के पहुँचे हुए महात्मा जो सिंहों को अपने आश्रमों में भेड़ बकरी की तरह पालते और सर्पोंको गले का हार बनाये रहते थे, वह क्या बात है? और कुछ नहीं, यही बात है, कि वे भीतरी दिल से सिंह में और अपने में एक ही आत्मा समझते थे; इसी से वे उनसे डरते नहीं थे और सिंह तथा सर्प प्रभृति हिंसक जीव भी उन्हें कष्ट न पहुंचाते थे।

केवल्योपनिषद् में लिखा है:—

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा, विश्वस्यायतन महत्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं स त्वमेव त्वमेव तत्॥

जो ब्रह्म सब प्राणियोंका आत्मा, सम्पूर्ण विश्वका आधार, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और नित्य है, वह तुही है और तू वही है।

ज्ञानकाण्ड उपनिषत् ही तो वेदका निषकर्ष और सार है। उसमें सर्वत्र आत्माको ही ईश्वर कहा है। हमारे वेद ही नहीं, संसारके समस्त धर्मशास्त्र—कुरान और बाइबिल आदिमें भी यही बात कही है। कुरानमें "ला इलाहा इल्ला अल्ला" यही निचोड़ कहा है, यानी आत्माके सिवा दूसरा और ईश्वर नहीं है। बाइबिलमें भी ईसामसीहने कहा है—"Ye are the living temples of God. अर्थात् तुम ईश्वरके जीवित मन्दिर हो; अर्थात् "तत्त्वमसि।" वह तुम हो।

समदर्शी होने से मोक्ष मिलती है।

"समस्त जगतमें एक ही ब्रह्म या चेतन आत्मा व्यापक है— इस बातको जाने-समझे बिना, मनुष्य समदर्शी हो नहीं सकता इसी से हमने यह बात विस्तार से समझाई है। अब रही यह बात कि, समदर्शी होनेकी क्या ज़रूरत है? समदृष्टि होनेसे क्या लाभ है? इस प्रश्नोंका उत्तर हम संक्षेपमें ही दिये देते हैं :— समदृष्टि हो जाने से मनुष्य का दुःख और क्लेशों से पीछा छूट जाता है; वर्णनातीत परमानन्द की प्राप्ति होती है; संसार-बन्धन कट जाता है; आवागमन का झगड़ा मिट जाता है; प्राणी को बारम्बार जन्म लेना और मरना नहीं पड़ता; उस की मोक्ष हो जाती है और वह परमपद या विष्णुत्वको प्राप्त हो जाता है। स्वामी शङ्कराचार्य्य जी महाराज कहते हैं :—

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ, मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं, वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम् ॥

हे मनुष्य! यदि तू शीघ्र ही मोक्ष* या विष्णुत्व चाहता है,

---

* "मोक्ष" किसी पदार्थका नाम नहीं है और वह किसी देश या दूसरी दुनियामें नहीं मिलती। हृदयमें जो अज्ञान की गांठ है, उसके खुल जाने या नाश हो जानेको ही "मोक्ष" कहते हैं।

तो शत्रु और मित्र, पुत्र और बन्धुओंसे विरोध और प्रणय मत कर; यानी सब को एक नज़र से देख, किसीमें भेद न समझ।

सार—यदि मोक्ष, मुक्ति या परमानन्द चाहते हो; तो सब जगत्में अपने ही आत्मा को देखो, किसीको अपना और किसी को पराया, किसी को शत्रु और किसी को मित्र मत समझो।

छप्पय।

सर्प सुमनको हार, उग्र बैरी अरु सज्जन।
कंचन मणि अरु लोह, कुसुम शय्या अरु पाहन।
तृण अरु तरुणी नारि, सबन पर एक दृष्टि चित।
कहूँ राग नहिं रोष, द्वेष किताहुँ न कहुँ हित।

शरीर आत्मा नहीं है। शरीरको आत्मा समझना "अविद्या" है। अविद्याके कारण ही संसार-बन्धन है। उस बन्धनके नाश को ही "मोक्ष" कहते हैं।

कामनाओंका हृदयमें जो निवास है, उसीको "संसार" कहते हैं। कामनाओंके सब तरहसे नाश हो जानेको "मोक्ष" कहते हैं।

मुक्त हुआ पुरुष फिर संसारमें नहीं आता। सांख्यसूत्र है—"यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम।" जिस पदको पाकर फिर नहीं लौटता, वही मेरा परम स्वरूप है।

ह्वै है कब मेरी यह दशा, गंगाके तट तप जपत ।
रस भीने दुर्लभ दिवस ये, बीतेगें शिव शिव जपत ॥११३॥

113. O lord, let my remaining days be now spent repeating the name of Shiva in some holy forest, my sight making no difference between a serpent or a garland of flowers, between a powerful enemy or a friend, between a precious gem or an ordinary stone, befween a bed made soft by flowers or a flat stone, and between a straw or a group of beautiful women.

इस ग्रन्थके ४२६ पेजोंमें और करोड़ों वेदान्त-ग्रन्थोंमें जो विषय कहा गया है, उसे हम आधे श्लोकमें कहे देते हैं :—

ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव ब्रह्मरूप है ।

प्रश्नोत्तरी

आत्मा-सम्बन्धी-प्रश्नोत्तर ।

(१) प्रश्न—आत्मा कैसा है?

उ०—आत्मा अचिन्त्य, अनन्तरूप, कल्याणरूप, अमृत, माया का भी कारण, आदि-मध्य और अन्तसे हीन, विभु, एक आनन्द रूप और अद्भुत है।

(२) प्रश्न—क्या सब प्राणियोंमें एक ही आत्मा है?

उ०—निस्सन्देह, सभी प्राणियोंमें एकही आत्मा है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है—"एक ही चेतन देव सारे भूतों में छिपा हुआ है। वही सबमें व्याप रहा है और वही सब भूतोंका अन्तरात्मा है। वही कर्मों का अध्यक्ष या ज्ञाता सब भूतों को निवासस्थान, साक्षी, चेतन, द्वैत से रहित और निर्गुण है।

(३) प्र०—क्या शरीर और आत्मा दो अलग-अलग पदार्थ हैं?

उ०—बेशक, शरीर और आत्मा दो अलग-अलग पदार्थ हैं। शरीर जड़ और नाशमान् है ; किन्तु आत्मा चेतन और अवि- नाशी है। शरीर रहने का घर और आत्मा उसमें रहनेवाला है।

(४) प्र०—जीवन और मरण अथवा जन्म और मृत्यु किसे कहते हैं ?

उ०—शरीर और आत्मा के संयोग को जीवन और इनके वियोग को मरण कहते है। जब आत्मा नये शरीर में प्रवेश करके संसारमें आता है, तब कहते हैं कि जन्म हुआ और जब आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर चल देता है, तब कहते हैं कि मृत्यु हुई।

(५) प्र०—क्या यह शरीर ही आत्मा नहीं है ?

उ०—नहीं, यह देह या शरीर या चोला मनुष्य नहीं है। इस देह को धारण करनेवाला अथवा इस देह में बसनेवाला एक सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थ है, जो हृदय के अन्दर रहता है, उसे ही मनुष्य, जीवात्मा, देही या शरीरी कहते हैं।

(६) प्र०—बचपन, जवानी और बुढ़ापा,—ये अवस्थायें किस की होती हैं, आत्माकी या शरीर की ?

उ०—बचपन, जवानी और बुढ़ापा,—ये अवस्थायें शरी- रकी होती, हैं, आत्माकी नहीं। शरीर की अवस्थायें बदलती रहती हैं, मगर शरीर के अन्दर रहनेवाला जीवात्मा सदा जैसा का तैसा बना रहता है। शरीरकी अवस्था बदलने पर, उसकी अवस्था में कुछ भी फेरफार नहीं होता। बचपन के

शरीर में आत्मा जैसा रहता है, जवानी और बुढ़ापे के शरीर में भी वैसा ही रहता है। मतलब यह, आत्मा सदा एक सा रहता है, वह न कभी बच्चा होता है, न बूढ़ा और जवान।

(७) शरीरके साथ जो आत्मा या चेतन वस्तु पैदा होती है, वह क्या शरीरके साथ ही नाश नहीं हो जाती ?

उ०—शरीरके साथ जो चेतन वस्तु या आत्मा पैदा होती है, वह शरीरके नाश होने पर नाश नहीं हो जाती। शरीर नष्ट हो जाता है, पर उसके अन्दर रहनेवाला आत्मा नाश नहीं होता; वह अपने कर्मानुसार फिर नया शरीर पाता है। हम लोग जिस तरह आज हैं, उसी तरह पहले भी थे और आगे भी रहेंगे। हमने अब तक अनगिन्ती जन्म लिये हैं और आगे भी, जब तक मोक्ष न हो जायगी, इसी तरह जन्म लेते और मरते रहेंगे। देखनेमें आता है, कि माँके पेटसे निकलते ही बालकको हर्ष, शोक और भय आदि होने लगते हैं। हालके पैदा हुए बालकको अपने पहले जन्मकी हर्ष, शोक और भय पैदा करनेवाली बातें याद होती हैं, इसीसे वह हँसता डरता और रोता है। अगर हालके जन्मे बालकने पहले कभी जन्म न लिया होता, तो वह पैदा होते ही, अपनी भूख शान्त करनेके लिए, माँके स्तनोंको खोज कर उनसे लग न जाता। बालकने पहले अनेक जन्म लिये हैं और प्रत्येक बार माताओंके स्तन-पान किये हैं; इस बार भी उसे पहले जन्मकी बात याद है, उसे स्तन-पानका अनुभव है, दूध पीनेके लाभका

ज्ञान है ; इसीसे वह इस जन्ममें, पैदा होते ही, बिना किसीके सिखाये, स्तन पीने लगता है। इससे साफ मालूम होता है कि हालके जन्मे बच्चेके भीतर चैतन्य वस्तु—आत्मा है और वह पहले जन्ममें भी था। उसी आत्माने अपना पहला शरीर छोड़ कर, इस नये शरीरमें प्रवेश किया है। उस बालकका पहला शरीर नाश हो गया हैं, पर उसके अन्दर रहनेवाला आत्मा ज्यों का त्यों है ; वह पुराने शरीरोंको त्याग-त्याग कर नये-नये शरीर धारण करता है। शरीर नाश होते जाते हैं, मगर आत्मा कभी नाश नहीं होता। इसीसे शास्त्रोंमें आत्माको अमर और अविनाशी तथा नित्य या सदा-सर्वदा रहनेवाला कहा है।

(८) प्रश्न—शरीर और आत्माका मुक़ाबला करो।

उ०—शरीरमें रहनेवाला आत्मा नित्य, अविनाशी, अक्षय, निराकार, निर्विकार, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, अजर और अमर है ; किन्तु शरीर अनित्य, नाशमान्, घटने-बढ़नेवाला, साकार, विकारवान्, स्थूल और बूढ़ा होने तथा मरनेवाला है।

आत्मा कभी मरता नहीं, सदा रहा आता है, इसीसे उसे नित्य कहते हैं। आत्माका कभी नाश नहीं होता, कोई भी उसका नाश नहीं कर सकता। मनुष्यकी तो बात ही क्या है, स्वयं जगदीश परम परमात्मा भी, आत्माका नाश नहीं कर सकता ; क्योंकि आत्मा स्वयं ही ब्रह्म है, कोई भी, अपना नाश आप नहीं कर सकता। आग आत्माको जला

नहीं सकती, जल डुबा या गला नहीं सकता और हवा सुखा नहीं सकती ; अतः आत्माके अविनाशी होनेमें कोई सन्देह नहीं। आत्मा निराकार है ; यानी उसके आकार या अङ्ग प्रत्यङ्ग नहीं ; इसीलिये वह घटता-बढ़ता नहीं ; बस, इसी वजहसे उसे अक्षय भी कहते हैं। पैदा होना, अस्तित्व, बढ़ना, घटना, रूपान्तर होना और नाश होना—ये छः "भाव विकार" हैं। ये छः देहके धर्म हैं। शरीर पैदा होता है, घटता-बढ़ता है, शरीरमें ही जवानी और बुढ़ापा प्रभृति रूपान्तर या फेरफार होते हैं तथा शरीरका नाश होता है ; यानी शरीरकी ये छः अवस्थायें होती हैं ; किन्तु आत्मा इन छहों विकारोंसे अलग रहता है। न वह पैदा होता है, न घटता-बढ़ता है, न उसमें रूपान्तर होते हैं और न उसका नाश होता है ; इसीसे उसे निर्विकार कहते हैं। आत्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, इसलिये वह बुद्धि वगैरःसे जाना भी नहीं जा सकता। आत्मा न बूढ़ा होता है और न मरता है ; इसीसे उसे अजर और अमर कहते हैं।

(६) प्रश्न—क्या स्त्री और पुरुषमें आत्मा अलग-अलग होते हैं ?

जिस तरह बालकपन, जवानी और वृद्धावस्थाके शरीरमें एक ही आत्मा होता है ; उसी तरह स्त्री, पुरुष और नपुंसक प्रभृतिमें एकही आत्मा होता है। आत्मा जैसे-जैसे शरीरोंको धारण करता है ; वैसा-ही-वैसा हो जाता है। शरीर स्त्री या

पुरुष होता है; आत्मा नहीं। एक ही आत्मा दो तरहके शरीरोंमें रहनेसे स्त्री और पुरुष कहलाता है। स्त्रीके शरीरमें रहनेवाला आत्मा, जब पुरुषके शरीरमें आ जाता है; तब पुरुष कहलाता है और पुरुषके शरीरमें रहनेवाला आत्मा, जब स्त्रीके शरीरमें आ जाता है; तब स्त्री कहलाता है। आत्मा स्त्री पुरुष नहीं होता; किन्तु शरीर स्त्री पुरुष होता है।

(१०) प्रश्न—मरनेके बाद इन्द्रियाँ अपना-अपना काम क्यों नहीं करती ?

उ०—शरीर जड़ है और आत्मा चेतन है। शरीर घर है और आत्मा दीपक है। जिस तरह घरमें दीपकका प्रकाश रहता है; उसी तरह शरीर रूपी घरमें आत्मा रूपी दीपकका प्रकाश रहता है। यह चेतन आत्मा ही सारी इन्द्रियोंके गुणोंका प्रकाशक है। चेतन आत्माकी रोशनीसे ही इन्द्रियाँ अपना-अपना काम करती हैं। जब आत्मा शरीर-रूपी घरको छोड़ जाता है; तब शरीर—घरमें अँधेरा हो जाता है। इन्द्रियाँ जो आत्माकी ज्योतिसे अपना-अपना काम करती थीं; उसके शरीरमें न रहनेसे बे-काम हो जाती हैं।

(११) प्रश्न—क्या ईश्वर और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं ?

उ०—नहीं; ईश्वर और आत्मा बिल्कुल एक ही हैं। इनमें कुछ भेद नहीं।

(१२) प्रश्न—ईश्वर सर्व्वज्ञ और सर्व्वशक्तिमान् है; पर

जीवात्मा तो सर्व्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् नहीं ; तब दोनों एक कैसे हुए ?

उ०—जीवात्माकी उपाधि अन्तः कारण है और ईश्वरकी उपाधि माया है। जीवात्माकी उपाधि छोटीसी है ; पर ईश्वर की उपाधि माया सारे ब्रह्माण्डमें फैल रही है ; इसीसे ईश्वर में सर्व्वज्ञता आदि धर्म रहते हैं ; पर जीवात्मामें नहीं। परन्तु सुखरूपता दोनोंमें समान है तथा नित्यत्व और चेतनत्व धर्म भी दोनोंमें बराबर हैं। इससे स्पष्ट है कि, ईश्वर और आत्मा में भेद नहीं ; उपाधिके छोटेपन और बड़ेपनके कारण दोनोंमें भेद जान पड़ता है।

यही सवाल किसी आदमीने एक महात्मासे किया था। महात्माने कहा—"मुझे प्यास ज़ोरसे लगी है, अतः पहले गङ्गाजीसे एक तूम्बी जल भर लाओ।" वह आदमी एक तूम्बी गङ्गा-जल भर लाया और महात्माके सामने रख दिया। महात्माने कहा—"यह तो गङ्गाजल नहीं है। गङ्गाजलमें तो सैकड़ों नाव और अगनबोट आदि चलते हैं, बड़े बड़े मगर और घड़ियाल तथा मछलियाँ तैरती हैं, किनारे पर घाट बने हैं, लोग स्नान करते हैं ; पर इसमें तो इनमेंसे एक भी नहीं, फिर मैं इसे कैसे गङ्गाजल समझूँ ?" उस जल लाने वालेने कहा—"महाराज ! वह गङ्गाका बड़ा भारी प्रवाह है, जिसके किनारे पर्वत और वृक्षादिक हैं तथा जिसमें जहाज़ चलते और मनुष्य नहाते हैं ; और यह उसी प्रवाहका एक छोटासा अंश है।

इसमें वे सब कैसे रह सकते हैं ? पर इसके गङ्गाजल होनेमें ज़रा भी शक नहीं ; जो मधुरता आदि गुण उसमें हैं, वे ही सब इसमें भी हैं। यह सुनते ही महात्माने कहा—"बस, तेरा सवाल हल होगया। यही बात ईश्वरात्मा और जीवात्मामें है। दोनों एक ही हैं। ईश्वर नित्य और चेतन है ; आत्मा भी नित्य और चेतन है। वह सुख-रूप है और यह भी सुखरूप है। आत्माकी उपाधि अन्तःकरण है और ईश्वरकी उपाधि माया है। आत्माकी उपाधि छोटीसी है, उसका दायरा छोटा है ; इसीसे आत्मामें सर्व्वज्ञता आदि नहीं ; पर ईश्वरकी उपाधि माया सारे विश्वमें व्याप रही है, उसका दायरा बहुत बड़ा है ; इसीसे उसमें सर्व्वज्ञता आदि धर्म हैं।

(१३) प्रश्न—क्या ईश्वर सर्व्वव्यापक है ? अगर ईश्वर सर्व्वत्र है, तो वह दीखता क्यों नहीं ?

उ०—जिस तरह दूधमें मक्खन, दहीमें घी, तिलोंमें तेल, पहाड़ी झरनोंमें जल और अरणीमें अग्निकी ज्योति है ; उसी तरह परमात्मा सर्व्वत्र है। जिस तरह तिलोंमें तेल है, पर दीखता नहीं ; दूधमें मक्खन है, पर दीखता नहीं ; ईखमें रस है, पर दीखता नहीं ; उसी तरह आत्मा सब शरीरोंमें है, पर दीखता नहीं।

(१४) प्र०—क्या सबमें एक ही आत्मा है ? अगर सबमें एक ही आत्मा है, तो अलग-अलग क्यों दीखता है ?

उ०—निश्चय ही सारे विश्वमें अथवा संसारके सभी

शरीरोंमें एक ही आत्मा है। स्त्री, पुरुष, गाय, भैंस, घोड़ा, गधा, हाथी, ऊँट, कुत्ता और बिल्ली प्रभृति संसारके सभी प्राणियोंमें एक ही आत्मा है। इन सबमें अलग-अलग आत्मा नहीं हैं; पर भ्रमवश या अज्ञानसे जिस तरह एक ही सूर्य अनेक जलसे भरे हुए घड़ोंमें अनेक सूर्योंकी तरह दीखता है, उसी तरह एक ही आत्मा अनेक शरीरों में अनेक आत्माओं की तरह दीखता है। बुद्धिमान् समझता है कि, सूरज एक है, पर अनेक घड़ोंमें अनेकों सूरजों की तरह दीखता हैं; उसी तरह ज्ञानी समझता है कि, सारे संसार में एक ही आत्मा व्याप रहा है; पर अनेकों शरीरों में अनेकों आत्माओं की तरह दीखता है।

(१५) प्र०—अगर जगत् के सभी शरीरोंमें एक ही आत्मा है, तो एक के सुखी होनेसे सभी सुखी क्यों नहीं होते और एक के दुखी होनेसे सभी दुखी क्यों नहीं होते और एक के मरनेसे सभी मर क्यों नहीं जाते इत्यादि?

उ०—एक शरीरमें हाथ, पैर, नाक, कान अँगुली प्रभृति अनेक अवयव हैं, पर उस शरीरके सारे अवयवों में एक ही आत्मा है। इतने पर भी, पैरमें दर्द होनेसे हाथमें दर्द नहीं होता; नाकमें सुख होनेसे कानमें सुख नहीं होता और एक अङ्गके टूट जानेसे सारे अङ्ग टूट नहीं जाते। मतलब यह है कि जिस तरह एक शरीर के अवयवोंमें एक आत्मा होनेसे सबमें सुख-दुःख नहीं होता, उसी तरह ब्रह्माण्डके शरीरमें एक आत्मा

है और संसारके सारे शरीर उसके अवयव हैं। एक शरीरके सुखी-दुखी होनेसे विराटके और शरीर सुखी-दुखी नहीं होते; क्योंकि वे सब शरीर विराटके अवयव मात्र हैं। और भी खुलासा यों है कि, जिस तरह हमारे इस शरीरके हाथ पैर आदि अवयव है; हमारे एक अवयव को कष्ट होनेसे दूसरे अवयव को कष्ट नहीं होता; उसी तरह हम सारे ही प्राणी उस विराट-शरीरके अवयव हैं। हम में से एक के दुःखी होनेसे दूसरा दुःखी नहीं होता और सुखी होनेसे दूसरा सुखी नहीं होता।

आत्मासे सुख-दुःख आदिका कोई सम्बन्ध नहीं है। सुख दुःख आदिका सम्बन्ध अन्तःकरण से है। गरमी-सरदी, सुख-दुःख आदि आत्माको नहीं मालूम होते; किन्तु अन्तःकरणको मालूम होते हैं। सब अलग-अलग शरीरोंमें आत्मा तो एक ही है; मगर अन्तःकरण अलग-अलग हैं। इसी कारण एक को सुख होनेसे सब को सुख और एक को दुःख होनेसे सबको दुःख नहीं होता। "एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढ़ः" इत्यादि श्रुतियोंसे साफ मालूम होता है कि, आत्मा सारे शरीरोंमें एक ही है। इच्छा संकल्प संशय, लज्जा, भय आदि मनसे सम्बन्ध रखते हैं। जो ऐसा समझते हैं कि, आत्माको सुख होता है, आत्मा को दुःख होता है तथा शरीर-शरीरमें अलग-अलग आत्मा हैं, वे सब भूल करते हैं; वे नादान और अज्ञानी हैं।

एक बात और है,—आत्मा नित्य और आदि-अन्त रहित है,

उसका विनाश कभी नहीं होता, इसलिये आने वाले और जाने वाले, पैदा होनेवाले और नाश होनेवाले सुख-दुःखोंका सम्बन्ध आत्मासे नहीं हो सकता। दो समान पदार्थोंका सम्बन्ध होता है, यही नियम है। अन्तःकरण और सुख-दुःख आदि दोनों ही उत्पत्ति और विनाशमें समान हैं ; अतः अन्तः-करण को ही दुःख-सुख मालूम होते हैं। निर्गुण, निराकार, नित्य और विकार-रहित आत्मा को अनित्य (सदा न रहने वाले) सुख-दुःख नहीं घेर सकते। सुख-दुःख अनित्य हैं और अन्तःकरण भी अनित्य है। अनित्यका अनित्यके साथ ही मेल हो सकता है ; नित्य और अनित्य का संयोग कभी हो नहीं सकता। अब साफ तौरसे समझमें आ जायगा कि, सुख-दुःख का सम्बन्ध अन्तःकरण से है, आत्मा से उनका कुछ भी सरो-कार नहीं। आत्माको कभी कोई दुःख नहीं होता। अज्ञान से आत्माका बन्धन मालूम होता है। अभिमानके कारण या विषयों और इन्द्रियोंके सम्बन्धसे सुख-दुःख आदि पैदा होते हैं और वह अन्तःकरण को मालूम होते हैं ; आत्माका उनसे कोई सरोकार नहीं। बस, यही वजह है कि, सब शरीरमें एक आत्मा होने पर भी, अन्तःकरणोंके अलग होनेसे, एक को सुख होनेसे दूसरेको सुख और एक को दुःख होनेसे दूसरेको दुःख नहीं होता।

(१६) प्र०—मनुष्य बन्धन-मुक्त कैसे हो सकता है ?

उ०—जिस तरह मरुभूमिमें भ्रमसे जल दीख पड़ता है, पर

वास्तवमें वहाँ जलका नाम भी नहीं—मरुभूमि ही है ; उसी तरह यह जगत् जैसा दीखता है, वैसा नहीं है ; भ्रमसे वैसा दीखता है। असलमें मिथ्या प्रपञ्च है। यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा धन है, यह मेरा घर है—यह सब वासना के खेल हैं ; यानी वासनासे ही संसार दीखता है। असलमें, न कोई किसीका पुत्र है और न पिता, न पुत्री। वासनाके कारण ही यह जीव बन्धनमें बँधता है। वासनाके कारण ही यह नाना प्रकारके कष्ट भोगता है। वासनाके त्यागसे ही परमानन्दकी प्राप्ति होती है और जीव ज्ञानी हो जाता है। हृदयमें कामनाओंका होना ही संसार है और कामनाओंका सब तरहसे नाश हो जाना ही मोक्ष है। जो बन्धनसे छूटना चाहें, वे वासना या कामना त्यागें।

(१७) प्र०—क्या पुत्र पौत्रोंके होनेसे गति हो जाती है?

उ०—नहीं ; यह अज्ञानियोंका भ्रम है। पुत्र तो कुत्ते बिल्ली और सूअरोंके भी होते हैं, क्या उनकी गति हो जाती है? हरगिज़ नहीं। पुत्रसे न तो किसीकी गति हुई और न होगी। गति अपने पुरुषार्थसे होती है। अगर पुत्रोंसे गति होती, तो पहलेके मोक्ष चाहनेवाले अपने पुत्रोंको क्यों त्याग जाते? जो पुत्रसे गति होना मानते हैं, वे मोहान्ध हैं।

(१८) प्र०—क्या तीर्थाटनसे भी मुक्ति नहीं हो सकती?

उ०—जिन पुरुषोंके मन और बाणी आदि शुद्ध हैं, उनके पद-पदमें तीर्थ हैं ; किन्तु जिनके मन मलिन हैं, उनके लिये

गङ्गा भी कीकट देशके समान है, यह बात "देवी भागवत"में कही है।

"कपिल गीता" में कहा है—यह तीर्थ है, वह तीर्थ है, ऐसा समझ कर अज्ञानी मारे-मारे फिरते हैं, क्योंकि उन्हें आत्मा रूपी तीर्थका हाल मालूम नहीं।

"गीता" में कहा है—जिसकी आत्मामें प्रीति है, जो आत्मानन्दसे तृप्त है या जो आत्मासे सन्तुष्ट है, उसे कुछ भी नहीं करना है; यानी उसके लिये तीर्थोंमें भटकने या और काम करनेकी ज़रूरत नहीं।

जिस तरह तालाबके निर्मल और ठहरे हुए जलमें सूर्यका बिम्ब-अक्स—दीखता है; उसी तरह शुद्ध मन वालेको परमेश्वर दीखता है। जिसका मन स्थिर और शुद्ध है, उसके चरणोंमें तीर्थ हैं। किसीने कहा है—

दिल बदस्त आर्बूद कि हज्जे अकवर अस्त।
अज़ हज़ाराँ क़ाबा यक दिल बेहतर अस्त॥

(१६) प्र०—महात्माओंने पुत्रोंको दुःखदायी और शत्रु क्यों कहा है?

उ०—पुत्र सचमुच ही शत्रु होते हैं। पुत्र इस जन्म ही में माता-पिताको दुःखसे नहीं छुड़ा सकते, तब मरनेपर क्या सुखी करेंगे? पुत्र तो केवल धनके साथी हैं। वे पूर्व जन्मके लेनदार हैं। अपना ऋण चुकानेको पुत्ररूपमें जन्म लेते हैं। असलमें, पुत्रका नाम ही दुःखोंकी खानि है। जिनके पुत्र नहीं होता, वे

पराये पुत्रोंको देखकर मनमें कुढ़-कुढ़ कर मरते हैं। हाय! हमारे धनका कौन मालिक होगा? गरीबोंको पुत्र न होनेसे इतना दुःख नहीं होता, जितना धनियोंको होता है। अगर किसीके पुत्र होकर मर जाता है, तो वह जीते जी ही मर जाता है। अगर पुत्रकी शादी हो जाती है और फिर वह मर जाता है, तो माता-पिताके जलनकी सीमा नहीं रहती; पुत्र-बधूको देख-देख कर रात-दिन रोते-कलपते हैं। अगर पुत्र कुपुत्र निकल जाता है, तब तो माता-पिताको पद-पद पर जलना और कुढ़ना पड़ता है। उनको पुत्र न होनेवालों से भी अधिक सन्ताप होता है। अगर पुत्र सुपुत्र होता है, तो उसके जीनेकी चिन्ता रहती है, फिर उसके शादी विवाह की फिक्र रहती है और औलाद हो जानेपर उसकी औलादकी चिन्ता रहती है। सारांश यह, पुत्रवानों को सदा चिन्ताग्नि में जलना पड़ता है और शेषमें पुत्रसे कोई लाभ भी नहीं। मरने पर पुत्र धनका मालिक हो जाता है और पिताका नाम भी नहीं लेता। अगर कोई श्राद्ध वगैर: करता है, तो वह अपने नाम और लोक-लाजको करता है; पिताकी आत्माकी शान्तिके लिये नहीं करता। इसीसे तत्वज्ञानी लोग पुत्रकी इच्छा नहीं रखते और पुत्रको ऐसा शत्रु कहते हैं, जो ऊपर से मित्र मालूम होता है; पर वास्तवमें पक्का शत्रु होता है। अनेक पुत्र दरिद्री पिताको मारते-पीटते हैं। उसे दहलीज़ में टूटीसी खाट पर पटक कर बासी-कूसी खाना देते और

अनेक दुर्गति करते हैं। आश्चर्य है, फिर भी मोहान्ध अज्ञानी पुत्र ही पुत्र चिल्लाया करते हैं।

(२०) प्र०—ज्ञान, ध्यान, स्नान और शौच किसे कहते हैं ?

उ०—आत्माको सब प्राणियोंमें एक रूपसे देखना ही "ज्ञान" है। मनका विषयोंसे रहित हो जाना ही "ध्यान" है। मनके मैलोंको दूर करना ही 'स्नान' है और इन्द्रियोंके निग्रह करने को ही "शौच" कहते हैं।

(२१) प्र०—संसार-बन्धनसे किस तरह छुटकारा मिल सकता है ?

उ०—विषयोंमें लगे हुए चित्तको, विषयोंसे हटाकर, ब्रह्म में लगा देनेसे संसार-बन्धनसे छुटकारा हो सकता है।

(२२) प्र०—आत्माके साक्षात्कारमें बाधक कौन है ? परमात्माका स्पष्ट दर्शन कब होता है ?

उ०—आँख, कान, नाक प्रभृति इन्द्रियाँ और रूप, शब्द, गन्ध, स्पर्श आदि विषय अनर्थोंकी जड़ हैं। इन्द्रियाँ सदा विषयोंकी ओर पुरुषको ले जाती हैं और विषय विष की तरह घातक हैं। विषयासक्तोंको आत्मा या परमात्माका दर्शन नहीं होता।

विषय और इन्द्रियाँ पैदा होनेवाले और नाश होनेवाले हैं; किन्तु आत्मा अजन्मा और अविनाशी है; अतः उसका और इनका मेल नहीं, क्योंकि मेल समान-समानका होता है; नाशमान और अविनाशीका मेल हो नहीं सकता। आत्मा इन

से परे और सबका साक्षी है। उस आत्माकी प्राप्ति सत्यसे होती है। सत्यसे ही मनका निरोध होता है। मनका निरोध होते ही आत्मा साफ दीखता है; यानी शुद्ध साफ और निर्मल मनमें ही आत्मा दीखता है, जिस तरह साफ दर्पणमें चेहरा दीखता है। अशुद्ध मनमें आत्मा नहीं दीखता। अशुद्ध मन बन्धनका कारण और शुद्ध मन मोक्षका कारण हैं। मनके शुद्ध हो जानेसे बुरे भले कर्मोंका नाश हो जाता हैं। कर्मोंके नाश हो जानेसे पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है। मतलब यह है कि, आत्मा या परमात्माके दर्शन चाहनेवालोंको, इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर, मनको शुद्ध करना ज़रूरी है। जिस तरह लकड़ियोंके न रहनेसे अग्नि अपने कारणमें लय हो जाती है; यानी बुझ जाती है; उसी तरह वृत्तियोंसे रहित हुआ मन भी अपने कारणमें लय हो जाता है; यानी शान्त हो जाता है। जब मन शान्त हो जाता है, उसकी चञ्चलता नाश हो जाती है, वह स्थिर हो जाता है; तब आत्माका दर्शन होने लगता है। जिस तरह चञ्चल हवासे हिलते हुए मैले गदले जलमें सूरजका बिम्ब या अक्स नहीं दीखता; उसी तरह अशुद्ध, मैले और चञ्चल चित्तमें आत्मा नहीं दीखता। अतः मनकी चञ्चलता और उसकी गन्दगीको दूर करना ज़रूरी है।

(२३) प्रश्न—परमेश्वर कहाँ है? उसका ध्यान कैसे करना चाहिए?

उ०—यह जो हमारा शरीर है, यही उस देवता—परमेश्वर

के रहनेका मन्दिर है। इसीमें जो चेतन जीव है, वही केवल "शिव" है। मनुष्यको हृदय-कमलमें परमेश्वरका ध्यान करना चाहिए। चञ्चल या चलायमान चित्तसे वह नहीं दीखता है।

(२४) प्रश्न—सारे दुःखोंका मूल कारण क्या है ?

उ०—तृष्णा—इच्छा। जिसके मनमें तृष्णा है, उसका मन सदा इधर-उधर भटकता रहता है, वह कभी शान्त नहीं होता। मनके शान्त हुए बिना प्राणीको सुख नहीं; अतः तृष्णाको त्यागना चाहिए; किसी भी वस्तुकी इच्छा न रखनी चाहिए। यहाँतक कि, स्वर्ग और मोक्षकी भी इच्छा न रखनी चाहिए।

(२५) प्रश्न—अगर यह जगत् जड़ है, तो यह चेष्टा कैसे करता है ?

उ०—बेशक यह जगत् जड़, नाशमान और दुःख-रूप है; किन्तु ब्रह्म चेतन, नित्य और सुख-रूप है। जिस तरह चुम्बक पत्थरकी विलक्षण शक्तिसे लोहा चेष्टा करने लगता है; उसी तरह ब्रह्मचेतन की विलक्षण शक्तिसे यह जगत भी चेष्टा करता है।

(२६) प्र०—ईश्वर और जीव की एकता प्रमाणित करो।

उ०—ईश्वर और जीवमें भेद नहीं है। जैसे ब्रह्म निरवयव और निराकार है; वैसे ही जीव भी निरवयव और निराकार है। एक ही चेतन अन्तःकरण रूपी उपाधियोंके अन्तर्गत तो

ज़िन्दगी भी सदा नहीं रहती। मनुष्य पानीके बुल-बुलेकी तरह पैदा होता और चट ही बिलाय जाता है। धन और प्रभुता भी सदा नहीं रहते। जो आज राजा है, कल वह फ़क़ीर हो जाता और दरदर मारा-मारा फिरता है। अतः इन पर फूलना—अभिमान करना, अज्ञानियोंका काम है।

(३२) प्र०—मनुष्यका सबसे बड़ा कर्त्तव्य—फ़र्ज़ क्या है?

उ०—ईश्वर-भजन करना; क्योंकि वह स्वामी है। स्वामी ध्यान दे, चाहे न दे; पर सेवक को अपने कर्त्तव्य-पालन या फ़र्ज़ अदा करनेमें न चूकना चाहिए। जो उम्र विषय-भोगोंमें वृथा बीत गई सो बीत गई; पर जो बाक़ी रही है, उसका क्षण-क्षण परमात्माके भजनमें लगाना चाहिए, क्योंकि कौन जाने यह श्वास बाहर निकल कर भीतर न आवे।

किसीने कहा है :—

अरे भज हरेर्नाम क्षेमधाम क्षणे—क्षणे।
वहिस्सरति निःश्वासे विश्वासः कः प्रवर्त्तने ॥

अरे जीव! हरिके नामको क्षण-क्षण भज, हरिका नाम कल्याण का घर है। जो श्वास बाहर चला जाता है, उसके भीतर आनेका कौन विश्वास? आवे और न आवे।

ऐसी ही बात कबीरदासने कही है :—

नव द्वारेका पींजरा, तामें पंछी पौन।
रहने का आश्चर्य्य है, गये अचम्भा कौन ॥

मनुष्य शरीर नौ दरवाज़ोंका पींजरा है। इसमें दो दरवाज़े हैं, दो आँखोंमें, दो नाकमें, दो कानोंमें, एक मुँहमें, एक गुदामें और एक गुप्त इन्द्रियमें। इस तरह नौ द्वार हैं। इसी नौ द्वारेके पींजरेमें पवन-रूपी पक्षी—जीव रहता है। इतने द्वार होने पर भी, वह इस पींजरे में रहता है, यही आश्चर्य्य की बात है। इतने द्वारोंसे निकल जानेमें क्या आश्चर्य्य ? तात्पर्य्य यह कि, जीव न जाने कब इस शरीरको छोड़ भागे। जब तक जीव इस शरीरमें है, तभी तक हरि-भजन या मोक्ष लाभ करनेकी तदबीरें की जा सकती हैं। जीवके इस शरीरसे निकल भागनेके बाद, यह मौक़ा हाथसे निकल जायगा। जीव इस शरीरको त्यागते ही कीड़े, मकोड़े, साँप, छछूँदर, बिल्ली, कुत्ते, गधे, घोड़े प्रभृतिकी योनिमें जन्म ले लेगा। उन योनियोंमें ज्ञान-शक्ति नहीं होती ; अतः उन शरीरोंमें जाकर मोक्ष-लाभ हो नहीं सकता। मनुष्य-शरीरसे ही मोक्ष मिल सकती है, पर मनुष्य-शरीर बार बार नहीं मिलता। ८४ लाख योनियाँ भुगत लेने पर मनुष्य-जन्म मिलता है ; अतः इस सुअवसरको हाथसे गँवाना भारी अज्ञानता है। जो इसमें चूकेगा, लाखों-करोड़ों वर्ष तक पछतावेगा अतः जब तक जीवन है, मनको सब ओरसे रोक कर, विषयोंको विषवत् त्याग कर, हरिका भजन करो।

(३३) प्र०—वैराग्य पैदा होने और पापोंसे बचनेका मूल कारण क्या है ?

उ०—मृत्युको याद रखना। मौतको याद रखनेसे पाप नहीं होते और वैराग्य उत्पन्न होता है। श्मशान-घाट पर जानेसे ही मनुष्यके चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हो उठता है, पर वह घर आकर सब भूल जाता है, फिर विषयोंमें लग जाता है। एक बादशाहने पाप और अन्यायसे बचनेके लिये ही' अपने दरबारमें, सामने ही, एक क़ब्र बनवा रक्खी थी, कि क़ब्रको देखते रहनेसे मुझसे अन्याय-कर्म न होंगे। मृत्यु अटल है। और सब टल जायँ, पर मृत्यु टल नहीं सकती, वह अवश्य आवेगी; चाहे आज आवे और चाहे कल। जिसने जन्म लिया है, उसे मरना ही होगा। जो मरनेकी बात भूल जाते हैं, जिन्हें यह याद नहीं रहता कि, हम दो दिन या दश दिनमें मरेंगे, वही पाप-कर्म करते हैं और उन्हें ही संसारसे विरक्ति नहीं होती। जिनको हर क्षण मौत दीखती है, उनका मन विषय-भोगों या स्त्री-पुत्र धन-दौलत प्रभृतिमें नहीं लगता। संसारसे मनके हटनेका ही नाम "वैराग्य" है।

(३४) प्र०—कौन किसीका भी बुरा नहीं चाहता?

उ०—जो वैराग्यवान है, जिसे संसारकी असलियतका पता है, जिसे अपने जीवनका क्षण-भरका भी भरोसा नहीं है, जो धन यौवन, शरीर और भोगोंको नाशमान् समझता है, जो सबके अन्दर एक चेतन आत्माको देखता है, वह भूल कर भी किसीका बुरा नहीं चाहता।

(३५) प्र०—दुःखों और सुखोंका हेतु क्या है?

उ०—संसारके भोगोंमें राग ही दुःखोंका और इनमें वैराग्य ही सुखोंका कारण है। दूसरे शब्दोंमें यों समझिये—जो संसारमें ममता रखता है, वह नाना प्रकारके दुःख भोगता है और जो संसारमें ममता नहीं रखता, संसारको त्याग देता है, वह परम सुख पाता है। वैराग्यके सिवा, संसारमें और कहीं सुख है ही नहीं, यह निश्चय है।

(३६) प्र०—राग और वैराग्यका क्या कारण है?

उ०—विषयोंमें सुख मालूम होना ही रागका कारण है और इनमें दुःख मालूम होना ही वैराग्य का कारण है। जब मनुष्य धन और स्त्री पुत्र आदिसे सुखी होता है, तभी उसे इन सबमें राग या प्रीति होती है; पर जब उसे इनसे दुःख होता है, तब उसे वैराग्य होता है। किसीको स्त्री खूब प्यार करती हैं, उसे अच्छी तरह आलिङ्गन करती है, उसकी सेवामें हरदम खड़ी रहती है, उसके सिवा और किसी पुरुषको नहीं चाहती, तब मनुष्यका मन स्त्रीमें और भी फँसता है,—वही राग है। पर यदि स्त्री पुरुषको प्यार नहीं करती, उसके घरमें आते ही कलह करतीहै, कड़े शब्द कहती है, हर तरह तंग करती है, मीठी बातें नहीं बोलती, पर-पुरुषको चाहती है; तब उसका मन स्त्रीसे हट जाता है, वह उसे बुरी मालूम होती है, अतः उसे वैराग्य हो जाता है। महाराजा भर्तृहरिको जबतक यह मालूम था कि, पिंगला मुझे खूब चाहती है; अष्ट पहर मेरा ही भजन करती है, तब तक उनका मन उसीमें फँसा

रहा ; लेकिन ज्योंही उन्हें मालूम हुआ कि, वह पर-पुरुषरता है ; यह कुलटा है और अश्वपालसे प्रीति रखती है, उन्हें संसारसे विरक्ति हो गई। वे राजपाट धन-दौलत सबको त्याग संन्यासी हो गये।

(३७) प्र०—क्या गृहस्थाश्रममें वैराग्य हो सकता है ?

उ०—सबकी पैदायश ही गृहस्थाश्रमसे है। गृहस्थीमें सदा सुख ही रहे, ऐसा हो नहीं सकता। इसमें एक-न-एक दुःख बना ही रहता है। कभी लड़का मरता है, कभी स्त्री मरती है, कभी धन नाश हो जाता है, कभी ऋण-भार सिर पर चढ़ता है, कभी शत्रु सताते हैं ; अतः मनुष्यको ज़रा-बहुत वैराग्य होता ही रहता है ; पर यह मन्द वैराग्य होता है। जब मनुष्य पर कष्ट आता है, उसे वैराग्य होता है ; पर ज्योंही दुःख टल कर सुखकी घड़ी आती है, उसका वैराग्य नहीं रहता पर वैराग्यका मूल कारण है गृहस्थाश्रम ही। रामचन्द्रजी और वशिष्ठजी प्रभृति महापुरुषोंको गृहस्थीमें ही वैराग्य हुआ था। जनक प्रभृतिको गृहस्थाश्रममें ही ज्ञान हुआ था। जनक महाराज गृहस्थीमें रहकर भी सच्चे त्यागी थे और उन्हें लोग विदेह कहते थे। ज्ञानका कारण वैराग्य है। जिसे गृहस्थाश्रममें वैराग्य है, वह ज्ञानी है ; पर जिसे संन्यासाश्रममें भी राग है, वह अज्ञानी है। खूब याद रक्खो, विना वैराग्य ज्ञान नहीं होता और बिना ज्ञानके मोक्ष नहीं होती। जो मनुष्य गृहस्थीमें रहकर भी उसमें कमलकी तरह रहता है, उसकी

मुक्ति हो जाती है। यद्यपि कमल जलमें रहता है, पर पानी उस पर नहीं ठहरता; इसी तरह जो गृहस्थीमें रहता है, गृहस्थीके सब काम विषय-भोगादि करता है; पर उनमें ममता या आसक्ति नहीं रखता, वह जीवन्मुक्त है। राजा जनक गृहस्थीमें रहकर क्या नहीं करते थे? पर उनकी आसक्ति या ममता किसी भी पदार्थमें नहीं थी।

(३८) प्र०—संसारमें स्त्री कौन है और पुरुष कौन है?

उ०—जो पुरुष अपने हृदयमें रहनेवाले पुरुषरूप स्वप्रकाश आनन्द-रूप आत्माको नहीं जानता, वह स्त्री है; क्योंकि जैसे स्त्रीका पति उससे अलग होता है; उसी तरह उस आत्माको न जाननेवालेने भी अपनेसे अलग पति मान रक्खा है। मतलब यह, जिसमें वैराग्य और आत्म-विचार नहीं, वह स्त्री है।

(३९) प्रश्न—ईश्वरके भजन-स्मरणमें वैराग्यकी क्या ज़रूरत है।

उ०—बिना वैराग्यके पुरुषका मन ईश्वर-भजनमें नहीं लगता, इसलिये वैराग्यकी ज़रूरत है। मन एक है। जब तक वह विषय-भोगोंमें लगा रहता है, तब तक वह ईश्वरमें नहीं लग सकता; लेकिन जब वह विषय-भोगोंसे हट जाता है, तब वह ईश्वरमें लग जाता है। जब मनमें विषय-भोगोंकी चाह बनी रहती है, जब यह विषय-भोगोंकी लालसासे भरा रहता है, तब उसमें ईश्वरके लिये जगह नहीं रहती; लेकिन जब वह विषय-भोगोंसे ख़ाली हो जाता है; यानी शुद्ध और साफ हो

जाता है; तब उस निर्मल और ख़ाली मनमें परमेश्वर बैठ सकता है। अतः परमेश्वरके दर्शन चाहनेवालेको पहले वैराग्य द्वारा अपना मन शुद्ध करना चाहिए।

(४०) प्रश्न—संसारमें सर्पसे भी भयङ्कर कौन है?

उ०—स्त्री सर्प भी से भयंकर है। सर्पके विषसे मनुष्य एक बार ही मरता है; पर स्त्रीके विषसे बार-बार मरता है; यानी वासना बनी रहनेसे, वह बार-बार जन्म लेता और मरता है।

(४१) प्रश्न—स्त्री-रूपी सर्पके बिषसे बचनेका क्या उपाय है?

उ०—स्त्रीकी याद न करना और उसे कभी न देखना। उसकी छायासे भी दूर रहना।

(४२) प्र०—स्त्री-सङ्गसे क्या हानि है?

उ०—जिसमें जिसकी वासना रहती है, वह स्वप्नमें भी दीखता है; इसी तरह मरण-कालमें जब पुरुषकी वासना स्त्री-में रहती है; तब उसको प्राप्त करनेके लिये वह फिर शरीर धारण करता है। मरते समय विशेष कर स्त्रीमें मन रहता ही है, इसीसे ज्ञानी लोग पहले ही स्त्रीसे अलग हो जाते हैं; जिससे मरण-कालमें उसमें वासना न रहे। इसके सिवा कामी पुरुष और स्त्रियोंके सङ्गसे पुरुष कामी हो जाता है और दूसरा जन्म लेनेपर क्रोधी और मोही होता है। काम क्रोध और मोह प्रभृतिसे मन अशुद्ध हो जाता है। अशुद्ध मनमें

ब्रह्मज्ञान नहीं ठहरता। जो मनुष्य ब्रह्मज्ञान-शून्य होता है ; वह कीड़े मकोड़ोंकी योनि पाता है। इन शरीरोंको पाकर फिर वह नरकसे नहीं निकल सकता ; इसलिये स्त्रियोंका सङ्ग नहीं करना चाहिये।

(४३) प्र०—सच्चा ज्ञानी कैसा होता है ?

उ०—जिसका किसी पदार्थमें राग न हो, यहाँ तक कि स्त्री पुत्र प्रभृतिमें भी राग न हो। अगर संन्यासी हो तो मठ, चेलों और धन प्रभृतिमें राग न हो, शत्रु-मित्र आदि सब जीवोंको एक नज़रसे देखे-किसीको अपना और किसीको पराया न समझे ; किसीको भी जिससे भय न हो और किसीसे भी जिसे भय न हो ; जो आत्माको अमर और अविनाशी तथा शरीरसे अलग समझता हो ; जो सब प्राणियोंमें एक आत्माको देखता हो ; जो ईश्वर और जीवमें भेद न समझता हो ; जो नष्ट हुए, मरे और बीती बातका शोक न करता हो, यानी सर्व्वस्व नाश हो जाने और पुत्र तथा स्त्री तकके मर जाने पर भी, नाम मात्रको भी रञ्ज न करता हो, वही सच्चा ज्ञानी है। किन्तु जो ज्ञानीकी सी बातें तो बघारता हो पर वैराग्यसे शून्य हो, वह बन्ध्यज्ञानी है।

(४४) प्र०—चित्तकी शुद्धिका साधन क्या है।

उ०—शुद्ध अन्न।

(४५) प्र०—शुद्ध अन्न कैसा होता है ?

उ०—जो सत्य धर्मसे कमाया जाता है, वही शुद्ध द्रव्य

होता है। उस शुद्ध द्रव्यसे जो खाने पीनेके पदार्थ ख़रीदे जाते हैं, वही शुद्ध कहे जाते हैं। वैसे शुद्ध पदार्थोंके खानेसे मन शुद्ध हो जाता है ; क्योंकि अन्नके द्वारा सत्य-धर्मका असर चित्त पर भी होता है। शुद्ध चित्तमें ही वैराग्य और विवेक आदि पैदा होते हैं। असलमें सत्य बोलना सर्वोपरि है। सत्यसे योंही चित्त शुद्ध हो जाता है और इससे अन्न भी शुद्ध होता है ; इसलिये हमेशा सत्यके आश्रय रहो ; सत्यको न त्यागो। सत्यके समान जगत्‌में कोई दूसरा धर्म या भक्ति-उपासना नहीं है।

(४६) प्र०—चोर और दुष्टोंको भी साधु बनाने वाला क्या है ?

उ०—"सत्सङ्ग।" सत्सङ्गकी महिमा शेष शारदा भी नहीं गा सकते। कमल पर स्थित जलकी बूँद भी मोती-जैसी लगती है। लोहा काठके सङ्गमें रहनेसे जलमें नहीं डूबता। नदी-नालोंका जल भी गङ्गाजलके सङ्ग मिल कर गङ्गाजल हो जाता है। नागरपानके सङ्ग ढाकका पत्ता भी राजा तक पहुँच जाता है। चींटी फूलमें बैठकर महादेवजीके सिर पर चढ़ जाती है। चन्दनके साथ नीम भी चन्दन हो जाता है। पारस पत्थरको छू जानेसे लोहा कुन्दन हो जाता है। बाँस मिश्रीके साथ मिलकर उसीके साथ तुलता है। सत्सङ्गसे ही घोर बनमें जाकर डाकूपना करनेवाले भील वाल्मीकिजी महर्षि हो गये ; अतः सत्सङ्गको चित्तकी शुद्धिका मुख्य उपाय

समझना चाहिए, और कुसङ्गसे बचना चाहिए। क्योंकि उस से चित्त अशुद्ध हो जाता है।

(४७) प्र०—क्या चित्तकी शुद्धिका और भी कोई उपाय है?

उ०—हाँ, परोपकार या दूसरों पर दया करने से भी चित्त शुद्ध हो जाता है। दयालुचित्त मनुष्य ही दूसरोंका भला करते हैं। असलमें चित्त-शुद्धिका "दया" मुख्य साधन है। जो मनुष्य-शरीर पाकर उपकार नहीं करता, वह पशुओंसे भी गया-बीता है। ईश्वरने मनुष्य-शरीर परोपकारके लिये ही दिया है। शास्त्रोंमें लिखा है—"धन और प्राणोंसे परोपकार करना चाहिये ; क्योंकि परोपकारके बराबर सौ यज्ञोंका भी पुण्य नहीं है। जो परोपकारहीन है, उसका जीना वृथा है। जानवरोंका चमड़ा भी पराये काम आता है। अपने लिये कौन नहीं जीता? जो पराये लिये जीता है, वही जीता है। वृक्ष अपने लिये फल नहीं देते, नदियाँ अपने लिये नहीं बहतीं, शेषजीने पृथ्वी परोपकारके लिये ही अपने सिर पर धर रक्खी है। भगवान् कृष्ण पराये कामके लिये ही सारथी बने थे। सन्त लोग परोपकारके लिये ही शरीर धारण करते हैं ; अतः मनुष्यका सबसे बड़ा कर्त्तव्य परोपकार या दया करना है। इससे चित्त शुद्ध हो जाता है और शुद्ध चित्तमें परमात्माके दर्शन हो जाते हैं।

(४८) प्रश्न—ज्ञानवानकी नज़रमें सबमें एक ही आत्मा

है, तो फिर ज्ञानी सबके साथ खान-पानादि क्यों नहीं करता ?

उ०—ज्ञानी दो तरहके होते हैं।

(४६) (क) जीवन्मुक्त, जिन्हें अपनी देहकी भी सुध नहीं होती। वे राजा जनककी तरह विदेह और अजगर वृत्तिवाले होते हैं। वे न किसीसे भिक्षा माँगते और न कहीं जाते हैं। अगर कोई उन्हें खिला देता है, तो खा लेते हैं ; कोई जल पिला देता है, तो जल पी लेते हैं। कोई धूपमें बिठा देता है, तो वहीं बैठे रहते हैं और कोई वर्षामें पटक देता है, तो वहीं पड़े रहते हैं। उन्हें धूप, छाया और वर्षा सब समान हैं। वह आत्मानन्दमें डूबे रहते हैं। उनको जगत् नहीं दीखता। उन्हें सर्वत्र आत्मा ही आत्मा दीखता है। उनकी नज़रमें न कोई ब्राह्मण है और न भंगी चमार ; उनको तो आत्मा ही आत्मा दीखता है ; अतः उनके मुँहमें ब्राह्मण अन्न डाल दे तो वैसा ही, भंगी अन्न डाल दे तो वैसा ही ; उनको दोष नहीं लगता। दोष उन्हें लगता है, जिन्हें वर्णाश्रम-धर्मका ज्ञान होता है। वह तो सब तरह निर्दोष हैं। वेदादिक शास्त्रोंकी आज्ञा भी उन पर नहीं चलती, क्योंकि वह तो ब्रह्मरूप हैं और महान सुख में डूब रहे हैं। ऐसे महापुरुष जीवन्मुक्त हैं।

(ख) दूसरे प्रकारके ज्ञानियोंकी गिन्ती आचार्य-कोटिमें है। वे भी सब प्राणियोंमें एक ही आत्मा देखते हैं, इसीसे वे किसीसे राग-द्वेष नहीं रखते ; परन्तु वे समवर्त्ती नहीं होते।

वे भङ्गी चमार और ब्राह्मण सबका झूठा नहीं खाते, क्योंकि उन्हें वर्णाश्रम-धर्मका ज्ञान है। सब तरहके व्यवहार और वर्णाश्रम-धर्मको समझनेवाला यदि सबके साथ खावे पीवेगा, तो उसे दोष लगेगा। जो पागलोंकी तरह होता है, जिसे क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये ; क्या विधि है और क्या निषेध है ; इन बातोंका ज्ञान नहीं होता, उसे दोष नहीं लगता। सब किसीसे समान बर्त्ताव करने या हर किसीके साथ खाने-पीनेसे कोई ज्ञानी नहीं हो सकता। अगर ऐसा होता, तो भंगी चमार, जो सबका झूठा खाते हैं, ज्ञानी कहलाते। ज्ञानी वही है, जिसमें राग-द्वेष आदि नहीं हैं तथा जो आत्मानन्दसे आनन्दित है ; पर जिसमें राग-द्वेष हैं, जो विषय-भोगोंमें आनन्द मानता है, वह ज्ञानी नहीं—अज्ञानी है।

पाप-पुण्य उसे लगते हैं, जिसे ज्ञान होता है। बालकको धर्म-अधर्म और पुण्यपापका ज्ञान नहीं होता, इसीसे उसे पाप-पुण्य नहीं लगते। बालकको आचारका ज्ञान नहीं होता। वह ऊपर मुँहसे रोटी खाता जाता है और नीचेसे मलमूत्र त्याग करता जाता है। लोगोंको उसकी इस क्रिया पर ग्लानि नहीं होती। इसी तरह जीवन्मुक्तको पाप-पुण्य नहीं लगते, वह चाहे जो करे, क्योंकि उसे ज्ञान ही नहीं। उसके भले-बुरे कामोंको देखकर कोई उसे भला-बुरा भी नहीं कहता। किन्तु आचार्य्य कोटिके ज्ञानी यदि मांस, मदिरा सेवन करें, हर

किसीका जूठा खाँय, पर स्त्री-गमन करें, तो उन्हें पाप ज़रूर लगेगा ; क्योंकि उन्हें सब तरहका ज्ञान होता है और लोग भी उनसे घृणा करते हैं। आचार्य्य-कोटिमें वही ज्ञानी है, जो उन कामोंको नहीं करता, जिनके शास्त्रोंमें मनाही है और उन कामोंको करता है, जिनके शास्त्रमें आज्ञा है। किन्तु जिन कामोंको करता है, उनको निष्काम होकर अनासक्ततासे श्रेष्ठ आचारके लिये करता है अथवा निषिद्ध और विहित दोनों कर्म नहीं करता ; यानी जिनकी शास्त्रोंमें आज्ञा है और जिनकी मनाही है, दोनों ही प्रकारके काम नहीं करता ; केवल आत्म-चिन्तन ही करता है, वह आचार्य्य-कोटिमें हैं।

(५०) प्र०—मुक्त किसे कहते हैं ?

उ०—जिस पुरुषका मोक्षमें अभिमान है, देहादिकोंमें ममता है, वह न योगी है और न ज्ञानी ; पर जो किसी की निन्दा करता हैं और न स्तुति ; न किसीको देता है और न किसी से लेता है ; जो सर्वत्र राग-रहित है ; यानी जिसे किसी भी पदार्थ—स्त्री-पुत्र धन-जायदाद प्रभृति से राग नहीं—किसी में भी ममता नहीं—वही मुक्त है। जिसका मन अपने तईं चाहने वाली स्त्रीको सामने देखकर अथवा मौतको सामने देख कर भी व्याकुल नहीं होता, वही मुक्त है।

(५१) प्र०—क्या आतमा उच्च और नीच नहीं होता ?

उ०—आत्मामें अपवित्रता और नीचता नहीं। एक ही आतमा ऊँच-नीच सब शरीरों में है। शरीरोंके गुण-दोषोंसे

वह गुण-दोषवाला नहीं होता। एक ही आकाश मन्दिरमें भी है, पाख़ाने में भी है, भंगी-चमार के घरों में भी है ; उत्तमोत्तम मूर्त्तियों में भी है, मल मूत्रकी बाल्टियों में भी है, परन्तु अति सूक्ष्म होनेके कारण, उसका उपाधियोंसे कोई सम्बन्ध नहीं ; वही बुरी-भली उपाधियोंके कारण बुरा भला भी नहीं होता। यही बात आत्माके सम्बन्धमें हैं। आत्मा तो आकाश से भी सूक्ष्म है, ; अतः वह असंग और निर्लेप है।

(५२) प्र०—संसार में कितने प्रकारके मनुष्य हैं और उनमें से कौनसे परमात्माके दर्शन करते हैं ?

उ०—संसार में तीन तरहके मनुष्य हैं :—(१) कृपण और आलसी, (२) विषय-भोगी, (३) उदार और उद्योगी। इनमें से पहले प्रकार के कञ्जूस और आलसी तो कभी परामात्मा तक पहुँच ही नहीं सकते ; क्योंकि वह हाथोंसे दान नहीं करते और पैरोंसे महात्माओं तक नहीं पहुचते। दूसरे प्रकारके —विषय-भोगी अन्धे है। उन्हें न परमार्थ दीखता है और न परमेश्वर ; इसलिये वह परमेश्वर का भजन-पूजन नहीं कर सकते। तीसरे प्रकार के लोग उद्योगी और दाता हैं। वे हाथोंसे दान करते और पैरोंसे चल कर महात्माओंकी सेवामें पहुँच जाते हैं ; अतः सत्सङ्गके कारण उन्हें ज्ञान हो जाता है। उनका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है ; इसलिये वह परमेश्वरके दर्शन पाते हैं।

जो पुरुष रात-दिन स्त्री-पुत्रोंकी सेवामें लगे रहते हैं, रात

दिन उनके ही सुख-चैनकी फिक्र रखते हैं, वह कभी सत्सङ्ग नहीं करते ; इसलिये वह स्त्री-पुत्रोंकी फिक्र करते-करते ही मर जाते हैं और फिर जन्म लेते और मरते हैं। उनकी मोक्ष नहीं होती।

जो पुरुष वेद-शास्त्रोंमें लिखे हुए कर्म करते रहते हैं, वह कभी आत्माका ख़याल भी नहीं करते ; वह कर्म करते-करते ही मर जाते हैं। उनकी भी मोक्ष नहीं होती।

जो पुरुष वेद-शास्त्रोंकी परवा न करके, आत्मविचार छोड़ कर और किसी ओर ध्यान ही नहीं देते, उनको परमानन्द या मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(५३) प्र०—सब वेद-शास्त्रोंका सार क्या है?

उ०—ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्मरूप है और दूसरा कोई नहीं—यही सब शास्त्रोंका सारतत्व है।

(५४) प्र०—प्राणी-बन्धनसे कब छूटता है ?

उ०—जब मनुष्य इस बातको समझ लेता है कि, आत्मा असङ्ग, अकर्त्ता, अभोक्ता और चैतन्य स्वरूप है ; तभी वह बन्धनसे छूट जाता है ; अर्थात् अपने असली स्वरूपका ज्ञान हो जाना ही मुक्तिका हेतु है।

(५५)—जीव और ईश्वरका मेल कब होता है।

उ०—जब अविद्या और माया त्याग दी जाती हैं ; तब ईश्वर और जीवका मेल हो जाता है। इन दोनोंके मेलमें "अविद्या और माया" बाधक हैं।

(५६) प्र०—परमेश्वर कहाँ रहता और वह किस तरह मिलता है ?

उ०—परमेश्वर इसी कायामें रहता है। जब तक जीव उसे बाहर खोजता फिरता है, वह नहीं मिलता; लेकिन जब वह उसे इस कायामें ही खोजता है तब वह मिल जाता है और प्रसन्न होकर पिताकी तरह पुत्रको मोक्ष-रूपी महान फल देता है। असलमें ईश्वर इसी कायामें रहता है; पर मूर्ख लोग उसे काशी, द्वारका, रामेश्वर आदिमें खोजते फिरते हैं। ऐसे अज्ञानी भटकते-भटकते मर जाते हैं। पर ईश्वर नहीं मिलता। वे लोग—"छोरा बग़लमें ढिंढोरा शहरमें" वाली कहावत चरितार्थ करते हैं।

(५७) प्र०—किनका अधिकार मोक्षमें है और किनका कर्मोंमें ?

उ०—जो पुरुष कर्म करते हुए भी अपने तईं कर्मोंका करने वाला और उनके फल भोगने वाला नहीं मानते, अपने तईं असंग और सच्चिदानन्द स्वरूप समझते हैं, वे ही ज्ञान और मोक्षके अधिकारी हैं; किन्तु जो समझते हैं कि, हम इस कामको करते हैं और हम ही इसका फल भोगेंगे, उनका कर्मोंमें अधिकार है, उनकी मोक्ष हो नहीं सकती; इसीलिये भगवान्ने कहा है—कर्म करो, पर निष्काम होकर करो; यानी फल-प्राप्तिकी इच्छासे कर्म मत करो। यदि कोई पुरुष इस विचारसे ईश्वर भजन करेगा कि, मुझे इसके फल-स्वरूप

राज्य-सुख और स्त्री पुत्रादि मिलें, तो उसे मरकर जन्म लेना होगा और वह इच्छित फल उसे भोगने होंगे। लेकिन जो, बिना किसी कामनाको मनमें रक्खे, ईश्वर-भजन करेगा, उसे फल भोगनेको जन्म न लेना होगा; यानी उसकी मोक्ष हो जायगी।

(५८) प्र०—जीव डरता क्यों है?

उ०—जीव अज्ञानसे डरता है। वास्तवमें उसे किसीका भय नहीं। जब मन किसी दूसरेकी कल्पना करता है, तभी उसे भय लगता है। असलमें, एक अपने आत्माके सिवा दूसरा कोई है ही नहीं, फिर डर और भय किसका? असलमें सब आफ़तोंकी जड़ यह मन है। वास्तवमें न बन्धन है न मोक्ष। बन्धन और मोक्ष मनके सङ्कल्प मात्र हैं। मनके शान्त होनेपर वे शान्त हो जाते हैं। जिस तरह बच्चा अपनी ही परछाहीं से डरता है; उसी तरह यह जीव अपने संकल्पोंसे डरता है।

(५६) प्र०—क्या आत्मा सचमुच अजर और अमर है?

उ०—बेशक; आत्मा अनादि, अजर और अमर है। यह जीव अज्ञानके कारण अपने अजर अमर आत्मामें जन्म और मरण आदि मानता है। जब इसे किसी सत्पुरुषका उपदेश मिलता है, तब इसे होश होता है। उस समय यह अपने तईं अजर और अमर समझकर, जन्म-मरणसे रहित हो जाता है। जिस तरह एक बनियेको, गेरु-घुले लोटेके जलसे आबदस्त लेने

पर, गुदा द्वारा खून गिरनेका भ्रम हो गया था ; उसी तरह जीवको अपने स्वरूपमें भ्रम हो रहा है ।

(६०) प्र०—इस जीवको सुख कब मिलता है ?

उ०—जब यह जीव अहङ्कार और ममताको त्याग देता है। जबतक मनुष्यके मनमें "मैं और तू" का झगड़ा रहता है, जब तक उसकी ममता स्त्री-पुत्र और घर-मकान आदिमें रहती है, तब तक उसे सुख नहीं होता ।

(६१) प्रश्न—यह संसार असार और महा मलिन है ; फिर लोग इसकी मोह-ममतामें क्यों फँसे हैं ? इसे त्यागते क्यों नहीं ?

उ०—जो लोग मोह-ममतामें फँसे हैं, उन्हें मलिन वस्तुओंसे भी घृणा नहीं होती। जिस तरह भङ्गीको मैलेके देखने या उठानेसे नफ़रत नहीं होती ; उसी तरह मोह-ममतामें फँसे हुए गृहस्थोंको ऐसे गृहस्थाश्रमसे भी घृणा नहीं होती, जो महागन्दगीका स्थान और दुःख-शोकका भण्डार है। कहीं गू पड़ा है, कहीं वमन पड़ी है, कहीं रहँट पड़ा है, कहीं थूक और खखार पड़ा है, कहीं कोई रोता है, और कहीं कोई हाय-हाय करता है। वजह यह है कि, उनका स्वभाव ही भङ्गीकी तरह वैसा ही हो जाता है। उनका दिमाग़ गन्दा हो जाता है। घर-गृहस्थीकी मलिनता और गन्दगी प्रभृति उनके दिमाग़में समा जाती हैं। क़साईख़ानेकी दुर्गन्ध क़साईयों के दिमाग़में समा जाती है। मोचीख़ानेकी बदबू मोचियोंके माथेमें समा जाती है।

तात्पर्य यह है, जिनके अन्तःकरण मोह और ममतासे मैले हो गये हैं, उनको गृहस्थीके नाना प्रकारके दुःख देखकर भी गृहस्थीसे घृणा नहीं होती ; किन्तु जिनके अन्तःकरण सत्सङ्ग से शुद्ध हो जाते हैं, उनको गृहस्थीसे नफ़रत होने लगती है। उन्हें गृहस्थी जञ्जाल मालूम होती है। बाज़-बाज़ लोग बेगारमें पकड़े हुओंकी तरह गृहस्थीमें काम करते हैं और ज्योंही मौक़ा पाते हैं त्योंही छोड़ भागते हैं।

(६२) प्र०—गृहस्थीमें भी किसे विक्षेप नहीं होता ?

उ०—जिसमें ममता नहीं, उसे विक्षेप क्यों होने लगा ? जो ममता त्यागकर गृहस्थीके काम करता है, उसे विक्षेप नहीं होता। जिसे संसारी विषय-भोगोंमें ममता नहीं, वह घरमें रहता हुआ भी सुखी है। जिसमें ममता है, वह गृहत्यागी भी दुःखी है।

(६३) प्र०—मनके निरोधके साधन क्या हैं ?

उ०—वैराग्य और अभ्यास। मनुष्य या देवताकी मूर्त्ति या सूरज चन्द्रमा प्रभृति जो अपनेको प्यारे लगते हों, उनमें मनको लगाकर मनका निरोध करना चाहिए। पहले मनको स्थूल पदार्थोंमें लगाना चाहिए। जब मन स्थूलमें लगने लगता है, तब धीरे-धीरे अभ्याससे सूक्ष्ममें जाकर ठहर जाता है। बिना स्थूल पदार्थमें लगे, सूक्ष्ममें मन लग नहीं सकता। बिना मनके एक जगह ठहरे, परमानन्द मिल ही नहीं सकता। मतलब यह है, मन के रोकने या ठहरानेमें ही परम सुख है और

उस के इधर-उधर भटकानेमें घोर दुःख है। मूर्त्ति-पूजा इसी लिये जारीकी गई थी, कि लोग स्थूल मूर्त्ति का ध्यान करते-करते सूक्ष्म आत्माके ध्यान करने योग्य हो जायँ। जब स्थूल स्थूल मूर्त्ति में ही मन न लगेगा, तब सूक्ष्म आत्मा में कैसे लगेगा? भूगोल या जुगराफिया पढ़ने वाले पहले नक़शा देखते हैं। नक़शा देखते-देखते फिर सारे पहाड़ और देश तथा नगर प्रभृति उनकी नज़रमें जम जाते हैं। नक़शा सामने न होने पर भी, सारा नक़शा उनको अपने नेत्रोंके सामने दीखने लगता है। उसी तरह मूर्त्तिपर ध्यान जमाने वालोंका, पीछे, अभ्याससे बिना मूर्त्ति, ध्यान जमने लगता है। मूर्त्ति में भगवान् नहीं हैं, मूर्त्ति ख़ाली ध्यान जमानेका साधन-मात्र है। जो मूर्त्ति को ही भगवान् मान लेते हैं, वे अज्ञानी हैं।

जो लोग कहा करते है कि, मूर्त्तिपूजा से ईश्वर नहीं मिलता उन्हें महाकवियों के निम्नलिखित वाक्यों पर ध्यान देना चाहिये :—

(१)

आख़िर को इश्क़ कुफ्र से ईमान हो गया।

मैं बुत-परस्तियों से मुसलमान हो गया ॥१॥

मैं मूर्त्तिपूजा करते-करते ईश्वर-भक्त हो गया। प्रतीक के द्वारा ही मुझे ईशप्राप्ति हुई। मुझे असत् से सत्की प्राप्ति हुई।

काबे जाना भी तो बुतख़ानेसे होकर ज़ाहिद ।

दूर इस राह से अल्लाह का घर कुछ भी नहीं ॥ २ ॥

भक्त महाशय! अगर काबे जाना हो तो जाओ; पर मन्दिर में हो कर भी एक राह उधरको जाती है। सच तो यह है, कि उस मार्गसे अल्लाहका घर कुछ भी दूर नहीं है। मूर्त्तिपूजा से भी ईश-प्राप्ति अनायास हो जाती है।

तेरी सूरत को देखता हूँ मैं ।

उसकी सूरत को देखता हूँ मैं ॥३॥

तेरी सूरतमें मुझे ईश्वर की माया दीखती हैं। तेरा चेहरा उसको सृष्टि का बढ़िया नमूना है।

तेरी खूबसूरती को देखकर मेरा दिल कलेजेसे निकला पड़ता है, तो तेरा गढ़ने वाला तो तुझ से भी बढ़कर होगा; अतः मैं तुझे छोड़, उस से ही प्रेम क्यों न करूँ? बहुत से लोग ईश्वरकी कुदरतके नमूने या प्राकृतिक शोभा देख-देख कर सच्चे ईश्वर-भक्त बन गये हैं।

(२)

(६४) ईश्वर सर्व व्यापक कहलाता है, पर वह दीखता क्यों नहीं? उसे कैसे देख सकते हैं?

उ०—हाँ, ईश्वर सर्वत्र है। ज़मीन, आस्मान, सूरज, चाँद, समुद्र, नदी, पशु, पक्षी और मनुष्य सबमें ईश्वर है। उसे देखने के लिये उत्सुक रहो, उसके प्रेममें डूब जाओ, वह दीखेगा। पर

यह भी याद रक्खो, कि वह इन चमड़ेकी आँखोंसे नहीं दीखता, वह ज्ञान की आँखों से दीखता है।

महा कवि दाग़ कहते हैं :—

यहाँ भी तू वहाँ भी तू ज़मीं तेरी फ़लक तेरा।
कहीं हमने पता पाया न हरगिज़ आजतक तेरा॥

यहाँ भी तू है और वहाँ भी तू है। ये ज़मीन आस्मान सब तेरे ही हैं। फिर भी तेरा पता नहीं मिलता। कहीं तेरी सर्व्वव्यापकता ही तो तेरे गुम होनेका कारण नहीं ?

रहिए मुश्ताक़ जलव-ये दीदार।
हमने माना नज़र नहीं आता॥

उसके दर्शनोंके लिये इच्छुक रहनेकी आवश्यकता है। यह दूसरी बात है कि, वह दिखाई न दे।

देख गर देखना है ज़ौक़ कि वह परदानशीं।
दीदये रोज़ने दिलसे है दिखाई देता॥

अगर तू उस पर्दानशीन यार को सचमुच ही देखना चाहता है, तो उसे मानस चक्षुओं से देखने की कोशिश कर, क्योंकि चर्मचक्षुओं से वह नहीं दीखता।

कृष्ण भगवान् स्वयं गीतामें कहते हैं :—

"विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा" मूढ़ लोग ईश्वर को नहीं देख सकते। सिर्फ वही देख सकते हैं, जिनके

ज्ञानके नेत्र हैं; यानी ईश्वर ज्ञानकी आँखों से दीखता है, चमड़ेको आँखोंसे नहीं दीखता।

कहाकवि ग़ालिब कहते हैं :—

> असले शहूद शाहिदो मशहूद एक हैं।
> हैराँ हूँ फिर मुशाहिदा है किस हिसाब में॥

जब देखने वाला, दृश्य और दर्शक एक ही हैं। जब सब में एक ईश्वर है; तब फिर किसका दर्शन किया जाय? सारे संसार में ब्रह्म व्यापक है और वह मैं ही हूँ, "सोऽहं भाव" दिखाया है।

और भी—

> क़तरेमें दजला दिखाई न दे और जुज़ब में कुल।
> खेल लड़कोंका हुआ दीदये बीना न हुआ॥

बूँदमें जिसने समुद्रको न देखा और व्यष्टिमें समष्टि को-तो वह ज्ञान-चक्षु ही क्या हुए? आत्मसाक्षात्कार कोई लड़कों का खेल थोड़े ही है। इसमें शुद्ध अद्वैतवाद है; यानी जीव ब्रह्म सब एक ही हैं और एक ब्रह्म के सिवा दूसरा और कोई नहीं है।

उस्ताद ज़ौक़ कहते है :—

> दाना ख़िरमन है हमें, क़तरा है दरिया हमको।
> आये है जुज़में नज़र कुलका तमाशा हमको॥

हम दाने में ढेर और बूँदमें समुद्र देखते हैं। हम व्यष्टि में समष्टि का तमाशा देखने वाले हैं ; तङ्ग-नज़र नहीं हैं।

महाकवि ज़ौक़ कहते हैं—

> वह पहलूमें बैठे हैं और बद-गुमानी।
> लिये फिरती मुझको कहीं-का-कहीं है॥

वह ईश्वर पहलू-बग़ल में बैठा है; पर भ्रम-वश मैं उसे जहाँ-तहाँ खोजता फिरता हूँ।

> जहाँके आईनेसे दिलका आईना है जुदा।
> उस आईनेमें हम आईनेगरको देखते हैं॥

संसारके दर्पणसे दिल का दर्पण अलग है। दिलके दर्पणमें हम दर्पण बनाने वाले—ईश्वरको देखते हैं।

(६५) ईश्वरकी सेवा से क्या फल मिलता है ?

महाकवि ग़ालिब कहते हैं :—

> तेरी बन्दानवाज़ी हफ्त किशवर बख़्फा देती है।
> जो तू मेरा जहाँ मेरा अरब मेरा अजम मेरा॥

तेरी सेवा निष्फल नहीं जाती। तेरी सेवा करनेसे सातों विलायतका राज्य मिल जाता है। अगर तू मेरा हो जाय, तो संसार मेरा, अरब मेरा और अजम मेरा।

मनुष्यकी सेवामें कुछ लाभ नहीं ; लाभ है जगदीश की सेवा में ; उसकी कृपा होनेसे फिर कोई अभाव नहीं रहता।

(६६) ईश्वर कैसा है ?

उ०—महाकवि दाग़ कहते हैं :—

सिफ़ातों जातमें यकता हैं तू ऐ वाहिदे मुतलक़ ।
न कोई तेरा सानी है न कोई मुश्तरक तेरा ॥

हे त्रिविध भेद-शून्य परमात्मा ! तू अद्वितीय है, तेरा, जोड़ा नहीं है और कोई तेरा शरीक या साझी भी नहीं है।

(६७) मनुष्य देवताओं से कब बढ़ सकता है ?

उ०—अगर मनुष्य किसी भी चीज़की इच्छा न रक्खे, उसमें मोह-ममता और वासना न हो ; तो वह देवताओं से भी बढ़कर ही है।

उस्ताद ज़ौक कहते हैं :—

जिस इन्साँ को सगे दुनिया न पाया ।
फरिश्ता उसका हमपाया न पाया ॥

जो मनुष्य संसार का कुत्ता नहीं-संसार का दास नहीं, वह देवताओंसे बढ़ कर है।

हमारे यहां भी शुकदेवजी ने कहा है :—

इन्द्रोऽपि न सुखी तादृग्यादृग्भिक्षुस्तु निःस्पृहः ।
कोऽन्यः स्यादिह संसारे त्रिलोकी विभवे सति ॥

निस्पृह-इच्छारहित भिक्षु जैसा सुखी है ; वैसा सुखी इन्द्र भी नहीं। जब त्रिलोकीका विभव होने पर भी, निःस्पृह भिखारीके समान इन्द्र सुखी नहीं है, तब और कौन हो सकता

है। उपन्यास तो आपने बहुतेरे देखे होंगे ; लेकिन हम दावेके साथ कहते हैं, कि ऐसा एक भी उपन्यास आपने देखा न होगा। इसकी भाषा इतनी आसान है, कि बच्चे भी आसानीसे समझ सकते हैं। आदमी कैसाही ग़मगीन क्यों न हो ; कोई कितना ही गम्भीर क्यों न हो ; इस उपन्यास की दो-चार सतरें पढ़ते ही सारी ग़मगीनी और गम्भीरता भाग जाती है। मुहर्रमी सूरत भी मारे हँसीके लोटन-कबूतर हो जाती है। इस उपन्यासका विषय बड़ा ही रोचक और शिक्षाप्रद है। थोड़ा पढ़ते ही आँखों और छातीसे चिमट जाता है। जबतक यह उपन्यास समाप्त नहीं होता, तबतक अपने पढ़नेवालोंका खाना, पीना और सोना भुलाये रहता है।

भारत की लाटगीरी करनेसे पहले लार्ड कर्ज़नने इसे सम्पादित कर यूरोपमें बड़ा नाम पाया था। इसकी ख़ूबसूरती आपके मकान की शोभा बढ़ाने लायक़ है। सब मिलाकर, इसमें चौबीस हाफटोन तस्वीरें दी गई है। हर तस्वीर ऐसी है, कि देखिये तो देखते ही रहिये। मोटे काग़ज़ पर बड़े ही साफ अक्षरोंमें पुस्तक छापी गयी है। रेशमी चमचमाती जिल्द है। सैकड़ों पृष्ठके इस मोटे उपन्यासका दाम सिर्फ साढ़े तीन रुपये। बे-जिल्दके तीन रुपये। डाक-महसूल दस आने।

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी,

२०१, हरिसन रोड, कलकत्ता।

ऐसा था बाँसुरीके बजैयाका बालपन ।
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैयाका बालपन ॥२॥

आपने प्रेम-सम्बन्धी फुटकर शेरोंके सिवा "पेट," "मनुष्य" "बचपन," "बुढ़ापा," "रोटी," "संसार मिथ्या" बञ्जारानामा प्रभृति पर भी बड़ी ही मनोहर कवितायें लिखी हैं। आपकी ब्रह्मानन्द-सम्बन्धी कविता इसी पुस्तकके अन्तमें देखें। इस पुस्तकके प्रकाशित होनेके पहले शौक़ीन आपकी कविताओं को तरसते थे। जब से यह पुस्तक छपी है, धड़ा-धड़ बिक रही है। आप इसे अवश्य देखें। दाम १)

रिआयत।

जो सज्जन दाग़, ज़ौक़, ग़ालिब और नज़ीर-चारों पुस्तकें एक साथ मँगायेंगे, उन्हें ३।) देने होंगे। डाकमहसूल १ पाई न देना होगा।

उपन्यास-सम्राट्

हाजीबाबा ।

सम्पादक

भूतपूर्व वाइसराय लार्ड कर्जन महोदय ।

पृष्ठ-संख्या ३५० **चित्र-संख्या २५**

यह रहस्य-पूर्ण उपन्यास हाल ही में छप कर तैय्यार हुआ